भारतीय समाजवाद

और

आचार्य नरेन्द्र देव



अमर ज्योति सिंह

एम० ए०, एम० फिल० (समाजशास्त्र)

प्रकाशक

अमर ज्योति सिंह

सी 26/36 ए-3 रामकटोरा, वाराणसी - 221 002 (उ० प्र०)

फोन : 45120

Publishers

Amar Jyoti Singh

C 26/36 A-3 Ramkatora, Varanasi - 221 002

Phone : 45120

प्रथम संस्करण : 1992

मूल्य : 300 रुपये मात्र

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रानिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०, चौक, वाराणसी - 1

भारत के समाजवादियों तथा
समाजवाद में आस्था रखने
वालों को सादर समर्पित ।

विषय क्रम



सागर सिंह और आचार्य नरेन्द्र देव

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक अमर ज्योति सिंह इसकी भूमिका लिखने का दायित्व मुझे क्यों दे रहे हैं यह मैं नहीं समझ पा रहा हूँ।

मेरा किसी भी विश्वविद्यालय के अध्यापन कार्य से कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। समाजशास्त्र और सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया का मैं विद्यार्थी भी नहीं रहा हूँ। विद्वत्ता और पाण्डित्य से कोसों दूर मैं सामाजिक संरचना का सतर्क और सक्रिय समभागी रहने में आनन्द का अनुभव करता हूँ। फिर विद्वानों के द्वारा किया जानेवाला कार्य मुझसे क्यों कराया जा रहा है यह भान मेरे संकोच को और बढ़ा रहा है।

आचार्य नरेन्द्र देव भारत में समाजवादी आन्दोलन के जनक थे। उस आन्दोलन में उनके साथ, उनके नेतृत्व में कार्य करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। उनसे विचार विनिमय, तर्क वितर्क करने का और शंका समाधान करने के अनेक अवसर प्राप्त हुए थे। यह मेरा सौभाग्य है कि उनके जीवन का अन्तिम अभिलेख वह पत्र सिद्ध हुआ जो पेनुनदुराई से उन्होंने ८-२-५६ ई० को मुझे लिखा था और उसमें अपने जीवन के विशाल अनुभव के सार को प्रतिबिम्बित किया। मुझे प्रतीत होता है कि इन्हीं बातों से प्रभावित होकर इस पुस्तक के लेखक श्री अमर ज्योति सिंह ने मुझे इसकी भूमिका लिखने का दायित्व दिया है।

आचार्य नरेन्द्र देव भारतीय मनीषा के अपने युग के प्रतिनिधि पुरुष थे। भारतीय इतिहास, सामाजिक संगठन और समय-समय पर होते रहने वाले परिवर्तनों, आन्दोलनों का तथा भारतीय संस्कृति की जीवंत प्रवहमान गतिशीलता का उन्होंने गहन अध्ययन किया तथा उसे अपने जीवन में आत्मसात भी किया। किन्तु उन्होंने धर्मान्धता और धार्मिक कट्टरता तथा शास्त्रीय साम्प्रदायिकता को कभी भी अपने पास फटकने नहीं दिया। उनसे अपने को मुक्त रखा। उपनिषदों के सम्बन्ध में उनके प्रशंसात्मक वक्तव्य देखने लायक हैं। बुद्ध के विचारों के प्रति और विशेष रूप में उनके द्वारा बहुजन हिताय के उद्‌घोष के प्रति तथा करुणा के भाव पर जोर दिये जाने के कार्य ने आचार्य नरेन्द्र देव के संवेदनशील हृदय और तर्क सम्मत मस्तिष्क को अपनी ओर विशेष रूप से आकर्षित किया। वे भारतीय धर्म को, छोटे-छोटे समूहों का रोमांचकारी वर्णन करते हुये इसकी उदारता और वैभिन्न्य को विलीन करते हुये इसकी अद्भुत एकता पर मंत्र मुग्ध होते हैं। किन्तु धर्म को जकड़ने वाले कर्मकाण्डों, उसकी संकीर्णताओं और उसकी कट्टरता को हानिकर मानते हैं, उसे स्वीकार नहीं करते और उनके विरुद्ध खड्‌गहस्त दिखाई पड़ते हैं।

इन सबके बावजूद उनका सम्पूर्ण जीवन संवेदनशीलता की आधारशिला पर मानववादी भारतीय दृष्टिकोण को पुष्ट करता हुआ आधुनिक ज्ञान विज्ञान के मानव हितकारी चिन्तन को स्वीकार कर शुभ और अशुभ के बीच हो रहे संघर्ष में शुभ का पक्षधर बना रहा। इसी कारण वे भारतीय समाज द्वारा ऋषि तुल्य देखे जाते रहे। आचार्य नरेन्द्र देव जैसा शिखर विद्वान् भारत की पराधीनता के विरुद्ध संघर्ष की बाध्यताओं से अछूता न रह सका और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा जब सन् १९२० ई० में असहयोग आन्दोलन का निर्णय लिया गया तो उन्हें अपना निर्णय लेने में एक क्षण का समय नहीं लगा। उन्होने अपनी विकसित हो रही वकालत के कार्य को त्याग दिया और स्वतंत्रता संग्राम मे कूद पडे। उनके समय में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व कांग्रेस के नेतृत्व मे चल रहा था जिस पर उस समय के भारत के साम्यवादी दलका आरोप बुर्जुआ संस्थान होने वाला था। आचार्य नरेन्द्र देव ने काशी विद्यापीठ में रहते हुये पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान, मार्क्सवाद का गहन अध्ययन किया। मार्क्सवाद के गवेषणात्मक निष्कर्षो मे उनकी अभिरुचि बढ़ी। वे मार्क्सवादी विचारो से प्रभावित थे किन्तु मार्क्सवाद उनका धर्म सिद्धान्त कभी नहीं रहा। उनका स्पष्ट मत है कि देशकाल और परिस्थितियो के अनुसार मार्क्स के विचार संरचित समस्याओं के समाधान के हेतु प्रकाश प्रदान करती है। मार्ग बनाते है। वह कभी-कभी टेढ़ी-मेढी होती है और सर्वथा एक ही भार्ग नहीं होता है। मार्क्सवाद उनके लिये कार्य सिद्धान्त था परन्तु धर्म सिद्धान्त के रूप में उन्हें कभी स्वीकार नहीं था। उनका स्पष्ट मत है कि विश्व का वाम पक्ष संकीर्ण मतवाद के रोग से जहाँ-तहाँ ग्रसित हो जाता है। इसका कारण विचारों की संकीर्णता और मार्क्स के ग्रन्थो को धर्मग्रन्थ का दर्जा प्रदान करना है। जिस प्रकार विभिन्न धर्म के अनुयायी अपने धर्म ग्रन्थो की उक्तियो से चिपककर झगड़ते हैं, उसी प्रकार वामपंथी दल कभी-कभी संकीर्णताओं मे फँस जाता है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि मार्क्स मानववादी था और जनतान्त्रिक समाजवाद ही मार्क्सवाद है क्योंकि मार्क्स के अनुसार शोषितो का अपार समूह मुट्ठी भर शोषकों के विरुद्ध अल्पकालिक अधिनायकत्व को वरण कर सम्पूर्ण जनतंत्र की स्थापना करेगा। मार्क्स ने सर्वहारा का अधिनायकत्व कहा, साम्यवादी पार्टी के अधिनायकत्व की तो उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। इसी पर वर्तमान वैज्ञानिक परिवेश में उन्होंने हिंसा और युद्ध की उपयोगिता को नकार दिया और कहा कि बहुतायत सर्वहारा वर्ग द्वारा सत्याग्रह और हड़ताल, शान्तिमय संघर्ष की प्रभावकारी प्रक्रिया है, उनका मार्क्सवाद से किसी भी प्रकार विरोध नहीं है। इसी प्रकार उन्होंने जनतांत्रिक समाजवाद को ही मार्क्सवाद कहा है और कहा कि वही मार्क्स के विचारों का सार है।

आचार्य नरेन्द्र देव राष्ट्र के सामाजिक विश्लेषण पर आधारित जनतांत्रिक समाजवाद को प्रस्तुत करने वाले नेता हैं। उनका मत है कि आपको अपने देश की जनता को समझना होगा। समाज के विभिन्न समूहों की अपने रीति, रिवाज, रस्म के प्रति भावनात्मक रुझान होती है। उन रुझानों के साथ हस्तक्षेप करना

वे श्रेयष्कर नहीं समझते हैं। उनका कहना है कि नम्रता से विभिन्न समूहों को आधुनिक ज्ञान से परिचित कराते हुये उनमें उदार दृष्टिकोण के प्रादुर्भाव होने का शनैः शनैः प्रयास करना चाहिये। उनके मतानुसार समाज ज्यों-ज्यों आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से परिचित होता जायेगा त्यों-त्यों ही विभिन्न प्रकार और देश के लोगो से सम्पर्क बढ़ेगा। जैसे-जैसे विभिन्न साहित्य से समाज के लोगों का सम्पर्क होगा वैसे-वैसे हानिकारक परम्परायें, सड़े-गले अन्धविश्वास और कुरीतियाँ अपना अस्तित्व खोने लगेंगी और आधुनिक दृष्टिकोण वाला समाज जनतांत्रिक जीवन प्रणाली अपनाने के लिये अग्रसर होने लगेगा। आचार्य नरेन्द्र देव राष्ट्र नायक थे। उनमें राष्ट्र प्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ था। उनसे जिस किसी का सम्पर्क होता था उसके हृदय में वे राष्ट्रप्रेम की भावना प्रज्ज्वलित कर देते थे। उनकी प्रखर राष्ट्रीयता बड़ी ही उदार थी। उसका अन्तर्राष्ट्रीयता से कभी टकराव सम्भव नहीं था। उनकी विचार पद्धति के अनुसार परिवार, गाँव राज्य और राष्ट्र की भावनात्मक एकता के साथ अब हम विश्व समाज की भावना की ओर भी झांक रहे हैं। आचार्य नरेन्द्र देव ने बड़ी ही कठिन परिस्थिति में राष्ट्र को गतिशील नेतृत्व प्रदान किया। सन् १९२९ ई० में ही उन्होंने तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष पं० जवाहर लाल नेहरू को पत्र लिखकर कार्यकर्ताओं को आर्थिक नीतियों के प्रति ज्ञानवान बनाना बहुत ही आवश्यक कहा। उसके बाद १९३० ई० के आन्दोलन के पश्चात् देश में जो ठहराव आया उसके कारण अपने देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में कार्यरत कार्यकर्ताओं के मन में उथल-पुथल मची और विभिन्न स्थानों पर प्रगतिशील नीतियों के समर्थक युवक और कार्यकर्ता संगठित होकर कांग्रेस को प्रगतिशील मार्ग पर ले चलने के लिये समाजवाद की ओर उन्मुख होने लगे, और जब १९३४ ई० में पटना में कांग्रेस के अन्दर कार्य कर रहे युवकों ने कांग्रेस के अन्दर समाजवादी पार्टी बनाने का निश्चय किया तो आचार्य नरेन्द्र देव को प्रयास करके उसका अध्यक्ष बनाया गया। आचार्य नरेन्द्र देव के जीवन की वह सर्वाधिक कठिन घड़ी थी। उस समय देश में राष्ट्रीय आन्दोलन में दो प्रकार के लोग थे। एक समूह ऐसा था जो कहता था कि समाजवाद की तथा किसानों और मजदूरों की बात करके समाजवादी अंग्रेजों के विरुद्ध संग्राम में राजाओं और जमींदारों को भड़का रहे हैं एवं उनका सहयोग खोने का कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार से समाजवादी स्वतंत्रता संग्राम को कमजोर करने का कार्य कर रहे हैं। आचार्य नरेन्द्र देव ने १९३४ ई० में पटना में हुए समाजवादियों के प्रथम अधिवेशन में जो भाषण दिया, वह राष्ट्रीय आन्दोलन और समाजवादी आन्दोलन का अत्यन्त महत्वपूर्ण वक्तव्य था। उन्होंने पराधीन देश के स्वतंत्रता-आन्दोलन की अगुवाई कर रही कांग्रेस को क्रांतिकारी संस्था कहा और दृढ़ता से प्रतिवाद किया, चूँकि यह प्रतिवाद आचार्य नरेन्द्र देव जैसे प्रामाणिक समाजवादी नेता ने किया इसलिये साम्यवादियों की आलोचना निष्प्रभावी हो गई। आचार्य नरेन्द्र देव उस समय के प्रमुख राष्ट्रवादी नेताओं को जो यथास्थितिवाद के समर्थक थे, उनको उत्तर देते हुये अपने भाषण में कहा कि देश के राजे, महराजे और जमीदार अंग्रेजों की सत्ता का समर्थन कर रहे हैं ऐसी

स्थिति में देश के किसानों और मजदूरों के संगठित समर्थन से कांग्रेस का स्वतंत्रता संग्राम, जन आन्दोलन और अन्ततोगत्वा जन क्रान्ति का स्वरूप ले लेगा। अपने उस ऐतिहासिक भाषण में उन्होंने कांग्रेस को यह आश्वस्त किया कि कांग्रेस समाजवादी पार्टी का गठन स्वतंत्रता संग्राम को मजबूत और दृढ़ करने के उद्देश्य से किया गया है और कांग्रेस की नीति को गतिशील बनाकर देश को आश्वासन दिया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में किसान मजदूर राज्य स्थापित होगा।

स्वतंत्रता संग्राम में आचार्य नरेन्द्र देव के नेतृत्व में कार्य कर रही कांग्रेस समाजवादी पार्टी राष्ट्रीय आन्दोलन में देश के किसानों को संगठित कर, मजदूर आन्दोलनों का नेतृत्व कर, देशी रियासतो में प्रजा परिषद का संगठन कर कांग्रेस के आधार को व्यापक और प्रगतिशील बना रही थी और कांग्रेस को अंग्रेज साम्राज्य-शाही के विरुद्ध अन्तिम संघर्ष की ओर बढ़ा रही थी।

समाजवाद के लिये राष्ट्र की स्वतंत्रता को आचार्य नरेन्द्र देव आवश्यक मानते थे और इसके लिये संगठित प्रयास को वे क्रान्तिकारी कार्य कहते थे। इसीलिये विश्व में सम्भवतः एक ही उदाहरण है कि भारतीय स्वतंत्रता सग्राम के दौरान कांग्रेस के भीतर अलग संविधान और अलग सदस्यता तथा समाजवाद के उद्देश्य को लेकर संगठित कांग्रेस समाजवादी पार्टी १९३४ से १९४७ तक कार्य करती रही एवं कांग्रेस के स्वतंत्रता संग्राम मे तीव्रता उत्पन्न करती रही। यहाँ तक कि १९४२ ई० में "अंग्रेजों भारत छोडो" का सकल्प लेने मे गांधीजी से पूर्ण सहमति आचार्य नरेन्द्र देव की रही और जब वह आन्दोलन छिड़ा तो कांग्रेस समाजवादी पार्टी में जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, डॉ० राम मनोहर लोहिया, अरुणा आसफ अली प्रभृति प्रमुख नेताओं ने उस आन्दोलन की कमान सम्हाल ली। कांग्रेस के भीतर संगठित दल के रूप मे कार्य करते हुए कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने कांग्रेस को सतत प्रगतिशील बनाने का प्रयास किया और एक बार भी अनुशासनात्मक समस्या उत्पन्न नहीं होने पाई। इसका मुख्य कारण आचार्य नरेन्द्र देव के नेतृत्व में चल रहे समाजवादी आन्दोलन का सांस्कृतिक स्वरूप था। वे समाजवाद को सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में देखते थे जिसमें केवल रोटी की समस्या का ही समाधान ढूढ़ना नहीं था बल्कि उसके साथ-साथ मानवीय मूल्यों की स्थापना, मानव मर्यादा की रक्षा समाज के हित के साथ ही साथ व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसके व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास का प्राविधान आवश्यक है। वे समाजवाद को भारत के सांस्कृतिक स्वरूप के सहज और अनवरत हो रहे विकास में अपनी अद्भुत क्षमता के आधार पर आधुनिक ज्ञान विज्ञान को जोडने मे अभूतपूर्व रूप से सफल हुये। उनके समाजवाद के केन्द्र बिन्दु मे मानव है और समाजवाद का मूलाधार वे मानवता को मानते हैं। अपनी इसी विचार पद्धति के कारण वे पूर्ण रूपेण, त्यागमय जीवन प्राप्त कर सके और निस्पृह भाव से सर्वभूतहित सेवा में अपने को लगा दिये। इसी कारण वे जीवन भर "अपने राष्ट्र और अपने समाज को देते ही रहे, लिया कुछ भी नहीं" और अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु इस प्रकार निष्ठावान रहे कि जीवन में अनेक अवसरों पर उन्होंने प्राप्त हो रहे अत्यन्त

महत्त्वपूर्ण पदों को अस्वीकार कर दिया। उनकी हिमालय जैसी चारित्रिक ऊँचाई से समाजवादी आन्दोलन को भारत में अभूतपूर्व तेजस्विता प्राप्त हुई थी।

जब कांग्रेस ने कांग्रेस के भीतर संगठित पार्टी के अस्तित्व को अपने संविधान में संशोधन कर रोक लगाने का निर्णय किया तो आचार्य नरेन्द्र देव को कांग्रेस छोड़ने का निर्णय लेने में एक क्षण की भी देर न लगी, यद्यपि वे उसके पूर्व कांग्रेस छोड़ने के पक्ष में नहीं थे। और जब उनके नेतृत्व में समाजवादी पार्टी ने कांग्रेस छोड़ने का निर्णय १९४८ ई० में लिया तो आचार्य नरेन्द्र देव ने जो स्वयं भी कांग्रेस के टिकट पर उ० प्र० विधान सभा के सदस्य थे अपनी पार्टी में कांग्रेस छोड़कर आने वाले समाजवादियों को कांग्रेस छोड़ने के साथ ही विधान सभा की सदस्यता से त्याग-पत्र देने का निर्णय लिया और स्वयं भी विधान सभा से अपने साथियों के त्याग-पत्र के साथ दे दिया। विश्व के इतिहास में राजनैतिक नैतिकता की इतनी प्रेरणाप्रदत्त मिसाल ढूढ़े नहीं मिलती। उनके इस महान् नैतिक कार्य पर उनके विरोधी भी चकित थे किन्तु उन्होंने इसे कर दिखाया। आज के दल-बदल के घिनौने स्वरूप से हमारे राष्ट्रीय जीवन को जो क्षति पहुँच रही है, उसके निराकरण का उन्होंने आदर्श उपस्थित कर दिया था। खेद है, अन्य लोगों के साथ ही हम लोग भी जो उनके साथी और अनुयायी रहे, उस महान् कार्य का अनुसरण नहीं कर सके। इससे भारत की राजनीतिक दुर्दशा चरम सीमा पर पहुँच गई।

आचार्य नरेन्द्र देव का नेतृत्व स्वतंत्रता संग्राम में अपनी विलक्षणता के कारण, अलग पहचान रखता है। उन्होंने वर्ग संगठनों को नेतृत्व प्रदान कर, कांग्रेस के साथ किसानों और मजदूरों का सहयोग बढ़ा कर साम्राज्यवाद के विरुद्ध कांग्रेस के स्वतंत्रता संग्राम में अभूतपूर्व शक्ति का संचार किया। उन्होंने देशी रियासतों के लोगों के "प्रजा परिषद" संगठन को चेतना-प्रपन्न बना कर आन्दोलन को राष्ट्रव्यापी स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने कांग्रेस के स्वरूप को जनोन्मुख बनाने का अथक प्रयास किया और उसमें कुछ हद तक सफलता भी प्राप्त की। उन्होंने कांग्रेस पर बाहर से साम्यवादियों द्वारा किये जा रहे वैचारिक प्रहार का प्रभावकारी प्रतिकार करके कांग्रेस के स्वरूप को न केवल प्रगतिशील बनाये रखा, बल्कि उसे, समय-समय पर टूटने से बचाया और उसमें दृढ़ता प्रदान किया।

आचार्य नरेन्द्रदेव ने कांग्रेस का राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस को बनाने में सहायता की, किन्तु सुभाष बाबू ने अलग कांग्रेस सम्मेलन बुलाने की घोषणा की तो आचार्य नरेन्द्र देव ने उनके द्वारा आहूत १९३९ ई०, रामगढ़ कांग्रेस को बायकाट करने का कांग्रेस जनों का आह्वान किया और इस प्रकार कांग्रेस की एकता की रक्षा करने का अभूतपूर्व कार्य उनके हाथों सम्पन्न हो सका।

कांग्रेस समाजवादी पार्टी मुख्य रूप से उस समय के चेतना प्रपन्न युवकों की पार्टी थी। उसके वरिष्ठ नेता आचार्य नरेन्द्रदेव थे। उन्होंने सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, यूसुफ मेहरअली, अच्युत पटवर्धन, डॉ० लोहिया, कमला देवी चट्टोपाध्याय, अरुणा आसफअली, अशोक मेहता, एस० एम० जोशी, एन० जी० गोरे, फरीदुल

हक अन्सारी, बसावन सिंह प्रभृति तेजस्वी युवकों का संगठित रूप से स्वतंत्रत संग्राम के अन्तिम प्रहर में योगदान करने में अपना नेतृत्व प्रदान किया।

आचार्य नरेन्द्र देव का विश्व-समाजवाद के चिन्तन में महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने समाजवाद की क्रान्ति को समाजवादी पार्टी के अधिनायकत्व में फँस जाने का विरोध किया और अपनें तार्किक और इतिहासगम्य विवेचन से यह स्पष्ट किया कि जनतांत्रिक समाजवाद ही मार्क्सवाद है। कार्ल मार्क्स को उन्होंनें जनतंत्र का पूर्ण हिमायती बताया।

आचार्य नरेन्द्र देव ने व्यक्ति और समाज, दोनों के शोषण के विरुद्ध चेतना उत्पन्न करने पर बल दिया और व्यक्ति तथा समाज दोनों में, संगठित प्रयास से व्यवस्था-परिवर्तन के लिए आवश्यक बताया।

आचार्य नरेन्द्र देव ने प्रथम-प्रथम हमें यह बताया कि समाजवाद में पूर्ण नैतिकता की स्थापना सम्भव है। अन्य प्रकार की व्यवस्था में श्रेणी—नैतिकता, वर्ग—नैतिकता या दलीय-नैतिकता होती है। लोग अपने वर्ग, अपने दल के प्रति नैतिकता बरतते हैं, लेकिन विरोधी के प्रति अनैतिक हो जाते हैं, नैतिक नहीं होते हैं और इस स्थिति में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने की सम्भावना बलवती हो उठती है, जब अपने वर्ग पर या दल पर अपना वर्चस्व या आधिपत्य बनाने के लिये, स्थापित करने के लिये उन्हें अपने वर्ग या दल में भी अनैतिक होने का कारण उत्पन्न हो जाता है। इसीलिये वे समाजवाद में पूर्ण नैतिकता का विशद विवेचन करते हुए कहते हैं कि जनतांत्रिक समाजवाद में अपने प्रतिपक्षी के प्रति नैतिक होना आवश्यक है एवं जनतांत्रिक समाजवाद में ही पूर्ण नैतिकता सम्भव है। इस दृष्टि से 'भी वे जनतांत्रिक समाजवाद को सांस्कृतिक आन्दोलन कहते थे।

आचार्य नरेन्द्र देव अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक वर्ग-संघर्ष को दृढ़ता के साथ स्वीकार करते हैं। मुझे ८-२-५६ ई० को पेनुन्दुराई से लिखे अपने पत्र में, जो उनका अंतिम लेखन है, उन्होंने बहुत स्पष्ट रूप से कहा कि मिल-मालिक और मजदूर मिलकर कारखाना चलाते हैं, यह रोजमर्रा की बात है। अगर ऐसा न हो तो समाज ही छिन्न-भिन्न हो जाय। किन्तु वर्ग संघर्ष पर बल इसलिए देना पड़ता है, क्योंकि पूँजीवादी विचारक यह कहते नहीं अघाते कि दोनों के हित भी समान हैं। समाजवाद के सांस्कृतिक आंदोलन के स्वरूप-निर्धारण में वर्ग-संघर्ष की अनिवार्यता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जीवन शुभ और अशुभ का ताना-बाना है। प्रकृति ने हमें ऐसा ही जीवन प्रदान किया है। इसमे शुभ का अशुभ से निरंतर संघर्ष जारी है। इस संघर्ष में शुभ की विजय अवश्यम्भावी है। इस प्रकार वे समाजवादी कार्यकर्ताओं को शुभ की शक्तियों का पक्षधर होना अनिवार्य बताते हैं। उनका कहना है कि समाजवादी कार्यकर्ता, जिस समाज में रहता है, उसके केन्द्रबिन्दु में स्थापित हो जाता है। उस समाज में शुभ के लिए यदि कोई सुधारवादी कार्य होता है, तो वह उसकी अगुवाई करता दिखाई देता है और यदि किसी अन्याय के विरुद्ध संघर्ष होता है, तो उसका भी वह नेतृत्व

करता है एवं वह समाज का सजग सेवक है और समाज भी उसकी धमनियों में तादात्म्य स्थापित करता है ।

आचार्य नरेन्द्र देव समाजवादियों को प्रखर राष्ट्रवादी होना मानते हैं, किन्तु उनकी राष्ट्रीयता उदार है । उसका दृष्टिकोण न संकुचित और संकीर्ण है न साम्प्रदायिक, न अधिनायकवादी, उसका अन्तर्राष्ट्रीयता से तालमेल रहता है । भौगोलिक इकाई के अतिरिक्त राष्ट्र के लिए वे एक सम्पर्कभाषा, सभी समुदाय के लिए एक राष्ट्रीय त्यौहार, सभी भाषाओं के लिए एक लिपि और सम्पूर्ण राष्ट्र की राष्ट्रीय वेश-भूषा की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि प्रत्येक भारतीय का स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस प्रेरक राष्ट्रीय त्यौहार है । इससे राष्ट्र में भावनात्मक एकता की स्थापना होगी । इसी प्रकार वे सबसे बड़े भूखण्ड में हिन्दी भाषा के प्रयुक्त किये जाने के कारण 'हिन्दी' को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने का आग्रह करते हैं । वे भारतीय वेशभूषा को भी राष्ट्रीयता की स्थापना के लिए आवश्यक मानते हैं ।

आचार्य नरेन्द्र देव ने स्वतंत्रता संग्राम में कार्य करने हेतु कर्त्तव्यनिष्ठ निर्भीक और चरित्रवान युवकों को काशी विद्यापीठ में प्रशिक्षित कर, राष्ट्र को दिया । यह उस समय उनकी अभूतपूर्व देन थी और इसे ही वे अपनी पूँजी मानते थे । उनके द्वारा दीक्षित और प्रशिक्षित युवकों में लालबहादुर शास्त्री, वी० वी० केसकर, त्रिभुवन नारायण सिंह, कमलापति त्रिपाठी, राजाराम शास्त्री, हरिहरनाथ शास्त्री, भोला शास्त्री, रामसुभग सिंह आदि प्रमुख हैं, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में बढ़-चढ़ कर कार्य किया, तथा देश के स्वतंत्र हो जाने पर देश के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । काशी विद्यापीठ में बैठ कर आचार्य नरेन्द्र देव ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम हेतु युवकों को योग्य बनाने के कार्य के अतिरिक्त स्वतंत्रता के बाद देश की सामाजिक आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ न्यायगत और एकामूलक बनाने हेतु गहन अध्ययन, विचार-विमर्श और विचार स्थिर किये, जिसे हम जनतांत्रिक समाजवाद कहते हैं । उनका जनतंत्र केवल संवैधानिक प्रक्रिया और कार्य तक ही सीमित नहीं है । उसे वे संगठित राजनीतिक प्रयास और कार्य तक ले जाते हैं जिसमे सत्याग्रह और हड़ताल सम्मिलित है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आचार्य नरेन्द्र देव, राष्ट्रनिर्माण के दायित्व का निर्वाह करने, योग्य युवकों को प्रशिक्षित करने का कार्य करना चाहते थे । उसकी रूप-रेखा वे निश्चित कर चुके थे । उनका अटूट विश्वास था, कि किस प्रकार युद्ध में विजय प्राप्त करने पर, किसी भी विजयी देश की सेना, बैरकों में वापिस चली जाती है, उसी प्रकार स्वतंत्रताप्राप्ति के पश्चात राजनीतिज्ञों को पीछे हो जाना चाहिए और राष्ट्र निर्माण के कार्य के लिए चेतना-प्रपन्न, चरित्रपरायण, दीक्षित और प्रशिक्षित युवकों को, जिसमें अभियन्ता, निर्माणकर्ता, शिक्षक, तकनीशियन, अर्थशास्त्री, साहित्यकार, समाजशास्त्री आदि हों, को आगे आकर देश में शोषण विहीन, समतामूलक समाज की रचना का कार्य करने का अवसर प्रदान करना चाहिए ।

आज देश के राजनीतिक क्षेत्र में गिरावट से सम्पूर्ण समाज, जिस प्रकार

तीव्र गति से दिशाहीन होकर भंयकर स्थिति का सामना कर रहा है, उसे देखकर आचार्य नरेन्द्र देवं का उक्त कथन कितना प्रासंगिक है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान समय में हम जिस प्रकार धार्मिक उन्माद और जातीय विद्वेष की तपिश का अनुभव कर रहे हैं उसे नरेन्द्र देव जी, अपने त्यागमय और निर्मल चरित्र के कारण तथा इतिहास के सामाजिक-आर्थिक व्याख्याकार होने के कारण आज से ४५ वर्ष पूर्व भविष्य को झाँक कर अनुमान कर चुके थे। इसीलिए उन्होंने इन प्रवृत्तियों का सामना करने के लिए गतिशील आर्थिक और सामाजिक नीति का अनुसरण करने पर बल देने का विचार रखा था। उनका कहना था कि देश के युवकों का, समाज को विपन्न करने वाले प्रश्नों से ज्ञानवान बनाना, उन्हें चरित्रपरायण बनाना अत्यन्त आवश्यक है। अपनी व्याधि की चिकित्सा, यूरोप से कराकर स्वास्थ्य की वापिसी के बाद, वे इसी महान कार्य को अपनी विराट कल्पना और कर्मनिष्ठ योजना के आधार पर करना चाहते थे, किन्तु वापिस लौटने के बाद देश में समाजवादी पार्टी में उठे बवंडर से पार्टी को बचाने के लिए सभी नेताओं ने उनपर दबाव डालकर उसका नेतृत्व उन्हें सुपुर्द किया और जब उन्होंने उत्तरदायित्व को अपने जीवन का पवित्रतम कार्य मान कर स्वीकार कर लिया, तब उन्हें अपेक्षित सहयोग प्राप्त न हो सका। अपने गिरते हुए स्वास्थ्य के बाद भी उन्होंने १९५५ में जनतांत्रिक समाजवाद का प्रामाणिक नीति वक्तव्य प्रस्तुत किया। वह गया नीति वक्तव्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह नीति वक्तव्य भारत में एक सुदृढ़ गतिशील और न्यायसंगत समतामूलक समाज-व्यवस्था स्थापित करने हेतु सांस्कृतिक आन्दोलन का सम्पूर्ण विवेचन प्रस्तुत करता है।

शिक्षा के क्षेत्र में आचार्य नरेन्द्र देव ने उत्थान के मौलिक कार्य किये। शिक्षा के क्षेत्र में आज दावानल की भाँति फैली हुई अनुशासनहीनता के अद्‌भुत चिकित्सक सिद्ध हुए। काशीविद्यापीठ, लखनऊ विश्वविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में उन्होंने छात्रों, शिक्षकों, और कर्मचारियो के हितों के साथ ऐसा तादात्म्य स्थापित किया कि उनके संपूर्ण कार्यकाल में कहीं भी अनुशासन की समस्या उत्पन्न ही नहीं हुई। इस सम्बन्ध में उनके विचार अत्यन्त स्पष्ट हैं। शिक्षकों से राष्ट्रनिर्माण हेतु युवकों के निर्माण की अपेक्षा करते थे और अनुशासनहीनता न उत्पन्न हो सके, इस हेतु युवक के अधिकार को स्वीकार करने का आह्वान करते रहे। शिक्षकों, छात्रों और कर्मचारियों के सम्पूर्ण समवाय का उनके नेतृत्व में अद्‌भुत समन्वय हुआ था। उनके त्यागमय निर्मल जीवन के कारण अद्वितीय प्रकाण्ड पाण्डित्य के कारण, सर्वहित शील, नम्रता और संवेदनशीलता के कारण, शिक्षकों, छात्रों और कर्मचारियों की, उनको अभूतपूर्व श्रद्धा प्राप्त होती रही।

उनकी अध्यक्षता में शिक्षा समिति का प्रतिवेदन क्रियान्वित नहीं किया गया, जिसके कारण शिक्षा जगत में उद्विग्नता व्याप्त है। भाषा के सम्बन्ध में उनके द्वारा प्रस्तावित त्रिभाषा-फार्मूला, आज भी अपनाकर हम राष्ट्रभाषा की समस्या के सम्बन्ध में उत्पन्न होने वाला तनाव समाप्त कर सकते हैं। सम्पूर्ण देश की सभी भाषाओं

के लिए उनके द्वारा नागरी लिपि को अपनाये जाने का प्रतिवेदन कितना उपयोगी और दूरदर्शी है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। इस एक कार्य से राष्ट्र एकता की ओर उन्मुख हो सकता है। राष्ट्रीय जागरण और राष्ट्र निर्माण हेतु गम्भीर और उत्तरदायी पत्रकारिता के क्षेत्र में आचार्य नरेन्द्र देव ने साप्ताहिक 'संघर्ष', 'समाज' और 'जनवाणी' का सम्पादन कर, क्रान्तिकारी और गतिशील नेतृत्व प्रदान किया। इन पत्रों के माध्यम से उन्होंने मानववादी समाज-संरचना की ठोस आधारशिला रखी है। जहाँ 'संघर्ष' जनतांत्रिक समाजवाद के सिद्धान्त और कर्म का गम्भीर रूप से प्रतिपादन कर रहा था, वही 'समाज' पत्र द्वारा उन्होंने प्रगतिशील साहित्य के मार्ग को प्रशस्त किया और 'जनवाणी', उनके राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समाज में सांस्कृतिक आन्दोलन की चेतना उत्पन्न करने का साधन रही।

आचार्य नरेन्द्र देव जैसा राष्ट्रनायक, स्वतंत्रतासंग्राम में शीर्षस्थान प्राप्त सेनानी और जीवन भर जनतांत्रिक समाजवादी मूल्यों के लिये संघर्ष करने वाला सेनापति 'बौद्ध धर्म दर्शन' जैसा गंभीर चिन्तनशील और गहन अध्ययन पर आधारित ग्रन्थ प्रस्तुत कर सका। यह उनकी कर्मनिष्ठ साधना का ही प्रतिफल कहा जायेगा। इस ग्रन्थ से दर्शन के क्षेत्र में उनके अप्रतिम पाण्डित्य और प्रकाण्ड विद्वता का पता चलता है।

एक ही व्यक्ति में विद्वता, संघर्ष और सिद्धान्त के आदर्श और व्यवहार का ऐसा अनुपम, योग, आधुनिक भारत की एक चमत्कारी घटना है, जो भारत देश में सम्भव हो सकी। अपने इन्हीं अद्भुत गुणों और विशेषताओं के कारण आचार्य नरेन्द्रदेव विवादग्रस्त राजनीति के शीर्ष-स्थापित होते हुए भी, अपने जीवन काल में ही अजातशत्रु कहलाये।

जो महान् पुरुष स्वतंत्रता संग्राम के अन्तिम संघर्ष में शीर्ष पर विराजमान रहा, जिन्हें महात्मागाँधी ने रत्न कहा और एक से अधिक बार कांग्रेस अध्यक्ष बनाना चाहे, जिन्हें अपने ४० वर्ष के निकटतम साथ का स्मरण कर, पं० जवाहरलाल नेहरू ने श्रेष्ठ प्रतिभा पुरुष कहा, विनोबा भावे, जिन्हें निर्वैर पुरुष कहते हैं, जयप्रकाश नारायण जिनको विश्व समाजवाद के प्रकाश-स्तम्भ से सम्बोधित करते हैं, जिन्हें कमलापति त्रिपाठी मर्यादा पुरुषोत्तम कहकर नमन् करते रहे हैं और राजारामशास्त्री जिन्हें अपने ही प्रकाश-किरणों से प्रकाशित भारत में समाजवाद के जनक कहते हैं, वे आचार्य नरेन्द्रदेव, महात्मागाँधी के उत्सर्ग के बाद कांग्रेस में परिवर्तित संविधान के कारण जनतांत्रिक समाजवाद हेतु अपने जीवन के सम्पूर्ण त्याग की पूँजी कांग्रेस में छोड़कर जब अपने जीवन के अन्तिम प्रहर में बिना सरोसामान वियावान पथ पर अग्रसर होते हुए कहते हैं, कि मुझे अपनी सेवा और जनता की शक्ति में विश्वास है, अन्तिम विजय जनतांत्रिक समाजवाद की है, जीवनभर अन्याय के विरुद्ध लड़े, यह कोई छोटा काम नहीं है। स्वतंत्र भारत में इसकी आवश्यकता तीव्र हो उठी है। व्यक्तियों और संस्थाओं के जीवन में ऐसे अवसर आते हैं, जब सिद्धान्त और उद्देश्य की रक्षा हेतु उन्हें अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का परित्याग करना पड़ता है।

ऑब्सेश
की नी
कम्यूनि
विरोध
ऑब्सेश
की रक्षा
दिया।
जाने के
का ही

इस पुस्त
एकत्र कर
के इस ज
है। नई

आ
स्वाभाविक
उपस्थित
गये राष्ट्रीय
आन्दोलन
अध्ययन प्र
अमरज्योति
कार्य और रा
राष्ट्र के युवक
व्यक्त किये
है।

विजयादशमी, ६
जलधि:तरंग,
जगतगंज, वारा

होकर भंयकर स्थिति का सामना कर रहा है, उसे देखकर उक्त कथन कितना प्रासंगिक है, यह कहने की आवश्यकता ा में हम जिस प्रकार धार्मिक उन्माद और जातीय विद्वेष कर रहे हैं उसे नरेन्द्र देव जी, अपने त्यागमय और निर्मल इतिहास के सामाजिक-आर्थिक व्याख्याकार होने के कारण भविष्य को झाँक कर अनुमान कर चुके थे। इसीलिए सामना करने के लिए गतिशील आर्थिक और सामाजिक ने पर बल देने का विचार रखा था। उनका कहना था समाज को विपन्न करने वाले प्रश्नों से ज्ञानवान बनाना, । अत्यन्त आवश्यक है। अपनी व्याधि की चिकित्सा, यूरोप वापिसी के बाद, वे इसी महान कार्य को अपनी विराट जना के आधार पर करना चाहते थे, किन्तु वापिस लौटने दी पार्टी में उठे बवंडर से पार्टी को बचाने के लिए सभी डालकर उसका नेतृत्व उन्हें सुपुर्द किया और जब उन्होंने जीवन का पवित्रतम कार्य मान कर स्वीकार कर लिया, ग प्राप्त न हो सका। अपने गिरते हुए स्वास्थ्य के बाद नतांत्रिक समाजवाद का प्रामाणिक नीति वक्तव्य प्रस्तुत क्तव्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह नीति वक्तव्य भारत ौर न्यायसंगत समतामूलक समाज-व्यवस्था स्थापित करने का सम्पूर्ण विवेचन प्रस्तुत करता है।

आचार्य नरेन्द्र देव ने उत्थान के मौलिक कार्य किये। ावानल की भाँति फैली हुई अनुशासनहीनता के अद्भुत काशीविद्यापीठ, लखनऊ विश्वविद्यालय, काशी हिन्दू के रूप में उन्होंने छात्रों, शिक्षकों, और कर्मचारियो के त्म्य स्थापित किया कि उनके संपूर्ण कार्यकाल में कहीं ा उत्पन्न ही नहीं हुई। इस सम्बन्ध में उनके विचार ं से राष्ट्रनिर्माण हेतु युवकों के निर्माण की अपेक्षा करते न उत्पन्न हो सके, इस हेतु युवक के अधिकार को करते रहे। शिक्षकों, छात्रों और कर्मचारियों के सम्पूर्ण में अद्भुत समन्वय हुआ था। उनके त्यागमय निर्मल प्रकाण्ड पाण्डित्य के कारण, सर्वहित शील, नम्रता और शिक्षकों, छात्रों और कर्मचारियों की, उनको अभूतपूर्व

ं शिक्षा समिति का प्रतिवेदन क्रियान्वित नहीं किया गया, में उद्विग्नता व्याप्त है। भाषा के सम्बन्ध में उनके द्वारा आज भी अपनाकर हम राष्ट्रभाषा की समस्या के सम्बन्ध समाप्त कर सकते हैं। सम्पूर्ण देश की सभी भाषाओं

आचार्य नरेन्द्र देव : सूर्य व्यक्तित्व

आचार्य नरेन्द्र देव को केन्द्र में रखकर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास तथा उसमें मार्क्सवादी विचार-धारा के योगदान पर विचार करने का जो प्रयत्न प्रस्तुत प्रबन्ध में किया गया है उसकी सराहना की जानी चाहिए। इस प्रबन्ध के लेखक अभी युवक हैं। इस देश की राजनीति-समाजनीति के विषय में उनकी जिज्ञासा भले ही प्रशंसनीय हो पर जानकारी तब भी कम है। इस कमी को उत्साह तथा कार्य के प्रति निष्ठा के बल पर संतुलित करके उन्होंने बड़ी तत्परता से यह प्रबन्ध प्रस्तुत कर डाला है। मुझे विश्वास है कि देश के समाजवादी आन्दोलन में रुचि रखने वाले नये पाठकों के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध होगा।

कांग्रेस की छत्रछाया में १९३५ में समाजवादी विश्वासों की नींव रखने वालों में आचार्यजी प्रमुख थे। तब से मृत्युपर्यन्त वे बड़ी बेचैनी से अपने विश्वासों के लिए अपनी जन्मदात्री संस्था कांग्रेस तथा अपने मित्रों से कदम-कदम जूझते रहे। मार्क्स पर आन्तरिक आस्था रखते हुए भी वे गाँधीजी के प्रति बराबर विश्वास से भरे रहे। श्री जवाहरलालजी उनके घनिष्टतम मित्र थे पर स्वतंत्रता के बाद केन्द्र में जवाहरलाल की सरकार से सहमत होने में वे अक्सर असमर्थ रहे। सरदार पटेल उन्हें कांग्रेस अध्यक्ष नहीं बना सके, न श्री पंत ने उन्हे उत्तर प्रदेश असेम्बली में प्रवेश करने दिया पर उनमें सम्बन्धों की कटुता नहीं देखी गयी। गाँधीजी स्वतंत्रता के बाद आचार्य नरेन्द्र देव से राष्ट्रीय कांग्रेस का काम लेना चाहते थे पर कांग्रेस का नेतृत्व उन्हें अपने शीर्ष पर स्वीकार करने को तब भी तैयार नहीं था। गाँधी धीरे-धीरे अकेले पड़ते गये; उनकी मृत्यु के बाद कांग्रेस में ऐसी कोशिशों के लिए दरवाजे बन्द हो गये। सोशलिस्ट विश्वास रखने वालों के लिए कांग्रेस में रहना तब असम्भव हो गया। मुझे टाउनहाल की उस सभा की याद अब भी ताजी है जिसमें कांग्रेस से अलग होने के बाद आचार्यजी ने विशाल जन-समुदाय को सम्बोधित करते हुये कहा था कि यह उनका "वन पर्व" है। वे तब भी कांग्रेस से समाजवादियों की असहमति को एक परिवार के झगड़े के रूप में ही देख रहे थे।

मुझे १९४६ में निरालाजी की स्वर्ण-जयन्ती के उद्‌घाटन के अवसर पर दिया गया उनका वक्तव्य भी याद है जिसमें उन्होंने देश के साहित्यकारों तथा सांस्कृतिक कार्य करने वालों को आगे बढ़कर देश का चित्र बदलने का ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न करने का आह्वाहन किया था। उसी के बाद वाराणसी में उन्हीं की प्रेरणा से नव संस्कृति संघ की स्थापना की गयी तथा उसका राष्ट्रीय अधिवेशन भी सम्पन्न हुआ। हाथरस (अलीगढ़) में हुये अखिल भारतीय जनपदीय आन्दोलन

की अध्यक्षता भी उन्होंने की जहाँ देश भर के जनपदीय आन्दोलन के प्रबल समर्थक रचनाकार-विचारक बड़ी संख्या में उपस्थित थे। डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने उस आन्दोलन को स्वयं उपस्थित होकर आशीर्वाद दिया था। उसकी ओर से 'जनपद' पत्रिका का वाराणसी से कई वर्ष तक प्रकाशन होता रहा।

एक ओर निरन्तर बदलती तथा दिनोंदिन उग्र होती जाती राजनैतिक स्थिति तथा दूसरी ओर गिरते स्वास्थ्य का असहनीय दबाव झेलते आचार्यजी को बराबर इस देश की वर्द्धमान संस्कृति के विकास के लिए पूरी इच्छाशक्ति से लगे देखकर आश्चर्य ही होता है। कहीं शिक्षा सुधार की समिति की अध्यक्षता तो कहीं लिपि-सुधार के प्रयत्नों में सक्रिय भागीदारी—वे कभी शान्त बैठे नहीं मिले। अन्तिम वर्षों में थाईलैण्ड सहित कई द्वीपान्तर देशों का दौरा करके लौटते समय वे ऐसे संस्कृत शब्द इकट्ठे कर ले आये जो आज भी उन देशों की भाषा में जीवित जागृत प्रयुक्त हो रहे हैं। लखनऊ में इण्डोनेशिया के एक सांस्कृतिक मिशन के स्वागत में मुझसे एक ऐसी कविता लिखने का आग्रह उन्होंने किया जिसमें उन शब्दों में से कुछ का व्यवहार किया गया हो। मैंने एक लम्बा गीत-नाट्य लिखा जिसमें स्थान-स्थान पर उनके शब्दकोश के शब्द प्रयुक्त थे। वह कविता डेलीगेशन के प्रतिनिधियों ने तो क्या समझी होगी पर मैंने आचार्यजी को मुग्धभाव से उसे सुनते देखकर कृतार्थता अनुभव की।

१९५३ मे अत्यन्त अस्वस्थ होते हुये भी उन्होंने हिन्दी विद्यापीठ, देवघर का निमंत्रण स्वीकार कर वहाँ दीक्षांत भाषण दिया। मैं उस समय सौभाग्यवश उस विद्यापीठ का आचार्य था और उन्हें वहाँ नजदीक से देखने सुनने का जो अवसर मुझे प्राप्त हुआ उसे अपना सौभाग्य मानता हूँ। बाद में लखनऊ जाने पर उन्हें और नजदीक से देखने का अवसर प्राप्त हुआ तभी मुझे उनके जीवन के उन अन्तिम वर्षों के धनीभूत संघर्ष से भरे दु:खों को समझने-बूझने का अवसर मिला। समाजवादी आन्दोलन के लगभग सभी कर्णधार तब-तक छिटक कर अलग हो गये थे और आचार्यजी लगभग अकेले छूट गये थे, तब भी उनमें कहीं किसी भी स्तर पर किसी के प्रति कटुता के दर्शन मुझे नहीं हुये। मुझे एक दिन शाम को उनसे बात करके लौटते समय रास्ते में डूबते हुये सूर्य के लाल प्रकाश में चलते समय बचपन में पढ़ा एक श्लोक याद आया जिसमें सूर्य की प्रशंसा करते हुये उगते और डूबते समय उसके ताम्रवर्णी प्रकाश से घिरे होने के गुण की प्रशंसा की गई थी। "उदेति सविता ताम्रम्, अस्तमेति चताम्रताम्," अर्थात सूर्य उगते समय जितना लाल होता है डूबते समय भी उतना लाल रहता है। आचार्यजी १९५५-५६ में डूब रहे थे लेकिन उनकी लालिमा में कहीं जरा सी भी कमी नहीं थी। सचमुच वे समाजवादी विश्वासों के सूर्य ही थे।

तब से आज तक समाजवाद ने कितने रंग बदले, कितने ही समझौते किये उसने और उसका नेतृत्व तार-तार हो गया। लेकिन इस देश की राजनीति में खण्ड-खण्ड होते हुये भी इस आन्दोलन में जो ऐतिहासिक भूमिका निभायी है उससे इनकार नहीं किया जा सकता। सत्ता से बाहर रहते हुये अथवा बीच-बीच

में सत्ता में साझेदारी करते हुये समाजवादियों ने राजनीति पर अपना दबाव बराबर बनाये रखा। यह उसी दबाव का परिणाम है कि समाजवादियों के देखे गये सपनो के आधार पर ही देश के अन्य सभी संगठनों ने अपने घोषणा-पत्र तैयार किये। जीवन में कभी समाजवादी रहे आज के कितने ही राजनेता इन दिनों आत्ममंथन के दौर से गुजर रहे हैं। दूसरी ओर रूस तथा पूर्वी यूरोप पर मार्क्सवाद पर लगे ग्रहण के चलते पूरी दुनिया के साम्यवादी विचारक नये सिरे से सोचने के लिए बाध्य हो रहे हैं। भारतवर्ष की वामपंथी राजनीति भी गहरे सोच के बीच से गुजर रही है। आश्चर्य की बात है कि आज जो बहुत सारी बातें घटित हो रही हैं उनके संकेत आचार्य नरेन्द्र देव बहुत पहले दे गये थे। कितना अच्छा होगा कि ये सारी शक्तियाँ मिलकर एक नये विचार-लोक की सृष्टि करें। यदि ऐसा होता है तो आचार्यजी नये सिरे से प्रासंगिक हो जायँगे।

यह सब कहने सुनने का अवसर देने के लिये मैं इस पुस्तक के लेखक का आभार स्वीकार करता हूँ।

विजयादशमी ६ अक्तूबर, १९९२
ईश्वरगंगी, वाराणसी

प्राक्कथन

पुस्तक लिखते समय—मैंने लुई फिशर द्वारा लिखी पुस्तक 'ए वीक विथ गाँधी' में यह स्पष्ट उल्लेख देखा कि जब लुई फिशर महात्मा गाँधी से वर्धा में मिले और उनसे भारतीय समाजवाद के बारे में जानना चाहा तो गाँधीजी ने कहा था कि "अगर उन्हे भारतीय समाजवाद के बारे में जानना है तो आप पास की झोपड़ी में जायें, जहाँ पर आपको एक पतला-दुबला व्यक्ति मिलेगा जिसका नाम नरेन्द्र देव है, उनके मुख से निकली हुई बातें ही भारतीय समाजवाद हैं। लुई फिशर का यह उल्लेख प्रेरणास्रोत बना। इस लेखन के संदर्भ में देखा कि आचार्य नरेन्द्र देवजी मूल्यतः राजनीतिक नैतिकता के अप्रतिम प्रतिमान थे। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अन्तिम संघर्ष की बेला में तथा बाद में भारत में समाजवादी आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान करने में वे शीर्ष स्थान पर हैं। त्याग की ऐसी मूर्ति आधुनिक युग में दुलर्भ है। राष्ट्र सेवा में सब कुछ अर्पित करना पर बदले में कुछ न लेना, उन्हें ऋषि-परम्परा में स्थापित करता है। वे सर्वदा बाह्य आडम्बरों, कर्मकाण्डों को अस्वीकार करते रहे। उनका समाजवाद 'बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय' का जयघोष था। उनकी राष्ट्रीयता का दृष्टिकोण, 'वसुधैव कुटुम्बम्' था। राष्ट्रीय आन्दोलन और समाजवादी चिन्तन में उनकी आधारशिला मानवता है तथा उनके सम्पूर्ण जीवन दर्शन के केन्द्र मानव हैं। उसी विश्वास के चतुर्दिक उनका चिन्तन घूमता रहा है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा राष्ट्र निर्माण के सम्बन्ध में उनके विचार और कार्य किसी भी समाज के लिए गौरव की वस्तु हैं। आचार्य नरेन्द्र देव भारतीय परिस्थितियों के अनुसार शोषणमुक्त समतावादी समाज व्यवस्था के मौलिक विचारक थे। उन्होंने इस प्रकार की समाज व्यवस्था की स्थापना हेतु निरन्तर कार्य किया।

जहाँ एक ओर सोवियत संघ में समाजवाद का दुर्ग धराशायी हो रहा था, लेनिन जैसे युग पुरुष की प्रतिमा को मूल से उखाड़ कर फेक दिया गया तथा दुनियाँ के सामने एक ऐसी तस्वीर प्रस्तुत की गयी कि रूस से समाजवाद समाप्त हो गया, वहीं दूसरी ओर दुनियाँ के अनेक देश जैसे पश्चिमी जर्मनी, पूर्वी जर्मनी, उत्तर कोरिया, दक्षिण कोरिया का मिलन होने लगा। यह सब घटनाएँ इस प्रकार तेजी से घटीं कि दुनियाँ के अधिकांश देश यह सोचने लगे कि क्या विश्व में समाजवाद अपने दिन पूरे कर चुका है ? ऐसी परिस्थिति में जब दुनियाँ के सामने समाजवाद के भविष्य को लेकर तरह-तरह की अटकलें लगायी जा रही थीं, मेरे छोटे मन में यह बात उठी की मुझे भी भारतीय समाजवाद के बारे में जानकारी

अवश्य प्राप्त करनी चाहिए। भारतीय समाजवाद और अन्य देशो के समाजवाद मे मूल-भूत अन्तर क्या है, यह जानना आवश्यक लगने लगा। अपनी इस जिज्ञासा को शान्त करने के लिए मैंने भारतीय समाजवाद के जनक आचार्य नरेन्द्र देव के जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त करनी प्रारम्भ की।

इस पुस्तक को लिखने का मुख्य उद्देश्य यही है कि भारतीय समाजवाद क्या है इसके बारे में देश-विदेश के युवक जानें और समझे तथा यह देखे कि ऋषि तुल्य आचार्य नरेन्द्र देवजी ने भारतीय समाज मे फैली अव्यवस्था को दूर करने लिए कैसे विचार व्यक्त किये थे।

इस पुस्तक को लिखने में आचार्य नरेन्द्र देव के घनिष्ट मित्र, प्रमुख समाजवादी नेता, प्रख्यात अधिवक्ता, कवि तथा लेखक श्री सागर सिह एव प्रख्यात साहित्यकार, आलोचक, कवि, लेखक तथा पत्रकार श्री ठाकुर प्रसाद सिह ने अपना अमूल्य समय और सहयोग प्रदान किया। जिसके लिए मै उन लोगो का सदैव आभारी रहूँगा।

मैं अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री अमर बहादुर सिंह युवा पत्रकार (अध्यक्ष-राष्ट्रीय युवा पत्रकार संघटन) एवं अमरनाथ सिंह (एडवोकेट) का भी आभारी हूँ जिन्होने समय-समय पर इस कार्य के लिए मुझे प्रोत्साहित किया।

मैं अपने पितामह स्व० ठाकुर संग्राम सिह एव पितामही स्व० सूर्यमुखी देवी के चरणों मे नमन् करता हूँ जिनके त्याग एव तपस्या के परिणामस्वरूप मै यह कार्य सम्पन्न करने में सफल हुआ।

अन्त में मैं अपने पिता श्री आर० पी० सिह (अधिशासी अभियन्ता, सिगनल) डी० रे० का०, वाराणसी एवं पूज्य माता श्रीमती रामावती सिह के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस कार्य को सफल बनाने मे अपना सहयोग प्रदान किया।

विजयादशमी, ६ अक्तूबर, १९९२
सी० २६/३६, ए-३, रामकटोरा,
वाराणसी

भारतीय राजनीति के दो स्तम्भ



पं० जवाहरलाल नेहरू तथा आचार्य नरेन्द्र देव

प्रथम अध्याय

आचार्य नरेन्द्र देव : परिचय

आचार्य नरेन्द्र देव राष्ट्र की महान् विभूति थे, वह युगपुरुष थे, वे संसार के दूसरे युगपुरुषों की तरह अपनी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते थे एवं अपने में अपनी पीढ़ी की आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करते थे। उनका जीवन और व्यक्तित्व समाज में समरस था। उन पर समाज की, अवस्था की, युग की प्रेरणाओं और चिन्तन की छाप थी। उनके जीवन पर ज्ञान और परिस्थिति के स्थिर तत्वों से कहीं अधिक उनके प्रगतिशील तत्वों और क्रान्तिकारी सम्भावनाओं का प्रभाव था। बहुजन समाज की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए इन प्रगतिशील तत्वों का समुचित प्रयोग ही उनके अध्ययन, चिन्तन और मनन का विषय तथा उनके जीवन का उद्देश्य था।

सामाजिक विचारकों के द्वारा उनके कृतित्व एवं सामाजिक योगदान का समुचित आकलन अभी नहीं हो सका है। आचार्यजी के व्यक्तित्व और विद्वत्ता को निकट से जानने पहचानने वालों ने ठीक ही कहा है कि आचार्यजी प्राचीन संस्कृति और साहित्य के उन इने गिने महाविद्वानों में से थे जिनकी संख्या उत्तरोत्तर कम होती जा रही है। निश्चय ही आचार्यजी उस परम्परा के अन्तिम विद्वानों में से थे।

अपने युग के प्रतिनिधि पुरुष

आचार्यजी भारतीय समाजवाद के उद्घोषक भी थे तथा अपने चिन्तन के द्वारा जनमानस तक पहुँचने वाले व्याख्याता भी। आचार्यजी के चिन्तन पर मार्क्स, एंजेल्स, रोजा लक्जमबर्ग तथा लेनिन का प्रभाव पड़ा। समाजवादी आन्दोलनों के प्रमुख कर्णधारों में आचार्य नरेन्द्र देव का सर्वश्रेष्ठ स्थान था। उन्होंने समाजवाद को मानवतावाद पर आधारित किया तथा उन्होंने मानवतावादी पक्ष पर अधिक बल दिया। यह ठीक है कि समाजवाद के अनेक रूपों में आचार्य नरेन्द्र देव कार्ल मार्क्स के विचारों से सर्वाधिक प्रभावित थे। वे मार्क्स को एक महान् समाज वैज्ञानिक मानते थे। किन्तु वे मार्क्स द्वारा अपने समय में कही हुई बातों का समर्थन नहीं करते थे क्योंकि विश्व के समाजवादी आन्दोलन में तथा बाद के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक विकास ने मार्क्स की कुछ बातों को अप्रासंगिक बना दिया था। विशेषकर मार्क्स को प्राच्य-जगत् की समाजिक संस्थाओं और परम्पराओं का पर्याप्त ज्ञान नहीं था जिससे वे भारत और चीन जैसे एशियाई देशों के लिए

उपयुक्त व्यवस्थाएँ निर्धारित कर सके। अतः एशिया के नेताओं को अपने देशों के समाजवादी आन्दोलन के लिए कुछ भिन्न दिशाओं का अनुसरण करना पड़ा।

सभाजवाद सांस्कृतिक आन्दोलन

आचार्यजी ने समाजवादी क्रान्ति को संहार नहीं निर्माण के रूप में और समाजवाद को विश्वव्यापी सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में देखा और समझा। उन्होंने एशिया और भारत में राष्ट्र की शक्ति और उसके रचनात्मक चरित्र को पहचाना, वास्तव में आचार्यजी एक सांस्कृतिक पुरुष थ। वे जीवन पर्यन्त मानव विकास की नई मंजिल पर नवसंस्कृति एवं नवसमाज की रचना का स्वप्न साकार करने में लगे रहे। इतने बड़े काम के लिए उनमें अपेक्षित बौद्धिक प्रतिभा और चरित्रबल दोनों थे। वे निर्वैर्य पुरुष और निर्भीक विचारक थे।

उनके युग की पृष्ठभूमि

आचार्य नरेन्द्र देव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के चित्रण के लिए जैसा शब्द-शिल्प, जैसा वाक-कौशल, जैसी तूलिका तथा जैसा स्थान चाहिए, वह दुर्लभ है। भारतीय राजनीति के उद्यान में नरेन्द्र देव जी ऐसे वटवृक्ष के रूप में प्रकट हुए जिसकी छाया की शरण राष्ट्रीय राजनीति समय-समय पर लेती रही। उनका राजदर्शन मूलतः गाँधीवादी तथा मार्क्सवादी वैज्ञानिक तत्वों की समन्वयात्मक क्रिया तथा प्रक्रिया का परिणाम था। तिलकवादी राष्ट्रीयता के साँचे मे ढला उनका महिमामय व्यक्तित्व, कई दशकों से हिमगिरि के उस प्रांगण मे जिसमें भारतीय उप महाद्वीप स्थित है, अपना आलोक बिखेरता रहा है।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक सम्पूर्ण भारत पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति, विज्ञान तथा इसाई धर्म का प्रभाव भारत पर पड़ना आरम्भ हो चुका था। १८८७ ई० में भारतवर्ष ने एक-बार ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करने का असफल प्रयास किया। किन्तु ब्रिटिश साम्राज्य ने कुछ राजाओं को पूर्ण समाप्त कर दिया और अनेक राजा एवं नवाब ब्रिटिश साम्राज्य के प्रभुत्व को स्वीकार करने को मजबूर हुए। उन्नीसवीं शताब्दी में भारत का नेतृत्व शिक्षित मध्यवर्ग ने वहन किया दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय, विवेकानन्द, केशवचन्द्र सेन, देवेन्द्रनाथ टैगोर आदि प्रमुख व्यक्ति थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ए० एम० ह्यूज के नेतृत्व में कुछ भारतीय शिक्षितों ने की। इसका उद्देश्य एक ऐसे संगठन का निर्माण था जो भारत के समस्याओं को ब्रिटिश सरकार के समक्ष प्रस्तुत कर सके। यह एक ऐसी संस्था थी जो राजनीतिक मामलों में बहस न करके सामाजिक और आर्थिक सुधार करने के लिए सरकार के सहयोग को प्राप्त करे। भारत की ऐसी ही राजनैतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि में आचार्य नरेन्द्र देव का जन्म हुआ।

जन्म और बचपन

आचार्य नरेन्द्र देव का जन्म सीतापुर में ३१ अक्टूबर १८८६ ई० कार्तिक शुक्ल अष्टमी सम्वत् १६४६ को हुआ था। उनके पिता एक प्रतिभाशाली वकील तथा धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। नरेन्द्र देव जी ने अपनी बाल्यावस्था में महाभारत, भगवद्गीता, रामायण तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। इनके अतिरिक्त बेतालपचीसी, चन्द्रकान्ता, सिंहासनबत्तीसी, सूरसागर आदि पुस्तकें भी पढ़ीं। दस वर्ष की आयु में उनका यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वे पिताजी के साथ प्रतिदिन सन्ध्या वन्दना एवम् भगवद्गीता का पाठ करते थे। बचपन में नरेन्द्र देव जी जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आये उनमें प्रथम पण्डित मदन मोहन मालवीय थे। मालवीयजी तथा पिताजी के प्रभाव ने उनकी अभिरुचि को भारतीय संस्कृति की ओर मोड़ दिया। अपनी इस सांस्कृतिक, आध्यात्मिक रुझान के समय नरेन्द्र देव जी फैजाबाद में छात्र थे। मालवीयजी फैजाबाद पहुँचे थे। पिताजी के आग्रह पर नरेन्द्र देव ने मालवीयजी को गीता का पूरा अध्याय सुनाया।

नरेन्द्र देव के गीता के श्लोकों के शुद्ध उच्चारण से मदनमोहन मालवीयजी आनन्द विभोर हो गये। नरेन्द्र देव जी की प्रतिभा पर रीझकर मालवीयजी ने दसवाँ पासकर प्रयाग के हिन्दू छात्रावास में रहकर पढ़ने के लिये उन्हें आमन्त्रित किया। दसवाँ पासकर वह इलाहाबाद पहुँचे और मालवीयजी के पूर्व आदेश का अनुपालन करके हिन्दू छात्रावास में रहने लगे। वहाँ नरेन्द्र देव जी के राजनीतिक विचार तेजी से बनने लगे। उस समय बंगभंग और रूस, जापान युद्ध के कारण विद्यार्थियों में बहुत जोश था। हिन्दू बोर्डिंग हाउस उग्र विचारों का केन्द्र बन गया था। वहाँ सदैव राजनैतिक चर्चा हुआ करती थीं। इस वातावरण के प्रभाव से नरेन्द्र देव जी गरमदल के विचारों के हो गये। कांग्रेस के पुराने नेतृत्व, उसकी पुरानी रीति-नीति पर से उनका विश्वास समाप्त हो गया।

अध्ययन के लिए उन्हें प्रयाग में पाँच वर्ष रहना पड़ा। प्रयाग में वे सन् १६०६ ई० से लेकर सन् १६११ ई० तक रहे थे। उनके छात्र जीवन का एक वर्ष चेचक निकल आने के कारण व्यर्थ चला गया। इसलिए इण्टरमीडिएट की व बी० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने में उन्हें चार वर्ष के स्थान पर पाँच वर्ष लग गये, यद्यपि उन्होंने प्रयाग की दोनों परीक्षायें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थीं। प्रयाग के उन पाँच वर्षों के प्रवास में डॉ० गंगानाथ झा तथा लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के व्यक्तित्वों की उन पर गहरी छाप पड़ी, जिसने यदि उनमें एक ओर भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग को जन्म दिया तो दूसरी ओर उनके अन्तराल में तिलकवादी उग्रवाद को प्रज्जवलित किया। उग्र विचार के विद्यार्थी उस समय रूस, जापान युद्ध, गैरीबाल्डी और मैजनी पर पुस्तकें और रूस के आतंकवादियों के उपन्यास पढ़ा करते थे। नरेन्द्र देव तथा उनके कुछ साथियों का सम्बन्ध क्रान्तिकारियों से हो गया। उस समय क्रान्तिकारियों का विचार आई० सी० एस०

में सम्मिलित होने का था, जिससे क्रान्ति के समय जिले का शासन प्रबन्ध सम्भाला जा सके। इस विचार को पूर्ण करने के लिए उनके चार साथी इंग्लैण्ड गये। नरेन्द्र देव जी स्वयं भी जाना चाहते थे, परन्तु माताजी से आज्ञा न मिलने के कारण न जा सके।

नरेन्द्र देव जी के हृदय में जगा भारतीयों के प्रति अनुराग उन्हे इस उच्च अध्ययन हेतु क्वींस कालेज, बनारस ले गया, जहाँ जाकर उन्होंने इतिहास विषयक 'ग्रुप डी' की एम० ए० कक्षा में प्रवेश लिया। उन्होंने एम० ए० की परीक्षा क्वींस कालेज, बनारस से उत्तीर्ण की थी। उनके छात्र जीवन की वही एक परीक्षा थी, जो किन्हीं कारणों से वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण न कर सके थे। सन् १९१३ ई० में जब वह अध्ययन समाप्त कर काशी से फैजाबाद चलने लगे, तो डॉक्टर वेनिस ने उनसे अजमेर जाकर गवर्नमेण्ट कालेज में संस्कृत का अध्यापन कार्य करने को कहा। डॉक्टर वेनिस का प्रस्ताव उन्हें स्वीकार न हुआ। उसे अस्वीकार कर वह घर लौटे। पिताजी उन्हें अपने साथ वकालत में ही लगाना चाहते थे। अतः सन् १९१३ ई० में फैजाबाद से उन्हें वकालत पढ़ने के लिए पुनः प्रयाग (इलाहाबाद) लौटना पड़ा। जहाँ से उन्होंने एल-एल० बी० की डिग्री प्राप्त की। एल-एल० बी० की डिग्री प्राप्त करने के उपरान्त वे वकालत करने अपने गृह जनपद फैजाबाद लौट आये।

जिस समय नरेन्द्र देव जी म्योर कालेज में बैचलर ऑफ लॉ के प्रथम वर्ष के छात्र के रूप में प्रयाग में अध्ययन कर रहे थे, सातवाँ प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन (वर्ष १९१३ ई० अक्टूबर मास में) डॉ० सतीशचन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में फैजाबाद में हुआ। डॉ० सतीश चन्द्र बनर्जी की गणना म्योर कालेज में कानून के अध्यापक होने के साथ-साथ देश के योग्यतम न्यायशास्त्रियों में हुआ करती थी। अतः यह हो नहीं सकता था कि जब डॉ० बनर्जी ऐसे उनके अध्यापक इलाहाबाद से चलकर उनकी नगरी फैजाबाद में आये हों, उनके छात्र नरेन्द्र देव वहाँ न पहुँचे हों।

नरेन्द्र देव जी का विवाह उनके विद्यार्थी जीवन में ही १९०४ ई० में बिहार के प्रसिद्ध नगर गया में हुआ। पर जब वे प्रयाग में वकालत की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, तभी उनकी पत्नी का निधन हो गया था। फैजाबाद में वकालत की प्रैक्टिस प्रारम्भ करने के दो तीन वर्ष पश्चात् माता-पिता के आग्रह पर १९१७ ई० में वे दूसरा विवाह करने को तैयार हुए। उनका विवाह आगरा शहर निवासिनी प्रेमा देवी के साथ हुआ। वे अत्यन्त साध्वी एवं सुशील महिला थीं। विवाह के कुछ ही वर्षोपरान्त पति के सांसारिक माया-मोह, सम्पत्ति का परित्याग कर राष्ट्रीय आन्दोलन में संलग्न हो जाने के कारण प्रेमा देवी के जीवन में महान् परिवर्तन आया तथा उनके सुखी सम्पन्न जीवन के स्वप्न समाप्त हो गये। उन्हें वर्षों पति विछोह सहन करना पड़ा। नरेन्द्र देव जी के साथ रहने पर भी उनका जीवन अत्यन्त सादा था। वे निरन्तर पति देव के कष्टों से दुःखी हृदय को

सान्त्वना देते हुए उनके अच्छे स्वास्थ्य की ईश्वर से कामना करती थीं। उनके जीवन का मात्र एक ही ध्येय था, पति की सेवा-सुश्रूषा तथा ईश्वर आराधना। ऐसी पतिव्रता साध्वी महिला को अन्त में वैधव्य का महान शोक भी सहन करना पड़ा। दूसरे विवाह से नरेन्द्र देव जी को दो पुत्र एवं तीन पुत्रियाँ हुई। बड़े पुत्र का नाम अशोक और छोटे पुत्र का नाम हर्षवर्धन रखा गया। पुत्रियों के नाम सरोज, सुषमा एवं दीपा रखे गये।

सन् १६०७ ई० में कांग्रेस में फूट पड़ जाने के बाद, लगभग नौ साल तक गरम दल के लोग कांग्रेस से अलग रहे। इस काल में नरेन्द्र देव जी ने कांग्रेस के काम में कोई दिलचस्पी नहीं ली। गरम दल के नेता अपने विचारों के कार्यकर्ताओं की एक राष्ट्रीय कान्फ्रेन्स कायम करना चाहते थे। पर सरकार ने आपस की फूट से लाभ उठाकर गरम दल को छिन्न-भिन्न कर दिया, कई नेताओं को जेल भेज दिया। इस तरह सन् १६१४ ई० तक देश की राजनीति की गति मन्द रही। पर सन् १६१४ ई० में यूरोप में प्रथम विश्व युद्ध शुरू हुआ। इसने देश की राजनीति में नई गति पैदा कर दी। गरम दलीय और क्रान्तिकारी विचारों ने फिर जोर पकड़ा। युद्ध के कुछ महीने पहले लोकमान्य तिलक छः वर्ष तक मांडले जेल में रहने के बाद मुक्त हुए, उधर श्रीमती एनीबेसेन्ट ने देश की राजनीति में दिलचस्पी लेनी शुरु की। दोनों ने सन् १६१६ ई० में होमरूल लीग कायम की और उनके द्वारा आत्मनिर्णय और स्वराज्य के लिए देशव्यापी आन्दोलन शुरू किया। सन् १६१६ ई० में ही संयुक्त प्रान्त में श्रीमती एनीबेसेन्ट द्वारा स्थापित होमरूल लीग की शाखा बनी और नरेन्द्र देव जी ने उसकी एक शाखा फैजाबाद में खोली। वह उसके मंत्री चुने गये। सन् १६१६ ई० में नरम दल और गरम दल में समझौते के बाद लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक कांग्रेस में शामिल हो गये। नरेन्द्र देव जी भी कांग्रेस के सदस्य बन गये और फैजाबाद में होमरूल लीग और कांग्रेस के द्वारा राष्ट्र सेवा करते रहे।

शुरु से ही आचार्य नरेन्द्र देव जी का जीवन अत्यन्त सादा था। स्वदेशी व्रत के व्रती आचार्य नरेन्द्र देव जी ने जीवन पर्यन्त स्वयं भी खादी के वस्त्र पहने एवं अपने परिवार वालों को भी खादी वस्त्र पहनने की सलाह देते रहे। आचार्य नरेन्द्र देव जी की पत्नी प्रेमा देवी ने आजीवन खादी वस्त्र ही धारण किए। उनका आभूषणों से किसी भी प्रकार का कोई लगाव न था। आचार्य नरेन्द्र देव जी की आस्था मूर्ति पूजा में न थी, किन्तु उनकी गहन निष्ठा उस अमूर्त अदृश्य-शक्ति में अवश्य थी, जो सकल विश्व की सृष्टि करता है तथा उसको संचालित करता है। वकालत के जमाने में करीब-करीब सभी वकीलों से नरेन्द्र देव जी के अच्छे सम्बन्ध थे। सर्वदा बड़ों का आदर करते और समवयस्क साथियों से स्नेह करते। वकीलों के अलावा दूसरे बहुत से सम्मानित महानुभावों से भी उनके मधुर सम्बन्ध थे। आचार्य नरेन्द्र देव जी की पत्नी अत्यन्त धर्मपरायण थीं तथा पति के विपरीत वे मूर्ति पूजा प्रतिदिन ही किया करती थीं, किन्तु कभी आचार्य जी ने उन्हें इसके

लिये मना नहीं किया। वे एक धार्मिक महिला थीं तथा भजन, पूजन, व्रत में उनकी गहन आस्था थी। विचार स्वातन्त्र्य के समर्थक नरेन्द्र देव जी ने कभी उन पर, अपने बच्चों पर अपने विचार थोपने का प्रयास नहीं किया, यह उनके जीवन से स्वतः स्पष्ट है।

अवध में किसान आन्दोलन

वकालत छोड़ते ही उन्होंने फैजाबाद जिले में किसान आन्दोलन का नेतृत्व किया। किसानों का साथ देते हुए उनकी माँगों का समर्थन किया, कार्यकर्ताओं को अपने-अपने काम पर डटे रहने के लिए प्रोत्साहित किया, सरकार के समर्थकों द्वारा बनाई अमन सभाओं के भ्रामक प्रचार का भण्डा फोड़ते हुए स्वराज्य की पुष्टि एवं किसानों की माँगों के समर्थन में कई प्रभावशाली व्याख्यान दिये। इन व्याख्यानों की चर्चा सारे अवध में फैल गयी और आचार्य नरेन्द्र देव जी एक प्रख्यात् वक्ता समझे जाने लगे। सरकार किसानों के आन्दोलन को दबा देना चाहती थी। उसने पहले तो किसानों एवं कार्यकर्ताओं को पकड़ना और उन पर सख्ती करना शुरू किया, पर जब उसने देखा कि आन्दोलन आसानी से दबने वाला नहीं है, तब इस भय से कि वे किसान कांग्रेस द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन में शरीक न हो जाँय, उसने किसानों की बेदखली वाली माँग मान ली। नोटिस के द्वारा बेदखली रोक दी गयी और नया कानून बनाकर किसानों को हीन हयाती का हक दे दिया गया। किसानों की यही मुख्य माँग थी।

काशी विद्यापीठ में आगमन

आचार्य नरेन्द्र देव जी के अन्तराल की अभिलाषा सदा सरस्वती तथा राजनीति के विद्यालयों में बैठकर ज्ञानार्जन तथा सेवा साधन की रही थी। इस दृष्टिकोण से उनके जीवन का जितना अंश काशी विद्यापीठ में बीता उससे अधिक सुखमय अंश उनके लिए कोई न था। शिवप्रसाद गुप्त जी ने १० फरवरी १९२१ ई० को काशी में 'हर प्रसाद शिक्षा निधि' स्थापित कर काशी विद्यापीठ को जन्म दिया और आचार्य नरेन्द्र देव जी की निराशा को दूर कर अध्ययन तथा राजनीति सम्बन्धी उनकी अभिलाषाओं और आकांक्षाओं को समुज्वल किया। बाबू शिव प्रसाद गुप्त ने उसके लिए जो न्यास बनाया, नरेन्द्र देव जी को भी उसका एक न्यासी बनाया था। किन्तु इसका ज्ञान नरेन्द्र देव जी को न था। असहयोग आन्दोलन की पताका हाथ में लिए जवाहर लाल नेहरू जब २७ फरवरी सन् १९२१ ई० को अकबरपुर (फैजाबाद) के किसानों की सभा में पहुँचे, उनकी दृष्टि नरेन्द्र देव जी पर पड़ी। नेहरू जी को काशी में विद्यापीठ की स्थापना की बात तथा उसके लिए नरेन्द्र देव जी की उपयोगिता याद आयी। नेहरू जी ने नरेन्द्र देव जी से काशी जाकर विद्यापीठ में अध्यापन कार्य करने को कहा, जो आचार्यजी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

काशी विद्यापीठ पहुँचकर आचार्यजी बाबू श्रीप्रकाशजी के सम्पर्क में आये। यह सम्बन्ध कालान्तर में उनके जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया। नरेन्द्र देव जी की 'आचार्य' की उपाधि का उद्भव श्रीप्रकाशजी के ही वाङ्मय से हुआ था। वह ही आगे चलकर उनके तथा महात्मा गाँधी के बीच प्रगाढ़ सम्बन्धों के सेतु बने थे। काशी विद्यापीठ के प्रथम अध्यक्ष श्रीप्रकाशजी के पिता डॉ० भगवानदासजी थे। उनके विद्यापीठ की अध्यक्षता छोड़ने पर सन् १९२६ ई० में आचार्य नरेन्द्र देव जी उसके अध्यक्ष हुये थे। विद्यापीठ के काम में उनका मन लग गया और लगभग दस वर्ष तक वहीं रहकर वे राजनीति का कार्य और पठन-पाठन करते रहे। मुख्यतः विद्यापीठ के जरिये ही वे राष्ट्र की सेवा करते रहे। विद्यापीठ में जाते ही वे उपाध्यक्ष बना दिये गये। उन्होंने विद्यापीठ के कुलपति के पद को भी वर्षों सुशोभित किया। वहीं नरेन्द्र देव जी ने अपने ज्ञान को परिपक्व किया तथा उच्चकोटि के विचारक और राजनीतिज्ञ की क्षमता प्राप्त की। वहाँ ही उन्होंने बौद्ध दर्शन, उपनिषद् तथा एशिया की क्रान्तिकारी हलचलों का अध्ययन किया। वहाँ ही उन्होंने अपनी विद्वत्ता, मानवता और कर्त्तव्य परायणता से बहुत से नवयुवक कार्यकर्ताओं को देश सेवा के योग्य बनाया। विद्यापीठ में जो काम उन्होंने किया उसे वे अपने जीवन का स्थायी काम समझते थे।

१९१९ ई० जलियानवाला बाग नरमेध के बाद देश में प्रतिवर्ष अप्रैल के दूसरे सप्ताह में राष्ट्रीय सप्ताह मनाया जाने लगा था। काशी विद्यापीठ में प्रतिवर्ष यह सप्ताह बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता था और आचार्य नरेन्द्र देव इसके कार्यक्रमों में बड़े मनोयोग से भाग लिया करते थे। सन् १९२६ ई० में 'आज' समाचार पत्र के प्रवर्तक तथा काशी विद्यापीठ के संस्थापक बाबू शिवप्रसाद गुप्त जब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के काशीपुर (नैनीताल) में हुए राजनीतिक सम्मेलन के अध्यक्ष बने, प्रदेश कांग्रेस का कार्यालय इलाहाबाद से चलकर काशी विद्यापीठ पहुँच गया। इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन का कुआँ स्वतः राष्ट्रीय चेतना के प्यासे नरेन्द्र देव जी के पास जा पहुँचा। उस वर्ष नवम्बर १९२७ ई० में पं० मोतीलाल नेहरू और पं० जवाहरलाल नेहरू के सोवियत रूस की यात्राओं से सम्बन्धित समाचारों, विचारों और संस्मरणों का भारत के पत्र-पत्रिकाओं में व्यापक रूप से प्रकाशन हुआ जिससे रूसी क्रान्ति सम्बन्धी हलचलों का भारत के युवा राजनीतिक मनीषियों पर गहरा प्रभाव पड़ा। सन् १९१९ और १९२० ई० में रूसी क्रान्ति केवल कविताओं और निबन्धों की विषयवस्तु बनकर रह गयी थी, किन्तु अब उनकी दृष्टि क्रान्ति की अवधारणा पर केन्द्रित हो गयी।

आचार्य नरेन्द्र देव जी को सन् १९२१ ई० में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का सदस्य बनाया गया। 'इंडिपेण्डेण्ट' नामक समाचार पत्र के २१ जून १९२१ ई० के अंक में प्रकाशित समाचार के अनुसार पं० मोतीलाल नेहरू प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और कार्यकारिणी में फैजाबाद मण्डल का प्रतिनिधित्व करने के लिए आचार्य नरेन्द्र देव तथा गोपाल सहाय को सदस्य बनाया गया।

इसी प्रकार बनारस मण्डल से श्री श्रीप्रकाशजी तथा शीतल प्रसाद गुप्त कार्यकारिणी के सदस्य बनाये गये।

१९२६ ई० का वर्ष नरेन्द्र देव के जीवन में बड़ा महत्व रखता है। उस वर्ष वह डॉ० भगवानदास के स्थान पर काशी विद्यापीठ के अध्यक्ष हुए थे। उसी वर्ष उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी का कार्यालय प्रयाग से चलकर काशी पहुँचा तथा काशी विद्यापीठ से संचालित होने लगा था। उसी वर्ष समाजवादी संस्कृति से अभिभूत पं० जवाहर लाल नेहरू से निकट सम्पर्क हुआ। सन् १९२६ ई० ने उन्हें उस प्रकार समय के उस चौराहे पर ले जाकर खड़ा किया, जहाँ से उन्हें शिक्षा तथा शिक्षण के अतिरिक्त राजनीति की ओर ले जानेवाला मार्ग दिखाई पड़ा। सन् १९२९ ई० २६ सितम्बर को काशी विद्यापीठ के दीक्षान्त समारोह में अध्यक्षता करने आये गाँधीजी से उनका निकट से सम्पर्क हुआ। समारोह की अध्यक्षता करने के लिये काशी पहुँचे गाँधीजी ने कहा था— "नरेन्द्र देव तो नवरत्न हैं, जिन्हें बहुत पहले ही जान लेना चाहिए था।"

अप्रतिम विद्वान्

आचार्य नरेन्द्र देव जी आदर्श शिक्षक थे। उन्हें अनेक देशों के इतिहास और अनेक युगों के दर्शन का उच्चतम ज्ञान था। वह जिस विषय को पढ़ाते थे उसे वह इतना स्पष्ट, रोचक और सुगम बनाकर प्रस्तुत करते कि विद्यार्थी उसका अर्थ सरलता से ग्रहण कर सके। इतिहास को पढ़ाते समय वह अतीत की धुधली परिस्थितियों और ऐतिहासिक पात्रों को जीवित वास्तविकताओं के रूप में प्रस्तुत कर देते थे। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास का सजीव चित्र वे एशिया के संघर्षों और आर्थिक परिस्थितियों की पार्श्वभूमि में खींचते और एशिया के विभिन्न स्वतन्त्रता संघर्षों पर व्याख्यान देते समय वे राष्ट्रीय भावना से ऐसे अनुप्राणित हो जाते और उनकी वाणी में ऐसा चमत्कार पैदा हो जाता कि जिससे उनके श्रोताओं को ज्ञान के साथ-साथ राष्ट्र सेवा की सद्प्रेरणा भी प्राप्त होती। जब वे भारतीय आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन की चर्चा करते, देश की बलिवेदी पर पतंगों की भाँति बलिदान हो जानेवाले साहसी और आत्म-त्यागी क्रान्तिकारी युवकों के त्याग और बलिदान को बताते, तब उनके विद्यार्थी ऐसा अनुभव करते कि मानों एक सक्रिय क्रान्तिकारी ही उनके सामने बोल रहा है। बौद्ध धर्म और दर्शन पर व्याख्यान देते हुए वे विद्यार्थियों के सामने बुद्ध के भव्य व्यक्तित्व का चित्र खींचते, बौद्ध धर्म की विभिन्न शाखाओं, प्रशाखाओं का मार्मिक विश्लेषण करते और आर्य शान्तिदेव के प्रसिद्ध ग्रन्थ बोधिचर्यावतार के पदों को बहुत अनुप्राणित और आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करके विद्यार्थियों को समस्त आठ प्राणियों की सेवा का महत्व बताते और उसकी उन्हें शिक्षा देते।

नरेन्द्र देव जी एक आदर्श शिक्षक के साथ-साथ कुशल प्रबन्धक थे। उनका प्रबन्ध शील और कर्त्तव्य परायणता पर आधृत था। उसमें नम्रता और

दृढ़ता का समन्वय था। वह अधिकार के दम्भ और अहंकार से शून्य था। प्रशासन की अकड़ के बजाय कर्त्तव्यशील व्यवहार ही उसका मूलाधार था। संस्था के अध्यक्ष की हैसियत से नरेन्द्र देव जी विद्यार्थियों के प्रशिक्षण का तथा कार्यालय के काम का विशेषत: हिसाब का समुचित निरीक्षण करते रहते थे। वे दूसरे अध्यापकों को जितना प्रशिक्षण का कार्य सौंपते, उससे कहीं अधिक स्वयं करते और आशा करते कि वे सब अपना काम ठीक तौर से करेंगे। उन्हें प्रबन्ध में ढील-ढाल अच्छी नहीं लगती थी। अत: वे व्यवहार में अत्यन्त कोमल के साथ-साथ अनुशासन में दृढ़ थे।

आचार्य नरेन्द्र देव जी के लिए विद्यापीठ एक कुटुम्ब सा था। अध्यापक, विद्यार्थी, कार्यकर्ता सबसे उनका बड़ा मीठा सम्बन्ध था। वे विद्यार्थियों के मानव-व्यक्तित्व का आदर करते और उनसे बहुत प्रेम करते थे। वे उनके शिक्षक ही नहीं मित्र और मार्ग-दर्शक भी थे। वे उन्हें पढ़ाते भी थे और सद् उपदेश भी देते थे, उनसे हँसते-बोलते भी थे और आवश्यकतानुसार उनकी आर्थिक सहायता भी करते थे, एवं उनके साथ राजनीतिक काम भी करते थे। उन्हीं से सबको नेतृत्व मिलता था, प्रेरणा मिलती थी, स्फूर्ति मिलती थी, साहस और उत्साह मिलता था। इस जमाने में आचार्यजी का जिन व्यक्तियों से घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ उनमें श्री श्रीप्रकाशजी प्रमुख हैं। दोनों ही अपने पारस्परिक सम्बन्ध को जीवन की एक अत्यन्त मूल्यवान निधि समझते थे।

अपने पिताजी की मृत्यु के कारण आचार्य नरेन्द्र देव जी अपने घर फैजाबाद चले गये। वहाँ से आने के पश्चात् वह सन् १९३० ई० तक नियमपूर्वक विद्यापीठ में कार्य करते रहे। नमक सत्याग्रह के सिलसिले में १९३० ई० में वह इलाहाबाद के बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन तथा काशी के बाबू शिवप्रसाद गुप्त के साथ बस्ती में गिरफ्तार हुए, जहाँ दण्डित होकर उनको तीन माह कारावास में रहना पड़ा। कारावास में ही उन्हें दमा जैसी जानलेवा बीमारी लग गयी और बाद में वह उसी रोग से जीवन पर्यन्त जूझते रहे।

समाजवाद : वैज्ञानिक या व्यावहारिक

२ अगस्त सन् १९३४ ई० को महात्मा गाँधी ने आचार्य नरेन्द्र देव जी को एक पत्र लिखा। जिसमें उन्होंने 'समाजवाद : वैज्ञानिक या व्यावहारिक ?' इस पर उनकी राय जाननी चाही। गाँधीजी ने लिखा कि "आपके कार्यक्रम के मसौदे को पढ़ने और उसकी आलोचना करने का मैंने आपसे वायदा किया था। जितने ध्यान से मैं पढ़ना चाहता था, उतने ध्यान से उसे नहीं पढ़ पाया हूँ। इसलिए इसे किसी भी तरह विस्तृत नहीं, एक सरसरी आलोचना ही समझना चाहिए। मेरे ख्याल से जब तक आप इस दल को कांग्रेस संगठन का अंग बनाने की अनुमति न माँगे, इसे 'कांग्रेस समाजवादी दल' कहना गलत है। पर इसे कांग्रेस जनों का 'अखिल भारतीय समाजवादी दल' कहना पूर्णतया उचित होगा।

मुझे यकीन है कि इस अन्तर के महत्व को आप समझ जायेगे । कांग्रेस का न्यायोचित और शान्तिपूर्ण उपायों से पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने का जो उद्देश्य है, आपके सांविधान के मसौदे में मुझे उसकी स्वीकृति नहीं मिली यदि उसे जान बूझकर छोड़ दिया गया है तो मैं यह बात समझ सकता हूँ, क्योंकि आपका उद्देश्य कांग्रेस के उद्देश्य से बहुत भिन्न है । आपका शायद यह दावा है कि वह कांग्रेस के उद्देश्य से कहीं प्रगतिशील है । फिर भी आप अपने को कांग्रेस का एक दल नहीं कह सकते ।"

कांग्रेस का उद्देश्य स्वाधीन राज्य स्थापित करना है । वह राज्य किस तरह होगा, इसका हम अभी धुँधला सा अनुमान लगा सकते हैं । उसकी कुछ विशेषताएँ हम निर्धारित कर चुके हैं । अनुभव हमें रोज यह सिखा रहा है कि उनमें नयी चीजें जोड़नी होगी । परन्तु समाजवादी उद्देश्य का आपका जो प्रतिपादन है, वह मुझे भयभीत करता है, तीनों सिद्धान्तों के फलितार्थ इतने व्यापक हैं कि समझ से बाहर है । वे कार्यक्रम को नशीला बना देते हैं, जबकि सभी तरह के नशों से मुझे डर सा लगता है ।

अब मैं, दृष्टान्त के रूप में, आपके कार्यक्रम के उन मुद्दों को लेता हूँ जो मुझे आपत्तिजनक लगते हैं । ७ और ८ मुद्दे कांग्रेस की वर्तमान नीति के प्रतिकूल हैं । यद्यपि जीवन भर मैं अपने को जनसाधारण के साथ एकाकार करता आया हूँ और निजी सम्पत्ति का मैंने त्याग कर दिया है, फिर भी मेरा इरादा नरेशों और जमींदारों को खत्म करने का नहीं है और न जमीन को फिर से किसानों में बाँटने का ही है । मेरा लक्ष्य नरेशों और जमींदारों को सुधारना है । जमीन का जबरदस्ती फिर से बँटवारा किये बिना मुजारों के लिए ऐसे अधिकार प्राप्त किए जा सकते हैं जो वस्तुतः मिल्कियत जैसे ही होंगे । ११वाँ मुद्दा, जिसका ७-८ और कुछ अन्य मुद्दे खण्डन करते लगते हैं, मुझे पसन्द हैं । आवश्यकताओं के पहले यदि आप 'न्यायोचित' शब्द रख सकें, तो मेरी राय में हर एक को उसकी आवश्यकताओं के अनुसार एक निर्दोष सूत्र हो सकता है । हमारे करोड़ों में जो सबसे असहाय और बेसहारा हैं उनके लिए आप जो कुछ भी चाह सकते हैं, उस सबका सार अकेले इसी सूत्र में आ जाता है । आपका पाँचवाँ तरीका, जैसा मैं उसे समझा हूँ, अहिंसा का प्रतिवाद है । संवैधानिक प्रश्न पर ब्रिटिश सरकार के साथ किसी भी अवस्था में बातचीत के लिए तैयार न होने में क्या औचित्य है, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ । कांग्रेस ने यह नीति उस समय भी नहीं अपनायी थी जब असहयोग पूरे जोर पर था । मुझे यकीन है कि यह चीज अधीर होकर ही डाल दी गयी है ।

आपकी 'मजदूरों और किसानों की आम हड़तालें', जिन पर किसी तरह का कोई प्रतिबन्ध नहीं है, संयत और अहिंसात्मक कार्यक्रम के लिए बहुत ही खतरनाक है । आपकी तात्कालिक माँगें, केवल कुछ मुद्दों को छोड़कर, आकर्षक हैं । पर आपके तरीकों में मुझे ऐसा कुछ नहीं मिला जो यह दिखाए कि आपको तुरन्त उनकी प्राप्ति की कोई आशा है ।

कुछ बहुत सी स्पष्ट चीजें छूट गई हैं, जिनकी ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। अस्पृश्यता निवारण, साम्प्रदायिक एकता। खद्दर जनसाधारण से एकात्मकता का प्रतीक है और साल में चार-छः महीने बेकार रहने वाले लाखों लोग, जब तक उन्हें कोई और बेहतर धन्धा न मिल जाए, इस धन्धे को तुरन्त अपना सकते हैं। इसके अतिरिक्त मद्य और मादक पदार्थों का पूर्ण निषेध।

मैं इस बाद के पक्ष में हूँ कि समूचे संविधान का कड़ाई से संशोधन होना चाहिए। हम दोनों के मार्ग में भारी अड़चन यह है कि जवाहरलाल जिन्होंने हमें समाजवाद का मंत्र दिया, हमारे बीच में नहीं हैं। मैं यह समझता हूँ कि जब मुझे और अन्य बूढ़ों को विश्राम की अनुमति मिल जाएगी, जिसके कि हम सर्वथा अधिकारी हैं, तो कांग्रेस के काँटों के ताज का स्वाभाविक उत्तराधिकारी उन्हें ही होना है। मेरा ऐसा विश्वास है कि यदि वे हमारे बीच में होते तो गति धीरे-धीरे तेज करते। मेरा सुझाव यह है कि आप वैज्ञानिक समाजवाद की बजाए, जैसा कि आपके कार्यक्रम को नाम दिया गया है देश को व्यावहारिक समाजवाद दें, जो भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप हो। मुझे इस बात की खुशी है कि जो कार्यक्रम आपने मुझे दिया है वह इसी उद्देश्य के लिए नियुक्त एक प्रभावशाली समिति द्वारा तैयार किया होने पर भी अभी तक एक मंसौदे ही है। इसलिए अपने कार्यक्रम को अन्तिमरूप देतेहुए यदि आप ऐसे लोगों से सहयोग करें जिनका झुकाव समाजवाद की ओर हो और जिन्हें वास्तविक परिस्थितियों का अनुभव हो, तो वह बुद्धिमत्ता होगी।

आचार्य नरेन्द्र देव जी महत्वाकांक्षी नहीं थे। वे न तो व्यक्तिवादी थे न अनुशासनहीन। इस कारण वे न तो नेता बन सकते हैं और न ही अन्धभक्त अनुयायी। वे संकोची एवं निस्पृह प्रकृति के थे तथा कभी उन्होंने श्रेष्ठ पद की कामना नहीं की। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभापति होने में भी उन्होंने अपनी अनिच्छा प्रकट की, किन्तु गणमान्य नेताओं का अनुरोध विनम्रतावश स्वीकार करना पड़ा। इसीप्रकार पण्डित जवाहरलाल नेहरू के बहुत आग्रह पर ही उन्होंने वर्किंग कमेटी में सम्मिलित होना स्वीकार किया। सन् १९३४ ई० में जयप्रकाशजी ने समाजवादी पार्टी बनाने का प्रस्ताव रखा तथा नरेन्द्र देव जी से सभापति पद ग्रहण करने का अनुरोध किया। समाजवाद के प्रति गहन निष्ठा रखने के पश्चात् भी नरेन्द्र देव जी ने सभापति पद को अस्वीकार करना चाहा, पर अन्ततः जयप्रकाशजी से अत्यधिक प्रगाढ़ सम्बन्ध होने के कारण उन्होंने इस पद को स्वीकार कर लिया। पार्टी का सम्मेलन मई सन् १९३४ ई० में पटना में हुआ। बिहार में भूकम्प आने से पीड़ित जन की सेवा के प्रयोजन से नरेन्द्र देव जी विद्यार्थियों का दल लेकर वहाँ गये तथा तब ही उनका परिचय डॉ० राममनोहर लोहिया से हुआ। जब पार्टी का विधान निर्मित हुआ, तब नरेन्द्र देव जी और लोहियाजी दोनों इस पक्ष में थे कि उद्देश्य के अन्तर्गत पूर्ण स्वतन्त्रता भी होनी

चाहिये । अन्त में इन लोगों के मत को स्वीकृत कर लिया गया । भारत के स्वतन्त्रता युद्ध के अन्तिम दौर में इन लोगों की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण रही । डॉ० राममनोहर लोहिया की भूमिका भूमिगत आन्दोलन को प्रज्ज्वलित करने में अत्यधिक महत्व की रही । कार्यक्रम और विचार की दृष्टि से भूमिगत संगठन में उनका स्थान असाधारण रहा ।

पटना के पश्चात् कांग्रेस समाजवादियों का दूसरा सम्मेलन अक्टूबर के महीने में सन् १९३४ ई० में बम्बई में उस समय हुआ जब डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था । डॉ० सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में हुए इस सम्मेलन में नवनिर्मित पार्टी को "कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी" की संज्ञा दी गई और निश्चय किया गया कि उसके उद्देश्यों ,में विश्वास रखने वाले कांग्रेस सदस्यों को भी उसका सदस्य बनाया जाए । अपना नामकरण करने के अतिरिक्त उस सम्मेलन में अपने को सार्थक सिद्ध करने के लिये निम्नलिखित छः सूत्री कार्यक्रम निर्धारित किया—

१. कांग्रेस के अन्दर समाजवादी पार्टी के उद्देश्य और कार्यक्रम को स्वीकार करने का यत्न करना ।

२. किसान और मजदूरों को संगठित करना, उनमें वर्ग संघर्ष की भावना पैदा कर उनके आर्थिक संघर्षों को तेज करना और जहाँ ऐसे संगठन हों उनमें शामिल होना ।

३. युवक संघ, महिला संघ, स्वयंसेवक संघ आदि संगठनों में प्रवेश करना, उन्हें संगठित करना और समाजवादी विचारधारा के रंग में रंगना ।

४. साम्राज्यवादी युद्धों के विरुद्ध चलने वाले स्वतन्त्रता संग्राम को मजबूत करने में अपनी शक्ति को लगाना ।

५. ब्रिटिश सरकार से किसी भी प्रकार से तथा किसी भी स्थिति में वैधानिक समझौता न करना तथा,

६. सत्तारूढ़ होने पर मजदूरों, किसानों और अन्य शोषित वर्गों की समितियों द्वारा चुने हुये प्रतिनिधियों की संविधान सभा आयोजित कर संविधान बनाना ।

संवैधानिक विकास और नरेन्द्र देव की प्रतिक्रिया

जिस समय बम्बई में सम्मेलन हो रहा था, उस समय १९३५ ई० का प्रस्तावित भारतीय शासन विधान ब्रिटिश संसद के सदनों में विधेयक के रूप में चर्चाओं की निहाई पर था । यद्यपि उस समय तक यह अधिनियम नहीं बना था, किन्तु उसकी मूल बातें भारतवासियों को ज्ञात हो गयी थीं । अतः उस समय बम्बई में क्या कांग्रेसी, क्या कांग्रेसी समाजवादी सभी ने यह निश्चय किया कि

यदि सन् १६१६ ई० के भारत शासन विधान के अन्तर्गत कुछ ही महीनों बाद केन्द्रीय विधान सभा का चुनाव होता है तो उस निर्वाचन में कांग्रेस भाग लेगी। यहाँ पर स्मरणीय है कि केन्द्रीय विधान सभा १४ अगस्त, १६३७ तक उसी भारत शासन विधान के प्राविधानों के अन्तर्गत चलती रही, जिसके अन्तर्गत सन् १६२० में उसका प्रादुर्भाव हुआ था। सन् १६३५ ई० के प्रारम्भ होते ही केन्द्र की नवनिर्वाचित विधान सभा ने स्वरूप ग्रहण किया और मई १६३५ ई० के समाप्त होते ही, जून के प्रथम सप्ताह में १६३५ का भारत शासन विधान ब्रिटिश पार्लियामेण्ट द्वारा निर्मित एक कानून बन गया।

इस प्रकार जून १६३५ ई० का भारत शासन विधान जनता के सामने आया, वहीं उसी जून माह के अन्त में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की गुजरात शाखा का सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में अपने भाषण में आचार्य नरेन्द्र देव जी ने नये शासन विधान पर तीखी प्रतिक्रिया प्रकट की। अतः भारतवर्ष के अन्य राष्ट्रीय नेताओं की अपेक्षा आचार्यजी को सन् १६३५ ई० के भारत शासन विधान के सम्बन्ध में अपने विचारों को सबसे पहले व्यक्त करने का अवसर मिला। नरेन्द्र देव जी द्वारा की मीमांसा के अनुसार वह शासन विधान प्रतिक्रियावादी तथा स्थाई स्वार्थों का संरक्षक होने के कारण तिरस्कार का पात्र था। उनके मतानुसार विधान मण्डलों में प्रवेश कर भारतीयों को उसका प्रतिरोध करना था तथा उसे निरर्थक सिद्ध करना था क्योंकि भारत को तो स्वतन्त्र और समाजवादी संविधान चाहिए था। आचार्यजी को देश की समस्या मूलक और विभाजक शासन विधान नहीं चाहिए था जैसा कि १६३५ ई० का विधान था। पटना में कांग्रेस समाजवादी दल के जन्म लेने के दो वर्षों के बाद लखनऊ में पं० जवाहरलाल नेहरूजी की अध्यक्षता में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का अधिवेशन अप्रैल, १६३६ ई० में हुआ। इस अधिवेशन में कांग्रेस की सर्वोच्च संस्था कांग्रेस की वर्किंग कमेटी में कांग्रेस समाजवादी दल के प्रतिनिधियों के रूप में आचार्य नरेन्द्र देव को तथा उनके साथ श्री जयप्रकाशनारायण और श्री अच्युत पटवर्द्धन को सम्मानपूर्ण स्थान मिला। तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष पं० जवाहरलाल नेहरूजी द्वार १६ अप्रैल १६३६ ई० को आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाशनारायण तथा अच्युत पटवर्द्धन कांग्रेस की कार्य समिति के सदस्य घोषित हुये थे। इस प्रकार वर्ष १६३६ ई० आचार्य नरेन्द्र देव जी के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण वर्ष रहा। सन् १६३६ ई० का अन्त होते-होते वह बरेली में यू० पी० कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष हो गये और उनकी ही अध्यक्षता में १६३७ के जनवरी-फरवरी में होने वाले विधान सभा के चुनावों में पार्टी की रणनीति बनी।

कांग्रेस को प्रगतिशील बनाने का प्रयत्न

१६३८ ई० में आचार्य नरेन्द्र देव जी प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा समिति के तथा लखनऊ और प्रयाग विश्वविद्यालयों की जाँच उपसमिति के अध्यक्ष

नियुक्त हुए और इन कमेटियों ने युक्त प्रान्त की शिक्षा-पद्धति में सुधार के लिये कई महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये।

यद्यपि सन् १९३९ ई० के त्रिपुरी अधिवेशन के बाद वे कांग्रेस की वर्किंग कमेटी के सदस्य नहीं रहे, पर सन् १९४८ ई० तक वे उसकी बैठकों में विशेष आमन्त्रित की हैसियत से भाग लेते रहे और अपने विचारों द्वारा कांग्रेस की नीति-रीति को प्रभावित करते रहे। संयुक्त प्रान्त की राजनीति में तो उनका विशिष्ट स्थान था। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी में उनके पक्ष का बहुमत था। संयुक्त प्रान्त की कांग्रेस अपनी प्रगतिशीलता के लिए प्रसिद्ध थी। इसका मूल कारण तो किसानों की बेचैनी और हलचल थी। पर इसमें नरेन्द्र देव जी का भी भरपूर हाथ था। उन्होंने कांग्रेस के अन्दर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बनाकर, उसके द्वारा समाजवादी दर्शन के सिद्धान्तों का प्रसारकर कांग्रेस के अन्दर समाजवादी शक्तियों को पुष्ट किया और दूसरे प्रगतिशील तत्वों से उसका सम्बन्ध जोड़ कांग्रेस को नयी गति प्रदान की और कांग्रेस के सिद्दान्तों और कार्य प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन कराने का भरसक प्रयत्न किया। उन्होंने नवयुवकों को क्रान्तिकारी राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा समाजवादी नेतृत्व प्रदान करते हुए उन्हें कांग्रेस के व्यापक नेतृत्व में देश की स्वतन्त्रता के लिए सतत प्रयत्न करने को प्रोत्साहित किया।

सन् १९३९ ई० में आचार्य नरेन्द्र देव जी ने अखिल भारतीय किसान सभा के गया सम्मेलन की अध्यक्षता की। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने किसान सभाओं और कांग्रेस संगठनों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों पर जोर दिया और कहा कि जहाँ औपनिवेशिक शोषण और आधिपत्य से मुक्ति की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए किसान सभाओं को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के प्रतीक और साम्राज्य विरोधी संघर्ष के प्रमुख उपकरण कांग्रेस के साथ सहयोग करना चाहिये, वहाँ कांग्रेस को भी समझना चाहिये कि किसान सभाओं के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार और राष्ट्रीय आधार पर उनका विकास ही देश की प्रगति के हित में है। इस गया अधिवेशन में किसान सभा ने नरेन्द्र देव जी के नेतृत्व में निश्चय किया कि कांग्रेस को उसके साम्राज्य विरोधी संघर्ष में किसानों के सभाओं द्वारा सहयोग प्रदान किया जाय और इसतरह देश में एक स्वतन्त्र जनतांत्रिक राज्य स्थापित किया जाय। उसने निश्चय किया कि किसानों के दिन-प्रतिदिन के संघर्षों को एक बृहद् साम्राज्य विरोधी संघर्ष में तथा कृषिक्रान्ति में परिपक्व किया जाय, जिसके द्वारा किसान अपनी जमीन के मालिक बन जाँय, राज्य और किसानों के बीच के सब मध्यवर्ती शोषकों के शोषण का अन्त हो, कर्जे के बोझ से किसानों का छुटकारा हो और वे अपने श्रम के लाभ का पूरा-पूरा उपभोग कर सकें।

इस सम्मेलन ने निश्चय किया कि किसानों के राजनीतिक संघर्षों को तीव्र किया जाय, सरकार द्वारा आयोजित भारतीय संघ व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष की आवश्यकता की जानकारी किसानों को करायी जाय तथा कांग्रेस, अखिल भारतीय किसान सभा, अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस तथा दूसरे साम्राज्य विरोधी संगठनों का एक संयुक्त मोर्चा बनाया जाय।

गाँधीजी चाहते थे कि न केवल समाजवादी दल के लोग कांग्रेस के अन्दर बने रहें, बल्कि उन्हें जिम्मेदारी के पद भी दिये जायें। वे आचार्य नरेन्द्र देव जी को स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अध्यक्ष बनाना चाहते थे, पर नेहरूजी नहीं माने। समाजवादियों को जिम्मेदारी के पद सम्भवतः इसलिये महात्मा गाँधीजी देना चाहते थे जिससे एक तो कांग्रेस के अन्दर आया बुढ़ापा दूर हो, दूसरे उसका संगठन जो जम सा गया है, उसमें नया खून व बहाव आ पाये। १६४६ ई० में नेहरूजी तीसरी बार अध्यक्ष बने।

साधारण जनता का पहले से ही यह ख्याल था कि कांग्रेस समाजवादियों के वास्तविक नेता नेहरूजी ही हैं, चाहे वे दल के सदस्य हो या नहीं। यह भी सत्य है कि समाजवादी नेताओं, आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, डॉ० राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन इत्यादि से नेहरू की प्रगाढ़ मैत्री थी। समाजवादी नेता यह समझते थे कि महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरूजी में नेहरूजी अपेक्षाकृत अधिक वामपंथी और प्रगतिशील हैं। उनकी यह भी धारणा थी कि नेहरूजी, महात्मा गाँधी व सुभाषचन्द्र बोस से ज्यादा आधुनिक भी हैं। आचार्य नरेन्द्र देव जी की तरह लोहियाजी भी कांग्रेस छोड़ना नहीं चाहते थे। उन्हें प्रतीत होता था कि भारत का नया राज्य अभी-अभी ही निर्मित हुआ है, लगभग डेढ़ हजार साल के पश्चात्। अभी इसकी जड़ें मजबूत नहीं हो सकी हैं। नये राज्य को सुदृढ़ बनाने का कार्य और समाज में परिवर्तन लाने का कार्य सम्भवतः कांग्रेस के माध्यम से ही अधिक सफलतापूर्वक किया जा सकेगा। लोहियाजी चाहते थे कि इस सम्भावना का प्रयोग किया जाय कि कांग्रेस जनतन्त्र समाजवादी की पार्टी के रूप में परिवर्तित हो जाये। पार्टी का बहुमत इसके विरुद्ध था। इसी बीच महात्मा गाँधीजी की हत्या हो गयी और प्रयोग की सम्पूर्ण जिज्ञासा ही समाप्त हो गयी।

आचार्य और महात्मा गाँधी में वैचारिक निकटता

जिस समय गाँधीजी देशव्यापी जनसंघर्ष शुरू करने की योजना बना रहे थे, उस समय आचार्य नरेन्द्र देव जी गाँधीजी की देख-रेख के सेवाग्राम आश्रम में इलाज करा रहे थे। नरेन्द्र देव जी की चिकित्सा गाँधीजी के सेवाग्राम वाले आश्रम में इसप्रकार चार महीने तक चलती रही। गाँधीजी चार महीने तक उनका इलाज करते रहे। बीमार नरेन्द्र देव जी के चिकित्सक गाँधी से चिकित्सा कराते-कराते इसतरह गाँधीजी के बहुत निकट पहुँच गये थे। उन्हीं दिनों समय-समय पर होनेवाली चर्चा के मध्य गाँधीजी ने नरेन्द्र देव जी से स्वराज्य की समाजवादी कल्पना को समझने की चेष्टा की। इस विषय को लेकर दोनों व्यक्तियों के बीच होनेवाली चर्चा में समय-समय पर सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों की समीक्षा भी होती रही। गाँधीजी को अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए आचार्यजी ने उस समय बताया था कि 'सत्य' की साधना तो वह बचपन से करते रहे हैं पर अन्याय के

विरुद्ध हिंसा के प्रयोग को उचित मानते हैं। आचार्य नरेन्द्र देव जी को विश्वास दिलाया कि जनसंघर्ष शुरू होने पर वह और उनकी पार्टी उनके साथ रहेंगे। उन्हीं दिनों नरेन्द्र देव जी ने समाचार पत्रों में एक लेख लिखा था, जिसका आशय यह था कि "यह सोचना गलत होगा कि ब्रिटेन से मैत्री हो जाने के कारण रूस और जर्मनी के बीच छिड़ा युद्ध साम्राज्यवादी युद्ध से जनवादी युद्ध बन गया।" आचार्य नरेन्द्र देव को जापान की घोषणा और नीयत पर कोई विश्वास न हुआ। वह तो यह चाहते थे कि अगर जापान भारत पर हमला करे तो जनता मे आक्रामक जापान के प्रति विरोध की भावना जागृत की जाय। मार्च १९४२ ई० में जब सर स्टैफर्ड क्रिप्स हिन्दुस्तान आये, उस समय नरेन्द्र देव जी सेवाग्राम आश्रम में अपना इलाज करा रहे थे। सर स्टैफर्ड क्रिप्स के खाली हाथ लौट जाने के बाद २७ अप्रैल, १९४२ ई० को प्रयाग में कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक हुई। इस बैठक में गाँधीजी की अनुपस्थिति में "भारत छोड़ो" प्रस्ताव पर विचार किया गया। पं० जवाहरलाल नेहरू ने इस प्रस्ताव का डटकर विरोध किया। पं० नेहरू से अच्युत पटवर्धन तथा आचार्य नरेन्द्र देव जी ने जो उस समय वर्किंग कमेटी में विशिष्ट आमन्त्रितों के रूप में उपस्थित थे जोरदार शब्दों में मोर्चा लिया। सर्वश्री गोविन्द वल्लभ पंत, भूलाभाई देसाई और आसफअली उस बैठक में नेहरूजी के समर्थक थे। कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष मौलाना अब्दुलकलाम आजाद के अनुरोध पर वर्किंग कमेटी ने पं० नेहरू द्वारा रखे गये विचार को स्वीकार किया। गाँधीजी नेहरूजी के विचार और दृष्टिकोण से असन्तुष्ट थे। लगभग ढाई महीने बाद ६ जुलाई, १९४२ ई० को कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक वर्धा में आहूत की गई। यह बैठक २४ जुलाई तक चलती रही। इलाहाबाद में वर्किंग कमेटी ने जिस "भारत छोड़ो" प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था वर्धा में उसे पुनः स्वीकार किया और उसकी पुष्टि के लिए उसने बम्बई में आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलाई। यह बैठक ७-८ अगस्त १९४२ को हुई जब कांग्रेस का "भारत छोड़ो" संकल्प देश के सामने आया। १० अगस्त की प्रातः होते-होते कांग्रेस कार्यकारिणी के सभी सदस्य गिरफ्तार होकर अहमदनगर किले की जेल में पहुँचाये गये, और गाँधीजी को आगा खाँ पैलेस में ले जाकर नजरबन्द कर दिया गया। अहमदनगर किले की जेल में कांग्रेस वर्किंग कमेटी के अन्य सदस्यों के साथ आचार्य नरेन्द्र देव १० अगस्त, १९४२ ई० से लेकर २८ मार्च १९४५ ई० तक रहे। उन्होंने वहाँ अपने बन्दी साथियों के साथ जिनमें वल्लभ भाई पटेल तथा पं० जवाहरलाल नेहरू भी थे एक कॉफी क्लब स्थापित किया था। उस काफी क्लब का ब्योरा देते हुए आचार्य नरेन्द्र देव जी ने एक लेख लिखा, जो अभी अप्रकाशित है। सन् १९४२ का "भारत छोड़ो" संघर्ष जिसने आचार्यजी व अन्य नेताओं को अहमदनगर किले की जेल में पहुँचाया था आजादी के पूर्व सभी संघर्षों से अधिक भीषण था।

सन् १९४५ ई० में नरेन्द्र देव जी पण्डित जवाहरलाल नेहरू के साथ १४ जून को अल्मोड़ा जेल से रिहा किये गये । कुछ दिनों उपरान्त जब नरेन्द्र देव जी पूना में महात्मा गाँधी से मिले तो गाँधीजी ने उनके विचार सत्य और अहिंसा के बारे में जानना चाहा । नरेन्द्र देव जी ने उन्हें बताया कि वे सत्य के तो सदा सर्वदा पुजारी रहे हैं, परन्तु इसका उन्हें सन्देह रहा कि अहिंसा द्वारा ब्रिटिश हुकूमत से राज्य शक्ति को छीना जा सकता है । रुग्ण आचार्यजी बीमारी की तकलीफ को समझते थे । अपने कष्ट के प्रति बेपरवाह रहने पर भी उन्हें निर्धन रोगियों के कष्ट की चिन्ता थी । इसीलिये उन्होंने बायोकेमिक पढ़ी तथा वे रोगियों में बायोकेमिक दवाईयाँ निःशुल्क वितरित करते थे ।

पूर्व एशिया की यात्रा

देश सेवा में निरन्तर लगे रहने के कारण आचार्यजी को विदेश गमन का अवसर कम ही मिल सका । भारत के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् फरवरी सन् १९५० ई० में एक गैर सरकारी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था संयुक्त राष्ट्रों के "विश्व संघ" के प्रतिनिधि की हैसियत से उसके क्षत्रीय सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये नरेन्द्र देव जी स्याम (थाइलैण्ड) गये । लौटते समय उन्होंने कुछ समय रंगून में बिताया, जहाँ उन्होंने बर्मा की परिस्थिति का अध्ययन किया । इस विदेश यात्रा के विषय में उन्होंने जो नोट लिखा उससे यह ज्ञात होता है कि स्याम पर प्राचीन भारतीय संस्कृति का काफी गहरा असर है । पहले यहाँ के लोग धोती ही पहनते थे । इस देश की भाषा में संस्कृत और पाली के शब्द प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त होते है । वहाँ की लिपि भी भारतवर्ष से ही ली गयी है । रामायण का काफी प्रचार है तथा गरुड़ वहाँ राज्य चिन्ह है । वहाँ की कला पर भी भारतीय कला की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है । अधिकांश जनता का धर्म— हीनयान बौद्ध धर्म है तथा वहाँ मठ एवं बौद्ध मन्दिर बहुतायत में है । इस देश की प्राचीन राजधानी अयोध्या के नाम से पुकारी जाती थी और अनेकानेक राजाओं के नाम के साथ राम शब्द जुड़ा होता था ।

जब आचार्य नरेन्द्र देव जी रंगून गये तो वहाँ पर वे पाँच दिन रुके । वहाँ वे सरकार, सोशलिस्ट पार्टी और भारतीय समाज के प्रमुख व्यक्तियों से मिले । यहाँ की परिस्थिति के विषय में अपने नोट में उन्होंने लिखा कि १९ जुलाई सन् १९४७ ई० को आगसेन और उनके पाँच साथियों की हत्या के बाद से बर्मा में विघटनकारी शक्तियों को बल मिला । जापानी आक्रमण के विरुद्ध बनाया गया फासिस्ट विरोधी संयुक्तमोर्चा टूटने लगा । बर्मा की कम्युनिस्ट पार्टी दो भाग में बँट गयी । बर्मा में निवास करनेवाले भारतीय जन को नरेन्द्र देव जी ने यह परामर्श दिया कि यदि वे बर्मा में रहना चहाते हैं तो बर्मा की नागरिकता स्वीकार कर वहाँ के लोगों से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाए ।

अप्रैल सन् १९५२ ई० में भारत सरकार ने श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित की अध्यक्षता में एक सद्भावना मण्डल चीन भेजा, जिसके एक सदस्य आचार्यजी भी थे। सर्वश्री अमरनाथ झा, चेलापति राव, फ्रेन्क मॉरेस, श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख व श्री भगवन्तम् अन्य सदस्य थे। यह सद्भावना मण्डल छः सप्ताह चीन में रुका। इस दौर में प्रायः आचार्य नरेन्द्र देव जी अस्वस्थ रहे तथा अनेक निश्चित कार्यक्रमों में वे भाग न ले सके, फिर भी जिन कार्यक्रमों में वे सम्मिलित हुए उनमें सोल्लास योगदान दिया। वहाँ की पहली बात जो उन्होंने नोट की वह यह कि दुभाषिये सरल से सरल बात का भी स्वयं उत्तर न देकर पहले उच्चाधिकारियों से परामर्श या आदेश लेकर ही उत्तर दिया करते थे। साथ ही वहाँ की जनता पर पुलिस का भी आतंक पाया।

स्वतन्त्र भारत में समाजवादी आन्दोलन का नेतृत्व

२६ मई, १९४८ ई० को आचार्य नरेन्द्र देव जी डॉ० राममनोहर लोहिया द्वारा आयोजित सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए पंचों से गाँवों में शोषितों का संयुक्त मोर्चा कायम करने का अनुरोध किया, उस सम्मेलन के कुछ दिन बाद यह देखकर कि गाँव पंचायतों के काम में प्रान्तीय सरकार अनावश्यक रूप से हस्ताक्षेप कर रही है और पंच नामुनासिब दबाव डाल रहे हैं। आचार्यजी ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने अनुचित कारवाईयों की भर्त्सना की। १९४९ ई० में पछुआ हवा और ओला के कारण देवरिया में फसल को बहुत क्षति पहुँची थी। क्षतिपूर्ति के प्रश्न को लेकर बहुत दिनों तक पंतजी और आचार्य नरेन्द्र देव जी में मतभेद रहा। मार्च १९४९ ई० में पटना में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में सोशलिस्ट पार्टी का सम्मेलन सम्पन्न हुआ। अप्रैल १९५० ई० में आचार्यजी ने शोषित पार्टी की पंजाब शाखा के सम्मेलन की जालन्धर में अध्यक्षता की। सितम्बर १९५२ ई० में सोशलिस्ट पार्टी ने किसान मजदूर प्रजा पार्टी से मिलकर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का निर्माण किया। १९ जून १९५३ ई० की सोशलिस्ट पार्टी का अधिवेशन बैतूल (मध्य प्रदेश) में हुआ। दिसम्बर १९५५ ई० में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने अपने गया सम्मेलन में जो नीति सम्बन्धी घोषणा स्वीकार की उसमें माँग की गयी थी कि समाजवादी समाज में राष्ट्रीयकृत उद्योगों की व्यवस्था की जाय, ताकि मजदूरों की स्वतन्त्रता तथा सुरक्षा सुलभ हो सके।

नवम्बर, १९५१ ई० में आचार्यजी ने आसन्न आम चुनाव के सिलसिले में एक बार फिर पंजाब का दौरा किया था। उसी सिलसिले में वह जालन्धर और अमृतसर भी गये थे। जून १९५० ई० में श्री मेहरअली की अनुपस्थिति में श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता में सोशलिस्ट पार्टी का मद्रास में सम्मेलन हुआ। अस्वस्थ होने के कारण आचार्य नरेन्द्र देव जी उस अधिवेशन में उपस्थित नहीं हो सके। डॉ० राममनोहर लोहिया भी कुछ कारण से वहाँ नहीं पहुँच सके। मद्रास सम्मेलन में पार्टी के प्रधानमंत्री जयप्रकाशनारायण द्वारा किये गये कुछ

भाषणों से कुछ लोगों का ऐसा विचार बना कि जयप्रकाशनारायणजी सत्याग्रह का समर्थन करके मार्क्सवाद और गाँधीवाद के बीच समन्वय स्थापित करना चाहते हैं। सम्मेलन के कुछ प्रतिनिधियों ने सोशलिस्ट पार्टी के मूल सिद्धान्त जनतांत्रिक समाजवाद के बारे में अपना मतभेद प्रकट किया। इस विवाद को दूर करने के लिए आचार्यजी ने एक लेख लिखा, जिसका शीर्षक था "जनतांत्रिक समाजवाद ही क्यों" ? १६५१ ई० में श्रीमती अरुणा आसफअली ने भी एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें उन्होंने सोशलिस्ट पार्टी की रीति-नीति, संगठन और सिद्धान्त की आलोचना करते हुए उसे मार्क्सवादी और क्रान्तिकारी के बजाय सुधारवादी पार्टी बाताया और कांग्रेस में शामिल हो जाने की सलाह दी।

१६५२ ई० आमचुनाव के लिए घोषणा को तैयार करने की जिम्मेदारी एक समिति को दी गयी, ।जसके सदस्य आचार्यजी और मुकुट बिहारी लाल थ। इस समिति द्वारा तैयार किये गये घोषणा पत्र पर विचार करने के लिए एक शिविर आयोजित किया गया। उसी शिविर में आचार्य नरेन्द्र देव ने एक प्रभावशाली भाषण किया था। शिविर के सभी भाषण एक पुस्तिका के रूप में "चुनाव घोषणा पत्र" नाम से छपे। १६५२ ई० के चुनाव में पार्टी को पर्याप्त सफलता नहीं मिली। आचार्य नरेन्द्र देव जी यह नहीं समझते थे कि १६५२ ई० के चुनाव में पार्टी को इतनी कम सफलता मिलेगी। सम्भवतः केवल इसी कारण १६५२ ई० के आमचुनाव के बाद वामपंथी शक्तियों ने देश में काफी जोर पकड़ा। मई १६५२ ई० में पंचमढ़ी में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का विशेष सम्मेलन सम्पन्न हुआ आचार्य नरेन्द्र देव उस समय चीन में थे। पंचमढ़ी सम्मेलन के समाप्त होने के बाद सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, अशोक मेहता, गंगाशरण सिंह तथा द्वारकाप्रसाद मिश्र, किसान मजदूर प्रजा पार्टी के नेता आचार्य कृपलानीजी से मिलने दिल्ली गये। डॉ० राममनोहर लोहिया उन लोगों के साथ नहीं गये थे। जयप्रकाशनारायण भी एक दिन बात करके दूसरे दिन लौट आये। जून, १६५२ ई० से श्रीमती सुचेता कृपलानी और अशोक मेहता में मेल की प्रक्रिया ने तेजी पकड़ ली। अगस्त १६५२ ई० में वाराणसी में सोशलिस्ट पार्टी की प्रदेश कार्यसमिति की बैठक में किसान मजदूर प्रजा पार्टी के साथ विलयन के सम्बन्ध में विचार विमर्श हुआ। सितम्बर १६५२ ई० को विलयन के सम्बन्ध में विचार करने के लिए बम्बई में जनरल कौंसिल की बैठक हुई। अस्वस्थता के कारण डॉ० राममनोहर लोहिया इस बैठक में उपस्थित नहीं हुए। फिर भी उन्होंने समाचार पत्रों में एक विस्तृत लेख प्रकाशित कर विलय का समर्थन किया और इस विषय पर कृपलानीजी के भी कई लेख प्रकाशित हुए।

आचार्य नरेन्द्र देव जी ने इन तमाम बातों को मद्दे नजर रखते हुए बहुत संतप्त हृदय से कहा था कि "वह मार्क्सवादी हैं और अपने सिद्धान्तों को किसी भी हालत में छोड़ने को तैयार नहीं हैं। चाहे इस कारण अपने मित्रों का ही साथ उन्हें क्यों न छोड़ना पड़े।" आचार्य नरेन्द्र देव जी ने आगे कहा कि अपने

सिद्धान्तों के लिए उन्होंने जब पं० जवाहरलाल नेहरू ऐसे मित्र का साथ दिया था तब वह अपने सिद्धान्तों के लिए किसी भी मित्र का साथ छोड़ सकते हैं। सोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर प्रजा पार्टी के विलयन के बाद नयी पार्टी का नाम "प्रजा सोशलिस्ट पार्टी" रखा गया। उसके अध्यक्ष आचार्य कृपलानी और महामंत्री अशोक मेहता नियुक्त हुए।

आचार्य नरेन्द्र देव जी कांग्रेस छोड़ने को उतावले नहीं थे, जब उन्होंने कांग्रेस छोड़ी तब फिर उन्होंने कांग्रेस में वापस जाने की या कांग्रेस के साथ मिली-जुली सरकार बनाने की बात कभी नहीं सोची। १९५३ ई० में जयप्रकाश-नारायणजी को बुलाकर नेहरूजी ने बातचीत की और नेहरूजी के निमन्त्रण पर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं के केन्द्रीय सरकार में सम्मिलित होने की बात चल पड़ी। आचार्य कृपलानी और अशोक मेहता ने इसका समर्थन किया, किन्तु डॉ० राममनोहर लोहिया ने इसका कड़ा विरोध किया। श्री जयप्रकाश नारायण ने नेहरूजी के सामने १४ सूत्रीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया और उसके आधार पर मिली-जुली सरकार बनाने की बात कही। आचार्य नरेन्द्र देव जी ने जब यह बात सुनी तो उन्होंने साफ शब्दो में जयप्रकाशनारायणजी से कहा कि वह इस सुझाव से सहमत नहीं हैं। पं० जवाहरलाल नेहरूजी भी इसके लिए तैयार नहीं थे। अतः यह बात वहीं समाप्त नहीं हुई, किन्तु इस घटना से प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में एक विवाद खड़ा हो गया। इस विवाद को समाप्त करने के लिए जून में पार्टी का एक विशेष कन्वेन्शन बुलाया गया। पार्टी के कट्टर कार्यकर्ता श्री मेहता और जयप्रकाशनारायणजी ने पार्टी कार्यकारिणी से इस्तीफा दे दिया। सम्मेलन ने १५ सदस्यों का एक आयोग नियुक्त किया। पार्टी के कार्यक्रम की जो रूपरेखा तैयार करनी थी वह १९५३ ई० के दिसम्बर मास में पार्टी के प्रयाग अधिवेशन में प्रस्तुत हुई और स्वीकार की गयी। इस सम्मेलन में आचार्य कृपलानी पार्टी अध्यक्ष तथा डॉ० राममनोहर लोहिया मंत्री नियुक्त हुए। इस अधिवेशन की कार्यवाही में आचार्य नरेन्द्र देव और जयप्रकाशनारायणजी ने कोई विशेष रुचि नहीं ली। वे दोनों नेता चुपचाप मंच पर बैठे रहे। अन्तिम दिन आचार्य नरेन्द्र देव ने आचार्य कृपलानी के प्रति धन्यवाद का प्रस्ताव पेश करने के लिए एक ओजपूर्ण भाषण किया। अपने भाषण में उन्होंने वर्गसंघर्ष को समाज की आधारभूत प्रक्रिया बताते हुए विलयन की चर्चा को बन्द करने पर जोर दिया। पार्टी में विवाद चलता रहा। अगस्त १९५३ ई० में अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए आचार्य नरेन्द्र देव ने एक विस्तृत वक्तव्य दिया।

अप्रैल १९५२ ई० में आचार्य नरेन्द्र देव राज्य सभा के लिए पहली बार निर्वाचित हुए और पुनः अप्रैल १९५४ में वह यू० पी० विधान सभा द्वारा राज्य सभा की सदस्यता के निर्मित पूरे ६ वर्ष के लिए चुने गये। राज्य सभा में उनका एक भाषण फरवरी १९५३ ई० में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर हुआ था। उस भाषण में नरेन्द्र देव जी ने नेतृत्व के विकास पर जोर दिया और इस सम्बन्ध में विश्वविद्यालयों की दशा को सुधारने की ओर विशेष ध्यान देने की प्रार्थना की।

यूरोप की यात्रा

१९५३ ई० में आचार्य नरेन्द्र देव जी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था। इसी कारण उन्होने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति पद से इस्तीफा दे दिया। वह १९५४ ई० में अपना इलाज कराने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका जाना चाहते थे, किन्तु लोगों के विचार विमर्श के फलस्वरूप इंगलिस्तान गये। उनके साथ उनके छोटे पुत्र हर्षवर्धन के मित्र परमेश्वर दयाल भी गये। लंदन पहुँचकर उन्होंने अपना इलाज कराया और जब स्वास्थ्य ठीक नहीं हुआ तो वहाँ से वह आस्ट्रिया चले गये। २८ जून को वह वियना पहुँचे। वहाँ उन्होने श्वांस के चिकित्सक से अपना इलाज कराना शुरू किया। वियना में आचार्यजी ने विश्वविद्यालय के प्रोफेसर पद को भी सुशोभित किया। आचार्यजी वियना के लोगो के सद्व्यवहार से बहुत ही प्रभावित थे। उन्होंने लिखा कि वियना के लोग बड़े तपाक से मिलते हैं। इनका व्यवहार बड़ा शिष्ट और मृदु होता है। ओवलडिस में लगभग २५ दिन रहने के बाद आचार्य नरेन्द्र देव जी १४ अगस्त को अपने पुराने छात्र डॉ० सत्यनारायण के साथ एक मोटरकार में जिनेवा को चल पड़े। १५ अगस्त को वह जिनेवा पहुँचे और वहाँ से झील के किनारे-किनारे होते हुए वह मोन्तरो पहुँचे। वहाँ से वह माउनटेन होसकाक्स गये, जहाँ उन्होंने भारत का राष्ट्रीय ध्वज फहराया। १८ अगस्त को जूरिख से चलकर वह फ्रैकफुर्ट पहुँचे, जहाँ जर्मनी के प्रसिद्ध विचारक गेटे के पुराने निवास को देखा और उन्होने अपने शिष्य सत्यनारायण से बात करते हुए पण्डित नेहरू की तुलना हावर्ड फास्ट से की। फ्रैंकफुर्ट से हवाई जहाज के जरिये वह बर्लिन गये और वहाँ एक सप्ताह रहे। इस बीच वह पूर्वी बर्लिन भी गये। वहाँ वह कुछ रूसी सिपाहियों से मिले और श्री विनय मुखर्जी के पुत्र से भेंट करके उनसे मास्को के समाचार प्राप्त किये।

आचार्यजी ने कई दिनों तक पूर्वी बर्लिन की नेशनल लाईब्रेरी में जाकर रूस के प्रसिद्ध विद्वान् शिवास्टकी की बौद्ध-दर्शन पर लिखी प्रसिद्ध पुस्तक का अध्ययन किया। उन्होंने पश्चिमी बर्लिन में फ्री यूनिवर्सिटी और होवोल्ड यूनिवर्सिटी देखी और जर्मनी के मजदूर नेता शुभाकर से भेंट की। शुभाकर ने उन्हें पश्चिमी जर्मनी की राजधानी बान आमे को निमंत्रित किया। आचार्यजी बर्लिन से फ्रैंकफुर्ट होते हुए ब्रुसेल्स गये, जहाँ से वह बॉन और फिर म्युनिख गये। उन्होंने जर्मनी के बहुत सारे समाजवादी नेताओं से बातचीत की। वहाँ से फिर एक सप्ताह के लिए ओवलडिस पहुँचे, जहाँ वह कई दिन तक आस्ट्रिया के प्रधानमंत्री डॉ० ज्यूलिस राव से बातचीत करते रहे। ओवलडिस से इन्सवर्क होते हुए वह फिर वियना पहुँचे जहाँ उस समय अन्तर पार्लियामेन्ट्री कान्फ्रेन्स हो रही थी। यहाँ उनकी जर्मनी के प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक कार्ल काउटस्की के सुपुत्र से भी भेंट हुई। अपने सुपुत्र हर्षवर्धन के मित्र परमेश्वर लाल के साथ आचार्य नरेन्द्र देव वियना से यूगोस्लाविया गये जो चीन की तुलना में आर्थिक रूप से स्वतन्त्र था। यूगोस्लाविया में बहुदलीय व्यवस्था थी। जहाँ पर डॉ० कार्डले से आचार्य नरेन्द्र

देव की एक बड़ी सारगर्भित बातचीत हुई। बहुदलीय व्यवस्था की पुष्टि में आचार्यजी ने यह भी कहा कि मार्क्सवादियों के बहुत से स्कूल हैं। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ समय बाद जब यूगोस्लाविया के प्रधान मार्शलटीटो १९५५ ई० में भारत आये थे, तब आचार्य जी ने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष की हैसियत से उनके सम्मान में एक अभिनन्दन पत्र प्रस्तुत किया था। मार्शल टीटो के साहस, वीरता, त्याग, सफल नेतृत्व की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा कि हम सबको इस बात की खुशी है कि आपके नेतृत्व में यूगोस्लाविया के बहादुर देशभक्तों ने अपने शौर्य के बल पर अपने देश को जर्मनी की दासता और नाजिमों के अत्याचार से मुक्त कराया। अपनी लम्बी यात्रा के अन्तिम चरण में आचार्यजी लन्दन से स्वदेश लौटते समय कुछ दिन पेरिस में और फिर कुछ दिन काहिरा में रहे। इस विदेश यात्रा में वह इजराइल भी गये।

उन्होंने लेबनान में वहाँ की सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष श्री कमाल जुमाल से भी भेंट की। यूरोप से घर वापस आने के बाद आचार्य नरेन्द्र देव अपना सारा समय जनतांत्रिक समाजवाद के सिद्धान्तों और मूल्यों के प्रसार तथा विद्या और आचरण सम्पन्न नवयुवकों को समाज के कार्य में दक्ष करने में लगाना चाहते थे।

जीवन की अन्तिम यात्रा और अन्तिम पत्र

३ जनवरी सन् १९५६ ई० को आचार्य नरेन्द्र देव जी स्वास्थ्य लाभ के लिये हवाई जहाज से परेन्दुराई चले गये। परेन्दुराई मद्रास के कोयम्बटूर जिले में था तथा इस स्थान को उनके मित्र श्री श्रीप्रकाशजी ने चुना था जो उस समय मद्रास के राज्यपाल थे। आचार्यजी डेढ़ माह वहाँ रहे, परन्तु स्वास्थ्य में स्थायी सुधार न हो सका। दमे के छोटे मोटे दौरे लगातार पड़ते रहते थे। परेन्दुराई जाते समय वे अपने साथ बौद्ध दर्शन की पुस्तकें लेते गये और अपनी पुस्तक 'बौद्ध धर्म दर्शन' के शेष भाग को समाप्त करने का प्रयास करते रहे। परेन्दुराई आने के तीन चार दिन बाद उन्होंने अपने घनिष्ठ मित्र 'सागर सिंह' को एक पत्र लिखा। इस पत्र में उन्होंने लिखा कि "डॉ० राममनोहर लोहिया ने कांग्रेस के विरुद्ध एक Obsession (आवेश) पार्टी में पैदा कर दिया है जो हितकर नहीं है। Obsession होने से नीति के बनाने में औचित्य का ध्यान नहीं रहता। फिर तो यही होता है कि कांग्रेस को किसी तरह नष्ट किया जाये, चाहे उसका परिणाम कुछ भी क्यों न हो। उदाहरण के लिए कांग्रेस का विरोध करना एक बात है और उसको समाप्त करने के लिये कम्युनिस्टों और सम्प्रदायवादियों की सहायता लेना दूसरी बात है। जब Obsession हो जाता है तब अन्य बातें गौण पड़ जाती हैं। यूरोप की कई सोशलिस्ट पार्टियों को कम्युनिस्टों का Obsession हो गया है, जिसकी वजह से वे कभी-कभी पूँजीवादियों का भी साथ देने लगती हैं। Obsession बुरी चीज है। कांग्रेस के साथ सहयोग करने में हमारी जो आपत्ति

है उसका स्पष्टीकरण (जनता) अंग्रेजी के हाल के एक अंक में किया गया है। "किन्तु हमारे असहयोग का यह अर्थ नहीं है कि हम Public Level (सार्वजनिक स्तर) पर भी जनता के कार्यों में सहयोग नहीं कर सकते।" इस पत्र में वर्ग-संघर्ष की चर्चा करते हुए भी उन्होंने लिखा कि "वर्ग-संघर्ष का यह अर्थ नहीं है कि किसी बात में वर्ग सहयोग (Class Collaboration) नहीं होना चाहिए, तब तो समाज छिन्न-भिन्न हो जायगा।" पूँजीपति और मजदूर ही कारखाना चलाते हैं। यह रोज की घटना है। यद्यपि उनके स्वार्थ परस्पर विरोधी है। वर्ग-संघर्ष (Class Struggle) पर जोर इसलिये देना पड़ता है क्योंकि पूँजीपति और उनके समर्थक विद्वान् यह कहते नहीं अघाते कि दोनों का हित पूर्ण सहयोग में ही है। पुनः आज के युग में विषमता इतनी बढ़ गयी है कि संघर्ष तीव्र हो गया है।"

५ फरवरी को प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया के प्रतिनिधि द्वारा बम्बई की घटनाओं के समाचार नरेन्द्र देव जी ने सविस्तार सुने तथा विह्वल हो गये। आचार्यजी बम्बई को मराठी भाषा-भाषी वृहद् महाराष्ट्र का भौगोलिक अंग समझते थे। उसके लिए संयुक्त महाराष्ट्र आन्दोलन की मांग उन्हें उचित प्रतीत होती थी। पर उसके लिये विभिन्न भाषा-भाषी समूहों में कटुता और वैमनस्य के परिणामस्वरूप होने वाले उपद्रव व मारकाट के समाचार उन्हें व्यथित कर देते थे।

१२ फरवरी १९५६ ई० को परेन्दुराई से दूर कोयम्बटूर में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति की बैठक बुलायी गयी, जिसमें आचार्य नरेन्द्र देव जी की इच्छानुसार श्री गंगाशरण सिंह जी को डिप्टी चेयरमैन नियुक्त किया गया। १३ फरवरी को आचार्य नरेन्द्र देव जी के निवास स्थल परेन्दुराई में कार्यसमिति की बैठक हुई, जिसमें बम्बई की परिस्थिति पर विचार किया गया। आचार्य नरेन्द्र देव जी उस समय इतने कमजोर हो गये थे कि प्रत्येक पन्द्रह मिनट बाद उनको दस मिनट तक दवा सूँघना पड़ता था। आचार्य नरेन्द्र देव जी के भाषण के बाद उनकी आज्ञा से भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्विभाजान पर राष्ट्रीय कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया, जिसमें एक ओर जहाँ भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्विभाजन को जनता की उचित और जनतांत्रिक माँग स्वीकारा गया, वहाँ दूसरी ओर अपनी भाषा और संस्कृति की भक्ति की तुलना में राष्ट्र-भक्ति को प्राथमिकता देने का आग्रह किया गया। राष्ट्रीय कार्यसमिति ने निर्णय लिया कि भाषा-भाषी अल्पसंख्यकों में सद्भावना का वातावरण पैदा करने के लिए बम्बई नगर को पार्टी के कार्यकर्ताओं और दूसरों का सहयोग प्राप्त करने को वह अपने प्रतिनिधि भेजे। राष्ट्रीय कार्यसमिति ने इस बात पर चिन्ता व्यक्त की कि राज्य सरकार गोली को ही उपद्रवी भीड़ हटाने का एकमात्र साधन समझती है। कार्य-समिति का निश्चित मत था कि प्रत्येक गोलीकाण्ड के बाद यह निश्चय करने के लिये कि ऐसा किन परिस्थितियों में किया गया एक जुडिशियल जाँच होनी चाहिये।

अन्त में श्री गंगाशरण सिंह को प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का स्थानापन्न चेयरमैन नियुक्त किया गया। आचार्यजी ने अपने इस दौरे में जयप्रकाश नारायणजी को

लिखा कि वह प्रधानमंत्री नेहरूजी से मिलें। आचार्यजी का स्वास्थ्य बिगड़ता ही चला गया। जब ५ दिन तक कोई सुधार नहीं हुआ तब आचार्यजी दूसरे कार्यक्रम को स्थगित कर परेन्दुराई आये। उन्होंने वहाँ अपनी पारिवारिक समस्याओं के सम्बन्ध में बातचीत की। फिर वह इरोड चले गये, जिसके बाद आचार्य नरेन्द्र देव जी इस संसार से चल बसे। इरोड में १९ फरवरी १९५६ ई० को इस मनीषी ने संसार से महाप्रयाण किया।

निष्कर्ष

आचार्य नरेन्द्र देव जी अपने समय के उन कुछ थोड़े से चिन्तक राजनेताओं में से थे जिनके लिए भारतीय स्वतंत्रता संग्राम 'स्वतंत्रता' से भी अधिक कुछ था। वे स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द घोष, महात्मा गाँधी के साथ-साथ मार्क्स और एगिल्स के विचारों की गहराईयों तक गये, गये ही नहीं उन विचारों को अपने जीवन मूल्य के केन्द्र में स्थापित भी किया। एक ओर भारतीय परम्परा के निष्णात विद्वान् होते हुए भी वे अपने विचारों में अत्यन्त आधुनिक थे और जाति, वर्ण और वर्ग पर आधारित भारतीय समाज में आमूल चूल परिवर्तन के विश्वासी थे।

वे केवल विचारक ही नहीं थे। उन्होंने जो सोचा उसे साहस के साथ चरितार्थ करने का भी प्रयास किया। वे भारतीय नवजागरण के प्रतीक-पुरुष थे लेकिन वे अन्ततः पूरे परिवर्तन के हामी थे और इसके लिए आवश्यकता पड़ने पर वे किसी के विरुद्ध खड़ा हो सकते थे और अपने अत्यन्त प्रिय से प्रिय व्यक्ति के मत से असहमत हो सकते थे। इसी के चलते महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, जयप्रकाश नारायण, डॉ० लोहिया और डॉ० सम्पूर्णानन्द के अत्यन्त प्रिय होते हुए भी वे उनसे भारतीय समाज के परिवर्तन के लिए किये गये कार्यों के तरीकों पर बार-बार असहमत हुए।

सर्वोपरि वे एक अत्यन्त नैतिक राजनीतिज्ञ थे जो मूल्यों की रक्षा के लिए कोई भी त्याग कर सकते थे। स्वतन्त्रता के बाद भारत का निर्माण किन पद्धतियों से हो इसको लेकर उनका कांग्रेस से मतभेद हुआ और जीवन के अन्तिम वर्षों में बिना किसी पछतावे के वे कांग्रेस छोड़ दिये और उनके ही शब्दों में उनका राजनीतिक वनवास पर्व शुरू हो गया। उन्होंने कांग्रेस के साथ विधान सभा की अपनी सदस्यता छोड़ दी और इसी कांग्रेस के विरुद्ध खड़े हुए जिसकी नींव में उनके जीवन के श्रेष्ठ वर्ष खप गये हैं।

●

द्वितीय अध्याय

नवीन समाज व्यवस्था की संकल्पना

विश्व के अन्य देश के समाजवादियों की तरह आचार्य नरेन्द्र देव जी ने भी समाजवाद को परिभाषित किया है। परन्तु अन्य देशों के समाजवाद से भारतीय समाजवाद भिन्न है। उन्होंने भारत में जिस समाजवाद की कल्पना की, वह उन पाश्चात्य देशों से भिन्न था। जहाँ पाश्चात्य देशों में औद्योगीकरण की अधिकता के कारण वहाँ पूँजीपति और मजदूरों में असामञ्जस्य था वहीं भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जमींदार, सामन्त, राजे, गरीब किसान और खेतों में काम करनेवाले गरीब कृषक मजदूर थे। इसीलिये आचार्यजी का मानना था कि भारतीय समाजवाद और पाश्चात्य समाजवाद में भिन्नता है। उनका कहना था कि जब तक किसान मजदूरों को उनके श्रम का उचित मूल्य नहीं मिलेगा तब तक समाज में इसी तरह अव्यवस्था व्याप्त रहेगी।

समाजवाद का केन्द्र बिन्दु मानव

आचार्यजी समाजवाद के द्वारा एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे, जिसमें परस्पर विरोधी शोषक और शोषित, आर्थिक वर्ग समाप्त हो जाय। उनका कहना था कि समाज में सहयोग के आधार पर संगठित व्यक्तियों का एक सच्चा प्रजातन्त्र बने। जब तक समाज में एक वर्ग दूसरे वर्ग को दबाता रहेगा, सामूहिक रूप से समाज के सदस्यों की उन्नति नहीं हो सकती। समाजवादी समाज में राज्य सत्ता शोषित-वर्ग के हाथ में आ जाती है और उत्पादन सकल के साधनों पर सारे समाज का अधिकार हो जाता है तथा मनुष्य के शोषण का आर्थिक आधार ही खत्म हो जाता है। शोषक और शोषित दोनों ही समाप्त हो जाते हैं। उसी समय मनुष्य पशुतुल्य जीवन त्याग कर मानवोचित जीवन प्रारम्भ करेगा। आचार्यजी मानवता की यथार्थ सेवा के प्रेरक थे। उन्होंने समाजवाद को एक नैतिक और आध्यात्मिक विशिष्टता प्रदान की। उनका मत था कि समाजवाद की लड़ाई मजदूर किसान वर्ग से नैतिक उत्कर्ष की अपेक्षा करती है। उनका विश्वास था कि मानवतावादी समाजवाद मनुष्य की विवशता के क्षेत्र से हटाकर स्वाधीनता के राज्य में ले जाना चाहता है। उन्हें मानवतावादी समाजवाद में पूर्ण आस्था थी। उन्होंने पूँजीवाद को नैतिक आधार पर घृणित बताया इसीलिए भारतीय समाज को एक समाजवाद के रूप में नैतिक स्तर पर नवीन दृष्टि प्रदान की।

आचार्यजी के अनुसार समाजवाद का ध्येय— वर्ग विहीन समाज की स्थापना है। समाजवाद प्रचलित समाज का इस प्रकार का संगठन करना चाहता है कि वर्तमान परस्पर स्वार्थों वाले शोषक और शोषित, पीड़क और पीड़ित वर्गों का अन्त हो जाय, वह सहयोग के आधार पर संगठित व्यक्तियों का ऐसा समूह बन जाय जिसमें एक सदस्य की उन्नति का अर्थ स्वभावतः दूसरे सदस्य की उन्नति हो और वह मिलकर सामूहिक रूप से परस्पर उन्नति करते हुए जीवन व्यतीत कर सके।

मानव इतिहास के आरम्भ से अब तक समाज में शोषक और शोषित वर्गों का संघर्ष चलता रहा है। मनुष्य सामाजिक प्रगति के नियमों का दास बनकर कार्य करता रहा है, वह समाज के विकास की दिशा बोधपूर्वक निर्धारित करने में असमर्थ रहा है। समाजवाद ऐसे शोषण मुक्त और स्वतन्त्र समाज की रचना करना चाहता है जिसमें मनुष्य अपनी इस असमर्थता के दायरे से उपर उठ सके और सामाजिक विकास का नियन्त्रण कर सके। कार्ल मार्क्स के शब्दों में "समाजवाद मनुष्य को विवशता के क्षेत्र से हटाकर उसे स्वाधीनता के राज्य में ले जाना चाहता है।"

उन्होंने कहा कि हर राष्ट्र स्पष्टतः दो मुख्य शोषक और शोषित भागों में बँट गया है। एक ओर तो लक्ष्मी के लाडले मुटठीभर पूंजीपति हैं जो शानदार महलों में रहते हैं, जिन्हें सभ्यता की सभी विभूतियों का सुख प्राप्त है, जो समाज के भाग्य-विधाता समझे जाते हैं—जिनके अधिकार में उत्पादन, विनिमय और वितरण के सभी साधन हैं। दूसरी ओर शोषित वर्ग के वे बहुसंख्यक अभागे लोग हैं, जिनकी एकमात्र पूँजी उनकी श्रम-शक्ति है जो लोग अपने परिश्रम से समाज की सभी वस्तुएँ पैदा करते हैं पर जिनको न पेट भरने को अन्न और न तन ढंकने को कपड़ा है—जिनका कार्य अमीर पूँजीपतियों की कृपा पर निर्भर रहकर रात दिन शोषण की चक्की में पिसते रहना ही है। कानून की निगाह में शोषक और शोषित दोनों ही वर्ग के लोग बराबर हैं, कानून सभी के साथ समान रूप से न्याय करता है, लेकिन हममें से हर कोई इस बात को जानता है कि गरीबों के साथ होने वाला न्याय कितना पक्षपात से भरा होता है और न्यायालयों में रोज ही न्याय के गले में छुरी फिरा करती है। समाज में पूँजीपतियों की जो वर्ग स्थिति है उसकी बदौलत अधिकार के सभी स्थानों पर पूँजीपतियों का ही एकाधिपत्य होता है। ये पूँजीवादी अधिकारी कितना भी निष्पक्ष होने की कोशिश क्यों न करें लेकिन स्वभावतः उनका दृष्टिकोण अपने वर्ग-स्वार्थ से रंगा हुआ होता है।

पूँजीवादी प्रजातन्त्र की स्थापना से आज की दुनिया में आजादी कायम हो गयी है, किन्तु श्रमजीवियों के लिए यह आजादी पूँजीपतियों की शर्त पर अपना आत्मसमर्पण करने या बदले में भूखों मरने की ही आजादी है। आजकल के पूँजीवादी समाज में साधारण मनुष्यों के लिए जीवन की कठिनाइयाँ सामन्तवादी युग की अपेक्षा कई गुना ज्यादा बढ़ गयी हैं। गरीबी और अमीरी उस समाज में भी बहुत दर्जे तक थी, किन्तु आज का सा यह हाल न था कि एक तरफ सारी सम्पत्ति इने गिने चन्द हाथ में इकट्ठा हो गयी है और दूसरी तरफ लाखों मेहनत करनेवाले परिवार भूखों मरते हैं।

समाज की यह भीषण विषमता क्यों ? इस विषमता का कारण यह है कि उत्पादन, विनिमय और वितरण के साधनों पर चन्द पूँजीपतियों का अधिकार है। उत्पादन के इन साधनों में मिलों, कारखानों और बैंकों आदि में काम करने वालों का इन साधनों कोई अधिकार नहीं है। प्राचीनकाल में जबकि गृह शिल्प प्रणाली की प्रधानता थी, आजकल की भाँति बड़े पैमाने पर पैदावार नहीं होती थी, उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार हुआ करता था और बहुत हद तक पैदावार करने वाले व्यक्ति को अपनी पैदावार का लाभ मिलता था। आज बड़े पैमाने पर पैदावार होती है, पर उत्पादन के साधनों पर समाज का या उनमें काम करने वाले आदमियों का कोई अधिकार न होकर व्यक्तिगत पूँजीपतियों का अधिकार होता है। फलस्वरूप सारा नफा इन व्यक्तिगत पूँजीपतियों की ही जेबों में जाता है और मजदूरों को मुश्किल से उनके पेट भरने के लिए दिया जाता है।

वर्गरहित समाज बनाम वर्ण रहित समाज

नरेन्द्र देव जी ने कहा कि पूँजीवादी प्रणाली का नतीजा न सिर्फ समाज के दूसरे लोगों के लिए ही बल्कि पूँजीपतियों के लिए भी घातक होता है। चूँकि समाज का बहुसंख्यक भाग परिश्रम करनेवालों का है, जिनकी क्रय शक्ति दिन-ब-दिन घटती ही चली जाती है, इसलिए पूँजीपतियों को अपने कारखाने का माल बेचना दिन-ब-दिन मुश्किल होता जाता है। यों तो किसी योजना के अनुसार पैदावार न होने के कारण पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में संकट आया ही करते थे, लेकिन श्रमिक जनता की क्रय शक्ति के ह्रास के फलस्वरूप अब संकट ने स्थायी रूप धारण कर लिया है। इस प्रकार उत्पादन की शक्तियों और उत्पादन के साधनों तथा उत्पादन की शक्तियों और विनिमय के बीच घोर असंगतियाँ उपस्थित हो गयी हैं। समाजवाद का उद्देश्य इन्हीं असमानताओं और असंगतियों को दूर करना है।

उनका मत था कि अगर कुछ लोग यह समझते हों कि समाजवाद हर प्रकार की आजादी या समानता कायम करने जा रहा है तो यह उनकी भूल होगी। समाजवाद पूर्ण समानता लाने का दावा नहीं करता। समाजवादी समाज में भी समाज के सदस्यों में शारीरिक और मानसिक अन्तर रहेंगे ही। समाजवाद यह अवश्य करेगा कि वह शोषक वर्ग का अन्त करके, असमानता का आर्थिक आधार नष्ट कर देगा और सबको अवसर की समानता प्रदान करेगा।

आचार्यजी के अनुसार समाजवाद का ध्येय— वर्ग रहित समाज की स्थापना है। वर्ग के सम्बन्ध में बहुत सी मिथ्या धारणाएँ प्रचलित हैं। कुछ लोग यह समझते हैं कि समाज में अमीर और गरीब ये दो वर्ग हमेशा से रहते आये हैं और समाजवाद का उद्देश्य इन दोनों समूहों के अन्तर को मिटाकर समाज के सभी सदस्यों में आर्थिक एकरूपता स्थापित करना है। यह ठीक है कि हमेशा ऐसा रहा है और रहेगा। गरीबी कब शुरू हुई, क्यों शुरू हुई यही तो समाजवाद बताता है। इसी में तो श्रेणी संघर्ष का रहस्य है।

समाजवाद जिस नयी सामाजिक व्यवस्था की कल्पना करता है उसमें आजकल की भाँति भीषण आर्थिक विषमताएँ न पायी जायेंगी, लेकिन इसका यह अर्थ निकालना भ्रम पूर्ण होगा कि समाजवादी आर्थिक एकरूपता कायम करना चाहते हैं। समाजवाद का आदर्श हर व्यक्ति से उसके योग्यतानुसार काम लेकर उसके आवश्यकतानुसार उपयोग की वस्तुओं का प्रबन्ध करना है। जब तक समाज का अस्तित्व मौजूद है, समाज के भीतर विभिन्न कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए श्रम विभाजन मौजूद रहेगा और फलस्वरूप अनेक पेशे भी मौजूद रहेंगे।

उन्होंने कहा कि समाजवादी जब वर्गों का उल्लेख करता है तो वह समाज में प्रचलित उन उत्पादन सम्बन्धों को ध्यान में रखता है, जिन पर समाज की आर्थिक प्रणाली आश्रित होती है। वर्ग या सामाजिक वर्ग उन व्यक्तियों का समूह है जो सामाजिक उत्पादन में एक प्रकार का कार्य करते हैं और उत्पादन के क्रम में लगे हुए दूसरे व्यक्तियों के साथ उनका सम्बन्ध भी एक ही सा होता है। यह एक-सा सम्बन्ध श्रम के साधनों के सम्बन्ध में भी लागू होता है। इससे हम यह भी समझ सकते हैं कि वितरण के क्षेत्र में एक वर्ग के सदस्यों की आमदनी भी प्रायः एक सरीखी होगी। पूँजीपतियों का भी एक वर्ग है। चाहे कपड़े के मिल के मालिक हों, चाहे खानों के मालिक हों अथवा हथियारों के कारखानों के मालिक हों, सभी उत्पादन के क्रम में एक-सा लाभ रखते हैं। ये सभी उत्पादन के साधनों के मालिक हैं, सभी मजदूरों की श्रम शक्ति खरीदकर उससे नफा कमाते हैं। उत्पादन के क्रम में लगे हुए दूसरे समूहों के साथ उनका सम्बन्ध एक-सा है।

अब तक का हर समाज उत्पादक सम्बन्धों के आधार पर कई वर्गों में बाँटा जा सकता है, किन्तु आधारभूत रूप से समाज में दो ही वर्ग पाये जाते हैं— एक तो वे लोग जिनका स्थान समाज में मालिकों का होता है और उत्पादन के साधनों पर जिनका एकाधिपत्य होता है, दूसरा वह वर्ग जिसका काम हुक्म बजा लाने का होता है, जो पहले वर्ग के लिए दास बनकर काम करता है और उसके द्वारा शोषित किया जाता है। ये दोनों वर्ग परस्पर एक दूसरे के परस्पर विरोधी होते हैं। दोनों आधारभूत वर्गों में सदा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में वर्ग-संघर्ष जारी रहता है। प्राचीन काल में दास और स्वतंत्र मालिक मध्य युग में सामन्तगण और कृषक दास और आज कल के पूँजीवादी समाज में पूँजीपति और मजदूर इसी प्रकार के आधारभूत वर्ग हैं। इन आधारभूत वर्गों के अतिरिक्त भी समाज में कई प्रकार के वर्ग पाये जाते हैं। परन्तु उन वर्गों का स्वार्थ अन्ततोगत्वा इन्हीं आधारभूत वर्गों में से किसी एक के साथ होता है। इसमें शक नहीं कि कुछ वर्ग ऐसे भी पाये जाते हैं जिनका स्वार्थ थोड़ा बहुत दोनों वर्गों के साथ होता है, परन्तु इन दो आधारभूत वर्गों से स्वतन्त्र इनका कोई अपना पृथक् स्वार्थ नहीं होता है।

उनका कहना था कि समाज की आदिम व्यवस्था में मानव समुदाय आर्थिक वर्गों में बँटा हुआ न था। मानव समुदाय के ऐतिहासिक विकास का सिंहावलोकन करते हुए हम देखते हैं कि आदिम समाज आर्थिक दृष्टि से पारस्परिक सहयोग के आधार पर संगठित था। यह वह जमाना था जबकि लोग प्रायः खानाबदोशों की जिन्दगी बिताते थे। जंगल के फल और जड़ी बूटियाँ बटोरकर चिड़ियों और जानवरों का शिकार करके और मछलियाँ पकड़कर अपनी जीविका चलाया करते थे। उस समय लोग जो कुछ इकट्ठा करके लाते थे वह किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति न होकर समुदाय की सम्पत्ति होती थी जिसे वे लोग आवश्यकतानुसार आपस में बाँट लेते थे। बाद में पशुओं को पालकर उनका दुग्ध और मांस भी भोजन के काम में लाते थे। जब तक आदमी खानाबदोशी की हालत में घूमता रहा और खेती करना सीखकर व्यवस्थित जीवन नहीं व्यतीत करने लगा तब तक वर्ग विभेद का भौतिक आधार पूर्ण रूप से नहीं तैयार हो पाया था। किन्तु धीरे-धीरे उत्पादन की शक्तियों का आगे विकास हुआ, जीवन की कठिनाईयों को सरल बनाने के प्रयत्न में मनुष्य ने खेती करना सीखा। खेतिहर बन जाने के बाद वह व्यवस्थित जिन्दगी बिताने लगा। अब खानाबदोशी की अवस्था में रहनेवाला वह ऐसा असहाय प्राणी नहीं रह गया जो पग-पग पर प्राकृतिक शक्तियों का शिकार बना रहता था। अब धीरे-धीरे वह प्रकृति के रहस्यों को जानने और उसके नियमों का पता लगाकर उसकी अथाह शक्तियों पर क्रमशः नियन्त्रण प्राप्त करने लगा। विज्ञान और कला का आरम्भ हुआ। आरम्भिक यन्त्रों का आविष्कार हुआ। यद्यपि सहयोग पर आधारभूत पुराने समाज के बहुत से रस्मों रिवाज अब भी कायम थे, पर बहुत सी बातों में तब्दीलियाँ भी हो गयी। कृषि और ऐसे औजारों के साथ जिन पर व्यक्ति अकेले ही काम कर सकता था, समाज के अन्दर श्रम का विभाजन भी बढ़ता गया। वस्तुओं का विनिमय भी आरम्भ हुआ। विनिमय के नये-नये साधनों की खोज हुई। पुरोहितों और योद्धाओं आदि की श्रेणियाँ बन गयी। अब आर्थिक सहयोग पर आधारभूत आदिम व्यवस्था की सामाजिक समानता का लोप होने लगता है। पहले की तरह जीवन-निर्वाह के साधनों को लोग अब सम्मिलित रूप से इकटठा नहीं करते थे, फलस्वरूप आर्थिक उपज पर सबका समान स्वामित्व जाता रहा था। अब समाज में गरीबों और अमीरों का भेद पैदा हो गया। जिन लोगों को समाज में मुखियों का पद मिल गया था, जो लोग बलवान थे और लड़ाई में गिरोहों के नेता बन सकते थे ऐसे लोग छल, बल, कौशल से समाज के मालिक बन बैठे।

उन्होंने कहा कि संसार के विभिन्न भागों में जिन आरम्भिक सभ्यताओं का उदय हुआ उन सभी में दासों और स्वामियों का वह वर्ग भेद पाया जाता है। प्राचीन काल में दासता की प्रथा के प्रचलन से ही स्वामी वर्ग के सुविधा प्राप्त सदस्यों को यह अवसर मिल सका था कि वे अपने को जीविका-निर्वाह के लिए आवश्यक दिन-रात के कठिन परिश्रम से मुक्त करके ज्ञान-विज्ञान और कला-कौशल

की उन्नति की ओर लगा सके । प्राचीन भारत में भी दासता की प्रथा विद्यमान रहने के प्रमाण मिलते हैं । सभ्यता के आरम्भिक विकास के लिए दासता की प्रथा एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी । उस युग में जब यंत्रों का आज की भाँति विकास नहीं हो पाया था, जब जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक कम से कम साधनों को जुटाने के लिए लोगों को दिन-रात जी-तोड़ मेहनत करनी पड़ती थी, उस समय कला-कौशल आदि की वृद्धि उसी हालत में हो सकती थी जबकि मनुष्यों के समूह को सांस्कृतिक विकास के लिए अवसर प्रदान किया जाता ।

धीरे-धीरे उत्पादक शक्तियों का विकास होता गया, दास प्रथा के जमाने में श्रम का जो विभाजन अस्तित्व में आया था यह और भी फैलता और जड़ पकड़ता गया । खेती और व्यापार की वृद्धि होती गयी । इन सबका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि दासता की प्रथा का भी स्वरूप बदला । अब वह सामन्तवादी युग आ जाता है । खेती की सारी जमीन पर इन्हीं मठाधीशों या सामन्त सरदारों का कब्जा हुआ करता था और किसानों का बहुसंख्यक समुदाय उनको अपना मालिक मानकर और बदले में उन्हें भूमि कर प्रदान करके जमीन को जोतता था । पुरानी दासता प्रथा जिसमें स्वामी अपने दास के शरीर और आत्मा का मालिक हुआ करता था अब मिट गयी और उसका स्थान कृषक दास ने लिया । कृषक दासता के अनुसार किसान की जमीन और किसान पर भी सिद्धान्ततः स्थानीय सामन्त का अधिकारी समझा जाता था । इन किसानों को सामन्त की जमीन पर बेगार भी करनी पड़ती थी । इस समय समाज में सामन्त और कृषक ये दो आधारभूत वर्ग थे ।

इसी जमाने में व्यापारियों का वर्ग भी बढ़ रहा था । इस समय तक वस्तुओं का विनिमय काफी मात्रा में होने लगा था । इस विनिमय के वर्तमान माध्यम, सिक्कों का भी प्रचार हो चला था । प्राचीनकाल में जबकि सिक्कों का प्रचलन न था और गाय, घोड़े आदि जानवर या कुछ कीमती वस्तुएँ विनिमय के माध्यम का काम करती थी तो उस हालत में व्यापार के फैलाव के लिए गुंजाइश बहुत कम थी । सिक्कों का चलन हो जाने के बाद से व्यापार तेजी से बढ़ चला । सामन्तशाही जमाने में उत्पत्ति व्यक्तिगत रूप से गृह उद्योग धन्धों के जरिये ही होती थी । छोटे-छोटे औद्योगिक केन्द्रों में फैले हुए अपनी-अपनी दुकान के अनेक मालिक होते थे । मालिकों को खुद भी पूरा परिश्रम करना पड़ता था । पर ज्यों-ज्यों व्यापार बढ़ता गया त्यों-त्यों औद्योगिक क्रान्ति के लिये पूर्वावस्था तैयार होती गयी । आरम्भ में बढ़ती हुई माँगों को पूरा करने के लिए कुछ मालिकों ने थोड़े मजदूरों से अपने घर पर मजदूरी पर काम लेना शुरू किया उस ढंग पर जिस ढंग पर आज बनारस के रेशम के व्यापार में बहुत से जुलाहे एक मालिक के कारखाने में इकट्‌ठा होकर काम करते हैं ।

उनका कहना था कि सामन्तवादी युग के बाद पूँजीवादी का जमाना आता है । उत्पादन की शक्तियों के आगे विकास के मार्ग में सामन्त शाही आर्थिक प्रणाली

में रुकावट हो चली थी। समाज में व्यापार बढ़ रहा था, पर सामन्तशाही ढाँचे में उसके फैलाव के लिए गुंजाइश बहुत कम थी। समूचे राष्ट्र छोटे-छोटे भूखण्डों में बँटे हुए थे, जिनका मालिक कोई सामन्त हुआ करता था। व्यापार के लिए आवश्यक कच्चे माल पर इन सामन्तों का अधिकार था। कारखानों में जाकर काम करने के लिए किसान स्वतन्त्र न थे क्योंकि वे कृषक दास होने के नाते अपने मालिकों के खेत पर बेगार करने के लिए बाध्य थे। जगह-जगह थोड़ी दूर पर व्यापारियों से उनके माल पर चुँगी वसूल की जाती थी। ऐसी हालत में व्यापार किस तरह पनप सकता था। कृषक दासता में भी फँसे होने के कारण किसानों का भी बुरा हाल था। एक बड़ी प्रजातांत्रिक क्रान्ति हुई जिसने समाज का ढाँचा ही बदल दिया क्रान्ति के परिणाम स्वरूप सामन्तवाद के स्थान पर पूँजीवाद की स्थापना हुई।

नये आर्थिक आधार और भारतीय समाज

आचार्य नरेन्द्र देव जी ने कहा कि पूँजीवादी आर्थिक प्राणाली की विशेषता यह है कि उत्पादन, विनिमय और वितरण के साधनों, पानी, जमीन, मिलों कारखानों, बैंकों आदि पर चन्द पूँजीपतियों का कब्जा हो जाता है और समाज का बहुसंख्यक वर्ग मजदूर बन जाता है। मजदूर वर्ग उत्पादन के साधनों से वंचित रहने के कारण उत्पादन के साधनों के मालिकों अर्थात् पूँजीपतियों के हाथ अपनी श्रम शक्ति बेचकर और बदले में मजदूरी प्राप्त कर जीवन निर्वाह करता है। गुलामी प्रथा के युग में जो स्थान मालिकों का था और सामन्तशाही प्रणाली में जो सामन्तों का था वही स्थान वर्तमान आर्थिक प्रणाली में पूँजीपतियों का हो जाता है।

आर्थिक उत्पादन की शक्तियों के विकास के साथ-साथ किस प्रकार समाज की आर्थिक प्रणालियाँ बदलती रही हैं और यह कि हर आर्थिक प्रणाली में अपरिवर्तित रूप से दो आधारभूत वर्ग यानी बुनियादी आर्थिक श्रेणियाँ मौजूद रही हैं। इन दोनों श्रेणियों के हित परस्पर एक दूसरे कि विरुद्ध रहे हैं और प्रभुत्वशील वर्ग दूसरे वर्ग को दास बनाकर, उसकी श्रम-शक्ति का शोषण करके, अपने लिए जीवन की सुविधाएँ प्राप्त करता रहा है। व्यक्तिगत सम्पत्ति का उदय होने पर पहले दासता प्रथा, फिर सामन्तशाही और अन्त में कृषक दास और पूँजीपति और मजदूर यह परस्पर विरोधी आधारभूत वर्ग पाये जाते हैं।

आचार्यजी के अनुसार जब कोई समाजवादी वर्ग रहित समाज की स्थापना करने की बात करता है तो उसका मतलब आर्थिक वर्गों से होता है। समाजवाद एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमें परस्पर विरोधी शोषक और शोषित आर्थिक वर्ग मिट जाए और समाज-सहयोग के आधार पर संगठित व्यक्तियों का सच्चा प्रजातन्त्र बने। जब तक समाज का ढाँचा इस प्रकार का बना रहेगा कि एक वर्ग दूसरे को दबाता रहेगा। तब तक सामूहिक रूप से समाज के सदस्यों की उन्नति नहीं हो सकती। समाजवादी समाज में जबकि राजसत्ता फिर शोषित

वर्गों के हाथ में आ जाती है और उत्पादन के साधनों पर सारे समाज का अधिकार हो जाता है मनुष्यों के शोषण का आर्थिक आधार ही खत्म हो जाता है। समाज के विकास में एक आर्थिक प्रणाली के बाद जो दूसरी आर्थिक प्रणालियाँ कायम हुई उनमें राजसत्ता वर्ग से निकलकर दूसरे नये वर्ग के हाथ में आती रही है, उत्पादन के साधनों पर विशेष वर्ग का अधिकार होता आया है। किन्तु समाजवादी प्रणाली में इसके विपरीत उत्पादन के साधनों पर समाज का ही अधिकार होता है और शोषक और शोषित दोनों ही वर्ग नष्ट हो जाते हैं।

आचार्यजी ने कहा कि वर्ग विहीन समाज स्थापित करने का लक्ष्य वर्ग-संघर्ष के साधनों को अपनाने से ही सिद्ध हो सकता है। आज समाज में शोषक और शोषित वर्गों के बीच जो संघर्ष चल रहा है उसमें हमारा फर्ज शोषित जनता में ऐसी चेतना पैदा करना है कि शोषित वर्गों की लड़ाई आर्थिक न रहकर राजनीतिक बन जाय। हमें शोषित वर्गों के सदस्यों के मन में यह बात बैठा देनी है कि जब तक समाज की प्रचलित व्यवस्था कायम है और उत्पादन के साधनों पर पूँजीपतियों का कब्जा है, तब तक उनकी हालत नहीं सुधर सकती।

शोषक वर्गों यानी जमींदार और पूँजीपति तथा शोषित वर्गों यानी किसान मजदूर और दूसरे सताये हुए तबकों के बीच संघर्ष तो आज भी जारी है। आज उनकी यह लड़ाई आर्थिक लड़ाई मात्र है। कारखानों के मजदूर बड़ी तादात में संगठित रूप में मालिकों से मोर्चा लेते हैं और अपनी इस लड़ाई में कुर्बानी भी बहुत करते हैं। लेकिन उनकी यह लड़ाई मजदूरी को बढ़ाने, काम के घण्टे घटाने, अपने साथियों पर किये अत्याचारों को दूर करने या इसी प्रकार की दूसरी शिकायतों को रफा कराने के लिए होती है। मजदूरों की यह सारी लड़ाई, वर्तमान व्यवस्था के भीतर केवल अधिकाधिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए ही होती है। मालिकों का कारखानों पर जो अधिकार है उसको वे चुनौती नहीं देते। हमें मजदूरों को समझाना है कि समाज के मौजूदा आर्थिक ढाँचे को कायम रखते हुए केवल छोटे-मोटे आधिकारों के लिए लड़ने से ही काम न चलेगा, बल्कि सारी मजदूर जमात को संगठित होकर एक ऐसी लड़ाई लड़नी पड़ेगी, जिसमें मौजूदा आर्थिक व्यवस्था का ही अन्त हो जाय और एक ऐसी नयी आर्थिक प्रणाली की स्थापना की जाय जिससे आज की तरह उत्पादन के साधनों पर किसी एक वर्ग विशेष का अधिकार न हो, बल्कि समूचे समाज का अधिकार हो।

उन्होंने कहा कि वर्ग-संघर्ष के द्वारा ही अब तक समाज तरक्की की एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर जाता रहा है। आर्थिक उत्पादन की प्रणाली अपने विकास के क्रम में एक ऐसी अवस्था को पहुँच जाती है कि उस ढाँचे के मातहत रहकर उत्पादन की शक्तियाँ आगे उन्नति नहीं कर सकतीं, उनका विकास रुकने लगता है— उत्पादन सम्बन्धों और उत्पादक शक्तियों का विरोध चरम सीमा पर पहुँच जाता है। उस समय उत्पादक शक्तियों के विकास के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पुराना आर्थिक ढाँचा नष्ट किया जाय और एक नयी आर्थिक

प्रणाली कायम की जाय जिसमें उत्पादक शक्तियों के ऊपर से वे बन्धन उड़ जाँय जो कि उसके विकास को रोकते रहे हैं। पुरानी आर्थिक प्रणाली का नाश करके उसके स्थान पर एक नयी आर्थिक प्रणाली कायम करना एक ऐसी घटना है जो कि मामूली सुधारवाद के रास्ते नहीं हो सकती। सुधारवाद के जरिये किसी ढाँचे को तभी तक बदला जा सकता है जब तक ढाँचे की बुनियाद को कायम रखते हुए उसमें ऊपरी तब्दीलियाँ की जाती हैं। जब ढाँचे में बुनियादी तब्दीली का सवाल उठता है तब वे स्थिर स्वार्थ वाले वर्ग जो यह देखते हैं कि उनकी सुविधाएँ बुनियादी तब्दीली की बदौलत खत्म होने वाली है, अपने प्राणों की बाजी लगाकर, अपनी सारी ताकत के साथ, इस प्रकार की तब्दीली की मुखालिफ्त करते हैं। फलस्वरूप समाज के ढाँचे में आधारभूत परिवर्तन की ऐतिहासिक आवश्यकता क्रान्ति के द्वारा ही पूर्ण होती है।

पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली का व्यापक प्रसार हो जाता है, हर समाज को प्रगति के नियमों का वैज्ञानिक विवेचन करनेवाली एक नयी विचारधारा का अर्थात् मार्क्सवाद का प्रादुर्भाव दीखता है। सामाजिक विकास की मीमांसा करते हुए पूँजीवादी उत्पादन-प्रणाली के विकास के नियमों का अध्ययन करके कार्ल मार्क्स ने यह बतलाया कि संसार का विकास समाजवाद की ओर हो रहा है और यह नयी स्थिति वर्ग संघर्ष के जरिये ही आयेगी। मार्क्स ने सामाजिक विकास के जो-जो नियम हमारे सामने रक्खे वे सब प्राचीन काल से ही समाज में काम करते चले आ रहे थे। समाज की आर्थिक रचना के अनुसार उसकी दूसरी विचार प्रणालियाँ बनती थी, प्रकृति की शक्तियों का नवीन ज्ञान होने पर और परिणामस्वरूप उत्पादक शक्तियों का स्वरूप बदलने पर, समाज का आर्थिक ढाँचा बदलता रहा है और उसके साथ ही समाज की रचना में सर्वांगीण परिवर्तन होता रहा है। यह परिवर्तन द्वन्द्वमान ढंग से वर्ग संघर्ष के जरिये होता रहा है। मार्क्स की विशेषता यह थी कि उसने, अपने साथी एंगेल्स की सहायता से वैज्ञानिक ढंग से इन नियमों की विवेचना करते हुए, उन्हें एक विचार-पद्धति में संग्रथित किया जिसे हृदयंगम करके हम समाज के भूत और वर्तमान के इतिहास को समझ सकते हैं और भविष्य के लिए अपना कर्त्तव्य निर्धारित कर सकते हैं।

मार्क्सवादी समाज-व्यवस्था का शास्त्रीय पक्ष तथा व्यावहारिकता

जब मार्क्स ने पहले पहल यह बतलाया था कि दुनिया समाजवाद की ओर जा रही है तो पूँजीवाद के समर्थक विद्वानों ने मार्क्स के विचारों का मजाक उड़ाया था, समाजवाद को स्वप्न मात्र बतलाया था। आज हम अपनी आँखों के आगे देख रहे हैं कि किस प्रकार यह स्वप्न प्रत्यक्ष हो रहा है और मार्क्स का भविष्य कथन सत्य सिद्ध हो रहा है। आज संसार के छठें भाग पर, रूस में, समाजवाद की विचारधारा के अनुसार व्यावहारिक रूप में समाज का संगठन हो रहा है। कई देशों में मजदूरो की पार्टियाँ ताकत में आ चुकी हैं। वर्ग संघर्ष ने

अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया है । प्रजातंत्रवादी देशों में धारा सभाओं की लड़ाई अब सीधे टोरी और लेबर पार्टी के बीच रह गयी है । बीच के लिबरल लोगों का प्रभाव घटता ही चला जा रहा है । शोषितवर्ग के सदस्य शोषकों के स्वार्थों की रक्षा के लिए बनायी गयी विचारधारा के प्रभाव से मुक्त हो रहे हैं ।

समाज की संरचना में आधारभूत परिवर्तन का मुख्य कारक

आचार्यजी ने कहा कि समाजवाद का आदर्श सर्वसाधारण में इतना जनप्रिय हो गया है कि उसके बड़े से बड़े विरोधी की भी यह हिम्मत नहीं पड़ती कि वह खुले आम समाजवाद का विरोध कर सके । इसके विपरीत, बड़े से बड़े प्रतिक्रियावादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी समाजवाद के नाम पर किया जाने लगा है । हिटलर भी जर्मन जनता पर अपना प्रभाव जमाये रखने के लिए अपने प्रतिगामी सिद्धान्तों का प्रचार "राष्ट्रीय समाजवाद" के नाम पर ही करता था । जब कोई भी विचार सर्वसाधारण के मन पर काबू कर लेता है और वह तभी काबू कर लेता है जबकि सार्वजनिक हित की दृष्टि से वह वांछनीय होता है तो उसके विरोधियों को उससे खुलेआम लड़ने की हिम्मत नहीं होती और खुली लड़ाई के बदले में छिपी लड़ाई का रास्ता अख्तियार करते हैं । आज हिन्दुस्तान में भी हम यही हालत देख सकते हैं । यहाँ भी भारतीय समाजवाद, वर्णाश्रम समाजवाद, मुस्लिम समाजवाद और वैदिक समाजवाद आदि तरह-तरह के समाजवादों का हवाला देकर यह कहा जाने लगा है कि मार्क्स और लेनिन द्वारा प्रतिपालित वैज्ञानिक समाजवाद विदेशी है और अपने देश में उसकी आवश्यकता नहीं ।

यह बात स्पष्ट हो जाती है कि किस प्रकार आर्थिक रचना में परिवर्तन होने के साथ समाज की समूची विचारधारा में परिवर्तन हो जाता है । इतिहास के किसी काल को भी लेकर उसका विश्लेषण करने पर हमें यही नियम काम करता हुआ दिखाई देगा । आजकल की अवस्था का विश्लेषण करके देखें तो हमें पता चलेगा कि उत्पादन की शक्तियों और उत्पादन की अवस्थाओं के बीच की असंगतियों के आत्यन्तिक रूप से बढ़ जाने के कारण पूँजीवादी आर्थिक रचना जर्जर हो रही है और परिणामस्वरूप वर्तमान पूँजीवादी सामाजिक भवन का ऊपरी ढाँचा भी जर्जर हो रहा है । साहित्य, दर्शन, अर्थशास्त्र, राजनीति किसी क्षेत्र को क्यों न ले, हम देखेंगे कि विकास की गति रुक गयी है और सभी क्षेत्रों में किंकर्त्तव्यविमूढ़ता का साम्राज्य हो रहा है । जब समाज की आधारभूत आर्थिक प्रणाली उन्नति करती रहती है तभी उसके साथ दूसरे विचार क्षेत्रों में भी उन्नति होती है और यह स्वाभाविक ही है कि जब आधार ही क्षीण और जर्जर हो जाय तो ऊपरी ढाँचा भी हिल जाय । राजनीति के क्षेत्र का विचार करने पर हम देखते हैं कि आज प्रजातन्त्र का ह्रास हो रहा है और उसके स्थान पर तानाशाही की वृद्धि हो रही है तथा संकुचित राष्ट्रीयता की भावना जोर पकड़ रही है ।

उन्होंने कहा कि समाज के आर्थिक ढाँचे की बुनियाद पर ही मनुष्य की अन्य सभी क्षेत्रों की प्रणाली का ढाँचा खड़ा होता है । किसी समय का साहित्य, धर्म, राजनीति, कानून और दर्शन आदि उस समय के समाज में प्रचलित आर्थिक ढाँचे के द्वारा निर्धारित होता है तो हमारा यह मतलब कदापि नहीं होता कि समाज का समूचा विकास पूर्ण रूप से उत्पादन सम्बन्धों पर ही निर्भर होता है और उस पर विचारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । किसी समय समाज में जो दर्शन, धर्म, कानून आदि प्रचलित है समाज के आगे के विकास में इन सबका भी काफी प्रभाव पड़ता है, किन्तु साधारणतया इनका प्रभाव आर्थिक परिस्थिति के प्रभाव के मुकाबले बहुत कम पड़ता है ।

किसी समाज की विचार प्रणालयों में अर्थात् प्रचलित दर्शन, धर्म, राजनीति आदि में उस समय आधारभूत परिवर्तन होता है जबकि समाज की आर्थिक रचना में आधारभूत परिवर्तन होता है । इसप्रकार जब एक विशेष प्रकार की विचार परम्परा जड़ पकड़ लेती है तो आगे समाज का जैसा विकास होता है उस पर छाप पड़ती उसकी ही है, किन्तु यह विशेष प्रकार की विचारपरम्परा प्रधानतः स्वयं एक विशेष प्रकार की आर्थिक रचना पर आश्रित होती है ।

'उनका कहना था कि आजकल तो आर्थिक तत्व का यह प्रभाव बहुत से पूँजीवादी विद्वान् भी बहुत अंशों तक मानने लगे हैं । पर मार्क्स के समय में लोग सामाजिक जीवन के विकास पर उसके आर्थिक जीवन का यह प्रभाव नहीं स्वीकार करते थे । उस समय के विद्वानों का यह ख्याल था और आजकल के भी अनेक विद्वानों का है कि समाज का विकास केवल मनोवैज्ञानिक तत्वों के आधार पर ही होता है । एक महापुरुष पैदा होता है, वह समाज के हितों को दृष्टि में रखते हुए कुछ सामाजिक सिद्धान्तों को प्रतिपादित करता है, जिसके पीछे लोग चलते हैं । समय की एक निश्चित अवधि बीत चुकने के उपरान्त कुछ दूसरे महापुरुष पैदा होते हैं और उनके द्वारा फिर नये सिद्धान्त सामने रखे जाते हैं, इस प्रकार के सिद्धान्तों का प्रचलन होने से ही समाजिक विकास होता है । जब नये महापुरुष पैदा होकर नये प्रकार के सिद्धान्त सामने रखते हैं तो इन नये सिद्धान्तों के आधार पर समाज का सारा ढाँचा जिसमें आर्थिक ढाँचा भी शामिल है फिर नये सिरे से संगठित होता है । इस प्रकार से समाज के विकास का क्रम चालू रहता है । मार्क्स ने बतलाया कि किसी विशेष परिस्थिति में विशेष प्रकार के नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले महापुरुष स्वयं बदली हुई परिस्थितियों के परिणाम होते हैं, और उनका सिद्धान्त भी समाज में इसलिए स्वीकार किया जाता है कि वह नयी परिस्थितियों के अनुकूल होता है ।

आचार्यजी ने कहा कि मार्क्सवाद के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (दार्शनिक पहलू) की जानकारी के बिना हम सामाजिक विकास के नियमों को उनके यथार्थ रूप में नहीं समझ सकते । द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, वह दार्शनिक प्रणाली है जो हमें उन आन्तरिक नियमों का ज्ञान कराती है जिनके अनुसार इस भौतिकजगत् का विकास

होता है, इस भौतिकजगत् के रहनेवाले प्राणियों का विकास होता है और उनके विचारों में रूपान्तर होता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद दृश्यजगत् की गति के नियमों की व्याख्या करता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार जगत् का जो कुछ व्यापार हमें इन्द्रियगोचर होता है वह किसी ऐसे स्वतन्त्र निरंकुश और अलौकिक चेतन सत्ता की लीला या माया नहीं है जिसके सहारे या जिनकी आज्ञा से प्रकृति अपनी सृष्टि रचती है। मार्क्सवाद के अनुसार इसके विपरीत भौतिक पदार्थ ही वह आदिम बीज सत्ता है जिसका रूपान्तर यह दृष्ट जगत् है। चेतना का जो स्वरूप हम देखते हैं वह भौतिक पदार्थ के रूपान्तरण के क्रम में ही एक अवस्था विशेष में पैदा होता है। मार्क्सवादी दर्शन जड़ और चेतना की पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र सत्ता द्वैतवाद नहीं मानता, वह बतलाता है कि आदिम अवस्था से अबतक पदार्थ का जो रूपान्तर हुआ है उसके क्रम से ही अवस्था विशेष में चेतना का प्रादुर्भाव होता है, अर्थात् चेतना विकासमान पदार्थ का एक गुण है।

भौतिकवाद के सिद्धान्त को मानने के कारण समाजवाद के विरुद्ध प्रायः यह आक्षेप किया जाता है कि समाजवाद केवल संकुचित आर्थिक दृष्टिकोण से ही सब प्रश्नों पर विचार करता है और इसलिए वह कोई ऐसे आदर्श समाज के सम्मुख उपस्थित नहीं करता जिनकी पूर्ति के लिए मनुष्य को आत्मत्याग करना पड़े। अज्ञानवश लोग समाजवाद पर यह लांछन लगाते हैं, किन्तु इस इल्जाम में सत्य का लवलेश भी नहीं है। प्रमुख समाजवादियों की जीवनी ही इस इल्जाम को झुठलाती है। वैज्ञानिक समाजवाद के जन्मदाता मार्क्स का जीवन-चरित्र जिन्होंने पढ़ा है वे इसे अच्छी तरह जानते हैं कि किस कष्ट से उसने अपनी जिन्दगी बसर की थी और आर्थिक कष्ट होते हुए भी उसने एक क्षण के लिए मानव समाज की सेवा के लक्ष्य को नहीं छोड़ा। उसकी जिन्दगी में ऐसे मौके अक्सर आये जब घर में खाने तक को न था, घर से बाहर निकलने के लिए कपड़े तक न थे और कर्ज के बोझ से वह पिसा जा रहा था। लेकिन वह सदा निश्चल भाव से अपनी साधना में लगा रहा और सख्त से सख्त मुसीबत में भी सिद्धान्तों पर अटल रहा। लोग कह सकते हैं कि अपनी खपत को पूरा करने के लिए कार्ल मार्क्स ने सब कष्ट सहे होंगे पर जिन सिद्धान्तों का उसने निरूपण किया है उनमें उच्च आदर्शों के लिए जगह नहीं है। आम तौर से यह समझा जाता है कि समाजवाद महज रोटी के सवाल को हल करने की कोशिश करता है और चूँकि वह इतिहास को वर्ग-संघर्ष की प्रक्रिया मात्र मानता है इसलिए उससे किसी ऊँचे आदर्श की आशा करना व्यर्थ है।

उन्होंने कहा कि आज प्रत्येक पूँजीवादी देश असाधारण संकट की अवस्था में है। यह अवस्था क्षणिक और सुस्थायी नहीं है। यह अवस्था पूँजीवाद के अन्त का आरम्भ घोषित करती है। इस बार संकट आर्थिक दायरे तक ही सीमित नहीं है। आर्थिक आधार के ह्रास के साथ-साथ पूँजीवाद की समग्र सामाजिक और आर्थिक पद्धति छिन्न-भिन्न होने लगती है। ह्रास के स्पष्ट चिन्ह और लक्षण

पूँजीवादी विचार-पद्धति के क्षेत्र में भी दीख पड़ते हैं। निराशा प्रतिगामी भाव, आदर्शवाद का प्रचलन, रहस्यवाद की पुनरुत्पत्ति, विज्ञान और वैज्ञानिक तरीकों का परित्याग और मध्य युग के पण्डित और टीकाकारों के तरीकों का फिर से प्रचार— यह सब बातें इस बात का सबूत है कि पूँजीवादी विचार-पद्धति के ध्वंस का क्रम असाधारण रीति से गहरा है। यदि पूँजीवादी राष्ट्रों के आर्थिक संकट ने उत्पादन को कई पीढ़ियों के पीछे फेंक दिया है तो पूँजीवादी विज्ञान पर आये संकट ने विज्ञान को कई पीढ़ियों के पीछे फेंक दिया है।

आचार्यजी ने कहा कि पूँजीवादी राष्ट्रों में पूँजीवादी पद्धति के ह्रास और ध्वंस के साथ-साथ पूँजीवादी इतिहास विज्ञान का भी बुरा हाल हो रहा है। व्यवस्था का सर्वथा अभाव और निराशा के भाव का प्राबल्य पाया जाता है। इतिहास के क्षेत्र में वैज्ञानिक रीति से खोज का काम करने वालों की संख्या घटती जाती है और प्रायः ऐसे लोग मौलिक अनुसंधान के कार्य को छोड़ते जाते हैं, इसीलिए नहीं की उनको अवकाश नहीं है, किन्तु इसलिए कि उनके लेख और ग्रन्थों के प्रकाशन की आशा नहीं है। धन की विशेष कमी है। जनता की अभिरुचि विकृत हो गयी है। व्यापार की मनोवृत्ति यहाँ भी काम करती है। मार्क्स ने अपंने पुरोधा पूँजीवादी वैज्ञानिकों से बहुत कुछ सीखा था। अपनी पूर्ण पद्धति का निर्माण करने में मार्क्स ने पूँजीवादी विद्वानों की प्रणालियों के स्वास्थ्यकर, जीवन प्रद और क्रान्तिकारी तत्वों को सर्वहारा मजदूर की विचार-पद्धति में परिवर्तन कर पूँजीवादी पद्धति का विरोध करने के लिए एक तीक्ष्ण शस्त्र का निर्माण किया। मार्क्सवाद के कतिपय मौलिक सत्यों की घोषणा मार्क्स ने पहले पहल नहीं की थी, किन्तु पूँजीवादी वैज्ञानिकों ने सर्वप्रथम उनकी सत्यता स्वीकार की थी सार्वभौमिक दृष्टि का भौतिक आधार वर्ग और वर्ग-संघर्ष द्वन्द्ववाद आदि सिद्धान्तों का निरूपण पहले ही हो चुका था।

क्रान्ति के जमाने में इन विचारकों ने समाज तथा सामाजिक विकास के सम्बन्ध में अपने विचारों को स्पष्ट और विशद कर पाया था। इसके विपरीत १७वीं शताब्दी की विचारधारा प्राकृतिक विज्ञान के रंग में रंगी हुई थी। नये युग के आर्थिक विकास का तकाजा था कि प्राकृतिक विज्ञान का विकास हो, क्योंकि पूँजीवादी उत्पादन प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग किये बिना सम्भव न था। प्राचीन युग की विचारधारा की विशेषता उनका दार्शनिक दृष्टिकोण था। मध्य युग पण्डितों और टीकाकारों का युग था जो प्राचीन ग्रन्थों का भाष्य करने में अपने कृतकृत्य मानते थे। इन सबसे भिन्न नवीन युग के पूँजीपतियों का दृष्टिकोण व्यावहारिक था।

समाजवाद का सांस्कृतिक स्वरूप

आचार्य नरेन्द्र देव जी समाजवाद के सांस्कृतिक स्वरूप को बताते हुए कहते हैं कि नैतिक तथा आध्यात्मिक विशिष्टता प्राप्त करने का प्रयत्न करना वर्ग-

संघर्ष का अविच्छेद्य अंग है । इस पर समाजवाद के प्रमुख नेताओं ने निरन्तर जोर दिया है । मार्क्स ने लिखा कि मजदूरों के लिए मजदूरी में वृद्धि होना उतना आवश्यक नहीं है जितना कि वर्ग संगठन, एकता तथा अपने उद्देश्यों के लिए त्याग आवश्यक है । रोजा लक्समबर्ग ने एक अवसर पर कहा था कि समाजवाद रोटी मक्खन का सवाल नहीं है किन्तु एक विश्वव्यापी सांस्कृतिक आन्दोलन है । यदि मजदूर वर्ग को इतिहास ने समाजवाद का उपकरण बनाया है, यदि समाजवाद की स्थापना करना उसका इतिहास निर्दिष्ट काम है तो इसमें सन्देह नहीं कि मजदूर वर्ग को बौद्धिक तथा नैतिक दृष्टि ही इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए अपने को तैयार करना होगा । यदि यह सत्य है कि पूँजीवाद और विज्ञान उन अवस्थाओं को उत्पन्न करता है जो समाजवाद की स्थापना को सम्भव बनायेगी तो यह भी कुछ कम सत्य नहीं है कि मजदूर वर्ग को इस कार्य के लिए एक उपयुक्त साधन बनना होगा । यह कार्य बिना शिक्षा-दीक्षा के नहीं हो सकता । नया समाज वर्ग विहीन होगा और उसका आधार सच्ची स्वतन्त्रता, समानता, समाज के न्याय और भ्रातृत्व है । यह कितना ऊँचा आदर्श है, यह एक नवीन संस्कृति को जन्म देगा । जब तक मजदूर वर्ग उस संस्कृति को आत्मसात नहीं कर लेता जिसकी सृष्टि मध्यम वर्ग ने की है तथा उसकी कमियों को दूर कर विश्व-कुटुम्ब के आधार पर नये समाज का संगठन नहीं करता, तब तक समाजवाद की स्थापना सम्भव नहीं है । समाज के परिवर्तन में मानव का ऊँचा स्थान है । नये समाज के लिए नया मानव चाहिए । उसको चरित्र-बल और ज्ञान-बल दोनों चाहिए । यदि सच्चे समाजवाद की स्थापना में विलम्ब हो रहा है या उसका विकृत रूप पाया जाता है तो उसका एक कारण यह भी है कि मजदूर वर्ग की बौद्धिक और नैतिक शिक्षा नहीं हो रही है । मध्यम वर्ग के पास धन और ज्ञान दोनों था, इसलिए उसे सामन्तशाही का अन्त करने में अधिक समय नहीं लगा । किन्तु मजदूर वर्ग दरिद्र और अपढ़ होता है, इसलिए नवीन संस्कृति का प्रेरक और संस्थापक बनना उसके लिए एक दुष्कर कार्य है । इसमें बहुत समय लगता है । इस कमी के कारर्ण उसको बुद्धिजीवी वर्ग दो भागों में बाँट जाता है । एक भाग पूँजीवाद का समर्थक होता है, दूसरा भाग अपने वर्ग की विशेषता को खोकर मजदूरों से अपना तादात्म्य स्थापित कर उनका नेतृत्व ग्रहण करता है । इसलिए किसी पिछड़े हुए देश में समाजवादी पार्टी को बुद्धिजीवी वर्ग की सहायता विशेष रूप से अपेक्षित होती है । ऐसे देशों में समाजवादी पार्टी इस वर्ग की उपेक्षा नहीं कर सकती क्योंकि उनकी सहायता के बिना मजदूर वर्ग पंगु बन जाता। ८ । ।-. ५ इसमें एक खतरा भी है । बुद्धिजीवी वर्ग मजदूरों को बहका भी सकता है । यदि नेता अवसरवादी हुए तो आदर्श भ्रष्ट हो जाता है और समाजवाद का लक्ष्य तिरोहित होने लगता है । इस अवस्था में भी मजदूरों की सांस्कृतिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है ।

समाजवाद की लड़ाई मजदूर वर्ग के नैतिक उत्कर्ष की अपेक्षा करती है। यदि हम नैतिक आधार पर पूँजीवाद को घृणित बताते हैं तो हमको एक नैतिक स्तर पर समाज को एक नवीन दृष्टि देनी चाहिए।

वस्तु स्थिति यह है कि समाजवाद का अर्थ केवल उत्पादन के साधनों का समाजीकरण नहीं है किन्तु अपने जीवन का भी समाजीकरण है। एक समाजवादी केवल अपने और अपने कुटुम्ब के लिए नहीं जीता है किन्तु सबल समाज के लिए जीता है। उसका हृदय और विशाल होता है और मानवीय पीड़ा का वह वैसे ही हिसाब रखता है जैसे भूकम्प मापक यंत्र मृदु से मृदु कम्पन का।

समाजवाद में सदा नैतिक अंश की प्रधानता रही है। मार्क्स का दर्शन और अर्थशास्त्र पण्डितों के लिए है। उसका अपना महत्व है, इसमें सन्देह नहीं। उससे नेतृत्व वर्ग में दृढ़ता आती है और समाजवाद की सफलता में अटल विश्वास उत्पन्न होता है। उसकी सहायता से वस्तुस्थिति का ज्ञान होता है और मार्ग पर प्रकाश पड़ता है। किन्तु साधारण जन उसके आदर्शों से प्रभावित होकर उसकी ओर आकृष्ट होता है, मानव का शोषण और उत्पीड़न शोषित के साथ सहानुभूति उत्पन्न करता है और समानता की भावना जो प्रत्येक मानव हृदय में पायी जाती है और समानता तथा स्वतन्त्रता के लिए आत्मत्याग करने के लिए साधारण जन को तैयार करती है। क्षुद्र से क्षुद्र मनुष्य इस नवीन बल से बलिदान होकर शक्तिशाली राज्य की नींव को हिलाने के लिए बड़े से बड़ा बलिदान देने को तैयार हो जाता है।

यह नैतिक बल महान् भय से रक्षा करता है। यह एक कवच की तरह काम करता है जो राज्य शक्ति के प्राप्त होने पर शासक वर्ग को राज्य सत्ता के भेद से दूर रखता है। आज के युग में शक्ति की पूजा बहुत बढ़ गयी है और अधिकतर लोलुपता के कारण शासक वर्ग में परस्पर का विद्वेष, वैमनस्य और संघर्ष पाया जाता है। इसके फलस्वरूप जीवन के सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्य भी नष्ट हो गये हैं। किन्तु पहले ऐसी बात न थी जो लोग एक नये आन्दोलन की सृष्टि करते हैं उनमें आदर्शवादिता अधिक मात्रा में पायी जाती है। किन्तु जब आन्दोलन को सफलता मिलने लगती है और उसके फल चखने का अवसर आता है तब परस्पर की कलह और प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती है। शक्ति और अधिकार के लिए होड़ लग जाती है। सच्चे समाजवाद की स्थापना ऐसे लोगों के द्वारा नहीं हो सकती। किसी भी समाज के जीवन में ऐसे अवसर आते रहते हैं जब समाज का एक भाग व्यक्तिगत क्षुद्रता से ऊपर उठ जाता है, जब उसमें किसी आदर्श या लक्ष्य के लिए जीवन अर्पण करने तथा बड़े से बड़ा त्याग करने की भावना प्रबल होती है। समाज के इतिहास में यही उज्ज्वल युग होते हैं। उस समय समाज का वातावरण एक नवीन उत्साह, एक नवीन विचार और कल्पना से ओत-प्रोत होता है। उस समय सबको ऊपर उठने का अवसर मिलता है। समाज एक ऊँचे स्तर में प्रवेश करता है और एक नये युग के प्रवर्तक आगे आते हैं।

नवयुवक इस वातावरण से विशेष रूपसे प्रभावित होते हैं। नये स्वप्न, नई कल्पनाएँ नवयुवकों को आकृष्ट करती हैं। नये विचारों की चर्चा हर जगह होती है। ज्ञानोपार्जन की उत्सुकता बढ़ जाती है और प्रत्येक युग अपना साहित्य प्रस्तुत करता है। समुद्र में जब ज्वार भाटा आता है तब वह उल्लोड़ित होता है, उसमें तरंगे उठती हैं और उसका जल मानो चन्द्रमा को छूने के लिए विकल हो उठता है। उसी प्रकार क्रान्ति के युग में मानव हृदय में उद्वेग उत्पन्न होता है, यह अपनी क्षुद्र सीमा का अतिक्रमण कर सफल समाज को व्याप्त करना चाहता है और अगाध समुद्र की तरह असीम होना चाहता है।

अधिनायकत्व ने जीवन के सब मूल्यों को विनष्ट कर दिया। वह समाजवाद भी, जिसकी आधारशिला नैतिकता थी, अब नैतिक जीवन का मजाक उड़ाने लगा। साधन की पवित्रता कोई बात ही नहीं रही। साध्य ही सब कुछ है। उसके लिए सब साधनों का उपयोग किया जा सकता है। यदि साध्य की प्राप्ति होती है तो मानना पड़ेगा कि साधन ठीक है। किन्तु लोग यह भूल गये कि इसका क्या ठीक है कि कब साध्य की प्राप्ति होगी। साध्य की प्राप्ति में कभी-कभी सदियाँ गुजर जाती हैं। नैतिकता के इस ह्रास के कारण समाजवाद का विकृत रूप हो गया व राजनीति शक्ति पाने का अखाड़ा मात्र बन गयी। झूठ के प्रचार के लिए एक प्रचण्ड अस्त्र का निर्माण किया गया।

निष्कर्ष

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में बदलाव की बात तो सभी दलों के राजनेता कहते थे लेकिन जितनी स्पष्टता से आचार्य नरेन्द्र देव जी ने इसकी व्याख्या की है वह अत्यन्त दुर्लभ है। इतना ही कह देने से कि वे समाजवादी थे उनके विचार पूरी तरह व्यक्त नहीं हो सकते। उनके भारतीय समाजवाद में पाश्चात्य समाजवाद की तुलना में न केवल कुछ प्राथमिकताएँ बदली हुई थी बल्कि मानवीयता और समग्रता के प्रश्न पर वे मार्क्सवादी चिन्तकों से बिल्कुल अलग खड़े होते थे। वर्गहीन समाज उनका लक्ष्य था लेकिन इस देश की लम्बी परम्परा से प्राप्त बहुत सारे रचनात्मक अनुभवों से भी वे लाभान्वित होना चाहते थे। वर्गहीन समाज से पहले उनकी चिन्ता का विषय वर्णहीन समाज से था जो भारत की अपनी प्रमुख समस्या थी।

●

तृतीय अध्याय

समाज व्यवस्था में शिक्षा एवं संस्कृति

समाजवादी विचारक, अध्येता और बहुभाषाविद् होने के साथ-साथ आचार्य नरेन्द्र देव जी प्रतिभाशाली शिक्षाशास्त्री भी थे। राजनीति में संलग्न रहते हुए भी अध्ययन में उनकी विशेष अभिरुचि थी। व्यक्ति के जीवनोत्कर्ष एवम् राष्ट्र के उत्थान के लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था को वे अनिवार्य मानते थे। शिक्षा सम्बन्धी उनका दृष्टिकोण व्यापक और उदार था। आचार्य नरेन्द्र देव जी के अनुसार अध्ययन तथा शिक्षा सुधार कार्यों का मूल मंत्र राष्ट्रीय एकीकरण एवम् राष्ट्रहित की अभिवृद्धि, छात्रों में प्रगतिशील लोकतांत्रिक आचरण तथा व्यापक मानवीय दृष्टिकोण का निर्माण और उनमें चिन्तन की क्षमता एवम् कल्याणकारी कार्यों में समुचित योगदान की शक्ति की वृद्धि करना ही था।

सन् १९२१ ई० में काशी विद्यापीठ में उन्होंने अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। २८ मार्च १९३८ ई० को संयुक्त प्रान्त की सरकार ने शिक्षा के लिए दो समितियाँ गठित की। नरेन्द्र देव जी माध्यमिक शिक्षा समिति के अध्यक्ष हुए। १३ अप्रैल, १९३८ ई० को सरकार ने घोषित किया कि ये दोनों समितियाँ एक संयुक्त समिति की उपसमितियों की हैसियत से काम करेंगी। ३ फरवरी, १९३९ ई० को इस समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी। आचार्य नरेन्द्र देव जी ने इस समिति का कार्य सम्पन्न किया। मई सन् १९४८ ई० को शिक्षामंत्री डॉ० सम्पूर्णानन्दजी की अध्यक्षता में लखनऊ, इलाहाबाद और आगरा विश्वविद्यालयों के कार्यों की जाँच के लिए एक दूसरी समिति बनायी गयी। आगे चलकर समिति को दो उपसमितियों में बाँट दिया गया। एक उपसमिति के सुपुर्द इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कार्यों की जाँच थी और उसके अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्र देव हुए। आगरा विश्वविद्यालय के कार्यों की जाँच एक दूसरी उपसमिति को सौंपी गयी। उसमें यह निश्चय हुआ कि शिक्षामंत्री की अनुपस्थिति में आचार्यजी ही संयुक्त समिति की अध्यक्षता करेंगे। नवम्बर १९३९ ई० में युद्ध में सहयोग के प्रश्न पर प्रान्तीय मंत्रिमण्डल का इस्तीफा दिये जाने के कारण कमेटी के कार्य में विघ्न पैदा हो गया। कमेटी के अध्यक्ष सम्पूर्णानन्दजी ने २५ नवम्बर, १९३९ ई० को बैठक बुलाने को लिखा। सम्पूर्णानन्दजी का वह पत्र पाते ही वह कमेटी समाप्त कर दी गयी। १९५१ ई० में कांग्रेस सरकार ने माध्यमिक शिक्षा की प्रगति के सम्बन्ध में जाँच के लिए आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा समिति नियुक्त की। इस कमेटी ने पिछले १० वर्षों की गतिविधियों की जाँच करके शैक्षिक

पाठ्यक्रम में कई संशोधनों की सिफारिश की। इन्हीं दिनों नरेन्द्र देव जी ने लिपि सुधार समिति और संस्कृति शिक्षा सुधार समिति की अध्यक्षता के उत्तरदायित्वों का निर्वहन किया।

आचार्य नरेन्द्र देव जी ने सन् १९४७ ई० में आगरा विश्वविद्यालय और सन् १९४६ ई० में लखनऊ विश्वविद्यालय में उपाधि वितरण के अवसरों पर भाषण दिये। सन् १९४८ ई० में देहली में युनिवर्सिटी टीचर्स कान्फरेन्स में तथा सन् १९५१ ई० में बम्बई में अखिल भारतीय टीचर्स कान्फ्रेन्स में उन्होंने अध्यक्षीय भाषण दिये। इन भाषणों में उन्होंने बहुत ही संतप्त हृदय से देश की दर्दनाक स्थिति का विश्लेषण करते हुए शिक्षा को अधिक समाजोपयोगी बनाने का आग्रह किया था। अध्यापकों के मान और हित की रक्षा और अभिवृद्धि पर अधिकारियों का ध्यान आकृष्ट किया तथा उनके कर्त्तव्यों की ओर विद्यार्थियों और शिक्षकों का ध्यान दिलाया। उन्होंने कहा कि हमें "बुद्धिमत्ता और साहस" के साथ तथा "दृढ़ता पूर्वक" राष्ट्रीय ध्येय निश्चित करना होगा, "आधारभूत जीवन दर्शन में क्रान्तिकारी परिवर्तन" करना होगा, परिवर्तनशील जगत् की आवश्यकता पूरी करने के लिये शिक्षा को कल्याणात्मक बनाना होगा, उसमें आधुनिक समाज की आवश्यकताओं तथा आकाँक्षाओं पर शेष विश्व की दृष्टि से विचार करना होगा, विश्वविद्यालयों को रचनात्मक विचारों और भावनाओं का केन्द्र बनाना होगा, नैतिक मूल्यों को प्रकाश में लाना होगा तथा विद्यार्थी समाज में जनतान्त्रिक विचारों और भावनाओं का प्रसार करते डुए उनके जीवन को ज़नतान्त्रिक शील और उत्तरदायित्व की भावना से अनुप्राणित करना होगा।

३१ जनवरी सन् १९४९ ई० को नरेन्द्र देव जी ने गांधीजी और गणेश शंकर विद्यार्थी के सम्बन्ध में आकाशवाणी से एक महत्त्वपूर्ण वार्ता प्रसारित की। अपनी इस वार्ता में आचार्यजी ने बताया कि गांधीजी अंग्रेजी के बजाय भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे और मानसिक एवं शारीरिक शक्तियों तथा भावनाओं का समुचित विकास ही शिक्षा का लक्ष्य समझते थे। गांधीजी के विचार में जो शिक्षा चरित्रनिर्माण की उपेक्षा कर एकमात्र पाठ्य पुस्तकों के अध्ययन अध्यापन पर ही जोर देती है वह बिल्कुल तत्त्वहीन है। गांधीजी तो यह चाहते थे कि देश के नवयुवक सचरित्र, उदार, करुण और समाजसेवी बनें, संयत जीवन व्यतीत करें, जनता की दशा की समुचित जानकारी प्राप्त कर रचनात्मक कार्यों में जुट जायँ तथा दीन-हीन की सेवा में अपना जीवन अर्पण कर दें। विद्यार्थियों को गांधीजी का यही उपदेश था कि वे डटकर समाजसुधार का काम करें, छुट्टियों में ग्रामसेवा तथा अन्य रचनात्मक कार्य करें। अन्त में नरेन्द्र देव जी ने कहा कि गाँवों की दशा सुधारने के लिये बड़ी निष्ठा के साथ सतत् प्रयत्न करने की जरूरत है। देश के ऐसे निष्ठावान कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता है जो किसी पुरस्कार की आशा के बिना अपने जीवन को जनता की सेवा में लगा देने को तैयार हों।

लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति रहने के बाद जब आचार्यजी काशी

हिन्दू विश्वविद्यालय (बी०एच०यू०) के कुलपति हुए उस समय उन्हें विश्वविद्यालय के करीब-करीब सभी प्रोफेसरों की सद्भावना प्राप्त थी। किन्तु बाद में एक-एक कर लोग उनके विरुद्ध होते चले गये। मामला यहाँ तक बढ़ा कि श्री कृष्णदेव गौड़ ने एक ऐसे प्रस्ताव की नोटिस दी जिसका आशय आचार्यजी की क्षमता और न्यायप्रियता पर सन्देह प्रकट करना था। नोटिस में कहा गया था कि "विश्वविद्यालय कोर्ट की दृष्टि में आचार्य नरेन्द्र देव जैसे ख्यातिनामा कुलपति के होते हुए भी गत कई वर्षों से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कार्य में कोई प्रगति नहीं हो सकी है। जो चक्र जहाँ था वह वहीं है। अतः यह कोर्ट भारत सरकार से अनुरोध करती है कि वह भविष्य में कुलपति के निर्वाचन में इस बात का ध्यान रखे कि कुलपति पूर्ण स्वस्थ, कुशल, न्यायप्रिय तथा ऐसे व्यक्ति हों जो विश्वविद्यालय की व्यवस्था में पूरा समय लगा सके।"

उपर्युक्त प्रस्ताव पर अपना विचार प्रकट करते हुए आचार्यजी ने कहा था कि उक्त प्रस्ताव यह साफ जाहिर करता है कि वे मेरे प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पास करना चाहते हैं और भारत सरकार से प्रार्थना करना चाहते हैं कि भविष्य में जो वाइस चांसलर हो वह पूर्ण स्वस्थ, न्यायप्रिय तथा ऐसा व्यक्ति हो जो विश्वविद्यालय की व्यवस्था में समय लगा सके। इसके पूर्व ही आचार्यजी ने ११ नवम्बर को त्यागपत्र दे दिया था। अपने वक्तव्य के बाद आचार्य नरेन्द्र देव कोर्ट की अध्यक्षता का भार प्रो० नारलीकर को सौंप कर चले गये। युनिवर्सिटी कोर्ट ने उसके बाद दो-चार सदस्यों के बाहर चले जाने पर भी सर्वसम्मति से निम्न प्रस्ताव पारित किया।

"कोर्ट की यह मीटिंग आचार्य नरेन्द्र देव जी जैसे ख्यातिनामा वाइस चांसलर के प्रति अपना आभार प्रकट करती है जिसके कुशल नेतृत्व में इस विश्वविद्यालय ने सभी क्षेत्रों में प्रगति की है और उसके यश की वृद्धि हुई है। अल्प अवधि में ही उन्होंने विश्वविद्यालय की जो सेवा की है वह सर्वथा सराहनीय है और सन्तोषप्रद है। विश्वविद्यालय की आर्थिक सुदृढ़ता, निर्धन व पीड़ित छात्रों की सहायता, अध्यापकों व कर्मचारियों के मान तथा हितों की रक्षा और शान्ति व अनुशासन की वृद्धि इसके प्रमाण हैं। अतएव यह कोर्ट आचार्यजी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है और विजिटर से अनुरोध करती है कि वह ऐसी व्यवस्था करें कि जिससे यह विश्वविद्यालय आचार्य नरेन्द्र देव जैसे शिष्ट, न्यायप्रिय, जनप्रिय तथा कुशल कुलपति के नेतृत्व में अपने उद्देश्यों और आदर्शों की पूर्ति करता रहे।"

आचार्य नरेन्द्र देव की पहली विदेश यात्रा फरवरी १९५० ई० में एक गैर सरकारी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के निमन्त्रण पर हुई। इस सिलसिले में एक सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए वह थाईलैण्ड गये। लौटते समय वह कुछ दिन रंगून में ठहरे। यहाँ उन्होंने बर्मा की परिस्थिति का अध्ययन किया। यात्रा के दौरान उन्होंने स्याम में प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रभाव पर एक लेख तैयार किया।

अप्रैल १९५२ ई० में श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित के नेतृत्व में भारत सरकार ने एक सद्भावना मण्डल चीन भेजा, इसमें आचार्यजी के साथ जानेवाले अन्य प्रमुख लोगों में एम० चलपति राव, अमरनाथ झा, फ्रैंक मोरेस, भगवन्तम् और श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख आदि थे। ये लोग चीन में छः सप्ताह रहे। इस दौरे में आचार्यजी का स्वास्थ्य कभी-कभी बिगड़ जाता था, पर वह जिस कार्यक्रम में शामिल होते थे, उसमें बड़े उल्लास से योगदान देते थे। ४ मई, सन् १९५२ ई० को नरेन्द्र देव जी ने बीजिंग विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को १५ मिनट हिन्दी में सम्बोधित किया। छः मई को नरेन्द्र देव जी ने चीन में जनता का राष्ट्रीय विश्वविद्यालय देखा। यह विश्वविद्यालय पार्टी के कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के लिए तथा उनके सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा करने के लिए स्थापित किया गया था।

शिक्षा में परम्परा एवं आस्था का महत्त्व

आचार्यजी के विचारानुसार सामान्यतः उन समाजों में, जहाँ स्थिरता आ गयी है और जहाँ विकास की गति अत्यन्त मंद है, वृद्धों की प्रतिष्ठा सर्वाधिक होती है। ऐसे समाज में नेतृत्व की डोर वृद्धों के हाथ में होती है और उनका अनुभव ही समाज का मुख्य आधार होता है।

उदाहरणार्थ भारत एवम् चीन के समाज। हमारे पूर्वजों के अनुसार वह सभा ही नहीं है जहाँ वृद्ध उपस्थित न हों। ऐसे समाज की शिक्षाप्रणाली में लोक परम्परा का अत्यधिक महत्त्व होता है। वहाँ शिक्षा के नूतन प्रकारों की परख का प्रश्न ही नहीं उठता जिसका इतिहास जिसकी संस्कृति प्राचीन है, उनकी यही कथा है। जब तक समाज के आर्थिक ढाँचे में क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं होता और जब तक समाज के आधारभूत मौलिक सिद्धान्तों के परिवर्तन का प्रश्न नहीं उठता, तब तक यही अवस्था बनी रहती है। किन्तु जब समाज की ऐसी अवस्था हो जाती है कि उसे जीवित रहने के लिये अपनी पुरानी प्रणाली में परिवर्तन करने को मजबूर होना पड़ता है, तब उसके आध्यात्मिक एवम् सामाजिक मूल्य भी परिवर्तित होने लगते हैं। नवीन समाज बिना नवयुवकों के प्रतिष्ठित नहीं हो पाता तथा नवीन पीढ़ी ही नवयुग की आरम्भक होती है। इसका कारण यह है कि युवकों में साहस, शौर्य, तेज और त्याग की भावना अत्यंत बलवती होती है। नवयुवक तभी विश्व के कीचड़ से विमुक्त होता है, अतः वह वस्तुस्थिति की उपेक्षा करके आदर्श के लिए आत्मोत्सर्ग को भी प्रस्तुत हो जाती है। इसका एक कारण उसके किसी इस प्रकार के दृष्टिकोण का निर्मित न हो पाना भी है, जो उसे समाज की नूतन आवश्यकताओं को समझने में रुकावट डाले। इसके विपरीत इन आवश्यकताओं का उसे विशेष अनुभव होता है। अतीत से सम्बद्धता, अनुभवों को त्यागने में युवा वर्ग को यह कठिनाई नहीं होती, जो वृद्धों को होती है।

आचार्य नरेन्द्र देव जी का विचार था कि राष्ट्र के नवयुवकों को जीवन के लिए तैयार करना ही शिक्षा का उद्देश्य है। लेकिन चूँकि जीवन-पथ में जीवन

स्थितियाँ उत्पन्न होती रहती है, इसलिये जीवन का स्थिर विचार शिक्षा का आधार नहीं हो सकता। बदलने वाले संसार की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये शिक्षा को गतिशील होना पड़ता है। उसे वर्तमान समाज की प्रेरणाओं और आवश्यकताओं को ध्यान में रखना होता है, उसे अपनी विशिष्ट समस्याओं को शेष संसार की पृष्ठभूमि में देखना पड़ता है और उसे आधुनिक संसार की प्रगति के लिये आवश्यक जीवन मूल्यों को अपनाना और विद्यार्थियों में उसका प्रसार करना होता है। आचार्यजी का कहना था कि अगर शिक्षा को अपना कार्य ठीक तौर पर करना है तो उसको हमें नये समाज का निर्माण करने और दूसरे राष्ट्रों के साथ सौहार्द्र पूर्वक रहने के योग्य बनाना है। योग्य पुरुष पैदा करना ही काफी नहीं है, हमें तो ऐसे-ऐसे उत्तम नागरिक भी पैदा करने हैं जिनकी नागरिक-भावना और सामाजिक-आदर्श ऊँचे हों, जो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और समझदारी में विश्वास करते हों और जो जीवन के लोकतांत्रिक आदर्श पर पूरी आस्था रखते हों। लोकतांत्रिक चरित्र और जीवन का पूर्ण विकास ही उनकी शिक्षा-पद्धति का मूल सामाजिक आदर्श था। लोकतन्त्र, स्वतन्त्रता उत्तरदायित्व और सहकारिता की समुचित शिक्षा ही उनकी दृष्टि में भारतीय शिक्षा के प्रमुख सामाजिक आदर्श हो सकते हैं। उनकी धारणा थी कि नवयुवकों में लोकतांत्रिक सिद्धान्तों और परम्पराओं के प्रति दृढ़ आस्था जागृत करके, उनके जीवन को लोकतांत्रिक आदर्शों से अनुप्राणित करके और उनमें लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व को वहन करने की क्षमता पैदा करके ही भारतीय लोकतन्त्र को सरल और स्वस्थ बनाया जा सकता है। स्वस्थ लोकतांत्रिक भावना, चरित्र और व्यवहार ही लोकतन्त्र के मूल आधार हैं। इनकी मजबूत बुनियादों पर ही भारतीय लोकतन्त्र का निर्माण सम्भव है। लोकतन्त्र की पुष्टि और प्रगति भारतीय शिक्षा का पुनीत कर्त्तव्य है।

आचार्य नरेन्द्र देव अनुशासन को शिक्षा का प्राण समझते थे पर उनका विचार था कि प्राचीन अनुशासन पद्धति आधुनिक लोकतंत्रीय युग के अनुरूप नहीं है। दमन पर आधारित अनुशासन पद्धति के स्थान पर ऐसे अनुशासन की आवश्यकता है जो भय के स्थान पर आत्मसंयम के लिये प्रेरित करें। विद्यार्थियों को ऐसे अवसर विद्यालय में प्रदान किये जायें जहाँ वे स्वयम् अनुशासन की समस्याओं का समाधान ढूँढे। अनुशासन की समुचित व्यवस्था बनाए रखना संस्था के अध्यक्ष का सामाजिक कर्त्तव्य है तथा यह उत्तरदायित्व विद्यार्थियों को नहीं सौंपा जा सकता। पर इस सम्बन्ध में छात्रगण का सहयोग अवश्य ही सहायक होगा। आचार्यजी अध्यापकों से सहानुभूतिपूर्ण व निष्पक्ष व्यवहार की अपेक्षा करते थे, जिससे उनके उत्कृष्ट चरित्र की ओर विद्यार्थी आकृष्ट हो तथा उन्हें अपना आदर्श स्वीकारते हुए उनके सद्‌गुणों को अपने चरित्र में उतार सके। अध्यापक विद्यार्थियों को आत्म-संयम की शिक्षा दे, उनके जीवन को सद्‌भावनाओं से अनुप्राणित करे और अध्यक्ष की समुचित देखरेख में स्कूल के प्रबन्ध में विद्यार्थियों के सहयोग को प्रोत्साहित करे। इस उद्देश्य से स्कूलों में विद्यार्थियों की स्वशासन संस्थाएँ

कायम की जायँ जिनके माध्यम से विद्यार्थियों में स्वशासन की भावना को पुष्ट किया जाय, उनमें सामाजिक प्रबन्ध की क्षमता पैदा की जाय, स्कूल के अनुशासन और प्रबन्ध के स्तर को ऊँचा किया जाय ।

उदार लोकतांत्रिक शिक्षा के लिये नागरिकता की शिक्षा के समुचित प्रबन्ध को आचार्य नरेन्द्र देव आवश्यक समझते थे । इस शिक्षा द्वारा वे विद्यार्थियों में उदार विश्व-बन्धुत्व की भावना और व्यापक राष्ट्रीय भावना को जागृत करना चाहते थे । साथ ही नागरिकता की शिक्षा से वे विद्यार्थियों में लोकतांत्रिक परम्पराओं और मूल्यों के प्रति दृढ़ आस्था का निर्माण करना चाहते थे । उनकी इच्छा थी कि विद्यार्थियों को ऐसी नागरिक शिक्षा दी जाय जिससे उनमें न्याय, सहयोग और राष्ट्रीय एकता के आदर्शों के प्रति सम्मान की भावना उपजे तथा उनमें देश-सेवा एवम् देश-प्रेम के भाव जागृत हों । वे देश की परिस्थिति से सुपरिचित हों तथा लोकतांत्रिक नेतृत्व और सहयोग की क्षमता का विकास हो । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे पाठ्येत्तर सामाजिक कार्यों को भी प्रोत्साहित करना चाहते थे ।

जहाँ आचार्य नरेन्द्र देव लोकतंत्र की सामाजिक शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों में सामाजिक नैतिकता का प्रसार करना चाहते थे, उनमें सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति आस्था पैदा करना चाहते थे । वहीं वे विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा दिये जाने के पक्षधर थे । उनकी धारणा थी कि साम्प्रदायिक सामञ्जस्य और सद्भाव को चिरन्तन आधार पर प्रतिष्ठित करना राष्ट्रीय एकता और प्रगति के लिये परम आवश्यक है और यह महान् कार्य धार्मिक शिक्षा के बजाय लोकतन्त्र और अखण्ड मानवता के आदर्शों की दीक्षा देकर ही हो सकता है । उनके विचार में धार्मिक शिक्षा तो साम्प्रदायिक सामञ्जस्य की अभिवृद्धि करने के बजाय संकुचित साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को ही पुष्ट करेगी, उससे तो लोग और भी अधिक हठधर्मी और साम्प्रदायिक बनेंगे ।

पुरानी दुनिया में धार्मिक शिक्षा बच्चों की शिक्षा का एक अविच्छिन्न अंग मानी जाती थी । देवमन्दिर या गिरजाघर समाज के जीवन का केन्द्र होता था और धर्म द्वारा ही लोगों के मन, बुद्धि और हृदयों का नियमन होता था । पर धीरे-धीरे विज्ञान ने आकर यह सब बदल दिया और धर्म के स्थान पर बुद्धि का युग प्रवर्तित हुआ ।

स्कूलों के पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा का समावेश करने से ये साम्प्रदायिक भेद विशेष रूप से उन बच्चों के सामने आते हैं जिन्हें इन भेदों का अभी कोई ज्ञान नहीं है । यह कहा जा सकता है कि धार्मिक शिक्षा का एक स्वस्थ प्रभाव बालक पर पड़ता है और यदि योग्य धर्म अध्यापक हुए तो धार्मिक शिक्षा का कोई अनर्थकारी परिणाम नहीं हो सकता । पर यह तर्क देते हुए लोग यह भूल जाते हैं कि ऐसे धर्माध्यापक जो धर्म के बाह्य अंग की अपेक्षा मूल तत्त्व के अधिक विश्वासी है, बहुत ही कम है ।

व्यावहारिक तथा लोकोन्मुखी शिक्षा

आज के शिक्षित लोग तो धर्म शब्द के वास्तविक अर्थ में, धार्मिक रह ही नहीं गये हैं, यद्यपि अपने राजनीतिक स्वार्थों के साधन में इन धार्मिक विश्वासों और भावों से काम लेते उन्हें संकोच नहीं होता। विद्यालयों के माध्यम से धार्मिक शिक्षा न देने की बात करते हुए आचार्य नरेन्द्र देव जी ने आगे कहा—फिर यह बात भी हमें ध्यान में रखनी चाहिये कि कोई बच्चा धर्म और चरित्र की बातें मौखिक शिक्षा में नहीं सीखा करता, उसके चारों ओर जो परिस्थिति होती है उसी से उसको प्रेरणा मिलती है। दर्जे में बैठकर जो मौखिक शिक्षा वह कान से सुनता है उससे उसका चरित्र उतना प्रभावित नहीं होता, बल्कि उसके अध्यापकों, माता-पिता और पड़ोसियों के चरित्र उस पर अपना पूरा प्रभाव डालते हैं। अतः उदाहरणार्थ, यदि हम अपने बच्चों को सेवा भाव सिखाना चाहें तो सेवा भाव के गुणों की प्रशंसा करने से बच्चों के वैसे भाव नहीं बनेंगे। बल्कि उन्हें सेवा करने के अवसर देने से दूसरों की सेवा करने में जो सुख और आनन्द है वह उन्हें प्राप्त होगा।

साम्प्रदायिकता को दूर करने का एकमात्र उपाय सबका जीवनोद्देश्य एक-सा बनाना और सबके लिये सहयोग युक्त प्रयास के लिये अवसर का निर्माण करना है। पथभ्रष्ट युवक को उसकी भूल दिखाने और रास्ते पर ले जाने का तरीका यही है कि कर्ममय जीवन की उसकी सहज इच्छा को नष्ट करे और राष्ट्र के हितार्थ और शिष्टता के साथ अपने जीवन निर्वाहार्थ उसे कोई उपयोगी कार्य सौंपे। हिन्दुस्तान का इतिहास एक नवीन कार्य को लेकर पुनः लिखना होगा और हमारी समान सांस्कृतिक परम्परा एक-एक बच्चे तक पहुँचानी होगी। हमें अपनी समान राष्ट्रीयता को सिद्ध करने के लिये किसी इलहाम से कोई सांत्वना पाने की आवश्यकता नहीं है। इलहामों के दिन लद गये हैं। उनकी परख हो चुकी, वे खरे नहीं उतरे। हमारा यह जीवन युग हमसे वह नया कार्य कराना चाहता है जो वर्तमान धर्म सम्प्रदायों के द्वारा पूरा नहीं हो सकता। किसी समन्वययुक्त धर्म से भी काम नहीं चलेगा चाहे कितना ही प्रबुद्ध और वैज्ञानिक क्यों न हो। धर्म और विज्ञान का कोई युक्ति संगत मेल बैठाना भी सम्भव नहीं प्रतीत होता है।

शिक्षा देने का यह काम है कि शिक्षा पद्धति में नया सुधार करें और पाठ्यक्रम के अतिरिक्त ऐसे काम निकालें जिससे बच्चे को स्कूल के अन्दर की परिस्थिति से ही उन सामाजिक आदर्शों और चारित्रिक दृष्टान्तों की शिक्षा मिले जो राष्ट्र को उत्तम बनाने में साधक होते हैं। हमारी शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे विचारों और भावों की एकता की परिपुष्टि हो ताकि मन, बुद्धि और हृदय की एकता साबित हो। धार्मिक शिक्षा से लोग और भी अधिक हठधर्मी और साम्प्रदायिक बनेंगे, वह उदार और व्यापक दृष्टि उनकी न होगी जो राष्ट्रीय एकता के लिये अत्यन्त आवश्यक है। साम्प्रदायिकता से हमारे राष्ट्र को जो खतरा है उसे जो लोग समझते हैं और उसकी तीव्र वेदना का अनुभव करते हैं उन्हें चाहिये

कि वे एकत्र होकर इस दैत्य से जूझने के साधन और उपाय करे। दूरदर्शी और विश्वासी नेता ही इस सांस्कृतिक संकट से तारने में हमारी मदद कर सकेंगे।

लोकतन्त्र और सामाजिक शिक्षा के साथ-साथ विज्ञान की शिक्षा भी आचार्य नरेन्द्र देव अत्यन्त अनिवार्य समझते थे। उनके विचारानुसार विज्ञान और मनोविज्ञान के नवीन सिद्धान्तों ने मानव प्रकृति तथा जगत् सम्बन्धी हमारी धारणाओं को बदल डाला है। मनुष्य और प्रकृति के विषय ने हमारे परम्परागत ज्ञान को अपना स्थान विज्ञान को प्रदान किया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि प्रारम्भ से ही हमारे पाठ्यक्रम में विज्ञान का अनिवार्य स्थान रहे। हमें ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि शिष्यों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की अभिवृद्धि हो, अधिक से अधिक वैज्ञानिक पैदा हो और प्रत्येक विश्वविद्यालय में सभी क्षेत्रों में वैज्ञानिक शोध का समुचित प्रबन्ध हो।

पर आचार्यजी विज्ञान की विनाशकारी शक्ति से भी पूर्णतया परिचित थे। इसीलिये वे मानवीय भावना तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समन्वय पर बल देते थे। आचार्य नरेन्द्र देव जी का मत था कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण को मानव मूल्यों में आस्था रख कर ही पढ़ाना है, जिससे अश्रेयकर प्रयोजनों की सिद्धि के लिये विज्ञान का दुरुपयोग न हो। वे अध्येताओं में सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति निष्ठा तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण दोनों ही पैदा करना चाहते थे। इसलिये आचार्यजी के विचारानुसार सार्वजनिक संस्कृति और सामान्य शिक्षा सब विशेष शिक्षा की पृष्ठभूमि में ही होनी ही चाहिये ताकि अध्येता स्वतन्त्र लोकतांत्रिक राज्य में नागरिक का कर्त्तव्य पालन कर सके तथा विज्ञान और प्राविधिक ज्ञान का समाज के हित में सदुपयोग कर सके।

आचार्य नरेन्द्र देव का विचार है कि लोकतन्त्र केवल एक शासन पद्धति ही नहीं है, बल्कि वह एक जीवन-प्रणाली है। अतएव लोकतांत्रिक आदर्शों को केवल राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता, बल्कि उसे मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिष्ठित करना आवश्यक है। यदि कोई नवजात देश, दूसरे देशों की लोकतांत्रिक शासन पद्धति का ही अनुसरण करता है और केवल उसी को प्रगति का सूचक मान लेता है, तो वह कदापि सच्चा लोकतांत्रिक शासन स्थापित करने में सफल नहीं हो सकेगा। इसके लिये देश में लोकतांत्रिक भावना का विद्यमान होना परमावश्यक है। लोकतन्त्र मानव के अभ्यास और परम्परा का विषय है जो काफी लम्बे और कठिन प्रयास के पश्चात् हस्तगत होता है। लोकतांत्रिक परम्परा का निर्माण करने के पश्चात् जनता में तदनुरूप भावनाएँ उत्पन्न कर विकसित की जाती है। जो समाज विभिन्न प्रकार के धर्म एवम् जातिगत भेदभाव से जीर्ण-शीर्ण अवस्था को प्राप्त हो चुके हैं और जिनमें कुल सम्पत्ति जाति और धर्म पर आधारित विशेष स्वार्थ समूहों की सृष्टि हो गयी है, उसके अन्दर लोकतांत्रिक दिनचर्या का सृजन करने के लिए अत्यधिक सचेत प्रयत्नों की आवश्यकता होती है। जनता में लोकतांत्रिक आदर्शों के प्रति सुदृढ़विश्वास होना

चाहिए और उनसे ही उसका समस्त व्यवहार एवम् जीवनक्रम अनुप्राणित होना चाहिये।

आचार्य नरेन्द्र देव जी का विचार था कि जब तक जनता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना उत्पन्न नहीं होती तब तक लोकतांत्रिक पद्धति की सफलता सम्भव नहीं है इसलिये लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिये व्यापक शिक्षा व्यवस्था अत्यन्त अनिवार्य है। जनता की सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी कमियों को सर्वप्रथम समाप्त करना होगा। सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ी श्रेणियों और क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देना होगा। उसको शीघ्रातिशीघ्र सुसंस्कृत समाज के समकक्ष लाने के लिये कोई कसर नहीं उठा रखनी चाहिये। जब तक जन-संस्कृति का निर्माण नहीं हो जाता तब तक ऐसे स्वतन्त्र समाज की स्थापना भी नहीं हो सकती जिसमें प्रत्येक नागरिक सार्वजनिक-कल्याण के लिये परस्पर सहयोग कर सके।

साक्षरता के अभियान को आवश्यक समझते हुए भी, वे जनता की साक्षरता मात्र से ही सन्तुष्ट नहीं थे। उनका कथन था कि साक्षरता तो व्यापक जनशिक्षा का केवल पहला कदम है। इससे केवल बुद्धिकपाट खुल जाता है। साक्षर हो जाने पर कोई व्यक्ति साधारण कहानी किस्से पढ़ सकता है, किन्तु वह शिक्षित नहीं कहा जा सकता है और अपने व्यवहारों को सामाजिक और विवेकपूर्ण बना सकता है। वह राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का अध्ययन नहीं कर सकता जिनसे आज चारों ओर उथल-पुथल मची हुई है। ऐसी साक्षरता से व्यावसायिक वर्ग अनुचित लाभ उठाते हैं और भद्दे साहित्य को प्रकाशित करते हैं, जो केवल मानव की दुष्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन प्रदान करती है। इन बातों पर ध्यान देते हुए आचार्य नरेन्द्र देव जी साक्षरता अभियान को सामाजिक शिक्षा का रूप देना चाहते थे। उनका विचार था कि जनता को राजनीतिक विषयों की शिक्षा तभी समुचित रूप से प्राप्त हो सकती है जब उसे विभिन्न प्रकार की विचारधाराओं को भलीभाँति समझने और उनमें निर्णय करने का अवसर मिले। राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह जनता को ऐसी मौलिक शिक्षा प्रदान करे जिससे उसके अन्दर विवेचनात्मक शक्ति का विकास हो और उसमें पूर्ण आत्म-निर्भरता की क्षमता का प्रादुर्भाव हो सके। इसमें नागरिकता की शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान है जिसमें न केवल राष्ट्रीय बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्यों के पालन की भी शिक्षा दी जानी चाहिये।

आचार्यजी के अनुसार हमारी जन शिक्षा योजना इस प्रकार की होनी चाहिये जिससे जीवन के प्रति स्वस्थ एवम् धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण बन सके, उनमें लोकतांत्रिक मूल्य प्रतिष्ठित हो सके और सामाजिक व्यवहार की नवीन संस्थाओं का निर्माण हो सके। व्यापक जन शिक्षा की पूर्ति के लिये नरेन्द्र देव जी चाहते थे कि श्रमिकों, किसानों तथा दूसरे उत्पादकों के लिये उनके घरों तथा कार्य स्थलों के निकट ही प्रौढ़ शैक्षिक संस्थाएँ खोली जाएँ और इन संस्थाओं में व्यावसायिक शिक्षा के साथ ही सांस्कृतिक और शैक्षिक कार्यों की भी व्यवस्था रहे।

आचार्य नरेन्द्र देव जी का मत था कि हमारी शिक्षाप्रणाली ऐसी होनी चाहिये कि हम आज के विश्व में सुरक्षा और सुख के साथ जीवन यापन कर सकें, क्योंकि हम अब विश्वसंघ की दिशा में अग्रसर हो रहे हैं और हमारी सभी शिक्षा योजना में यह दृष्टिकोण समाहित होना चाहिये। हम लोग विश्व के विभिन्न क्षेत्रों व भागों में घटित होनेवाली घटनाओं से अनभिज्ञ होकर नहीं रह सकते। हमें अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, सद्भाव और भ्रातृत्व की स्थापना करने तथा अपने दायित्व का सफल निर्वाह करने के लिये सदैव प्रस्तुत रहना चाहिये। यद्यपि यह एक महान् कार्य है तथापि सम्पन्न एवं परिपूर्ण जीवन जीने के लिये इसकी पूर्ति आवश्यक है। यदि हम सचेत होकर साहस पूर्वक अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं तो निःसन्देह हमारा आगामी कल स्वर्णिम होगा।

अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा— इस दृष्टि से हमारी शिक्षा प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन होना चाहिए। मानवकल्याण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सहयोग प्राप्त करने के लिये एक नये जीवनदर्शन और नये प्रयास की अत्यधिक आवश्यकता है। हमलोग एक परिवर्तनशील जगत् में रहते हैं। इसलिये समय-समय पर हमारे विचारों और मनोभावों की पुर्नव्यवस्था आवश्यक है। साहित्यिक शिक्षा के साथ-साथ समय-समय पर जनता को महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं की भी शिक्षा देनी चाहिये।

आचार्यजी का विचार था कि समाज के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर जनता को शिक्षित किया जाना चाहिये। साक्षरता आन्दोलन की अपेक्षा यह जनशिक्षा का अधिक प्रभावशाली तरीका होगा। साथ ही इस कार्य में राज्य को शिक्षा के सभी साधनों का उपयोग करना चाहिये। हिन्दुस्तान में जनशिक्षा की केवल योजना तैयार करने के अतिरिक्त और बहुत से कार्य करने हैं। लोकतांत्रिक विचारधारा में समानता का भाव सन्निहित है। यह केवल राजनीतिक विषयों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसकी परिणति जीवन के अन्य क्षेत्रों की ओर भी है। इसके लिये शिक्षा और जीवन-निर्वाह का समान अवसर होना चाहिये और कुल, सम्पत्ति तथा अर्थ नीति पर आधारित भेदभाव का उन्मूलन और सामाजिक न्याय का होना भी आवश्यक है। लोकतंत्र का क्षेत्र तब तक विस्तृत होता रहेगा जब तक सम्पूर्ण मानव जीवन में यह व्याप्त न हो जाय।

जन-जन को शिक्षित करने का संकल्प

जन-शिक्षा के प्रसार और ऐसे कानूनों के निर्माण के साथ ही, जिससे तमाम सामाजिक असमानताओं का उन्मूलन हो जाता है, हमें ग्रामीण जनता में लोकतांत्रिक विचारों और व्यवहारों को विकसित करने के लिये देहातों में जोरदार सहकारी आन्दोलन के चलाने की आवश्यकता पड़ेगी। सहकारिता से केवल यह आर्थिक लाभ ही नहीं है कि वह मध्यम श्रेणी के मुनाफे का अन्त कर कृषि को अधिक लाभदायक बना देती है बल्कि इसके द्वारा नवीन सामाजिक सम्बन्धों का

एक संस्थान भी तैयार होता है जो प्रतिस्पर्धा के बजाय सहयोग पर आश्रित है और जनता में भ्रातृभाव उत्पन्न करता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये गैर सरकारी संस्थाएँ जो भी काम कर रही हो, किन्तु राज्य का प्रधान कर्त्तव्य है कि वह अपनी राजनीतिक विचारधारा के मौलिक सिद्धान्तों और तदनुकूल आचारशास्त्र की जनता को व्यापक शिक्षा दे। इस तरीके से ही जनता के सामाजिक कार्य विवेकपूर्ण होंगे और इसी प्रकार की शिक्षा उन प्रतिक्रियावादी शक्तियों द्वारा उत्पन्न संकट से भी राज्य की रक्षा कर सकेगी जो समय-समय पर अपना सिर उठाकर उन मानवीय मूल्यों को ही विनष्ट कर देना चाहती है, जिनकी सुरक्षा तथा विकास का दायित्व राज्य पर है।

आचार्य नरेन्द्र देव जी का विचार था कि ज्ञान का व्यापक प्रसार सामाजिक न्याय और समता की माँग है। लोकतांत्रिक समाज में संस्कृति और शिक्षा कतिपय सुविधाजनक वर्गों की इजारदारी नहीं रह सकती। शिक्षा तो प्रत्येक नागरिक का अधिकार है। भारतीय लोकतन्त्र में सभी वर्गों और जातियों के बच्चों के लिये उनकी क्षमता और प्रवृत्ति के अनुसार शिक्षा का प्रबन्ध आवश्यक है। चूँकि भारतीय समाज में कतिपय ऐसी जातियाँ हैं, जो दीर्घ काल से सांस्कृतिक शिक्षा से वंचित रही है, इसलिये इन पिछड़ी जातियों के बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दें उनके सांस्कृतिक उत्थान के लिये उन्हें विशेष सुविधा प्रदान करें। इन जातियों के योग्य गरीब बच्चों को न केवल फीस की मार से विमुक्त रखा जाय, बल्कि अपने भरण-पोषण के लिये भी उन्हें मासिक आर्थिक सहायता दी जाय।

आचार्य नरेन्द्र देव जी की इच्छा धीरे-धीरे विश्वविद्यालय के स्तर तक की शिक्षा निःशुल्क प्रदान कराये जाने की थी। उनका मत था कि चूँकि प्रतिभा समाज के सभी स्तरों में पायी जाती है और कोई ऐसी जाति और वर्ग नहीं है जो मानव समाज के सांस्कृतिक भण्डार से लाभ न उठा सके, इसलिये शिक्षा की व्यापकता राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्कर्ष में बड़ी सहायक होगी, बौद्धिक सम्पत्ति को बढ़ायेगी और उसे संसार के दूसरे सभ्य राष्ट्रों के समाज योग्य बनाने में मदद करेगी। इस प्रकार आचार्यजी ज्ञान के प्रकाश को उसके व्यापक प्रसारव्यवस्था द्वारा जन-जन तक पहुँचा कर उन्हें ज्ञान के आलोक से आलोकित कर देना चाहते थे।

आचार्यजी सभी जातियों, वर्गों और सम्प्रदायों के बच्चों को बिना किसी भेदभाव के सामान्य विद्यालयों द्वारा समान शिक्षा देने के पक्षधर थे। उनकी धारणा थी कि जाति और सम्प्रदाय के नाम पर स्थापित शिक्षा संस्थाएँ साम्प्रदायिक वातावरण एवम् जातिगत पक्षपात से दूषित होने के कारण लोकतांत्रिक शिक्षा के केन्द्र नहीं बन सकते। इसी प्रकार विशेषरूप से पिछड़ी जातियों के लिये पृथक शिक्षा संस्थानों का आयोजन भी उन जातियों के सांस्कृतिक पिछड़ेपन को या उसके पार्थक्य को दूर नहीं कर सकता। सामान्य शिक्षा संस्थाओं में समाज के दूसरे वर्ग के बच्चों के सम्पर्क में रहकर उनके साथ समान शिक्षा ग्रहण करके ही पिछड़ी जाति के बालकों का पार्थक्य एवम् सांस्कृतिक पिछड़ापन दूर किया जा

सकता है और तभी वे लोकतांत्रिक समाज के समान नागरिक बन सकते हैं। आचार्य नरेन्द्र देव इसी तरह सम्पन्न वर्गों द्वारा स्थापित विशिष्ट पब्लिक स्कूलों के पक्ष में भी नहीं थे। देहाती और शहरी क्षेत्रों के विद्यालयों के शिक्षास्तर के बहुत बड़े अन्तर से भी आचार्य जी क्षुब्ध थे। वे ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाकर ग्रामीण एवम् नगरीय विद्यालयों के अन्तर को समाप्त करके सभी बच्चों के लिये समान शिक्षा का प्रबन्ध आवश्यक समझते थे।

जीवन के लिये उपयोगी शिक्षा

आचार्य नरेन्द्र देव जी की धारणा थी कि देश में प्रत्येक बालक के लिये कम से कम आठ वर्ष की अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध आवश्यक है। बच्चों के चरित्रनिर्माण और गठन, उनकी बुद्धि का विकास, उनमें सभ्य जीवन की मौलक प्रेरणाओं को जागृत करना, उन्हें जीवन के क्रियाकलापों में सक्रिय भाग लेने योग्य बनाना एवम् एक सामान्य नागरिकता का विकास करना और सामान्य सांस्कृतिक आधार की शिक्षा को सर्वसाधारण को सुलभ करा देना ही अनिवार्य शिक्षा का मूल उद्देश्य है। लोकतांत्रिक समाज की अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था में नागरिक शिक्षा का स्वभावतः विशिष्ट अनिवार्य स्थान है, क्योंकि नागरिकता के उत्तरदायित्व को समुचित रूप से वहन करने हेतु नागरिक शिक्षा के लिए जीवन के सिद्धान्तों और स्थिति का ज्ञान परमावश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये नरेन्द्र देव जी ने सन् १९३८ ई० में संयुक्त प्रान्त की "प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा संघटन कमेटी" के अध्यक्ष की हैसियत से अनिवार्य शिक्षा के अन्तिम वर्षों के लिये नागरिक शिक्षा का एक पाठ्यक्रम तैयार किया था, जो कुछ लम्बा अवश्य था, पर जिसके द्वारा बच्चों को देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थिति के साथ-साथ समाज, नागरिक जीवन, राष्ट्रीयता, जनतंत्र के मूल सिद्धान्तों का परिचय और नागरिकों के अधिकारों और कर्त्तव्यों का ज्ञान प्राप्त हो सकता था। वे इस शिक्षा को बुनियादी शिक्षा का नाम देने को तत्पर थे। वे इस बात से भी सहमत थे कि इस अनिवार्य शिक्षा के जमाने में प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी रूचि के अनुरूप अनिवार्यतः किसी न किसी कलाकौशल की शिक्षा दी जाय। वे यह जानते थे कि कलाकौशल को माध्यम बनाकर दूसरे विषयों की शिक्षा देना कठिन है, पर उनके विचार से इसप्रकार की शिक्षा पद्धति प्रचलित पद्धति से अधिक लाभप्रद एवम् सही सिद्ध हो सकती है।

आचार्य नरेन्द्र देव जी माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों में भी मौलिक अन्तर लाना चाहते थे। उनका मत था कि माध्यमिक शिक्षा इस प्रकार की हो, जिसे प्राप्त करने के पश्चात् विद्यार्थी स्वयं अपना जीविकोपार्जन करपाने में सक्षम हो सके। अतः यह शिक्षा अपने आप में पूर्ण होनी चाहिये जिससे विद्यार्थी आत्मनिर्भर के साथ ही इस प्रकार की आदतों को अपने जीवन में उतार सके जिनसे उसके नैतिक जीवन का विकास हो और जो राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में सहायक

हो। उनकी राय थी कि माध्यमिक शिक्षा से सम्बद्ध विषयों का पाठ्यक्रम तैयार करते समय देश की स्थिति और आवश्यकताओं तथा ज्ञान की उपयोगिता पर विशेष ध्यान दिया जाय, अभिप्राय यह है कि अनावश्यक सैद्धान्तिक विस्तार के स्थान पर वास्तविकता से जुड़ी व्यवहारिक बातों का समावेश अधिक हो। आचार्यजी की यह इच्छा थी कि ये पाठ्यक्रम इस प्रकार के हो जिनको तैयार करने के लिए विद्यार्थियों को स्वतः अधिक कार्य करना पड़े, ताकि उनकी अपनी क्षमता विकसित हो।

आचार्य नरेन्द्र देव जी का कथन था कि हम कल्याणराज्य स्थापित करने का दावा करते हैं। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये देश की सामाजिक सेवाओं का लगातार विकास अनिवार्य है। इस कार्य के लिये सरकार को भारी संख्या में डॉक्टरों, इंजीनियरों, यंत्रचालकों, अध्यापकों तथा छोटे बड़े कार्यों के लिये अन्य सुशिक्षित सुयोग्य व्यक्तियों की सेवाओं की आवश्यकता पड़ेगी। इसका तात्पर्य यह है कि विश्वविद्यालयीय तथा वैज्ञानिक एवम् यांत्रिक शिक्षा की सुविधाओं का निरन्तर विस्तार किया जाय और अनुसन्धान के कार्य में प्रगति होती रहे। लोक कल्याण के उद्देश्य से बनायी गयी योजनाएँ एवम् कार्यक्रम तब तक सफलता प्राप्त नहीं कर सकते, जब तक राष्ट्रीय जीवन के विविध क्षेत्रों में कुशल एवम् सुशिक्षित व्यक्तियों का एक बृहदाकार समूह तैयार नहीं हो जाता। देश की इस महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति टेक्नोलॉजिकल इन्स्टीट्यूट और विश्वविद्यालय ही कर सकते हैं। इस बात के साथ ही शिक्षा के सामाजिक प्रयोग की दिशा में ध्यानाकृष्ट करते हुए नरेन्द्र देव जी मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत, राष्ट्रीयता एवम् लोकतन्त्र में आस्था रखनेवाला, उच्च स्तरीय नेतृत्व प्रदान करना भी विश्वविद्यालयों का एक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व स्वीकार करते थे। उनकी उम्मीद थी कि विश्वविद्यालय विचार और मानव सम्बन्धों के क्षेत्र में नेतृत्व करनेवाले व्यक्तियों को जन्म देंगे, रचनात्मक विचारों के ऐसे केन्द्र बनेंगे जिनके द्वारा आज के कष्ट और संघर्ष के युग में नवीन सामञ्जस्य की स्थापना में हमें सहायता प्राप्त हो सकेगी। अपने विचार प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा कि विश्वविद्यालयों का यह अन्तिम कर्त्तव्य सर्वोपरि महत्त्व का है, क्योंकि आज के तीव्र परिवर्तित और विच्छिन्नता के युग में नवीन सामाजिक चेतना और गतिशील चिन्तन ही सामाजिक रोग का विश्लेषण कर उसका उचित निदान ढूँढ सकता है। विश्वविद्यालयों में सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम की व्यवस्था होनी चाहिये जैसाकि संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ कालेजों में हुआ है। विश्वविद्यालय के प्रत्येक विद्यार्थी को चाहे वह किसी विभाग का हो, अपने देश के विधान की रूपरेखा, भूतकालीन इतिहास तथा आधुनिक विश्व के सम्बन्ध में कुछ जानकारी रखनी चाहिये। उसे आधुनिक विचारधारा का भी कुछ ज्ञान होना चाहिये और अपने लिये एक सामाजिक दर्शन बनाने की कोशिश करनी चाहिये। उसे वैज्ञानिक पद्धति का अभ्यास करना चाहिये और उसकी विचार प्रक्रिया तर्कपूर्ण होनी चाहिये।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आचार्य नरेन्द्र देव जी विश्वविद्यालयों में उच्चशिक्षा हेतु इस प्रकार की व्यवस्था चाहते थे कि जिससे समाज को विभिन्न क्षेत्रों के लिये ऐसे विशेषज्ञ उपलब्ध हो सकें जो समाज का सर्वांगीण निर्माण एवम् विकास करने के साथ ही लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व को सुचारू रूप से वहन करते हुए भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था को प्रतिष्ठित एवम् परिपुष्ट कर सके।

नेतृत्व क्षमता के विकास का प्रमुख कारण

लखनऊ विश्वविद्यालय के रजत जयन्ती समारोह १६४६ ई० के अवसर पर नरेन्द्र देव जी ने कहा कि विश्वविद्यालय की शिक्षा का उद्देश्य केवल विभिन्न पेशों में काम करने वाले व्यक्तियों (वकीलों, डॉक्टरों आदि), कारीगरों वैज्ञानिकों और शासन प्रबन्ध करने वालों को तैयार करना नहीं वरन् जीवन के प्रति विस्तृत दृष्टिकोण रखने वाले समझदार सुसंस्कृत नागरिक भी तैयार करना है। विश्वविद्यालयों से यह भी आशा की जाती है कि वे विचार और मानव सम्बन्धों के क्षेत्र में नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों को जन्म देंगे और सबसे बढ़कर उनमें रचनात्मक विचारों के ऐसे केन्द्र बनने की आशा की जाती है जिनके द्वारा ही आज के कष्ट और संघर्ष के युग में नवीन सामञ्जस्य की स्थापना में सहायता मिल सकती है। विश्वविद्यालयों का यह अन्तिम कर्त्तव्य सर्वोपरि महत्त्व का है, क्योंकि आज के तीव्र परिवर्तन और विच्छिन्नता के युग में नयी सामाजिक चेतना और गतिशील चिन्तन ही सामाजिक रोग का विश्लेषण करके उसका उचित निदान ढूँढ सकता है।

परम्परागत मूल्यों और आदर्शों पर से लोगों की निष्ठा उठती जा रही है और पुरानी संस्थाएँ सर्वत्र ध्वस्त होती दृष्टिगोचर होती है। नये युग में जीवित रहने के लिए, नये सन्तुलन और संगठन के लिए हमें सतत् प्रयत्नशील रहना है। समाज का नवीन सन्तुलन और संगठन तभी सम्भव है जबकि हम नयी सामाजिक आवश्यकताओं और आकाँक्षाओं की पूर्ति में सहायक होने वाले नये मूल्यों को स्वीकार करने में बुद्धिमत्ता और साहस का परिचय दें। हमारे अध्यापकों को अपनी पुरानी उदासीनता और उपेक्षा की मनोवृत्ति का परित्याग कर देश और समाज के नवनिर्माण सम्बन्धी प्रश्नों में क्रियात्मक रुचि लेनी पड़ेगी।

विश्वविद्यालयों को केवल अपने छात्रों को विद्या दान करके सन्तुष्ट नहीं होना है वरन् व्यस्क शिक्षा तथा इस प्रकार के दूसरे कार्यो में रुचि लेकर समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करना है। अध्यापकों को विशुद्ध पठन-पाठन के कार्य तक ही अपने को सीमित न रखकर आगे बढ़ना चाहिए और देश की सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का हल ढूँढने में योग देना चाहिए। समाज के प्रति अध्यापकों का यह उत्तरदायित्व है कि वे अपने विद्यार्थियों को जनतांत्रिक ढंग से आचरण करने की शिक्षा दें और उनमें दृढ़ नागरिक भावना भरें। राष्ट्रीय साहित्य के विकास का कार्य भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इसकी पूर्ति में भी उन्हें हाथ बँटाना है।

समाज की सबसे बड़ी सेवा जो आज विश्वविद्यालय कर सकते हैं वह है प्रतिक्रियावादी शक्तियों से संघर्ष करने में उसकी सहायता करना, नवयुवकों को गुमराह होने से बचाकर उन्हें विवेक और बुद्धिमानी का मार्ग दिखाना सबसे आवश्यक है। आज धर्म और संस्कृति के नाम पर हमारे नौजवानों की घृणा और द्वेष की भावनाओं को उभाड़ा जा रहा है और मानवतावादी मूल्यों की उपेक्षा करना सिखाया जा रहा है। धार्मिक पक्षपात विहीन, असाम्प्रदायिक, लोकतांत्रिक राज्य की कल्पना का मखौल उड़ाया जाता है और नवयुवकों को आगे आने वाले भविष्य की ओर देखने के बजाय सुदूर अतीत की ओर दृष्टि मोड़ने को कहा जा रहा है। यदि अतीत को पुनरुज्जीवित करने का आन्दोलन नवयुवकों को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हुआ तो मेरी राय में देश के लिए यह सबसे बड़े खतरे की बात होगी। इस प्रकार का आन्दोलन यद्यपि घोषित रूप से सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में आरम्भ होता है, किन्तु अन्त में वह राजनीतिक रूप धारण करता है और चूँकि उसकी जड़ें जनता में नहीं होती इसलिये अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए जनता को साथ लेने के स्थान पर वह दूसरे सुगम मार्ग अपनाता है। इस प्रकार का आन्दोलन नवयुवकों में अपूर्व स्फूर्ति का संचार करता है, उनकी सोयी हुई शक्ति को जगाता है किन्तु इस शक्ति का सदुपयोग देश की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का समाधान करने में न लगाकर साम्प्रदायिक विद्रोह तथा कलह की वृद्धि करने में हुआ करता है। यह आन्दोलन जीवन में नवयुवकों के दृष्टिकोण को विकृत कर देता है, उनकी विवेक बुद्धि को कुण्ठित कर देता है और उन्हें आज के समाज की जटिल समस्याओं को समझने में अयोग्य बना देता है।

हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ व मिस्र के इरुवानुल मुसलमीन सरीखी संस्थाओं के इतिहास से हमें शिक्षा लेनी चाहिए। इरुवानुल मुसलमीन आरम्भ में प्राचीन संस्कृति के उद्धार के लक्ष्यपर चलनेवाला विशुद्ध सांस्कृतिक आन्दोलन था। उसका उद्देश्य कुरान की संस्कृति पर आधारित राज्य की स्थापना था। किन्तु यह आन्दोलन धीरे-धीरे राजनीतिक रूप धारण करता गया और अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए उसने अनेक अवसरों पर आतंकवाद का सहारा लिया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्बन्ध में भी यह भविष्य कथन किया जा सकता है कि यह शीघ्र ही राजनीतिक संस्था का रूप धारण करेगा, अन्यथा समाप्त हो जायगा। यदि हम राष्ट्र को एक भयंकर संकट से बचाना चाहते हैं तो शिक्षाविदों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे हमारे नवयुवकों में जनतन्त्र की भावना को कूटकर भर दें और उन्हें जीवन के प्रति विवेकपूर्ण एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करने का अभ्यस्त बनायें।

आजकल छात्रों में अनुशासनहीनता की शिकायत प्रायः सुनने को मिलती है। इस अनुशासनहीनता के अनेक कारण हैं। हम एक उलझन और संघर्ष से भरे जमाने में रह रहे हैं। जीवन की आधारभूत मान्यताओं के सम्बन्ध में पढ़े-

लिखे लोगों में एक राय नहीं है। लोगों की निष्ठा परस्पर विरोधी विचारधाराओं के प्रति है। आर्थिक कठिनाईयों और बेकारी उत्साहभग्नता को जन्म देती है। समाज की विशृंखलता स्वभावतः विद्यार्थियों में प्रतिबिम्बित होती है। अनुशासनहीनता दूर करने का उपाय यही है कि छात्रों के जोश को रचनात्मक कार्य में लगाया जाय और शिक्षकों और शिक्षार्थियों के बीच घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हो। शिक्षा एक सहकारी प्रयत्न है जिसमें अध्यापक और छात्र दोनों ही भाग लेते हैं। दोनों में आदर्श की एकता होने पर ही शिक्षा संस्थाओं में सच्चे अनुशासन की स्थापना सम्भव है। अनुशासनहीनता को समाप्त करने के लिए हमें अनुशासन की पुरानी धारणा में भी संशोधन करना होगा और शिक्षकों और शिक्षार्थियों के बीच सौहार्द्र स्थापित करना होगा किन्तु अनुशासनहीनता की समस्या मूल रूप से नये सामाजिक संगठन की समस्या के साथ हल हो सकेगी।

हम ऐसे युग में रह रहे हैं जबकि संघर्ष और विच्छिन्नता हमारे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन की स्वाभाविक विशेषता बन गयी है। किन्तु समाज के इस असन्तुलन के कारण हमारा परम कर्त्तव्य हो जाता है कि हम नये सामञ्जस्य की स्थापना के लिए पूरी शक्ति के साथ प्रयत्नशील हों। कुछ लोग भग्नोत्साह होकर निष्क्रिय हो रहे हैं अथवा रहस्यवाद की गोद में शरण ले रहे हैं और कुछ लोग मनुष्य और समाज के कल्याण के लिए कार्य करने का इसे सबसे बड़ा अवसर देखते हैं। इतिहास आज सबकी कड़ी परीक्षा ले रहा है। हमें इतिहास के उस महान् आन्दोलन का साथ देना है जो आज की सभी परीक्षाओं और संकटों के बावजूद अन्त में समाज को एक नया संगठन प्रदान करेगा और सार्वभौमिक शान्ति और समृद्धि के युग का लाने वाला सिद्ध होगा। प्रत्येक शिक्षा-केन्द्र को इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्रयत्नशील होना है।

संक्रमण और शिक्षा

आगरा विश्वविद्यालय के समावर्तन समारोह १९४७ ई० के अवसर पर आचार्य नरेन्द्र देव जी ने भाषण देते हुए भारत की शिक्षा समस्याओं का विस्तृत विवेचन किया। उन्होंने कहा कि प्रत्येक विद्यार्थी के जीवन में समावर्तन संस्कार का शुभ दिन चिरस्मरणीय होता है और इसलिए यह उचित है कि इस अवसर पर एक अनुष्ठान का विधान हो। प्राचीन काल में हमारे गुरुकुलों में यह महत्त्वपूर्ण संस्कार मनाया जाता था। इस संस्कार के जो मंत्र तैत्तरीय शिक्षा में पाये जाते हैं उनसे उत्कृष्ट शिक्षा नहीं हो सकती। वे उदात्त विचार आज भी नवीन हैं और हमारा पथ प्रदर्शन कर सकते हैं। उनसे गुरु-शिष्य के परस्पर मधुर सम्बन्ध का पता चलता है और सबसे विशिष्ट बात यह है कि शिक्षा को हमारे पूर्वज गुरु और अन्तेवासियों का सम्मिलित कर्त्तव्य समझते थे। शिक्षा के क्षेत्र में विद्यालय के अध्यापक, विद्यार्थी और व्यवस्थापक एक दूसरे के सहयोगी हैं। इस पुराने भाव को हमें फिर से जगाना है। जितनी ही अधिक मात्रा में इस भाव को अपनावेंगे

उतनी ही अधिक मात्रा में हमको शिक्षा के क्षेत्र में सफलता प्राप्त होगी। तैत्तरीय शिक्षा में दिये हुए उपदेश से श्रेष्ठतर उपदेश क्या हो सकता है। थोड़े से चुने हुए शब्दों में कुलपति अन्तेवासियों को एक सारगर्भित उपदेश देता है। समावर्तन के अवसर पर उपदेश देने का अधिकार कुलपति को ही है जबकि बाहर से किसी प्रिय व्यक्ति को आमंत्रित करने का रिवाज सा पड़ गया है। इस प्रथा के अनुसार आपने यह कर्त्तव्य इस वर्ष मुझे सौंपा है। यद्यपि मैंने अपने जीवन के विशिष्ट भाग को विद्यापीठ की सेवा में व्यय किया है तथापि आपके विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों से निकट सम्पर्क में आने का मुझे अवसर नहीं मिला है। इस दृष्टि से मैं स्नातकों को उपदेश देने का अपने को अधिकारी नहीं समझता। किन्तु जब आपने मुझे इस कार्य के लिए निमंत्रित किया है तो मैं अपने अनुभव के अनुसार कुछ शब्द आपसे निवेदन करूँगा।

पूर्व इसके कि मैं शिक्षा के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार आपके सम्मुख रखूँ मेरा यह प्रिय कर्त्तव्य है कि मैं उन नवीन स्नातकों को बधाई दूँ जिन्होंने आज पदवी प्राप्त की है। उनके जीवन में यह एक विशिष्ट दिन है। उनमें से बहुत से कार्य क्षेत्रों में प्रवेश करेंगे और जो शिक्षा उन्होंने प्राप्त की है उसका अच्छे से अच्छा उपयोग करने का उनको अवसर मिलेगा।

जो स्नातक अपनी शिक्षा समाप्त करके आज यहाँ से बाहर जा रहे हैं उनके ऊपर एक विशेष उत्तरदायित्व है। हमारा देश आज स्वतन्त्र है। हमको एक नवराष्ट्र का निर्माण करना है। इस महान् कार्य के लिए हमको जीवन के विविध क्षेत्रों में ऐसे विद्याचरण सम्पन्न नवयुवकों की आवश्यकता है जो सेवाभाव से प्रेरित होकर राष्ट्र के उत्थान के कार्य के लिए अग्रसर हों। हमारे समाज की अनेक आवश्यकताएँ हैं। आज के युग में राज्य की कल्पना ही बदल गयी है। आज राज्य का केवल इतना ही कर्त्तव्य नहीं है कि वह प्रजा के जान माल की रक्षा करे और उनसे कर वसूल करे। समाज के विविध विभागों को पुष्ट और समुन्नत करना आज उसका कर्त्तव्य हो गया है। यह बहुजन समाज का युग है, यह लोकतंत्र और स्वतंत्रता का युग है। आधुनिक काल में बहुजन के हितों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आज यह सम्भव नहीं है कि हम साधारण जन को शिक्षा से वंचित रखे। संस्कृति और ज्ञान कतिपय उच्च वर्गों तक ही सीमित नहीं रखे जा सकते। जबसे उद्योग व्यवसाय के युग का उपक्रम हुआ है तब से सर्वसाधारण की शिक्षा का भी आयोजन हुआ है। लोकतन्त्र की आधारशिला सार्वजनिक शिक्षा है। यह शिक्षा अभी निम्नतम अवस्था में है। सर्वसाधारण की शिक्षा की कल्पना आरम्भ में प्राथमिक शिक्षा तक ही सीमित थी। इससे सर्वसाधारण के लिए ज्ञान के द्वार का उद्घाटन अवश्य हुआ। किन्तु जब तक सबके लिए माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा सुलभ न हो जावे तब तक इससे लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है। सर्वसाधारण की जानकारी में थोड़ी वृद्धि अवश्य होती है, किन्तु वह इस प्रकार सुसंस्कृत और सुसंपन्न नहीं बन सकते। पुनः व्यवसायी

लोग व्यापार के लाभ के लिए उनकी रुचि को विकृत कर देते हैं। वह इस प्रकार के समाचार संगृहीत करते हैं जिससे अधम 'स्व' को प्रोत्साहन मिलता है। किन्तु धीरे-धीरे यह कल्पना मान्य होने लगती है कि यदि लोकतन्त्र को उन्नत करना है तो सर्वसाधारण की शिक्षा भी उन्नत होनी चाहिये। हमारा देश तो इतना निर्धन है कि आज सर्वसाधारण की अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के व्यय का भार ही सहन करना कठिन है। किन्तु यह निश्चय है कि हमको आज ही नवसमाज का आरम्भ करना है। एक स्वतन्त्र समाज के आधार को दृढ़ बनाने के लिए तथा सुन्दर भविष्य का निर्माण करने के लिए लोकतन्त्र के इस उपकरण को समर्थ बनाना है। यदि आज माध्यमिक शिक्षा सर्वसाधारण के लिए सुलभ नहीं हो सकती तो प्राथमिक शिक्षण का सूत्रपात तो करना ही चाहिए। हमें हर्ष है कि हमारे प्रान्त में इस कार्य का श्रीगणेश हो गया है तथा दस वर्ष में इस उद्देश्य को पूरा करने का निश्चय किया गया है। यदि हमारा शिक्षित समुदाय अपने कर्त्तव्य को पहचाने और इस कार्य में योग दें तो कम समय में यह प्रारम्भिक कार्य समाप्त हो सकता है और व्यय में भी कमी हो सकती है। प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति अपना-अपना कार्य करते हुए निरक्षरों को साक्षर बना सकता है। मुहल्ले में, दफ्तर में, घर में, गाँव के चौपालों में, पाठशाला में, मन्दिर-मस्जिद में, सर्वत्र यह कार्य नियमित रूप से किसी परिमाण में हो सकता है। आशा है जो नवयुवक आज शिक्षा समाप्तकर जीवन में प्रवेश कर रहे हैं वह इस कार्य के महत्त्व को समझेंगे और साक्षरता के आन्दोलन में सक्रिय भाग लेंगे।

आज हम एक क्रान्तिकारी युग में रह रहे हैं। सारा संसार इतिहास के चौराहे पर खड़ा है। हमारी पुरानी संस्थाएँ, हमारे क्रमागत विश्वास, जीवन के प्रति हमारी दृष्टि, हमारे सामाजिक मूल्य, हमारी विचार पद्धति, हमारी अर्थ नीति और समाज नीति सब परिवर्तित हो रहे हैं। एक युग की परिसमाप्ति तथा नवयुग का उपक्रम हो रहा है। ऐसे संक्रमणकाल में हम रह रहे हैं। ऐसे संकट के समय में बुद्धि विभ्रम होना स्वाभाविक है। प्रत्येक के लिए अपने कर्त्तव्य को निश्चित करना कठिन होता है। मनुष्य भय संशय अनिश्चितता तथा सुरक्षा के अभाव के कारण चिन्ताग्रस्त होता है और बहुत से ऐसी अवस्था में वास्तविकता का सामना करने से घबराते हैं तथा सुदूर उखलि में अपना मुँह छिपाते हैं। हमारे दुर्भाग्य से हमारे देश में जो साम्प्रदायिक कलह आरम्भ हो गया है वह हमारे कार्य को और भी दुष्कर कर देता है। जनता का ध्यान मौलिक प्रश्नों से हटकर गौण प्रश्नों की ओर चला जाता है और इस विषाक्त तथा दूषित वातावरण में जीवन के सामाजिक मूल्य और नैतिकता भी नष्ट हो जाती है। विद्वेष की इस अग्नि को बुझाना शिक्षितों का काम है। इससे भी अधिक आवश्यकता है उन उच्च मान्यताओं की रक्षा करना जिनके आधार पर ही एक सुदृढ़ और जनतंत्रात्मक राष्ट्र की रचना हो सकती है। यदि हमारे नवयुवकों का, जिनके हाथ में नेतृत्व आने वाला है, जीवन के मूल्यों के प्रति आदर भाव नहीं होगा तो इस देश का भविष्य आशाप्रद

नहीं हो सकता। प्रत्येक को अपने दिल को टटोलना है और आत्म समीक्षा करनी है। हमें सन्देह नहीं कि हमको अपने राष्ट्र को सबल बनाना है, इतना सुदृढ़ बनाना है कि उसका कोई बाल बाँका न कर सके। किन्तु यह इसलिए जिसमें एक स्वस्थ सुसंस्कृत समाज चिरकाल तक मानवता का निरंतर विकास कर सके। अतः जहाँ हमारे नवयुवकों को सैनिक शिक्षा लेकर अपने को देश रक्षा के कार्य के लिए उपयुक्त बनाना है वहाँ उनको अपने समाज की अवस्था का अध्ययन कर अपनी समस्याओं का समाधान करने की योग्यता भी अपने में प्रतिपादित करनी है। इस युग में सफलता की कुंजी आत्मसंयम, साहस और सद्बुद्धि में है। हमारी अर्थ नीति इतनी पुरानी पड़ गयी है कि आज वह हमारी उन्नति में बाधक हो रही है। आर्थिक और सामाजिक विषमता के कारण हमारा समाज छिन्न-भिन्न हो रहा है। कठोर वर्ण व्यवस्था, अस्पृश्यता, दरिद्रता और निरक्षरता हमारे समाज के अभिशाप हैं। नवयुवकों को परस्पर के भेदभाव को मिटाना है तथा आर्थिक संगठन में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर देश की दरिद्रता और बीमारी को दूर करना है। पुनः लोकतन्त्र की भावना को पुष्ट करने के लिए सहकारिता का आन्दोलन अत्यन्त आवश्यक है। लोकतन्त्र के हम अभ्यस्त नहीं है और इसीलिए अभी इसकी परम्परा भी प्रतिष्ठित नहीं हुई है। अतः परस्पर सहयोग की भावना को पुष्ट कर हम लोकतन्त्र को स्थायी बना सकते हैं तथा गाँव में एक नवीन जीवन का संचार कर सकते हैं। समाज सेवा के यह सब काम नवयुवकों को करने हैं। यह तभी सम्भव है जब जीवन का कोई गम्भीर उद्देश्य हो और जनता की हमारी दृष्टि में प्रधानता हो। प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र निर्माण के कार्य में अपनी योग्यता के अनुसार भाग ले सकता है। यदि हम अपने उज्जवल भविष्य में निष्ठा रखते हैं और इस बात का ज्ञान रखते हैं कि अपने देश के भाग्य के निर्माण में हमारा क्या अब दान हो सकता है तभी हमको कार्य करने का उत्साह मिल सकता है। नवयुवकों में काम करने की अपूर्व शक्ति, उत्साह और साहस होता है। इसके साथ-साथ यदि सामाजिक आवश्यकताओं का ज्ञान भी हो और लक्ष्य हो तो हमारे नवयुवक आज की कठिनाईयों का सामना कर सकते हैं। मुझे आशा है कि हमारे स्नातक एक नवीन दृष्टि और एक नवीन विचार पद्धति को लेकर जीवन में प्रवेश करेंगे। मैं जानता हूँ कि उनका पथ कंटकाकीर्ण है, उनको बनकटी करना है, उनको एक नूतन समाज की रचना करनी है और उनके साधन और उपकरण स्वल्प और अपर्याप्त हैं। किन्तु यदि उनकी दृढ़ निष्ठा है और वह सत्संकल्प को लेकर अध्यवसाय के साथ आगे बढ़ने को तैयार हैं तो मुझे अपने देश का भविष्य गौरवमय प्रतीत होता है। इस शुभ संकल्प में मैं उनके साथ हूँ और मैं अपनी सफलता के लिए प्रार्थी हूँ और मेरी शुभकामनाएँ उनके साथ हैं।

अब आपकी अनुमति से विश्वविद्यालय की शिक्षा के महत्त्व के सम्बन्ध में तथा उसकी क्या आवश्यकताएँ हैं इस सम्बन्ध में कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि लोकतन्त्र की स्थापना के लिए सर्वसाधारण की शिक्षा

की परम आवश्यकता है किन्तु इसका यह आशय नहीं है कि इससे उच्च शिक्षा के महत्त्व में किसी प्रकार की कमी आ जाती है। एक सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति का हमको विकास करना है। शिक्षा के प्रासाद की आधारशिला सर्वसाधारण की प्राथमिक शिक्षा है। किन्तु जिस भवन का निर्माण इस आधार पर होता है उसके कई तल्ले हैं और सबसे ऊँचा तल्ला विश्वविद्यालय की शिक्षा तथा हर प्रकार की गवेषणा का है। राज्य का कर्त्तव्य है कि वह शिक्षा के प्रत्येक अंग को पुष्ट करने का प्रयत्न करे। शिक्षा का एक निरंतर क्रम चलता रहता है और सब अंग एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। अतः एक को दुर्बल कर हम दूसरे की पुष्टि नहीं कर सकते। विश्वविद्यालय की शिक्षा में उसका चरमोत्कर्ष पाया जाता है। एक सामान्य नागरिक का विकास करना तथा एक सामान्य सांस्कृतिक दायक की शिक्षा को सर्वसाधारण के लिए सुलभ कर देना सर्वसाधारण की शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। किन्तु बिना उच्च शिक्षा का उचित विधान किये राष्ट्रीय जीवन के विविध क्षेत्रों के लिए विशेषज्ञ नहीं मिल सकते। आज विज्ञान का युग है। विज्ञान के द्वारा ही हमने प्रकृति पर विजय पायी है।

आज विज्ञान के बल से मनुष्य की दरिद्रता दूर की जा सकती है, वियावान को हम चमन बना सकते हैं। आज मानवी शक्ति की महती वृद्धि हुई है। यह विश्वास होने लगा है कि यह शक्ति असीम है। आज कोई भी परिवर्तन असम्भव नहीं प्रतीत होता है। इसके कारण आधुनिक वैज्ञानिक तथा यांत्रिक पद्धति ने उन लोगों की दृष्टि मौलिक रूप से बदल दी है जो राज्य की शक्ति संचालित करते हैं। फलस्वरूप राज्य शक्ति के मद से उन्मत्त लोगों ने समाज के लिए दुर्घटनाएँ उपस्थित कर दी हैं जो भयावह हैं।

आज समाज में असामञ्जस्य है। यह असामञ्जस्य तब तक दूर नहीं होगा जब तक हम इस बात को स्वीकार नहीं करते कि मनुष्य की शक्ति की कुछ आवश्यक सीमाएँ हैं, वह अपरिमित नहीं है तथा मनुष्यों का एक दूसरे पर जो अधिकार हो उसकी भी सीमा मर्यादित हो जानी चाहिए। एक ओर उद्योग व्यवसाय के मालिक हैं, दूसरी ओर श्रमिकों का समुदाय है। इनके हितों में तीव्र विरोध है। यह विरोध जनतन्त्र को छिन्न-भिन्न करता है। यदि समता और जनतन्त्र को सबल बनाना है तो सामाजिक संगठन का वह नमूना जिसे उन्नीसवीं शताब्दी के व्यवसाय संगठन ने कायम किया है, बदलना चाहिये।

मुझे खेद है कि मैं विषयान्तर में चला गया। मैं निवेदन कर रहा था कि आज हम अपनी समस्याओं को विज्ञान की सहायता के बिना नहीं हल कर सकते। अतः राष्ट्र की उन्नति के लिए विज्ञान की शिक्षा की उन्नति करना तथा गवेषणा की समुचित व्यवस्था करना राज्य का कर्त्तव्य है। राष्ट्र निर्माण का काम विविध विधाओं के विशेषज्ञों के बिना नहीं चल सकता। यह ठीक है कि छात्रवृत्ति देकर विदेश में विद्यार्थी भेजे जा रहे हैं किन्तु कतिपय कठिनाईयों के कारण इनकी संख्या स्वल्प ही हो सकती है। अतः आज की अवस्था को देखते हुए अपने देश

में विविध प्रकार की शिक्षा की विशेष व्यवस्था करनी होगी और कुछ काल के लिए बाहर से भी विशेषज्ञ बुलाने होंगे। केन्द्रीय गवर्नमेण्ट को विश्वविद्यालयों की शिक्षा के व्यय का एक अच्छा भाग देना चाहिए चाहे वह विद्यालय प्रान्तीय विषय ही क्यों न हो। इस सहायता के बिना विश्वविद्यालयों की तात्कालिक आवश्यकताओं की न पूर्ति हो सकती है और न उनका विकास ही। केन्द्रीय गवर्नमेण्ट को स्वयं इस समय एक बड़ी संख्या में विशेषज्ञों की आवश्यकता है और सदा रहेगी। यह विशेषज्ञ प्रान्तों के विश्वविद्यालयों से ही आते हैं। इनकी संख्या अल्प है। आबादी के २२०६ में से केवल एक व्यक्ति युनिवर्सिटी की शिक्षा पाता है, जबकि रूस में अनुपात ३०० में से एक है। अतः राज्य का काम सुकर करने के लिए तथा विविध सामाजिक सेवाओं का आयोजन करने के लिए विशेषज्ञों की संख्या में द्रुतगति से वृद्धि होनी चाहिए। इस कार्य का महत्त्व सर्वसाधारण की शिक्षा में भी इस समय अधिक है। इसके लिए पोस्ट ग्रेजुएट की शिक्षा तथा वैज्ञानिक अन्वेषण का समुचित प्रबन्ध तत्काल होना चाहिए। किन्तु इस कार्य के लिए प्रचुर परिमाण में धन चाहिए। हमारे देश के विश्वविद्यालय आर्थिक सहायता के लिए राज्य पर निर्भर करते हैं। यह सत्य है कि हमारे देश में दान का बड़ा महत्त्व है और इसकी परम्परा भी है। किन्तु दान का विविध रूप है और जो कुछ ब्रह्मदान मिलता है वह प्रायः स्थानीय विद्यालयों को जाता है। इस अवस्था में केन्द्रीय गवर्नमेण्ट का विशेष कर्त्तव्य है और हमारी प्रान्तीय गवर्नमेण्ट को भी सहायता की रकम को उचित मात्रा में बढ़ाना चाहिए। यह सन्तोष का विषय है कि माननीय शिक्षामंत्री ने हाल में युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन का संगठन किया है और वैज्ञानिक अन्वेषण के कार्य के लिए भी एक समिति नियुक्त की है।

हमारा देश इतना विस्तृत है कि यहाँ परीक्षा लेनेवाले विश्वविद्यालयों की भी अत्यन्त आवश्यकता है। यहाँ उच्च शिक्षा थोड़े से चुने हुए केन्द्रों में नहीं केन्द्रित की जा सकती। लार्ड हेलडेन का तो यहाँ तक विचार है कि इंग्लैण्ड ऐसे छोटे देश में भी ऐसे विश्वविद्यालय अनिवार्य हैं। इसलिए आगरा विश्वविद्यालय की नितान्त आवश्यकता है। किन्तु यहाँ भी अन्वेषण को प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

शिक्षा का माध्यम : अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न

एक दूसरा विषय जिसकी ओर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ शिक्षा का माध्यम है। अब समय आ गया है जब हमको राष्ट्रभाषा के द्वारा ऊँची से ऊँची शिक्षा का आयोजन करलेना चाहिए जब राजकाज की भाषा बदली गयी है तब तो यह काम तेजी से होना चाहिए। शिक्षा का माध्यम यथा सम्भव तत्काल बदल जाना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं है कि हमको किसी विदेशी भाषा का अब सहारा नहीं लेना है। विदेशी भाषा की आवश्यकता बहुत दिनों तक बनी रहेगी, किन्तु वह शिक्षा का माध्यम न होगी और शिक्षा कार्यक्रम में उसको गौण स्थान प्राप्त होगा। इस सम्बन्ध में यह भी कहना आवश्यक है कि अपनी भाषा

में सब विषय की ऊँची से ऊँची पुस्तकें लिखी जानी चाहिए। किन्तु यह काम किसी एक विश्वविद्यालय के बस का नहीं है। इसके लिए यदि गवर्नमेण्ट की ओर से कोई आयोजन हो और उसमें सब विश्वविद्यालयों तथा अन्य साहित्यिक संस्थाओं का सहयोग लिया जाय तो अति उत्तम हो। एक निश्चित योजना के अनुसार यह काम होना चाहिए और पाठ्यपुस्तकों की रचना जल्द से जल्द हो जानी चाहिये। अंग्रेजी के द्वारा हमको यूरोपीय ज्ञान अब तक मिलता रहा है, पर स्वतन्त्र होने के पश्चात् हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध सब राष्ट्रों से हो गया है। ऐसी अवस्था में अपने देश में संसार की विविध भाषाओं की शिक्षा की व्यवस्था हमको करनी होगी। यदि सब विश्वविद्यालय मिल-जुल कर इस काम को आपस में बाँट लें तो यह काम सुचारु रूप से चल सकता है।

विद्यार्थियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जाती है और इसलिए अध्यापक और विद्यार्थी का सम्पर्क भी कम होता जाता है। यह अवस्था अवाञ्छनीय है। परस्पर का सम्पर्क बढ़ने के लिए Tutorial पद्धति का विस्तार एक अच्छा उपाय है किन्तु यह पद्धति बड़ी महँगी है और कारण इसका विस्तार कठिन है जब तक कि धन का प्रबन्ध न हो। पुनः इस पद्धति का तभी पूरा लाभ उठाया जा सकता है जब विद्यार्थी इसको अपने कालेज के जीवन का केन्द्र समझें। हालत यह है कि विद्यार्थी इसको पाठ्यक्रम का एक सामान्य अंग मात्र समझते हैं और जब तक परीक्षा का स्वरूप नहीं बदलेगा तब तक अधिकांश विद्यार्थी शिक्षा को वह महत्त्व नहीं देंगे जो उन्हें देना चाहिए। इतना कहने पर भी यह मानना पड़ेगा कि इस पद्धति से कुछ विद्यार्थियों को लाभ अवश्य होता है। अतः समस्या यह है कि इस पद्धति को जारी करने के अतिरिक्त और क्या करना चाहिए जिससे विद्यार्थी अध्यापकों के निकट सम्पर्क में आये।

अनुशासन का प्रश्न भी इससे सम्बद्ध है। आज चारों ओर से इस बात की शिकायत होती है कि विद्यार्थियों में संयम की कमी हो गयी है। इसके क्या कारण हैं ? इस पर हमको विचार करना है, क्योंकि बिना रोग का निदान जाने रोग का उपशम नहीं हो सकता। इस संयम की कमी के अनेक कारण हैं। जीवन की अनिश्चितता के कारण समाज की सब श्रेणियों में असन्तोष पाया जाता है। समाज के मौलिक आधार के सम्बन्ध में ही तीव्र मतभेद है। महायुद्ध के पश्चात् आर्थिक कठिनाईयाँ और बढ़ गयी हैं और इसका मनोवृत्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है। आज हमारे देश में सरकारी विभागों में भी कुशलता और अनुशासन की कमी आ गयी है। सारा देश इस रोग से ग्रस्त है। आर्थिक कठिनाईयों को बिना दूर किये पूर्ण रूप से संयम का पुनः प्रतिष्ठित होना सुगम नहीं है। जहाँ तक विद्यार्थियों का सम्बन्ध है उनके साथ सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार कर तथा उनके निकट सम्पर्क में आकर हम इस शिकायत को बहुत कुछ दूर कर सकते हैं। विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिसमें वह आत्मसंयम के महत्त्व को समझें।

बाहर से अनुशासन का आरोप प्रायः व्यर्थ हुआ करता है। हमारे विद्यालयों का वातावरण ही ऐसा होना चाहिए जिसमें असंयम के उदाहरण बहुत कम हो जायँ।

हमारे विद्यार्थियों को भी समझना चाहिए कि उनको अपने राष्ट्र को सरल बनाना है तथा एक नूतन समाज का निर्माण करना है। समाज के वही नेता और निर्माता होंगे। किन्तु आत्मसंयम के बिना कोई भी व्यक्ति किसी जिम्मेदारी के काम को निभा नहीं सकता। शिक्षा का उनको अच्छे से अच्छा उपयोग करना चाहिए, चरित्र गठन और शरीर सम्पत्ति के साथ-साथ अपने देश की वर्तमान समस्याओं का अध्ययन करना चाहिए तथा जनता के निकट सम्पर्क में आना चाहिए। आज की समस्याएँ नवीन हैं और जनता की अभिलाषाओं को जाने बिना कोई भी कुशल शासक नहीं हो सकता। राष्ट्र के उत्थान के लिए विपुल संख्या में विद्याचरण-सम्पन्न स्त्री-पुरुष चाहिए जो विविध कार्यों में निपुण हों और जिन्होंने सेवा का व्रत लिया हो।

एक प्रश्न हमारे सम्मुख यह है कि किस प्रकार उन निर्धन विद्यार्थियों के लिये उच्च शिक्षा सुलभ कर सकते हैं जिनमें प्रतिभा है और जो अधिकारी सिद्ध हो चुके हैं। उच्च शिक्षा को गरीब अमीर सबके लिए सुलभ होना चाहिए। यह ठीक है कि सभी विद्यार्थी युनिवर्सिटी शिक्षा के अधिकारी नहीं हैं। अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों की बड़ी संख्या इसका प्रमाण है कि विविध शिल्प की शिक्षा प्रदान करने की समुचित व्यवस्था अब तक नहीं हो पायी है। जब ऐसी व्यवस्था हो जायेगी और जीविका के विविध द्वार खुल जायेंगे तब स्वतः ही सब विद्यार्थी युनिवर्सिटी में प्रवेश न लेंगे। किन्तु वे विद्यार्थी जो उसके अधिकारी हों उससे क्यों वंचित रखे जाएं केवल इसलिए कि उनके पास साधनों की कमी है। ऐसे विद्यार्थियों की शिक्षा केवल निःसन्देह ही नहीं होनी चाहिए वरन् उनके भरण-पोषण का भार भी समाज को उठाना चाहिए। विलायत की युनिवर्सिटी में ४१ प्रतिशत विद्यार्थियों को किसी न किसी रूप में सहायता दी जाती है, किन्तु हमारे यहाँ ५ प्रतिशत से अधिक विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा नहीं दी जाती। इस अनुपात में वृद्धि होनी चाहिए। यह तभी सम्भव है जब गवर्नमेण्ट की ग्राण्ट बढ़े और साथ-साथ विश्वविद्यालय अपनी वृद्धि आप करने के उपाय सोचें। गवर्नमेण्ट के सम्मुख अनेक काम है और उनमें से कई समान रूप से आवश्यक है। उसकी आय भी सीमित है। अतः केन्द्रीय गवर्नमेण्ट को युनिवर्सिटी शिक्षा के लिए पर्याप्त धन देना चाहिए और गरीब विद्यार्थियों की सहायता के लिए हमारे प्रान्त के धनवान् सज्जनों को पर्याप्त संख्या में छात्रवृत्ति देनी चाहिए। विद्यादान से बढ़कर कोई दान नहीं है और इसके पाने के सबसे बड़े अधिकारी वह प्रतिभावान विद्यार्थी हैं जो दरिद्रता के कारण अपनी शक्तियों के विकास का अवकाश नहीं पाते। प्रान्त के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्युनिसिपल बोर्डों को भी इस दिशा में कुछ करना चाहिए। उन्हें अपने जिले और शहर के उन विद्यार्थियों में से कुछ को चुनकर छात्रवृत्ति देनी चाहिए जो उसके पात्र हैं।

मैंने कुछ ऐसे प्रश्नों के ऊपर चर्चा की है जो मुझे अत्यन्त आवश्यक मालूम पड़े। किन्तु विश्वविद्यालयों को सफलता तभी मिल सकती है जब अध्यापकों का पुरस्कार ऐसा हो जिससे उनको सन्तोष हो और उनके चित्त की एकाग्रता हो सके। आज वस्तुओं का मूल्य इतना बढ़ गया है कि लेक्चरर का काम आज के वेतन में किसी प्रकार नहीं चल सकता। अतः पुरस्कार में उचित वृद्धि सब वर्ग के अध्यापकों को दी जानी चाहिए, ऐसा होने से ही हमारे अध्यापक दत्तचित्त होकर शिक्षा का काम कर सकते हैं। उचित पुरस्कार के न मिलने से हमारे यहाँ योग्य शिक्षकों की नितान्त कमी है और यह कमी तभी पूरी हो सकती है जब शिक्षकों की आर्थिक अवस्था में सुधार किया जाय। ऐसा करने से ही हम उनको समाज में सम्मान का स्थान दिला सकते हैं।

मैं एक बार फिर उन सब स्नातकों को बधाई देता हूँ जो आज डिग्री ले रहे हैं। विद्यालय में रहकर बौद्धिक और नैतिक शिक्षा उन्होंने प्राप्त की है। उसका उचित उपयोग करने का अब समय आया है। मैं आशा करता हूँ कि जिस किसी क्षेत्र में वह काम करें वह कार्य कुशल सिद्ध होने और अपने व्यवहार और चरित्र से अपने विश्वविद्यालय का गौरव बढ़ायेंगे। मैं उनकी उन्नति की कल्पना करता हूँ और प्रार्थी हूँ कि उनके जीवन में सफलता प्राप्त हो।

सामाजिक संस्कृति और मूलभूत परिवर्तन

आचार्य नरेन्द्र देव जी मार्क्सवाद के अनन्य उपासक, शिक्षाविद, समाज-चिन्तक, उत्तम राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ ही अपनी स्वर्णिम संस्कृति के परम अनुरागी थे। वे एक ऐसे दार्शनिक राजपुरुष थे जो सामाजिक चिन्तन के साथ-साथ स्वदेश के लोगों की प्रगति के लिए क्रान्तिकारी सामाजिक कार्य कलाप को आवश्यक समझते थे। उनका विश्वास था कि सामाजिक विचारों को प्रगतिशील ढंग से सर्जनात्मक कार्य का आधार बनाया जाना चाहिए। उनका राजनीतिक दृष्टिकोण व्यापक तथा उदार था और सामाजिक न्याय के लिए उनके मन में भारी उत्कंठा थी। वस्तुतः नरेन्द्र देव के व्यक्तित्व में सर्जनात्मक चिन्तन, सामाजिक क्रियाशीलता और गहरी संवेदनाओं का अपूर्व समन्वय था।

भारत की सांस्कृतिक विरासत, इसकी धार्मिक मान्यताओं, इसके स्वाधीनता संघर्ष, गांधीजी के नेतृत्व और नेहरूजी की उदारता ने इस देश को मार्क्सवादी अथवा लेनिनवाद के किसी पिटे-पिटाये ढंग के समाजवाद की ओर झुकने से रोका। नरेन्द्र देव जी को इस बात का श्रेय जाता है कि उन्होंने उपयुक्त समय पर देश को मौलिक समाजवादी चिन्तन प्रदान किया तथा उसके लिए कार्य किया।

आचार्य नरेन्द्र देव जी के लिए यह चिन्ता का विषय था कि द्वितीय महायुद्ध के बाद जो मानसिक और आध्यात्मिक महामारी फैली उसने उन मानवीय मूल्यों को नष्ट कर दिया जो कि हमारी थाती थे। अतएव, अपने समाजवादी चिन्तन और दर्शन को उन्होंने विशिष्टता प्रदान की और कहा कि समाजवाद केवल आर्थिक

कार्यक्रम ही नहीं एक सांस्कृतिक आन्दोलन भी है। उनके मत से, भारत वर्तमान समय में एक सांस्कृतिक संकट के दौर से गुजर रहा है। अतएव, इस संकट को दूर करने के लिए सांस्कृतिक धरातल पर उन्होंने एक सम्यक् और सुव्यवस्थित प्रयास किया। स्वभावतः अपने समाजवादी चिन्तन में वह एक ऐसी संस्कृति की कल्पना करते हैं जिसपर केवल कुछ सुविधा सम्पन्न लोगों का एकाधिकार नहीं होगा, वरन् जो प्रत्येक देशवासी को सुखदायी तथा शालीन सांस्कृतिक जीवन के साधन सुलभ करेगी।

आचार्य नरेन्द्र देवजी अपने समाजवादी चिन्तन में नयी अर्थ व्यवस्था के निर्माण के साथ-साथ वास्तविक मानव संस्कृति के नवोदय पर भी उतना ही जोर देते हैं। उनके द्वारा परिकल्पित समाजवाद का उद्देश्य मनुष्य को आवश्यकता के क्षेत्र से अग्रसर करते हुए उसे स्वतन्त्रता के क्षेत्र तक पहुँचाना है अर्थात् एक ऐसे समाजवादी समाज की संरचना जिसमें न केवल लोगों की मौलिक आवश्यकताएँ पूरी होती हैं, वरन् उनके नागरिकस्वत्व या अधिकार भी सुरक्षित हों। इसलिए वह प्रोफेसर हैराल्ड लास्की के इस मत के समर्थक हैं कि क्रान्तिकारी परिवर्तनों के वर्तमान काल में कोई भी देश अपनी स्वतन्त्रता को केवल तभी कायम रख सकता है जबकि वह अपनी जीवन शैली के मूलभूत परिवर्तनों के लिए भी तैयार रहे।

आचार्यजी का मानना था कि किसी भी सांस्कृतिक ढाँचे को अनिवार्य रूप से सामाजिक विकास के साथ-साथ चलना चाहिए। सांस्कृतिक पिछड़ापन सामाजिक विकास के लिए हानिकारक और खतरनाक होता है। उनकी धारणा थी कि समाज का शक्तिशाली वर्ग वह सांस्कृतिक तना-बाना थोप देता है जो उसके हितों के अनुकूल हो। साथ ही, वह ऐसे सांस्कृतिक ताने-बाने को दृढ़ता से कायम रखता है ताकि वह समाज पर अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक पकड़ सदैव बनाये रख सके। विभिन्न वर्गों के सांस्कृतिक आदर्श भी अलग-अलग होते हैं जिससे संस्कृति के क्षेत्र में टकराव भी होते हैं। अपने गम्भीर अध्ययन तथा चिन्तन के आधार पर आचार्यजी ने कहा था "सांस्कृतिक टकराव को सामने देखकर पुरानी सांस्कृतिक व्यवस्था के समर्थक अपने बचाव में आक्रामक हो उठते हैं। बहुसंख्यक जनता की वृत्ति के नाम पर पुरानी व्यवस्था को सही ठहराते हैं और चली आ रही लीक से हटने को ही सामाजिक बुराईयों और सांस्कृतिक उथल-पुथल का कारण बताते हुए उसी लीक पर लौट जाने की वकालत करते हैं। लेकिन सांस्कृतिक वापसी का विचार घातक होता है। इसकी प्रकृति निश्चित रूप से प्रतिक्रियावादी होती है। यह जीवन में ठहराव पैदा करता है, सामाजिक प्रगति के विरुद्ध खड़ा कर देता है और अन्त में सामाजिक गति के दबाव में पड़कर वह टुकड़े-टुकड़े हो जाता है।"

संसार के विभिन्न धर्मों का वैज्ञानिक अध्ययन, उनके संकीर्ण अनुष्ठानों और व्यापक उदार तत्वों के मौलिक भेद का समुचित ज्ञान तथा इतिहास की पृष्ठभूमि

में उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया की जानकारी आचार्य नरेन्द्र देव जी मानव की गतिविधि के समुचित ज्ञान के लिये आवश्यक समझते थे। बहुत से दूसरे कामों में व्यस्त रहने के कारण वे स्वयं इस काम को नहीं कर सके। पर इस सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ लिखा है उससे उनके ऐतिहासिक और मानवतावादी दृष्टिकोण का तथा हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, दर्शन एवं मध्यकालीन सूफी सन्तों की विचारधारा के सम्यक् ज्ञान का पता जरूर मिलता है।

संस्कृत वाङ्मय के प्रसिद्ध विद्वान् तथा अनिश्वरवाद के पोषक पं० लक्ष्मण शास्त्री जोशी की प्रसिद्ध पुस्तक हिन्दू धर्म की समीक्षा की भूमिका में नरेन्द्र देव जी ने स्वीकार किया है कि "प्राचीन काल में धर्म जीवन के सकल अंशों को व्याप्त करता था और वह उन्नति का अच्छा उपकरण था।" आकाशवाणी द्वारा प्रसारित एक वार्ता में उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि संकुचित साम्प्रदायिक भावनाओं और कृतियों से प्रभावित होते हुए भी विशाल हिन्दू धर्म कुछ विशिष्ट उदार धार्मिक भावनाओं और मान्यताओं से अनुप्राणित है जिसके कारण वह किसी एक व्यक्ति को पैगम्बर या गुरु नहीं समझता और स्वीकार करता है कि "लोगों की रुचि भिन्न-भिन्न होती है और विभिन्न मार्गों पर चल कर वह एक लक्ष्य पर पहुँच सकता है।"

धर्म : जड़ता के विरुद्ध संघर्ष

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित एक दूसरी वार्ता में नरेन्द्र देव जी ने यह भी स्वीकार किया है कि हिन्दू धर्म की उदार भावना के कारण "इतिहास के लम्बे काल में भारतीय समाज ने अनेकता में एकता का दर्शन किया है और यह एकता रक्त, रंग, भाषा, वेशभूषा, आचार-विचार और सम्प्रदाय आदि की गणित भिन्नताओं के ऊपर है।" इसी वार्ता में उन्होंने यह भी कहा है कि धार्मिक असहिष्णुता और कट्टरता के विरोधी मुसलमान सूफी और फकीरों तथा हिन्दू साधु सन्तों ने मध्ययुग में साम्प्रदायिक ऐक्य के लिये बड़ा काम किया है। उन्होंने बताया कि इन्होंने "नैतिक शुद्धता और सच्ची भक्ति" पर जोर दिया, और तत्सम्बन्धी प्रदर्शनों तथा विभिन्न आयोजनों को ढोंग की संज्ञा प्रदान की। दोनों धर्मों में निहित अन्ध-विश्वासों का तथा जातपात का खण्डन कर छोटी बड़ी सभी जातियों के लिये मुक्ति का मार्ग खोलकर जनसाधारण के जीवन को ऊँचा उठाया तथा "धर्म के आधार पर दोनों सम्प्रदायों में एकता स्थापित करने के लिए समुचित मंच प्रदान किया।"

आचार्यजी का कहना था कि जब धर्म में जड़ता आ जाती है और उसका विकास रुक जाता है, तब धर्म पर आश्रित समाज भी जड़ और निश्चेष्ट हो जाता है। उनका यह भी कहना था कि "धर्म आज रूढ़ियों और स्थिर स्वार्थों का समर्थक है, वह वर्ग वैषम्य तथा शोषण से ग्रसित समाज को अपने प्रचलित रूप में अखण्ड रखना चाहता है, वह उस आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था का पोषक और समर्थक है जिसमें मनुष्य अपनी पूरी ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकता, अपना

पूर्ण विकास नहीं कर सकता।" मानवतावादी नरेन्द्र देव जी धर्म को मानव की परिपूर्णता में 'बाधक' समझते थे। उनके विचार में धर्म जीवन की ठोस हकीकत से उसे अलग कर ख्याल और वहम् की काल्पनिक दुनिया में उसको नचाता है और उसकी आत्मचेतना को पूर्ण रूप से विकसित नहीं होने देता।

यद्यपि नरेन्द्र देव जी 'निष्काम कर्म' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावनाओं तथा बौद्ध काल की 'अप्रतिष्ठित निर्वाण की कल्पना' को जो साधक को अपने वैयक्तिक मोक्ष की उपेक्षा करते हुए दुःख से आहत जीवों की सेवा करने के लिये प्रेरित करती है, जनकल्याणकारी समझते थे, पर वे धर्म के उन अध्यात्मवादी विचारों और कल्पनाओं को मानव जीवन के विकास में बाधक समझते थे जो बताते हैं कि जीवन एक स्वप्न है, वह मिथ्या है और जो जीवन सागर के निवारण का मार्ग मुक्ति बताते हैं। उनकी धारणा थी कि इस प्रकार के "निराशावादी विचार दर्शन तथा अनुशासन हमारा भला नहीं कर सकते।"

आकाशवाणी की वार्ता में वर्तमान युग के धार्मिक आन्दोलन की चर्चा करते हुए नरेन्द्र देव जी ने कहा कि "पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क में आ जाने के फलस्वरूप हिन्दू तथा इस्लाम धर्मों की शुद्धि के हेतु देश में अनेक सुधारवादी आन्दोलनों का जन्म हुआ जो धर्मों के बिगड़ते हुए रूप को पुनः मौलिक स्तर प्रदान करना चाहते थे, पर इसका परिणाम यह हुआ कि भारत के सभी वर्ग जो एक सूत्र में आबद्ध थे, छिन्न-भिन्न होने लगे। शनैः-शनैः एक दूसरे का अन्तर बढ़ता गया और कुछ दिनों के पश्चात् एक दूसरे के उत्सवों में भाग लेना लोगों ने बन्द कर दिया। इस तरह से धर्मों की शुद्धि की प्रक्रिया ने देश में साम्प्रदायिक पार्थक्य को अधिक गम्भीर बना दिया जिसका दुरुपयोग "छुद्र मनोवृति के राजनीतिज्ञों ने" अपनी उद्देश्य-पूर्ति के लिए इस तरह किया कि उससे साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ने लगा।

इस वैमनस्य को शान्त करने के लिए कतिपय विचारकों और नेताओं ने धर्म के सर्वव्यापी महत्त्व को तसलीम करते हुए सर्वधर्म समन्वय का कार्य प्रारम्भ किया। पर इस प्रक्रिया से भी देश की साम्प्रदायिक समस्या हल नहीं हो सकी। वैमनस्य और अशान्ति बढ़ती ही गयी। आचार्य नरेन्द्र देव प्रभृति विचारक स्वभावतः इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस युग में सर्वधर्म समन्वय द्वारा साम्प्रदायिक समस्या का हल होना असम्भव है, यद्यपि 'शांति की रक्षा' के निमित्त वे धर्म पर निष्ठा रखनेवाले व्यक्तियों का धर्म के उन उदार भाव और तत्वों की ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक समझते रहे जो "सब प्राणियों में अपने को और अपने में सब प्राणियों को देखने के लिये विवश करता है" जो सिखाता है कि "स्वर्ग और मोक्ष-लाभ के अनेक मार्ग हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने धर्म में रह कर मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है" और जिसकी मान्यता है कि "अनुष्ठान, संस्कार सम्प्रदाय-विशेष के चिन्ह विशेष हैं" एवं "चरम लक्ष्य की प्राप्ति" के लिये वे नितान्त आवश्यक नहीं हैं।

आचार्य नरेन्द्र देव का कहना था कि "हमारा यह नवीन युग हमसे वह नया कार्य कराना चाहता है जो वर्तमान धर्म सम्प्रदायों द्वारा पूरा नहीं हो सकता। किसी धर्म समन्वय धर्म से काम नहीं चलेगा, चाहे वह कितना ही प्रबुद्ध और वैज्ञानिक क्यों न हो।" उन्हें तो "धर्म और विज्ञान का कोई युक्त-संगत मेल बैठाना भी असम्भव प्रतीत होता था। वे धर्म निरपेक्षता के आधार पर जीवनोत्कर्ष और सामाजिक विकास के लिये सतत् प्रयत्न आवश्यक समझते थे। उनके विचार में "समाज के प्रश्न धर्म के दामन में छिपाने से हल नहीं हो सकते", राष्ट्रीय भावना तथा जनतन्त्र को सुदृढ़ बनाने के लिये "राजनीति में धर्म का हस्तक्षेप रोकना ही होगा" तथा जीवनोत्कर्ष और सामाजिक विकास के लिये धर्म निरपेक्ष संस्कृति और नैतिकता को विकसित करना आवश्यक समझते थे।

आचार्य नरेन्द्र देव स्वीकार करते थे कि "मनुष्य केवल तर्क से नहीं जी सकता, उसे विश्वास की आवश्यकता होती है।" पर उनके विचार में "यह विश्वास धर्म-निरपेक्ष होना चाहिए। ऐसा विश्वास ही साम्प्रदायिकता को दूर कर सबके लिये समान जीवन ध्येय और सहयोग युक्त प्रयास निर्माण कर सकेगा, भविष्य के लिये आध्यात्मिक आश्वासन प्रदान कर सकेगा।" उनका कहना था कि "लोकतन्त्र और मानव तथा सामाजिक मान के मूल्यांकन इन दो बातों पर विश्वास ही हमारे लिये काफी है। यदि यह विश्वास है तो विज्ञान के बल से हम मानव व्यक्तित्व के उद्देश्य को सिद्ध कर सकते हैं।" उनकी धारणा थी कि "जीवन के नये सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्य प्रेरणा देने के लिये पर्याप्त हैं। इन मूल्यों पर जिनका अटल विश्वास है वह उन पर उसी प्रकार दृढ़ रह सकते हैं जिस प्रकार धार्मिक व्यक्ति दुःख यातना भोगते हुए भी अपने धार्मिक विश्वास पर अटल रहता है। उनके विचार में "सामाजिक लोकतन्त्र हमें वह विश्वास प्रदान करता है जिससे हम जी सकते हैं और अन्त में हम उन कृत्रिम दीवारों को ढाह सकते हैं जो हम लोगों को एक दूसरे से अलग करने के लिये धर्म और जात-पात ने खड़ी की है।"

संस्कृति : चित्त भूमि की खेती

आचार्य नरेन्द्र देव जी कहते हैं कि "संस्कृति चित्त भूमि की खेती है। चित्त को सुभावित करना ही उसको सुसंस्कृत करना है। जीवन और कर्म में 'चित्त की प्रधानता' है। चित्त ही जीवन को सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों से सुभावित और सुवासित करता है", अतः सुभावित चित्त ही मनुष्य के क्रियाकलापों को सुसंस्कृत कर सकता है। उनके विचार में "व्यक्ति के चित्त के साथ-साथ एक लोकचित्त भी बनता रहता है समाज में कई बातों में समानता उत्पन्न होती है। जिन बातों में समानता उत्पन्न होती है उन्हीं के आधार पर लोकचित्त भी बनता है। सामाजिक सम्पर्क का भौगोलिक क्षेत्र सीमित होने के कारण "प्राचीन

काल में एक सुभावित चित्त के लिये इतना ही सम्भव था कि व्यक्तिगत रूप से विश्व के अखिल पदार्थों के साथ तादात्म्य स्थापित करे और जीवन मात्र के लिये मैत्री और अद्वैत की भावना से वासित हो, पर सम्पर्क के साधनों के विस्तार के कारण लोकचित्त के कार्यक्षेत्र का विस्तार हो रहा है, लोकचित्त का राष्ट्रचित्त में विकास हो रहा है, और वह विश्वचित्त, विश्व संस्कृति के रूप में भी प्रकट होने लगा है।

आचार्यजी का कहना था कि "राष्ट्रीयता की प्रबल भावना से प्रेरित हो एक देश की भौगोलिक सीमा के भीतर रहने वाले सभी लोग कुछ बातों में अपनी समानता और एकता का अनुभव करते हैं। एकता की भावना देश की सीमा का भी अतिक्रमण करती है, और एकविश्व की भावना की ओर अग्रसर होती है। आज विविध राष्ट्रों का अपना-अपना लोकचित्त भी है। किन्तु क्योंकि आज एक ही प्रकार के आचार-विचार सारे विश्व में प्रचलित हो रहे हैं इसलिये कुछ बातों में विविध राष्ट्रों के लोकचित्त भी समान होते जाते हैं।

इस तरह नरेन्द्र देव जी के विचार में संस्कृति मानवीय सामाजिक तथा ऐतिहासिक है। वह मानव चित्त की खेती है। वह इतिहास की पृष्ठभूमि में सामाजिक सम्पर्क के सन्दर्भ में समुदाय में मानव द्वारा विकसित और प्रफुल्लित होती है, "लोकचित्त तथा विश्व भावना का एवं सामान्य सामाजिक मान्यताओं और आचार-विचार का रूप धारण करती है।

नरेन्द्र देव जी के विचार में जीवन और संस्कृति दोनों परिवर्तनशील है। स्थिति के बदलने पर दोनों में परिवर्तन होता है। इतिहास के किसी युग में संस्कृति ह्रासोन्मुख होती है तो किसी युग में विकासोन्मुख देश काल के भेद से विचार बदलते रहते हैं, विश्वासों में परिवर्तन होता रहता है। नरेन्द्र देव जी के विचार में इस परिवर्तन का सम्बन्ध सामाजिक विकास से है, आर्थिक संगठन के बदलने से सामाजिक सम्बन्ध बदलते हैं, नवीन उद्देश्यों और आकाँक्षाओं का जन्म होता है, उनकी पूर्ति के लिये नये मूल्यों को स्वीकार करना पड़ता है। जहाँ "बहुत से सामाजिक मूल्य दीर्घकालीन हैं इतिहास ने बार-बार उनकी उपयोगिता सिद्ध कर दी है", वहाँ कुछ दूसरे मूल्य हैं जो जनता को आवश्यकताओं और आकाँक्षाओं से समय-समय पर सृजित होते हैं। राष्ट्र की प्रगति के लिये उन्हें भी अपनाना ही होता है। सामाजिक संसार में "परिस्थिति के बदलने पर ताजे पानी की तरह नई संस्कृति की आवश्यकता होती है अन्यथा जीवन प्रवाह असम्भव हो जाता है।"

आचार्य नरेन्द्र देवजी के विचार में "आदिकाल से मानव जाति का जो विकास हुआ है, मनुष्य ने जो ज्ञानोपार्जन और चिन्तन किया है, उससे जिस संस्कृति की विभिन्न युगों में सृष्टि हुई है, उसका यथार्थ ज्ञान रखने से ही और उस संस्कृति के उपयोगी अंशों को सुरक्षित रखते हुए उसको नया रूप प्रदान करके ही नव संस्कृति का निर्माण हो सकता है।" उनकी धारणा थी कि "इतने

काल के सामाजिक विकास के बाद जो मौलिक मानवीय सत्य प्रतिष्ठित हो गये हैं, उन पर जोर देना, उन्हें समाज के पुनर्निर्माण में उचित स्थान दिलाने का प्रयत्न करना नितान्त आवश्यक है। उनकी अवहेलना करके सभ्य और सुन्दर सामाजिक जीवन नहीं चलाया जा सकता।" इस तरह नरेन्द्र देव जी के विचार में जहाँ काल के प्रवाह से जीर्ण और अनुपयोगी पुराने विचारों का परित्याग जरूरी है, वहाँ "क्षैणिक नैतिकता के नाम पर सभी पुराने आदर्शों और सिद्धान्तों का बहिष्कार" तथा "समाज के दीर्घकालीन अनुभव तथा संचित ज्ञान का अनादर" अनुचित होगा। उनकी राय में हमारा कर्तव्य है कि "हम अपनी संस्कृति का सतर्क और वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करें, उसके जीवनपूर्ण तत्वों की रक्षा करें और आधुनिक विचारों से उनका सामंजस्य स्थापित करें।" नव संस्कृति के निर्माण के लिये पुरानी संस्कृति के सजीव तत्वों की रक्षा के साथ-साथ "जीवन के विकासोन्मुख मूल्यों को अपनाना" तथा "आधुनिक ज्ञान को अधिकृत कर देशकाल के अनुसार उसका प्रयोग करना भी जरूरी है। विचारों के संघर्ष से ही नवीन विचार पल्लवित होते हैं।" "आदान-प्रदान से ही संस्कृतियाँ पुष्ट और ऐश्वरीय हुआ करती हैं। अतः जो लोग नवीन मूल्यों को ग्रहण करने से भागते हैं और विचारधारा सम्बन्धी संघर्ष से घबराते हैं, वे अपने को विकास के पथ से विरत करते हैं।" पश्चिम की देन को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। "उन सामाजिक और राजनीतिक मूल्यों को अपनाना ही होगा जो वर्तमान समाज के लिये अपरिहार्य है।" समाज हित तथा संस्कृति के विकास में विज्ञान का समुचित उपयोग भी नितान्त आवश्यक है।

जहाँ नरेन्द्र देव जी प्राचीन भारतीय संस्कृति के सर्वजनीन सजीव तत्वों का संरक्षण और नवीन संस्कृति में उनका समुचित समावेश आवश्यक समझते थे वहाँ वे प्राचीन संस्कृति के पुनर्जीवन के आन्दोलन को निरर्थक ही नहीं हानिकर समझते थे। उनके विचार में "पुरानी पद्धतियों को पुनः जीवित करने की चेष्टा घातक सिद्ध होगी। नया सामाजिक दृष्टिकोण जिसके विकास की हम लोग चेष्टा करते रहे हैं और जिसके द्वारा ही जनशक्ति प्रदान की जा सकती है, उस प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण से दबा दिया जायगा जो भविष्य की भूतकालीन व्यवस्था का पोषक है।"

आचार्यजी ने डॉक्टर मंगलदेव शास्त्री द्वारा रचित 'भारतीय संस्कृति का विकास-वैदिक धारा' पुस्तक की भूमिका में लिखा कि "भारतीय संस्कृति को तीन दृष्टियों से देखा जाता है। प्रथम परम्परावादियों की संकीर्ण साम्प्रदायिक दृष्टि है और द्वितीय इसके प्रतिवाद स्वरूप आधुनिकतावादियों की दृष्टि है जो सारी प्राचीन परम्परा को अन्धविश्वास और प्रतिक्रियावादी ही मानती है। तृतीय ऐतिहासिक समन्वय की दृष्टि है जो प्राचीन तथा नवीन, प्राच्य तथा पाश्चात्य को ऐतिहासिक दृष्टि से समन्वित करके भारत के विभिन्न समुदायों के धर्मों के योग से भारतीय संस्कृति का स्वरूप निर्मित करती है। स्पष्ट है कि यही वैज्ञानिक दृष्टि संकीर्ण

साम्प्रदायिक भावनाओं और विषमताओं को दूर करके देश के समस्त समुदायों में एक सूत्रता ला सकती है, राष्ट्र में एकात्मकता की भावना उत्पन्न कर सकती है और देश की अनेक नवीन तथा विषम समस्याओं का समाधान कर सकती है।"

संस्कृति की समष्टिवादी अवधारणा

आचार्यजी के विचार में "भारतीय संस्कृति का 'सबसे बड़ा तत्व' विभिन्न जीवन प्रणालियों में एकता और जीवन के हर क्षेत्र में समन्वय स्थापित करना है। वैविध्य और वैभिन्य में एकता का सूत्र हमें सदा से अनुप्राणित करता रहा है।" उनके विचार में भारतीय संस्कृति की दूसरी विशेषता 'नैतिक व्यवस्था की स्थापना' तथा 'आचरण की शुद्धता' है। अपना ख्याल रखते हुए दूसरों का भी ख्याल रखना संस्कृति का मूल मंत्र है। इसीलिये हमारे यहाँ कहा गया कि 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'। यह सामाजिकता और मानवता का मूलमंत्र है। "उसका तीसरा महत्वपूर्ण तत्व विश्व भावना है, 'आत्मौयम्येन' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की शिक्षा है।"

आचार्य नरेन्द्र देवजी का कहना था कि "हमारी संस्कृति के दो पहलू रहे हैं। एक व्यक्तिवादी दूसरा समष्टिवादी अर्थात् विश्वजनीन जब कभी हमने अपनी संस्कृति के सर्वजनीन पहलू पर ध्यान केन्द्रित किया, भारत का गौरव बौद्धिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अधिक बढ़ा। यदि हम विश्व प्रेम की भावना को, जो मानवमात्र के प्रति उपजाति है, फिर अपना लें तो हम अपने देश को उसी स्तर पर पहुँचा सकते हैं।"

इस तरह प्राचीन भारतीय संस्कृति के सर्वथा परित्याग की भावना थी उसके पुनर्जीवन के आन्दोलन का विरोध करते हुए नरेन्द्र देव जी एक ऐसी नयी सभ्यता का निर्माण करना चाहते थे, जिसका रूप रंग देशी हो, जिसमें पुरातन सभ्यता के उत्कृष्ट अंग सुरक्षित रहे और साथ-साथ उनमें ऐसे नवीन अंशों का भी समावेश हो जो आज जगत् में प्रगतिशील हैं और संसार में नवीन आदर्श उपस्थित करना चाहते हैं।

धर्म और संस्कृति का सम्बन्ध

सन् १९५३ ई० में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्वर्ण जयन्ती पर आचार्य नरेन्द्र देव जी द्वारा ऐतिहासिक भाषण दिया गया उसमें उन्होंने भारतीय समाज और संस्कृति पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आज साहित्य का मानदण्ड क्या हो ? इस प्रश्न पर विचार करने के पूर्व जीवन और साहित्य का क्या सम्बन्ध है और जीवन को संचालित करने वाली कौन सी शक्तियाँ हैं, इस पर विचार करना आवश्यक है। आज जनकल्याण, रक्षा, अर्थनीति सभी कुछ राजसत्ता द्वारा संचालित होती है। पहले जो भी स्थिति रही हो, आज राजा (अर्थात् राजसत्ता) वास्तव में काल का कारण है। राजशास्त्र में सभी शास्त्र समा गये हैं। आज हम

राजनीति से अलग नहीं रह सकते। हमारा आशय दलगत राजनीति से नहीं है। हमारा अभिप्राय तो उस उच्चकोटि की राजनीति से है जो जनजीवन की धारा में प्रवाहित होती रहती है और उसे बल प्रदान करती है। राजनीति की इस जीवन्त धारा से कोई भी विचारक या साहित्यस्रष्टा अलग नहीं रह सकता। आज हमारे सामाजिक जीवन में जो संकट, जो अस्त-व्यस्तता दिखायी दे रही है, क्या उससे कोई इनकार कर सकता है ? क्या हमें उसका समाधान ढूँढना नहीं चाहिए ? अर्थनीति के बदलने पर राजनीति में परिवर्तन अवश्यम्भावी है। १९वीं सदी में जब लोग सम्पन्न थे, यह सोचते थे कि विज्ञान से हमारी तरक्की हो सकती है; किन्तु आज इस विचार पर से आस्था उठ गयी है। आज लोग विज्ञान को कोसने लगे हैं किन्तु वास्तविकता यह है कि विज्ञान की प्रगति के साथ अर्थनीति में जैसा परिवर्तन होना चाहिए था, वह नहीं हुआ। सारे संकटों की जड़ में यही वास्तविकता है। पहले अर्थ-क्षेत्र में व्यक्ति को विकास करने की स्वतन्त्रता देने के उद्देश्य से मुक्तव्यापार की नीति का अवलम्बन किया गया। किन्तु, वैज्ञानिक और यांत्रिक विकास से धीरे-धीरे यह स्पष्ट होने लगा कि मुक्तव्यापार की नीति से सारा आर्थिक क्षेत्र कुछ लोगों की मुट्ठी में चला जा रहा है और शेष जनता गरीब और असहाय होती जा रही है। अब समाज में घोर आर्थिक विषमता उपस्थित हो गयी है। अतः सभी प्रकार के अर्थशास्त्री किसी न किसी रूप में नियोजन को स्वीकार करने लगे हैं। आर्थिक जीवन का यह संघर्ष सांस्कृतिक जीवन में भी प्रतिफलित हुआ है। आज की राजनीति में भी आर्थिक, सांस्कृतिक समस्याएँ गुँथ गयी हैं। कौन ऐसा साहित्यकार होगा जो चतुर्दिक व्याप्त इस संघर्षद्व, असन्तुलन और असामंजस्य से मुँह मोड़ सके ? उसे इसका सामना करना ही होगा। संघर्ष को समाप्त कर सामंजस्य स्थापित करना जैसे सबका कर्त्तव्य है, उसी प्रकार साहित्य-क्षेत्र में साहित्यकार का भी यही परम कर्त्तव्य है।

साहित्य और समाज के सम्बन्ध को समझने के लिए व्यक्तिगत मानस और लोक मानस दोनों पर विचार होना चाहिए। जो एकान्त जीवन व्यतीत कर रहा है, उसे मानव-भावना की क्या आवश्यकता है। उसमें प्रेम, आदर आदि मानवीय गुण नहीं आ सकते। मानवीय गुणों की सृष्टि समाज में ही होती है, और अन्ततः मानवीय भावनाएँ ही साहित्य की उपलब्धि हैं। इस प्रकार साहित्य और समाज का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

साहित्य का दूसरा पहलू यह है कि वह व्यक्तिगत प्रयत्न का परिणाम है। यहाँ व्यक्ति का महत्व स्पष्ट हो जाता है। संसार में शुरू से ही दो प्रकार की विचारधाराएँ चलती रही हैं। एक के अनुसार व्यक्ति समाज के लिए है और दूसरे के अनुसार समाज व्यक्ति के लिए है। असल में इन दोनों विचारधाराओं में सन्तुलन होना चाहिए। इसी सन्तुलन से ही मानवता का कल्याण सम्भव है। सामाजिक नियमों का प्रतिपालन किये बिना व्यक्ति का विकास नहीं हो सकता और व्यक्ति की महत्ता को मिटाकर समाज भी समृद्ध नहीं हो सकता। राम, कृष्ण,

गांधी, प्लूटो, न्यूटन, विवेकानन्द जैसे व्यक्तियों को मिटाकर क्या समाज विकास कर सकता है ? समाज के विकास के लिए विभूति से सुशोभित मानव चाहिए। यह अवश्य है कि किसी में शरीर और किसी में प्रतिभा की शक्ति होगी। दोनों प्रकार की शक्तियों का सम्मान होना चाहिए। इन दोनों के सहयोग से ही समाज की स्वस्थ रचना हो सकती है। ऐसे वातावरण का निर्माण होना चाहिए जिसमें इन दोनों शक्तियों का पूर्ण विकास हो सके। किसी भी हालत में आत्माभिव्यक्ति का दमन न होना चाहिए। इससे समाज नष्ट हो जायगा। साहित्य सजग आत्माभिव्यक्ति का ही दूसरा नाम है।

विचारों के संघर्ष से ही नवीन विचार पल्लवित होते हैं, और सत्य का पता चलता है। मनुष्य ने धीरे-धीरे प्रकृति पर विजय प्राप्त की। एक प्रकार से विज्ञान का जयघोष हुआ। नये विचारों और विज्ञान की इस जययात्रा से मानव-कल्याण तभी सम्भव है जब व्यक्ति मानव-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर कार्य करें। यदि उनके कार्यों के पीछे करुणा की, मैत्री की भावना न होगी तो वह ध्वंस में ही लगेगा। आज मानव विकास की उस अवस्था पर पहुँच गया है जहाँ वह उच्च से उच्चतर और उत्कृष्ट होता जायेगा। मानव की आत्मा के विकास के लिए इस बात की परख होनी चाहिए कि उसके प्रयत्नों से समाज कहाँ तक सुसंस्कृत और सभ्य बना है। अधिकाधिक ऐसे मानवों को जन्म देना हमारा प्रधान कर्त्तव्य है जिनसे मानवता सुसंस्कृत बने। इसके लिए व्यक्तिगत प्रतिभाओं को विकास का अनुकूल वातावरण मिलना चाहिए।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि अब तक राष्ट्र दरिद्र है, उसमें वर्ग विषमता का विष व्याप्त है, ऐसे वातावरण का निर्माण कैसे हो सकता है ? मनुष्य ने विज्ञान का जो विकास किया है उसका लाभ उठाकर इस विषमता को दूर किया जा सकता है। प्राविधिक ज्ञान और औद्योगिक विकास को सुनियोजित कर हम समता और समृद्धि का युग ला सकते हैं। समता का यह तात्पर्य नहीं कि सारा जनसमाज सम हो जाएगा, एक-सा हो जाएगा। ऐसा साम्य तो प्रलय है। समता का वास्तविक अर्थ हर व्यक्ति के लिए ऐसे समान अनुकूल वातावरण का निर्माण करना है जिसमें वह अपनी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक क्षमता का पूर्णतया विकास कर सके। उसे अपना सर्वांगीण विकास करने में किसी प्रकार की बाधा न हो। राष्ट्र का वातावरण ऐसा हो जिसमें पापी-से-पापी का भी सुधार हो सके। हम सबको समान प्रतिभाशाली नहीं बना सकते, किन्तु जो प्रतिभाएँ आज प्रतिकूल परिस्थितियों में पड़कर मर रही हैं, उन्हें जिला सकते हैं, उन्हें पनपने का मौका दे सकते हैं। दरिद्रता का अभिशाप दूरकर हम लाखों करोड़ों आदमियों को सुसंस्कृत बना सकते हैं। इससे हमारा राष्ट्र आगे बढ़ेगा।

कोई भी विचारक समाज के निरन्तर विकास की उपेक्षा नहीं कर सकता। मानव-समाज आदिमयुग से बराबर प्रगति कर रहा है। इस प्रगति में बराबर समय-समय पर नये-नये आध्यात्मिक मूल्यों की सृष्टि हुई है। पूर्व में विकास की

अपनी परम्परा रही है, किन्तु पश्चिम ने जो कुछ किया है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। कोई भी सजग चिन्तक पश्चिम की देन को अस्वीकार नहीं कर सकता। विज्ञान के क्षेत्र में भाषण, लेखन और संघटन के क्षेत्र में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए पश्चिम के लोगों ने जो संघर्ष किया है वह मानवता के इतिहास में अभूतपूर्व है। उससे मानव चेतना का जैसा प्रसार हुआ है—जिन नये मूल्यों की सृष्टि हुई है—भारतीय साहित्यकार की प्रतिभा उससे प्रणोदित हुए बिना नहीं रह सकती।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणापत्र को देखने से पता लगेगा कि मानवसमाज आरम्भिक युगों से कितना आगे बढ़ा है। उसमें निखिलविश्व के मानवसमाज के मूलभूत अधिकारों की रक्षा का जैसा आश्वासन दिया है, वह उसके पूर्व सम्भव न था। उसमें पहली बार मानवसमाज के संघटन और प्रगति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा हुई है। यह दूसरी बात है कि अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का खतरा बना हुआ है, किन्तु इससे राष्ट्रसंघ के घोषणा पत्र का ऐतिहासिक महत्त्व कम नहीं हो जाता। सारे संसार का मानवसमाज एक ही है—विश्व के राष्ट्रों द्वारा इसकी घोषणा से मानवता के एक नये युग का आरम्भ हो गया है। अब मनुष्य इसके पीछे नहीं लौट सकता।

नये मानवसमाज की समस्त उदीयमान शक्तियों के पीछे राष्ट्रसंघ के घोषणापत्र में उद्घोषित मानवमात्र के ऐक्य की भावना की प्रेरणा है। वे उदीयमान शक्तियाँ हमारे युग की देव शक्तियाँ हैं। इनसे लड़नेवाली आसुरी शक्तियाँ भी मौजूद हैं, किन्तु देव शक्तियों की विजय ध्रुव है। हमारे साहित्य में इन्हीं देव शक्तियों का तेज व्यक्त होना चाहिए। आज का साहित्यकार, अतिराष्ट्रीयतावाद, वर्ग वैषम्य, सामाजिक ऊँचनीच की भावना, धार्मिक और साम्प्रदायिक संकीर्णता का कट्टर शत्रु है। उसमें अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापित करने की नयी उत्सुकता जग चुकी है। उसके सामने नये मानव-समाज का स्वप्न है। उसे मूर्तरूप देने तथा व्यक्तिगत और सामाजिक आचार-विचार में नये मानव की प्रवृत्तियों को साकार करने के लिए वह सतत प्रयत्नशील हैं। इससे कौन इनकार कर सकता है कि नये मानव का यह स्वप्न पश्चिम के विज्ञान और प्राविधिक प्रगति के कारण ही सम्भव हो सका है। पश्चिम की वैज्ञानिक प्रगति को अपनाकर भी क्या हम दो सौ वर्ष पूर्व के वही पुराणपंथी बने रह सकते हैं ?

हमें नये जीवन के लिए नये उद्देश्य स्थिर करने होंगे। हमारे देश की बहुत ऊँची संस्कृति रही है। हमारी संस्कृति में वे सभी तत्त्व मौजूद हैं जिनसे हम नवयुग और नवमानव का निर्माण कर सकते हैं। हमारी संस्कृति का सबसे बड़ा तत्त्व विभिन्न जीवन-प्रणालियों में एकता और जीवन के हर क्षेत्र में समन्वय स्थापित करना है। विशाल भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत अनेक छोटी-छोटी संस्कृतियाँ हैं, किन्तु उनमें एकतानता है। इसीप्रकार धर्म के भी अनेक स्वरूप हैं सनातन, आर्य, जैन और बौद्ध। इनमें उपासना का भेद है, उत्सव, पर्व और

साधना का भेद है, किन्तु इस भेद के होते हुए भी कुछ मुख्य बातों में अद्भुत एकतानता और समरसता मिलती है। वैविध्य और वैभिन्य में एकता का जो सूत्र है वह हमें सदा से अनुप्राणित करता रहा है। हमने जीवन में इतने प्रयोग किये हैं कि पश्चिम के प्रयोग से हमें लाभ ही होगा, किसी प्रकार की क्षति नहीं हो सकती। हम पश्चिम के उच्च तत्त्वों को अपनी संस्कृति में सहज ही आत्मसात कर सकते हैं। आदान-प्रदान से ही संस्कृतियाँ पुष्ट और ऐश्वर्यमय हुआ करतीं है। हमें आदान-प्रदान का द्वार बन्द न करना चाहिए।

भारतीय संस्कृति की दूसरी विशेषता नैतिक व्यवस्था की स्थापना है। जीवन के सफल संचालन और स्वस्थ विकास के लिए एक न एक प्रकार की नैतिक व्यवस्था आवश्यक है। कर्मफल में विश्वास प्रकट कर मानवीय कर्म को सहज ही महान लक्ष्य की ओर प्रेरित करने के उद्देश्य से भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की प्रतिष्ठा हुई है। मोक्ष को हमारे यहाँ सर्वोच्च पुरुषार्थ माना गया है। मोक्ष से तात्पर्य मनुष्य की आध्यात्मिक और बौद्धिक मुक्ति से है। योग के बिना कोई मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता। योग से तात्पर्य मन की समाहित अवस्था और प्रवृत्तियों पर नियंत्रण से है। हमारे यहाँ के सभी सम्प्रदाय, चाहे वे आत्मवादी हों या अनात्मवादी, इस विचारसरणि पर एकमत हैं। उन सबका गन्तव्य एक ही है—मानव की मुक्ति। कर्मफल की वासना न रखते हुए और शुभ कर्म करते हुए मोक्ष की ओर निरन्तर बढ़ते जाना यही भारतीय संस्कृति का मूलाधार है।

हमें यह न भूलना चाहिए कि विभिन्न धर्मों के योग से ही विशाल भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ है। जैन और बौद्ध धर्म को नास्तिक कहकर उसकी उपेक्षा करने की वृत्ति हमें छोड़नी पड़ेगी। यूरोपीय संस्कृति, यूनानी कला और साहित्य तथा रोमन-विधानों से बनी है। यूनानी और रोमन संस्कृति पर भी भारतीय संस्कृति की छाप पड़ी है। स्वतन्त्र भारत में प्राचीन भारत की खोज होनी चाहिए। इस खोज से हमें पता चलेगा कि एशियाई महाद्वीप में हमने अपने विचारों को फैलाया था—राजनीतिक और आर्थिक प्रभुत्व प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया था। यह हमारा सांस्कृतिक वैशिष्ट्य है, हमारी अमूल्य सम्पदा है। यदि हम इस सम्पदा के सच्चे उत्तराधिकारी बनना चाहते हैं तो हमें अपने सांस्कृतिक गुणों को कायम रखने के लिए लगन और निष्ठा से अध्यवसाय करना होगा।

अतीत के प्रति मोह होना चाहिए, आदर होना चाहिए, किन्तु अन्ध-विश्वास नहीं होना चाहिए। आज के युग में जो किसी प्रकार की संकीर्णता से आबद्ध रहना चाहता है, वह आज के संसार का नागरिक होने के अयोग्य है। हमारी संस्कृति का एक बड़ा सन्देश आचरण की शुद्धता है। किसी देश में काव्य, शास्त्र, दर्शन का बहुत प्रचार होने पर भी यह आवश्यक नहीं है कि वहाँ के लोगों के पारस्परिक आचरण भी शुद्ध हों। अपना ख्याल रखते हुए दूसरों का भी ख्याल रखना संस्कृति का मूल है। मनुष्य एक-दूसरे के साथ की खोज में बड़े-बड़े

संघटन बनाने की ओर प्रवृत्त हुआ। भोजन और विवाह बहुत जरूरी चीजें हैं। इसके लिए दूसरों से सम्पर्क स्थापित करना होता है और इसप्रकार समाज की रचना होती है। दूसरों के सुख-दुःख का ध्यान रखे बिना मानव-समाज ही नष्ट हो जाएगा। इसीलिए हमारे यहाँ कहा गया है कि 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'। यह सामाजिकता का और मानवता का मूलमंत्र है। यदि हम दूसरों का दोष देखने की आदत छोड़ दें तो हमें अपने दोष दिखायी देने लगेंगे और हम अपना सुधार कर सकेंगे। इसप्रकार से सारे समाज का सुधार हो जाएगा। इसलिए हमारी संस्कृति में आत्म-निरीक्षण पर बहुत ज्यादा जोर दिया गया है।

भारतीय संस्कृति की इस पृष्ठभूमि में ही हम भारत के साहित्यकारों का कर्त्तव्य निर्धारित कर सकते हैं। दृढ़ संकल्प और विशाल हृदय से ही भारत में नये मानव का जन्म होने पर हमारे आश्रय की परावृत्ति होगी, भारत का कायाकल्प होगा। नये मानवों के लिए ही नया भारत बना है। सत्साहित्य ने हमेशा से ही आश्रय की परावृत्ति का महान् उत्तरदायित्व वहन किया है, भविष्य में भी उसे इसका भार वहन करना होगा।

संस्कृत वाङ्मय का महत्त्व

काशी संस्कृत महाविद्यालय के समावर्तन संस्कार के अवसर पर आचार्य नरेन्द्र देव जी ने दीक्षान्त भाषण दिया। उसमें उन्होंने संस्कृत वाङ्मय का महत्त्व बताते हुए कहा कि काशी भारत का सबसे प्राचीन नगर और विद्यापीठ है। इसकी शिक्षा की परम्परा अक्षुण्ण रही है और यह सदा से भारतीय संस्कृति और संस्कृत-विद्या का प्रधान केन्द्र रहा है। आज भी इसका सारे देश में आदर है। काशी के इस संस्कृत महाविद्यालय ने विशेष रूप से प्रसिद्धि प्राप्त की है। इस विद्यालय को अनेक प्राच्य और प्रतीच्य विद्वानों ने सुशोभित किया है और यह उन्हीं की प्रकाण्ड विद्वत्ता और साधना का फल है कि इस विद्यालय की कीर्ति समस्त भारतवर्ष में फैल गयी है। स्थापना के आरम्भ काल से ही इस संस्था का एक उद्देश्य संस्कृत ग्रन्थों का संग्रह करना भी रहा है और इस उद्देश्य में इसको विशेष रूप से सफलता मिली है। डॉक्टर वेनिस के उद्योग से सन् १६१४ ई० में ग्रन्थागार के लिए 'सरस्वती भवन' की स्थापना हुई थी और यह हर्ष का विषय है कि इस पुस्तकालय में हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकों की संख्या ५०,००० से अधिक है। यह संग्रह विशेष रूप से उल्लेखनीय है और सरस्वती भवन से जो ग्रन्थमाला प्रकाशित होती है उसमें अब तक इस संग्रह के दो-सौ उपादेय ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

मैं अपने को भाग्यशाली समझता हूँ कि मैंने इस विद्यालय के प्रिंसिपल डॉक्टर वेनिस, पं० केशवशास्त्री और प्रो० नार्मन से संस्कृत, प्राकृत, पाली तथा पुरातत्व की शिक्षा प्राप्त की थी तथा इस महाविद्यालय के म० म० गोलोकवासी श्रीरामशास्त्री तैलंग और पं० जीवनाथ मिश्र से अलंकारशास्त्र तथा न्याय का अध्ययन

भी किया था । भारतीय संस्कृति और प्राचीन इतिहास के प्रति जो मेरी श्रद्धा थी वही मुझको यहाँ खींच लायी थी । उस काल का स्मरणकर मुझे आज भी अपूर्व आनन्द होता है, क्योंकि इन विद्वानों के चरणों में बैठकर मैंने अपनी प्राचीन संस्कृति का थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त किया था और आधुनिक आलोचना और अन्वेषण के प्रकार का अध्ययन किया था । जो व्यक्ति अपनी ज्ञान-परम्परा तथा अतीत के इतिहास का ज्ञान नहीं रखता वह सभ्य और शिष्ट नहीं कहला सकता, क्योंकि वर्तमान का मूल, अतीत में है और बिना उसको जाने वर्तमान काल के सामाजिक जीवन में बुद्धिपूर्वक सहयोग करना कठिन है । अतः मैं इस संस्था का अत्यन्त ऋणी हूँ । एक और दृष्टि से भी उन दिनों की स्मृति बड़ी मधुर है । जो विदेशी विद्वान् यहाँ अध्यापन का कार्य करते थे, वह संस्कृत विद्या के परम अनुरागी थे और उन्होंने इस महाविद्यालय के पंडितों से प्राचीन शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया था । इस कारण यहाँ का वातावरण अन्य विद्यालयों से सर्वथा भिन्न था ।

यह प्रसन्नता का विषय है कि प्रान्त की गवर्नमेण्ट ने इस विद्यालय को संस्कृत विश्वविद्यालय का रूप देने का निश्चय किया है । अब समय आ गया है कि इस संस्था का लक्ष्य अधिक व्यापक और समय के अनुरूप बनाया जावे । भारतीय और प्रतीच्य विद्वानों के सहयोग से संस्कृत वाङ्मय का उद्धार हो रहा है । इस शुभ कार्य का श्रीगणेश यूरोपीय विद्वानों ने किया था । किन्तु गत ३० वर्षों में भारतीय विद्वानों ने अपूर्व उत्साह और लगन से अन्वेषण और शोध के कार्य में विशिष्ट भाग लिया है । राजनीतिक चेतना के साथ-साथ राष्ट्रीय आधार पर सांस्कृतिक जीवन को आश्रित करने का भी प्रयत्न किया गया है । प्राचीन इतिहास और संस्कृति के अध्ययन में विशेष अभिरुचि उत्पन्न हो गयी है और भारतीय विद्वानों ने पाश्चात्य शिक्षा द्वारा अन्वेषण की वैज्ञानिक पद्धति को सीखकर साहित्य, भाषा, धर्म तथा सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन किया है ।

आज भी इस कार्य में यूरोपीय विद्वान् योगदान दे रहे हैं । किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि स्वतन्त्र होने पर हमारा उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया है । हमारा कर्त्तव्य है कि संस्कृत विद्या के अध्ययन को हम पाठ्यक्रम में विशिष्ट स्थान दें और अन्वेषण के कार्य को प्रोत्साहन दें । आधुनिक युग के दो महापुरुषों के कारण तथा अपनी प्राचीन संस्कृति के कारण हमारा संसार में आदर है । यह खेद का विषय होगा यदि हम इस आवश्यक कर्त्तव्य की ओर उचित ध्यान न दें और संस्कृत वाङ्मय की रक्षा और वृद्धि के प्रति उदासीनता दिखावें । संस्कृत वाङ्मय आदर और गौरव की वस्तु है और उसका विस्तार और गाम्भीर्य हमें चकित कर देता है । हमको उसका उचित गर्व होना चाहिए । संस्कृत संसार की सबसे प्राचीन आर्य भाषा है जिसका वाङ्मय आज भी विद्यमान है । ऋग्वेद हमारा सबसे प्राचीन ग्रन्थ है । रामायण और महाभारत संसार के अनुपम और बेजोड़ काव्य हैं । यही हमारी संस्कृति की मूलभित्ति है । अनेक नाटक और काव्यों की सामग्री इन्हीं ग्रन्थों से उपलब्ध हुई है । महाभारत वेद के समान पवित्र माना

जाता है। महाभारत हमारी प्राचीन संस्कृति का भण्डार है। इसमें प्राचीन आचार-विचार, रीति-नीति, आदर्श और संस्थाओं का इतिहास उपनिबद्ध है। यह दर्पण के समान है जिसमें प्राचीन भारत का जीवन प्रतिबिम्बित होता है। काल की दृष्टि से रामायण एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसलिये वाल्मीकि को आदिकवि कहते हैं। इसमें माधुर्य और प्रसाद गुण है और यह उत्तम काव्य का प्रतिमान समझा जाता है।

इसीकारण रामायण और महाभारत के अनेक संस्करण हैं। रामोपाख्यान यवद्वीप, बाली द्वीप सुमात्रा, कम्बोडिया, चम्पा, स्याम, चीन और तिब्बत में प्रचलित था। यवद्वीप की रामायण के कुछ अंश भक्तिकाव्य का अनुवाद है और कुछ अंश उसके आधार पर लिखे गये हैं। तिब्बत में जो रामायण का संस्करण प्राप्त हुआ है उसकी कथा रामायण की कथा से भिन्न है। जैनियों में भी रामायण के दो संस्करण हैं—एक वाल्मीकि का अनुसरण करता है, दूसरा बौद्ध कथा से प्रभावित है। इसीप्रकार महाभारत की कथा भी किसी न किसी रूप में वृहत्तर भारत के कई देशों में प्रचलित थी। भारतीय भाषाओं ने तुलनात्मक भाषाविज्ञान को जन्म दिया है। व्याकरणशास्त्र भी इस देश में चरम विकास को पहुँचा है। रूसी विद्वान् श्चेरवात्सकी के शब्दों में पाणिनी की अष्टाध्यायी मानवीबुद्धि की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से है।

उपनिषदों की विचारधारा और साधना संसार के अलभ्य रत्नों में से है। भारत में जिन विशिष्ट विचारधाराओं ने जन्म लिया है उन सब का मूल स्थान उपनिषदों में है। उपनिषद् के वाक्यों में गाम्भीर्य, मौलिकता और उत्कर्ष पाया जाता है और वह प्रशस्त, पुनीत और उदात्तभाव से व्याप्त है। मैक्समूलर का कथन है कि उपनिषद् प्रभात के प्रकाश और पर्वतों की शुद्ध वायु के समान है। जिसप्रकार जब हिमानी से पुण्यसलिला भगवती भागीरथी उद्‌गत होकर पर्वतमाला में घूमती हुई प्रवाहित होती है तब उनमें स्नान करने से बाह्य और अभ्यन्तर की विशुद्धि होती है और एक क्षण के लिए ऐसी प्रतीति होती है मानो सकल वासना का क्षय हो गया हो, सकल शरीर प्रीतिरस से आप्लुत और सकल चित्र कुशल चेतना की भावना से वासित और व्याप्त हो गया हो, उसीप्रकार उपनिषद्वाक्यों में अवगाहन कर एक नया चैतन्य और एक नयी प्रेरणा मिलती है। यह वाक्य कभी बासी नहीं होते, कभी पुराने नहीं पड़ते। यह सदा नूतन और सदा नवीन हैं। उपनिषद् वह स्तम्भ है जिसपर प्रतिष्ठित संस्कृत विद्या और भारतीय संस्कृति का दीपक सदा प्रकाश देता रहता है। यही हमारी अचल निधि है, यही हमारा जय स्तम्भ है।

संस्कृत वाङ्मय की व्यापकता भी अद्‌भुत है। इसके अन्तर्गत अनेक शास्त्र और विद्याएँ हैं। इसकी धारा अविच्छिन्न रही हैं। संस्कृत वाङ्मय में मैं पाली और प्राकृत का भी समावेश करता हूँ। एक समय था कि जब संस्कृत का विशाल क्षेत्र था। मध्यएशिया से लेकर दक्षिण पूर्व एशिया के द्वीपों तक संस्कृत का

अखण्ड राज्य था । उस समय विविध सम्प्रदायों के विद्वान् संस्कृत में ही ग्रन्थ रचना करते थे और शास्त्रार्थ भी संस्कृत में होता था । इस विशाल क्षेत्र पर भारतीय संस्कृति का अपूर्व प्रभाव पड़ा था । यवद्वीप का प्राचीन साहित्य संस्कृत पर आश्रित था और स्याम, लंका, मलय, जावा, हिन्द-चीन आदि की भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव आज भी स्पष्ट है । इसी काल में भारतीयों ने इन द्वीपों में उपनिवेश बसाये थे । मध्यएशिया में बौद्धधर्म के साथ-साथ भारतीय भाषा, लिपि, दर्शन और कला भी गयी थी । तिब्बत का बौद्ध वाङ्मय भारतीय और भोट के पंडितों के सहयोग से तिब्बती भाषा में अनूदित हुआ था और तिब्बती लिपि भी भारत की देन है । आज भी तिब्बत के मठों में प्राचीन संस्कृत के ग्रन्थ पूजे जाते हैं । दिङ्नाग का 'न्यायमुख' और 'आलम्बन परीक्षा', धर्म कीर्ति का 'प्रमाणवार्तिक' आदि कई प्रसिद्ध ग्रन्थ वहाँ से उपलब्ध हुए हैं । महापंडित श्रीराहुल सांकृत्यायन तिब्बत के मठों से ५१० हस्तलिखित् संस्कृत पोथियों की सूची लाये हैं । अनेक भारतीय ग्रन्थ मध्यएशिया में पाये गये हैं । सिकिआंग का प्रान्त जो आज रेगिस्तान है, एक समय हराभरा प्रदेश थां और उसके नगरों में बौद्धों के अनेक विहार और चैत्य थे, जहाँ समृद्ध पुस्तकागारं और कला की वस्तुएँ थीं । इस स्थान पर अनेक भाषाओं का समागम और मिलन होता था । इस प्रदेश से संस्कृत, प्राकृत तथा अन्य अपरिचित भाषाओं के ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं । स्टाइन ने भारत की ओर से खोज का काम किया था । पुराने विहारों के भग्नावशेष से बौद्ध मूर्तियाँ तथा रेशम, कागज और कपड़ो पर अनेक चित्र प्राप्त हुए हैं । इन खोजों से एक विलुप्त सभ्यता का पता चला है । तुर्फान, कूचा, खुतन और अन्य स्थानों से विपुल सामग्री प्राप्त हुई है । यह ग्रन्थ भूर्जपत्र, कागज, चमड़ा या लाकड़ी पर लिखे गये हैं । इनकी लिपि गुप्तकालीन अथवा खरोष्ट्री है । बौद्धों के संस्कृत आगम के कई ग्रन्थ यहाँ पाये गये हैं तथा मातृचेट के दो प्रसिद्ध स्तोत्र-ग्रन्थ भी मिले हैं जिनकी प्रशंसा चीनी पर्यटक इत्सिंग करता है । यहीं से अश्वघोष के नाटकों के अंश प्राप्त हुए हैं । खुतन का राजकाज भारतीय भाषा में होता था और यहाँ के राजाओं के नाम भारतीय थे । काशगर का प्राचीन नाम अग्निदेश था । कूचा से ही बौद्धधर्म चीन गया था । प्रसिद्ध कुमार जीव कूचा का ही अधिवासी था । कूचा की संस्कृति भारतीय थी । यहाँ तंत्र-व्याकरण का अध्ययन होता था ।

अफगानिस्तान में सन् १६२२ ई० से प्राचीन खुदाई का काम हो रहा है । हड्डा में अनेक स्तूप, चैत्य और मूर्तियाँ पायी गयी हैं । वामियान में बुद्ध की विशाल मूर्तियाँ तथा भित्तिचित्र मिले हैं । यहाँ पर भूर्जपत्र पर लिखित संस्कृत ग्रन्थ भी मिले हैं । यह महासांधिक विनय ग्रन्थ तथा महायान के अभिधर्म ग्रन्थों के अंश हैं । काबुल के उत्तर-पश्चिम खैर खानिह पर्वत पर एक मन्दिर के भग्नावशेष मिले हैं जो गुप्तकालीन मन्दिर की रचना का स्मरण दिलाते हैं । यहाँ श्वेत संगमरमर की सूर्य की एक प्रतिमा भी मिली है जो चतुर्थ शताब्दी की है ।

कम्बोडिया (कम्बुज देश) जो हिन्दचीन में समाविष्ट है ६०० वर्ष तक

भारतीय संस्कृति का एक केन्द्र रहा है। यहाँ संस्कृत के लेख पाये गये हैं। यहाँ के स्थापत्य में विष्णु, राम और कृष्ण की कथाएँ संचित हैं। भारतीय कला का सौन्दर्य यहाँ निखरा है।

कहाँ तक कहें दूर-दूर प्रदेशों में भारतीय ग्रन्थ पाये गये हैं। मैक्समूलर के एक जापानी शिष्य ने जापान के एक मन्दिर में सुखावती व्यूह की पोथी पायी थी। चीन और मंगोलिया में बौद्ध-धर्म के साथ-साथ भारतीय संस्कृति भी गायी थी। चीन के साहित्य का अध्ययन करने से भारत के सम्बन्ध में बहुत सी बातें विदित होंगी। कुछ काल पहले चीनी पर्यटक च्वंगच्वंग को गया के संघाराम के आचार्य द्वारा लिखित पत्र और उसका उत्तर प्रकाशित हुआ था। इस सम्बन्ध में यह नहीं भूलना चाहिए कि बौद्ध-धर्म भारतीय था और उसकी संस्कृति भारतीय थी। अवैदिक होते हुए भी बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म का कर्म तथा कर्मफल में विश्वास था और दोनों नास्तित्ववाद का खण्डन करते थे। पुनः भारत के सब मोक्षशास्त्र, चिकित्साशास्त्र के तुल्य चतुर्व्यूह हैं। हेय, हान, हेयहेतु और हानोपाय यह चार सब मोक्षशास्त्रों के प्रतिपाद्य है। यही चार व्यूह योग सूत्र में हैं। न्याय के यही चार अर्थपद हैं अर्थात् पुरुषार्थ स्थान है। बुद्ध के यही आर्य सत्य हैं। इन्हीं चार अर्थपदों को सम्यक् रीति से जानकर निःश्रेयस की अथवा निर्वाण की प्राप्ति होती है। सब अध्यात्म विद्याओं में इन चार अर्थपदों का वर्णन पाया जाता है। सभी शास्त्र समान रूपसे स्वीकार करते हैं कि तत्त्वज्ञान अर्थात सम्यक्-दर्शन योग की साधना के बिना नहीं होता। न्यायदर्शन में कहा है कि समाधि विशेष के अभ्यास से तत्त्व साक्षात्कार होता है।

यह आत्म संस्कार की विधि है। जन्मान्तर में उपचित धर्म प्रविवेक से योगाभ्यास का सामर्थ्य उत्पन्न होता है। यह धर्म वृद्धि की पराकाष्ठा को प्राप्त होता है और उसकी सहायता से समाधि-प्रयत्न प्रकृष्ट होता है तब समाधि विशेष उत्पन्न होता है। वैशेषिक सूत्र में भी कहा है कि आत्म कर्म से मोक्ष होता है। आत्म-कर्म के अन्तर्गत श्रवण, मनन, योगाभ्यास, निदिध्यासन, आसन, प्राणायाम और शम दम हैं। योग की साधना बौद्ध, जैन दोनों धर्मों में पायी जाती है। प्राणायाम से काम और चित्त की प्रश्रब्धि होती है और जिस प्रकार न्यायशास्त्र प्राणायाम और अशुभ संज्ञा की भावना को विशेष महत्त्व देता है उसी प्रकार बौद्धागम में भी उनको विशिष्ट स्थान दिया गया है। इनसे काम राग का प्रहाण और नाना प्रकार के अकुशल वितर्कों का उपशम होता है। मैत्री भावना का भी माहात्म्य विशिष्ट है। इस प्रकार योग की साधना वैदिक तथा अवैदिक धर्मों को एक सूत्र में बाँधती है और यह साधना सबको समान रूप से तभी स्वीकार हो सकती थी जब सबके भौतिक विचारों में भी किसी न किसी प्रकार का सादृश्य हो। मेरीं धारणा है कि विविध सम्प्रदायों के होते हुए भी यदि हमारे देश में धर्म के नाम पर रक्तपात नहीं के तुल्य हुए हैं तो उसका एक कारण यह भी है कि इनकी मोक्ष की साधना

समान रही है और जिस युग में भक्तिमार्ग का प्रभाव बढ़ा उस युग में बौद्धधर्म में भी भक्ति और उपासना का प्राबल्य था।

मैंने इसका उल्लेख इस कारण किया कि कहीं आप बौद्ध और जैन आगम की उपेक्षा न करें। इन ग्रन्थों में भारतीय समाजशास्त्र के इतिहास के लिए प्रचुर सामग्री मिलती है और बौद्ध तथा जैन विद्वानों ने न्याय, दर्शन, व्याकरण और काव्य के विकास में विशिष्ट भाग लिया है।

ऐसे भारतीय वाङ्मय का संरक्षण तथा प्रचार करना हमारा आपका कर्त्तव्य होना चाहिए। मैंने भारतीय संस्कृति के विस्तार का यत्किंचित् विवरण इस कारण दिया जिससे हमारे स्नातकों को इसकी समृद्धि और मूल्य का ज्ञान हो।

यह कार्य इस महाविद्यालय का प्रधान लक्ष्य होना चाहिए। किन्तु यह कार्य तब तक सम्पन्न नहीं हो सकता जब तक हम आलोचना और गवेषणा की आधुनिक पद्धति को न स्वीकार करें। अन्वेषण के कार्य के लिए यहाँ वृहत् आयोजन करना होगा। हम अपनी निधि की रक्षा और उसका मूल्यांकन ठीक-ठीक नहीं कर सकेंगे। जब तक संस्कृत विश्वविद्यालय में संस्कृत के साथ पाली, प्राकृत, चीनी, भोट तथा कतिपय पाश्चात्य भाषाओं की शिक्षा की व्यवस्था न की जायगी। पुनः आज नवीन शास्त्रों का उदय हुआ है और प्राचीन विद्याएँ विकसित होकर प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हुई हैं। अनुसंधान के कार्य के लिए इनमें से जिन शास्त्रों और विद्याओं का जितना ज्ञान आवश्यक हो उतना हमारे विशेषज्ञों को प्राप्त करना चाहिए। उदाहरण के लिए भाषाविज्ञान के सिद्धान्तों को जाने बिना हम प्राचीन ग्रन्थों का कई स्थल पर ठीक-ठीक अर्थ नहीं लगा सकते। वैदिक साहित्य को समझने के लिए अनेक जातियों के सांस्कृतिक इतिहास का तथा उनकी भाषा का जानना भी आवश्यक है। भारत में अनेक जातियाँ समय-समय पर आती रही हैं जो भारतीय समाज में घुल-मिल गयी हैं। उनके आचार-विचार का प्रभाव आर्यों की संस्कृति पर पड़ा है। उत्तर-पश्चिम में अनेक धर्म और संस्कृतियों का मिलन तथा परस्पर आदान-प्रदान हुआ है। वहाँ की कला पर यूनानी और ईरानी कला का प्रभाव पड़ा था। गान्धार में अनेक शैलियों का विकास हुआ था और उनकी पूर्ण निष्पत्ति खुतन, कूचा, तुर्फान आदि कला के प्रसिद्ध केन्द्रों में हुई थी। इस प्रदेश में बौद्ध-धर्म का संस्पर्श ईरानी, मागी आदि धर्मों से हुआ था। अतः इस युग के धर्म और संस्कृति के इतिहास को जानने के लिए इन विविध धर्मों और संस्कृतियों का ज्ञान आवश्यक है। भारतीय समाजशास्त्र की रचना के लिए आज केवल इतना पर्याप्त नहीं है कि हम विविध ग्रन्थों के आधार पर तथ्यों का संग्रह करें, किन्तु साथ-साथ पश्चिम के समाजशास्त्र, नृतत्त्व आदि उपयोगी शास्त्रों में प्रतिपादित सिद्धान्त तथा उनमें एकत्र की हुई सामग्री को जानना भी आवश्यक है।

इस महाविद्यालय में इस कार्य के लिए अनेक सुविधाएँ हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि आपके पास एक वृहत पुस्तकालय है जिसमें हस्तलिखित और मुद्रित ग्रन्थों का अच्छा संग्रह है। हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र तैयार किया

जा रहा है और प्राचीन पुस्तकों के प्रकाशन की भी व्यवस्था की गयी है। काशी संस्कृत-शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र है और प्राचीन शैली के अनेक विद्वान् यहाँ प्रवचन करते हैं। नवीन शैली के संस्कृत विद्वानों के सहयोग की परम आवश्यकता है। पिछले ३० वर्षों में जिन भारतीयों ने संस्कृत विद्या के उद्धार का स्तुत्य कार्य किया है उनमें अधिकांश वही हैं जिन्होंने पश्चिम के गवेषणा के प्रकारों को सीखा है और जिन्होंने नये ढंग से शिक्षा प्राप्त की है। इनके सहयोग से यहाँ के स्नातक भी इस कार्य के लिए तैयार किये जा सकते हैं। इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। मैं जब काशी में विद्यार्थी था तब संस्कृत कालेज के कुछ शास्त्री फ्रेंच, जर्मन, पाली आदि पढ़ा करते थे और उनको छात्रवृत्ति दी जाती थी। किन्तु उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी। अब इसी कार्य को बड़े पैमाने पर करने की आवश्यकता है। इसके लिए इन भाषाओं के अध्यापन तथा छात्रवृत्ति की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

अपने प्राचीन ग्रन्थों के प्रामाणिक संस्करण भी अभी नहीं निकल पाये हैं। महाभारत जैसे प्राचीन ग्रन्थ का कोई प्रामाणिक संस्करण न हो यह कितनी लज्जा की बात है। किन्तु भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट इस कमी को पूरा कर रहा है। इसका आरम्भ सन् १९१९ ई० में हुआ था और आज भी यह कार्य समाप्त नहीं हुआ है। यह कार्य जितना कठिन और महान् है उतना ही उसका महत्त्व भी है। अशुद्ध पाठ के आधार पर जो विविध निष्कर्ष निकाले गये थे वह सदोष पाये गये हैं। जब आदिपर्व का वैज्ञानिक संस्करण सन् १९३३ ई० में प्रकाशित हुआ था तब उस पर संसार के विद्वानों ने बड़ा संतोष प्रकट किया था और उसे संस्कृत भाषा विज्ञान के इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना बताकर डॉ० सुकृथंकर की प्रशंसा की गयी थी। आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति की जानकारी के बिना यह महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं हो सकता था। पुराणों में भी शोध का बहुत काम करना है। हस्तलिखित पोथियों की खोज भी जारी रहनी चाहिये और उनकी रक्षा का उचित विधान होना चाहिए। विज्ञान की सहायता के बिना यह साधारण सा कार्य भी नहीं हो सकता। जो पोथियाँ जीर्ण-शीर्ण हो रही हैं उनकी रक्षा का एकमात्र उपाय उनका चित्र लेना है। माइक्रोफिल्म और फोटोस्टेट कैमरा की सहायता से यह कार्य सुकर हो गया है। इस सम्बन्ध में मुझे एक निवेदन करना है कि गवर्नमेण्ट की इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में संगृहीत भारतीय पुस्तकों की वापसी की चेष्टा करनी चाहिए। समाचारपत्रों से ज्ञात होता है कि ऐसी कुछ चेष्टा की जा रही है। यदि यह सत्य है तो यह परम सन्तोष का विषय है। इंग्लैण्ड के अतिरिक्त अन्य देशों में जो ग्रन्थ गये हैं उनका चित्र प्राप्त करने का प्रयत्न होना चाहिए। एक ऐसा भी कानून बनाना चाहिए कि भारत से बाहर कोई प्राचीन ग्रन्थ-चित्र या कला की वस्तु न भेजी जावेगी।

मेरी संस्कृत विश्वविद्यालय की कल्पना यह है कि यहाँ प्राचीन शास्त्रों के स्वाध्याय प्रवचन के साथ-साथ गवेषणा की पूरी व्यवस्था की जाय और इस सम्बन्ध

में जिन भाषाओं और नवीन शास्त्रों की शिक्षा की आवश्यकता हो उसका भी प्रबन्ध किया जाय। इस गवेषणा के कार्य में पुरातन और नवीन शैली दोनों के विद्वानों का सहयोग प्राप्त किया जाय तथा विद्यालय से निकले हुए आचार्यों को छात्रवृत्ति देकर अन्वेषण के कार्य के लिए तैयार किया जाय। यहाँ ऐसी भी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे अन्य विश्वविद्यालयों के विद्वान् यहाँ आकर अनुसन्धान के कार्य में योग दे सकें। किन्तु इस व्यवस्था से पूरा लाभ तभी होगा जब यहाँ के पाठ्यक्रम में उचित परिवर्तन किये जायेंगे। आज के युग में पुरानी पद्धति की संस्कृत की शिक्षा तभी अपने उद्देश्य को चरितार्थ कर सकती है जब शास्त्रों की शिक्षा के साथ-साथ मौलिक शिक्षा की भी व्यवस्था की जाय। प्रत्येक विद्यार्थी को, केवल अपनी जीविका का ही उपार्जन नहीं करना है, किन्तु उसे एक नागरिक के कर्त्तव्यों का भी पालन करना है और इससे भी बढ़कर उसे मनुष्य बनना है, और मनुष्य भी पुराने युग का नहीं, आज के युग का। जब समाज ने अपने सामंजस्य को खो दिया है, जब विचारों में संघर्ष चल रहा है और एक प्रकार की अनिश्चितता है जिसके कारण जीवन के प्रति कोई स्पष्ट और उत्कृष्ट दृष्टि नहीं बन पाती। वह मनुष्य क्या है जो अपनी मातृभाषा के साहित्य से परिचित नहीं है, जो एक शास्त्र का विशेषज्ञ होने के लोभ में अपने साहित्य और कला की अमर कृतियों की उपेक्षा करता है ? वह मनुष्य क्या है जो संसार के इतिहास से अपरिचित है जिसको वर्तमान समस्याओं और घटनाओं का ज्ञान नहीं है ? वह अपने विषय का विशेषज्ञ हो सकता है। यदि वह विज्ञान का विद्यार्थी है तो वह कुशल शिल्पी हो सकता है, यदि वह संस्कृत का शास्त्री या आचार्य है तो वह पौरोहित्य या अध्यापन का कार्य कर सकता है, किन्तु दोनों दूसरों का उपकरण ही बन सकते हैं और समाज और राजनीति के संचालन में वह अपने को असमर्थ पाते हैं। इसका कारण यह है कि वह अपने धन्धे को जानते हैं, किन्तु शिक्षा और जीवन के परम उद्देश्य को नहीं जानते। उनकी दृष्टि व्यापक नहीं है और न उनकी शिक्षा का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उनको जीवन के विविध क्षेत्रों के लिए सामान्य रूप से तैयार करें। इसलिये प्रत्येक विद्यार्थी के लिए ऐसी पाठ्य पद्धति होनी चाहिए जिसके द्वारा यह सामान्य किन्तु परम आवश्यक ज्ञान उसको दिया जा सके। इस दृष्टि से डॉ० भगवान दास समिति के अभिस्तावों तथा निष्कर्षों का मैं सामान्य रूप से स्वागत करता हूँ। नवीन विषयों के समादेश की बात तो दूर रही, वर्तमान प्रणाली के अनुसार संस्कृत वाङ्मय का भी एकांगी अध्ययन ही हो पाता है।

अतः पाठ्यक्रम के क्षेत्र को दो प्रकार से हमें विस्तृत करना चाहिए। एक संस्कृत विद्या की पाठ्य-विधि को व्यापक और सर्वांगीण बनाना। दो पाठ्य-विधि में आधुनिक विषयों का यथा हिन्दी, इतिहास, भूगोल, राजशास्त्र, गणित का समावेश करना। साथ-साथ विद्यार्थियों में तुलनात्मक और आलोचनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति उत्पन्न करनी चाहिए। इन सिद्धान्तों के आधार पर पाठ्य-पद्धति का पुनर्निर्माण होना चाहिए, किन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ज्ञान के गाम्भीर्य में कमी

न हो तथा गाम्भीर्य की रक्षा करते हुए आवश्यक मात्रा में उसका विस्तार भी हो। जितना आधुनिक ज्ञान एक साधारण विद्यार्थी के लिए नितान्त आवश्यक है उतना तो संस्कृत पाठशालाओं के छात्रों को भी अर्जित करना चाहिये।

मैं एक दूसरे आवश्यक कार्य की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ, यह है संस्कृत वाङ्मय का हिन्दी में अनुवाद। यदि हिन्दी भाषा में हमारे प्राचीन ग्रन्थ रत्नों का अनुवाद प्रस्तुत हो तो इससे भारतीय संस्कृति के प्रचार में बड़ी सहायता मिलेगी। आधुनिक भाषाओं की आप उपेक्षा नहीं कर सकते। सारा राज-काज इन्हीं भाषाओं में होने जा रहा है। धीरे-धीरे राष्ट्रभाषा विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हो जायेगी। आपको मातृभाषा का तिरस्कार नहीं करना चाहिये। अब वह समय नहीं रहा जब किसी लेखक या कवि से प्रश्न किया जाय कि तुम संस्कृत का परिहार कर हिन्दी में गद्य या काव्य रचना करने में क्यों प्रवृत्त हुए हो। इसका उत्तर राजशेखर और तुलसीदास जी दे गये हैं। राजशेखर के अनुसार संस्कृतबंध पुरुष है और प्राकृतबंध सुकुमार है। वह आगे चलकर कहते हैं कि उक्ति विशेष ही काव्य है, भाषा चाहे जो हो। राजशेखर के समय में संस्कृत काव्य कृत्रिम और क्लिष्ट हो गया था, यह उसके ह्रास की अवस्था थी। रामायण, महाभारत, महाभाष्य और शंकरभाष्य की शैली भुला दी गयी थी, काव्य का प्रसाद गुण विलुप्त हो गया था। भामह का कहना है कि काव्य को क्लिष्ट और दुरूह नहीं होना चाहिए, उसके समझने के लिए किसी टीका की आवश्यकता न होनी चाहिये। वह इतना सरल हो कि साधारण पढ़े लिखे लोग, बालक और स्त्रियाँ भी उसे समझ सकें। गद्य का प्राण ओज है। जब संस्कृत किसी वर्ग की भी बोलचाल की भाषा न रह गयी तो उसमें कृत्रिमता का आ जाना स्वाभाविक है। तब पांडित्य-प्रदर्शन ही एकमात्र काव्यरचना का उद्देश्य रह गया और काव्य हृदयग्राही न रहा। माधुर्य और प्रसाद गुण मातृभाषा के साहित्य में ही सुगमता के साथ आ सकता है। अतः मातृभाषा में साहित्य सृजन करने में हमको गौरव का अनुभव करना चाहिये।

मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार यह बताने की चेष्टा की है कि संस्कृत विश्वविद्यालय का क्या उद्देश्य और क्या कार्यक्रम होना चाहिये। यहाँ मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि इस विश्वविद्यालय में उन सब विषयों के अध्ययन की व्यवस्था साधारणतः करने की कोई आवश्यकता नहीं है जिनका प्रबन्ध अन्य विश्वविद्यालयों में होता है। वहाँ का पठन-पाठन राष्ट्रभाषा में होगा। अतः जिनको उन विषयों की शिक्षा लेनी है वह वहाँ जा सकते हैं। इसकी सुविधा अवश्य होनी चाहिए किन्तु संस्कृत विश्वविद्यालय का एक विशेष लक्ष्य है जिसकी पूर्ति अन्य विश्वविद्यालयों में नहीं हो रही है। एक प्रकार से यह विद्यालय भी है और प्राच्य विद्या के अन्वेषण का एक प्रतिष्ठान भी है। ज्ञान राशि अनन्त है, उसकी सीमा नहीं है। इधर अनेक नवीन शास्त्रों की प्रतिष्ठा हुई है और ज्ञान का विस्तार इतना बढ़ गया है कि बिना अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के गवेषणा का कार्य दुष्कर हो गया

है। ज्ञान के सदृश दूसरी पवित्र वस्तु नहीं है। अतः विदेशियों से उसके लेने में संकोच नहीं होना चाहिए। प्राचीन काल में भी हमने स्वाध्याय और प्रवचन में कृपणता नहीं दिखायी थी। आज भी हमको उसी उदारबुद्धि तथा व्यापकदृष्टि से काम लेना चाहिए। इसी में हमारा मंगल है। इसी प्रकार भारत की सर्वतोमुखी प्रतिभा का उन्नयन होगा।

संस्कृत का आदर और सम्मान अधिकाधिक बढ़ता जायगा। संसार के प्रत्येक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय में संस्कृत की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया गया है। पाश्चात्य जगत् के विद्वान् गवेषणा के कार्य में हमसे कहीं आगे बढ़े हुए हैं, उनमें ज्ञान की पिपासा है, जहाँ से ज्ञान मिल सकता है वहाँ से लेने में उनको तनिक भी संकोच नहीं होता। हममें या तो मिथ्या गर्व और चित्तोद्रेक है अथवा आत्मावसाद है। दोनों का परिहार कर संस्कृत वाङ्मय के संरक्षण और प्रचार में हमको प्राणपण से लग जाना चाहिये। जो विद्यार्थी अपनी शिक्षा समाप्त कर उपाधि ले रहे हैं उनका इस विषय में विशेष उत्तरदायित्व है।

मैं जानता हूँ कि किस विषम परिस्थिति में आप स्नातक अपना पठन-पाठन करते हैं। प्रवाह के विरुद्ध होते हुए भी आप संस्कृत विद्या की रक्षा में जो लगे हुए हैं यह स्तुत्य है। आपके जीविका निर्वाह के लिए कुछ अन्य वृत्तियों का द्वार अब खुल जाना चाहिए। केवल पौरोहित्य और अध्यापन की वृत्तियाँ पर्याप्त नहीं हैं। इस दृष्टि से भी पाठशालाओं की पाठन विधि में परिवर्तन करना आवश्यक प्रतीत होता है। पाठ्य ग्रन्थावली संशोधन समिति ने अपने निश्चयों में इस बात का भी ध्यान रखा है। आपकी आर्थिक अवस्था को सुधारना तथा आपको देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये समर्थ बनाना समाज का कर्त्तव्य है।

इतने विद्यार्थियों को विविध उपाधि और पदवियों से विभूषित होते देखकर मुझे प्रसन्नता होती है। मैं आपका शुभचिन्तन करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि आप समाज में अपनी योग्यता के अनुरूप स्थान पाकर शीघ्र कार्य में नियुक्त हो जायेंगे और जो प्रतिज्ञाएँ आज आपने स्वीकार की हैं उनकी सदा रक्षा करेंगे।

जिस युग में हम रह रहे हैं उसकी अपनी विशेषता है। हमारी सभ्यता पर आधुनिक विज्ञान का गहरा प्रभाव पड़ा है। आज संकुचित विचारधारा से हमारा कल्याण नहीं हो सकता है। हमारी दृष्टि साम्प्रदायिक और प्रान्तीय न होकर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय होनी चाहिए। हममें इन हीन प्रवृत्तियों से ऊपर उठने का सत्साहस और सद्विवेक होना चाहिये। प्राचीन संस्कृति के उत्कृष्ट अंशों की रक्षा करते हुए हमको आधुनिक युग के सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों को अपनाना होगा। राष्ट्रीय एकता के लिए किसी विशेष भाषा या लिपि का अनुचित पक्षपात छोड़कर केवल राष्ट्रहित से प्रेरित होना होगा। जनतन्त्र की भावना से प्रेरित होकर हमको सब कार्य करने होंगे। हमारा चिन्तन वैज्ञानिक होगा और हम ज्ञान की निरन्तर वृद्धि करते रहेंगे। जिस कुशल चेतना से प्रेरित होकर प्राचीन ऋषियों ने सकल समाज के कल्याण के लिए सत्पथ का उद्घाटन किया था उसी कुशल

चेतना की भावना कर उन्हीं आर्य और उदात्त भावों से प्रेरित होकर हम आज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्रती हों और बहुजन समाज के हित सुख का विधानकर अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति के लिए यत्नवान् हों। तभी हम अपना कल्याण और विश्व का कल्याण कर सकेंगे। तभी संसार में शांति, तुष्टि और पुष्टि होगी। आशा है कि आप इप्सित फल प्राप्त करेंगे और संस्कृत विश्वविद्यालय का यह शुभ-संकल्प विद्वज्जनों का सहयोग प्राप्त कर सफल होगा।

निष्कर्ष

आचार्य नरेन्द्र देवजी का व्यक्तित्व बहुआयामी था। कोई भी सच्चा समाजवादी जब समाज परिवर्तन की बात सोचता है तो उसकी दृष्टि में समाज का हर पक्ष रहता है। आचार्यजी राजनैतिक क्रान्तिकारी और सामाजिक विचारक के साथ-साथ शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में भी बहुत ही आगे बढ़कर सोचने वाले थे। मूलतः वे एक शिक्षक ही थे। काशी विद्यापीठ, लखनऊ विश्वविद्यालय एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अध्यक्ष और उपकुलपति के पदों पर रहने के साथ शिक्षा में सुधार के लिए गठित कितनी ही समितियों के भी वे अध्यक्ष रहे। इसलिए हर स्तर की शिक्षा के बारे में उनके बड़े ही स्पष्ट विचार थे। वे स्वतन्त्रता सहित सारे मूल्यों की रक्षा के लिए इस देश को शिक्षित करने में विश्वासी थे तथा उनकी यह आकाँक्षा बड़े ही मानवीय धरातल पर स्थापित थी।

शिक्षा के साथ-साथ परम्परा से प्राप्त सांस्कृतिक मूल्यों के विकास के लिए भी वे निरन्तर चिन्तित रहा करते थे। इतिहास का उन्होंने गहन अध्ययन किया था और इस क्षेत्र में पं० नेहरूजी सहित सभी भारतीय राजनेता उनका आदर करते थे। लेकिन इस समस्त ज्ञान और सांस्कृतिक चेतना को कुछ हाथों में सँजोकर रखना नहीं चाहते थे—वे उसे जन-जन की सांस्कृतिक चेतना में विकसित देखना चाहते थे और यही उनका सांस्कृतिक समाजवाद था।

चतुर्थ अध्याय

समाज व्यवस्था-परिवर्तन

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। यह अपने गुण के अनुसार व्यक्ति, समाज एवं विज्ञान सभी क्षेत्र में दिखाई पड़ता है। यह परिवर्तन कभी समाज में शुभ के प्रतीक होते हैं, तो कभी अशुभ के। परिवर्तन की क्रिया एक क्षण के लिए भी विश्राम नहीं करती। यह सदैव क्रियाशील रहती है। मनुष्य बच्चे के रूप में जन्म लेता है और शिशु, किशोर, युवा, वृद्धावस्था को प्राप्त करते हुये मृत्यु का आलिंगन करता है। प्रत्येक क्षण उसमें परिवर्तन होता रहता है। इसीप्रकार हर क्षेत्र में परिवर्तन होता रहता है।

समाज भी इस परिवर्तन की प्रक्रिया से बच नहीं पाता। उसमें भी अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। समाज में होनेवाले परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। परिवर्तन की ही भाँति सामाजिक परिवर्तन भी सतत् होता रहता है। सामाजिक परिवर्तन की धारण बहुत वृहद है। स्थान, समय और सन्दर्भ के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक संरचना के अन्दर होने वाले परिवर्तन के पुंज को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। चूँकि यह अवधारणा इतनी वृहद है इसलिए कुछ अस्पष्ट, अन्तरिम और मूल्य तटस्थ है। आचार्य नरेन्द्र देव जी ने सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन हेतु कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने कहा कि सामाजिक परिवर्तन में वर्गसंघर्ष और सत्याग्रह अहम् भूमिका निभा सकते हैं और सामाजिक परिवर्तन इन्हीं के द्वारा सम्भव है।

वर्गसंघर्ष की महत्वपूर्ण भूमिका

वर्गसंघर्ष एकांगी दृष्टिकोण नहीं रखता। यह युद्ध की तकनीक मात्र ही नहीं है। इसकी दृष्टि रचना की ओर उन्मुख है। वह क्रान्ति जो कल्पना को लेकर होती है, रचना की क्रान्ति होती है। वर्गसंघर्ष रचना की क्रान्ति है। समाजवादी इसका नेतृत्व ही वर्गविहीन समाज रचना को लाने के लिए करता है। श्रमिक, किसान, शोषित के लिये यह संघर्ष ही शिक्षाकेन्द्र है। इसी में उनका चरित्र और वे रचना की कल्पना करते हैं और उनको साकार करने के हेतु अन्याय का अन्त करने के लिए संघर्षरत होते हैं। समाज जिन कारणों से आज त्रस्त और दुःखी है उससे उसकी रक्षा करना बहुत ही बड़ा काम है। समाजवादी समाज में निर्माण के लिए शोषण, दोहन और उत्पीड़न का अन्त आवश्यक है। यह तभी सम्भव होगा जब न तो कोई शोषक होगा न कोई शोषग का व्यापार

होगा। वर्ग स्थिति को मिटाना होगा। समाज में परस्पर विरोधीहित होगा ही नहीं। सकल समाज स्वचालित इकाई बनकर सहयोग के आधार पर स्वच्छन्दतापूर्वक समता के समाज का निर्माण करने लगता है। तब समाज की प्रेरकभूमि निजी लाभ नहीं समाज की सुख वृद्धि होती है। समाजवादी के लिए वर्गसंघर्ष समाजवाद की मंजिल तक पहुँचने के लिए अत्यन्त उपयोगी और अनिवार्य है। इस संघर्ष के द्वारा वह समाज में व्याप्त शोषण, दोहन, उत्पीड़न और सामाजिक अन्याय को समाप्त करता है। इस संघर्ष के द्वारा शोषण के प्रति समाज में विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है। इस संघर्ष द्वारा श्रमिक जनता संगठित होती है, कष्ट की लपटों के बीच संघर्षशील समूह का चरित्र निर्माण होता है, वह समूह तथा समूह हित के प्रति ज्ञानवान होता है।

आचार्य नरेन्द्र देव के अनुसार समाज में विकास उसकी आन्तरिक असंगतियों के जरिये होता है। यह असंगतियाँ जब अपनी चरमसीमा पर पहुँच जाती हैं तो सामाजिक क्रान्ति घटित होती है। समाज को तरक्की की एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर ले जाने वाली कोई रहस्यमयी शक्ति नहीं, बल्कि यही सामाजिक क्रान्ति होती है। अब तक के सामाजिक ढाँचे में जोकि शोषक और शोषित वर्गों के आधार पर संगटित रहा है, यह क्रान्ति वर्गसंघर्ष को चरमसीमा पर पहुँचने पर ही घटित होती रही है।

वर्गसंघर्ष का इस प्रकार का पहला उदाहरण हमें पुराने जमाने के गुलामों और उनके मालिकों के बीच में मिलता है। आजकल के मजदूरी पानेवाले गुलाम यानी मजदूर श्रेणी के लोग जिसतरह अपने को भलीभाँति सुसंगठित करके लड़ते हैं, पुराने जमाने के गुलामों की लड़ाई ठीक इसी तरह की नहीं पायी जाती, क्योंकि आजकल के मजदूर की तरह वे लोग बड़े-बड़े कारखानों में बड़ी तादाद में काम न करके अलग-अलग व्यक्तिगत रूप से अपने-अपने मालिकों के यहाँ काम करते थे। ऐसी हालत में उनपर जो अत्याचार होता था वह उन्हें तत्कालीन आर्थिक रचना का अवश्यम्भावी परिणाम मालूम नहीं होता था। कितने ही मालिक अपने गुलामों के साथ दयालुता का व्यवहार भी करते थे, अतः स्वभावतः गुलाम-लोग इस भ्रम के शिकार हो जाते थे कि उनपर होनेवाला अत्याचार स्वामी विशेष के निर्दय स्वभाव का ही परिणाम है। किन्तु गुलामों में चेतना का संचार होने के मार्ग में इस कठिनाई के होते हुए भी वर्गसंघर्ष बढ़ता ही गया और समाज में भयंकर विद्रोह हुए। दास क्रान्ति का प्रमुख उदाहरण प्राचीनकाल के रोम में देखने को मिलता है। दासता की प्रथा प्राचीनकाल के भारत में भी पायी जाती थी और यह प्रथा पूरी तरह से अंग्रेजी राज्य के आने के बाद ही समाप्त हुई है।

उन्होंने कहा कि दासप्रथा की समाप्ति के बाद हम सामन्तवादी युग में आते हैं। इस जमाने में भूमि के स्वामी सामन्तों और उनके लिए दास का काम करने वाले कृषक दासों के बीच वर्गसंघर्ष चलता है। आरम्भ में किसानों का क्रोध छिटपुट उत्पातों के रूप में ही प्रदर्शित होता है। वे व्यापक पैमाने पर किसी

विप्लव का संगठन नहीं कर पाते । पुराने जमाने के गुलामों की तरह इन किसानों के मालिक भी अलग-अलग होते हैं और किसानों को अलग-अलग खेतों पर काम करना पड़ता है । आरम्भ में किसानों के विद्रोहों का अलग-अलग स्थानों में छोटे पैमाने पर छिटपुट रूप से होना स्वाभाविक है । किन्तु आगे चलकर बार-बार अकाल पड़ने से और किसानों की आबादी बढ़ने से जब किसानों का कष्ट पराकाष्ठा पर पहुँच जाता था और जमीन का पाना उनके लिए जीने मरने का सवाल बन जाता था तब यह वर्गसंघर्ष व्यापक और उग्ररूप धारण करता था । किसान वर्ग यह अनुभव करने लग जाता था कि सामन्तवादी-वर्ग से छीनकर और सामन्त-शाही के स्थान पर किसानों का राज्य कायम करके ही उनकी समस्या हल हो सकती है । किसानों के व्यापक विद्रोहों के कुछ मुख्य उदाहरण जर्मनी का कृषक युद्ध, रूस का 'पूकोगाफ विद्रोह' और चीन का 'ताइपिंग विद्रोह' है ।

आचार्यजी ने कहा कि किसान आन्दोलन के प्रेरक आदर्श किसानों को आगे देखने की अपेक्षा पिछले जमाने की ओर देखने को बाध्य करते हैं । किसान-वर्ग सामन्तवर्ग के हाथ से जमीन तो जरूर छीनने को तैयार हो जाता है, किन्तु जब विप्लव के बाद समाज के पुनसंगठन का सवाल आता है तो वह पुराने जमाने की व्यवस्था को ही फिर से चालू करने की कोशिश करता है । पुराने जमाने में गाँवों का प्रबन्ध पंचायतों के जरिये होता था । खेती का प्रबन्ध भी पंचायतें करती थीं । गाँवों की जमीन पर व्यक्तियों का अलग-अलग स्वामित्व न होकर पंचायत का ही स्वामित्व समझा जाता था । इन पंचायतों को सुविधानुसार जमीन का किसानों में फिर से बँटवारा करने का अधिकार था । फ्रांस में इस-प्रकार की पंचायतों को कम्यून और रूस में उन्हें मीर कहते थे । भारत में भी खेती की यह पंचायती प्रथा पायी जाती थी । जिन स्थानों में इस पंचायती प्रथा की परम्परा किसानों के दिमाग में ताजी रही है वहाँ के किसान विद्रोह के बाद फिर से इसी पंचायती प्रथा को लाना चाहते रहे हैं ।

किसानों का उद्देश्य राजतंत्र का विनाश भी नहीं था । इसके विपरीत धार्मिक विचारों में रंगे होने के कारण वे राजा को ईश्वर का अवतार समझते थे और उनका विद्रोह भी प्रायः ऐसे ही व्यक्तियों के नेतृत्व में चलता था जोकि किसानों में यह घोषणा करते थे कि ईश्वर ने उनके मन में नये बनने की प्रेरणा की है । यूकोगाफ और ताइपिंग विद्रोह के नेता इसी प्रकार के थे ।

परिवर्तन में किसानों की महत्त्वपूर्ण भूमिका

उन्होंने कहा कि किसानों के विद्रोह दूसरे देशों की तरह हिन्दुस्तान में भी होते रहे हैं, किन्तु उनके श्रृंखलाबद्ध इतिहास के ठीक-ठीक न मिल सकने का कारण यह है कि हमारे यहाँ ऐतिहासिक घटनाओं का नियमित रूप से वृत्तान्त रखने की प्रथा नहीं रही है । इसके अतिरिक्त बहुत-सी बातें सरकारी कागजात के भीतर ही छिपी हैं जिनकी ठीक-ठीक छानबीन अंग्रेजी हुकूमत के हटने के बाद

ही की जा सकती है। विभिन्न प्रान्तों के जिले के गजेटियरों की छानबीन करने पर किसानों के अनेक विद्रोहों का पता चलता है, विशेषकर गुजरात और बिहार के भील, सन्थाल आदि आदिम निवासी जाति के किसानों द्वारा। इन विद्रोहों के नेता भी अक्सर ऐसे ही लोग होते थे जो यह कहते थे कि उन्हें किसी खास देवी से विद्रोह करने की प्रेरणा मिली है। मुस्लिम शासन तथा ब्रिटिश शासन के आरम्भिक काल में इसप्रकार के अनेक विद्रोहों का वर्णन मिलता है।

आचार्यजी ने कहा कि किसानों के विद्रोह ने पुरानी व्यवस्था को नष्ट करके नयी व्यवस्था की स्थापना करनेवाले आधारभूत युद्ध का रूप तभी धारण किया जबकि सम्पत्तिजीवीवर्ग ने भी इस युद्ध में हाथ बँटाया। सम्पत्तिजीवी या पूँजीवादी श्रेणी के विकास के मार्ग में सामन्तवादी प्रथा किस प्रकार बाधक थी और यहकि इस श्रेणी के हितों की रक्षा और वृद्धि तभी हो सकती थी जबकि सामन्तशाही वर्ग के हाथ से निकलकर राजनीतिक प्रभुत्व इस वर्ग के हाथ में आ जाय। सम्पत्तिजीवी-वर्ग ऐसा नया उठता हुआ वर्ग था जिसके सदस्यों की संख्या बहुत थोड़ी थी। ऐसी हालत में यह वर्ग पुराने सामन्त-वर्ग की ताकत खत्म करके अपनी ताकत उसी हालत में कायम कर सकता था जबकि सामन्तशाही-वर्ग के साथ लड़ने में समाज के दूसरे वर्गों अर्थात् किसानों और कारीगरों आदि को भी वह अपनी ओर मिला सकता। यही कारण है कि सम्पत्तिजीवी वर्ग ने समता, स्वतंत्रता और भ्रातृभाव के नारे सामने रखकर किसानों की सहानुभूति प्राप्त की और उनकी मदद से नये पूँजीवादी प्रजासत्तात्मक राज्य की स्थापना की।

आचार्यजी ने कहा कि किसानों का वर्ग ऐसा नहीं है जिसके सभी सदस्यों के हित एक समान हों। भूमिरहित या कम भूमि वाले छोटे किसान का स्वार्थ स्पष्टतः बड़े किसान के हित से टक्कर खाता है। किन्तु जब जमींदारों के खिलाफ एक आधारभूत युद्ध छेड़ा जाता है तब समूचा किसान-तबका अपने वर्ग के आन्तरिक विरोध को भूलकर एक होकर इस लड़ाई में भाग लेता है। सामन्तवादी-वर्ग के खिलाफ किसान जो लड़ाई लड़ते हैं यह सामन्तशाही व्यवस्था के खिलाफ बुनियादी लड़ाई की सूरत तभी अख्तियार करती रही है जब पूँजीवादीवर्ग के हाथों में लड़ाई का नेतृत्व रहा है। प्रजा-सत्तात्मक क्रान्ति का कार्यक्रम जहाँ पूर्णतया किसानों के नेतृत्व में ही चला है वहाँ व्यापारियों को सामन्तशाही जमाने के मुकाबले तिजारत की तरक्की के लिए कुछ रियासतें भले ही मिल गयी हों, लेकिन पुरानी व्यवस्था को हटाकर नयी व्यवस्था की स्थापना का कार्यक्रम नहीं पूरा किया जा सका। चीन का ताइपिंग विद्रोह इसीप्रकार के युद्ध का नमूना था। किसानों के नेतृत्व की इस असफलता का कारण पूँजीवादी-वर्ग की तरह उनके पास एक नयी विचारधारा का न होना था।

ऐसे देशों में जहाँ विविध ऐतिहासिक कारणों से पूँजीवाद का स्वाभाविक विकास रुक जाता है तो सम्पत्ति-जीवी-समुदाय क्रान्तिकारी नहीं रह जाता। उदाहरणार्थ हम अपने मुल्क को ही ले लें। विदेशी ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने देशी

पूँजीवाद को पनपने से रोक रखा है और पूर्व प्रचलित सामन्तवादी ढाँचे को भी कायम रख छोड़ा है। स्वाभाविक अवस्था में हमारे पूँजीपतियों को सामन्तशाही विरोधी युद्ध का नेतृत्व करना था। यह सम्पत्तिजीवी-वर्ग के हित में है कि सामन्तशाही-वर्ग का जमींदारों, जागीरदारों, महन्तों और राजाओं का जो भी प्रभुत्व देश के आर्थिक या राजनीतिक जीवन पर है वह हटे। हमारा देश किसानों का देश है। उद्योगधन्धों द्वारा तैयार होनेवाली चीजों की खपत यहाँ तभी हो सकती है जबकि इन किसानों की आमदनी बढ़ायी जाय। किसानों की आमदनी बढ़ाने के लिए यह जरूरी है कि कृषक जनता का जो धन जमींदारों, नवाबों, महन्तों और राजाओं की जेब में चला जाता है उसे किसानों के पास ही रहने दिया जाय। हमारे किसानों की क्रयशक्ति प्रायः शून्य को पहुँच गयी है। बिना सामन्तशाही-वर्ग के शोषण को खत्म किये हुए किसानों की आमदनी नहीं बढ़ायी जा सकती और फलस्वरूप उद्योगधन्धों के विकास के लिए रास्ता साफ नहीं होता। इंग्लैण्ड और फ्रांस की तरह हमारे पास ऐसे उपनिवेश भी नहीं हैं जहाँ हम अपने माल की खपत कर सकें। हिन्दुस्तान में उद्योगधन्धों के विकास के लिए एकमात्र मार्ग उसकी आन्तरिक क्रयशक्ति का विस्तार करना, देश के अत्यधिक बहुमत की अर्थात् किसानों की आमदनी बढ़ाना है। लेकिन फिर भी हमारे देश के पूँजीपति सामन्त-वर्ग को समाप्त करने के लिए होनेवाली लड़ाई के कार्यक्रम के साथ नहीं है। इसके विपरीत कितने ही पूँजीपति जमींदारी-प्रथा के समर्थक हैं। अपने प्रान्त में ही देखते हैं कि पूँजीपतियों के सेनापति सर ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव काश्तकारी बिल के विरोध में तालुकेदारों का साथ देने के लिए तैयार हैं। उन्होंने कहा कि इस जमाने में जिन स्थानों में सम्पत्तिजीवी प्रजासत्तात्मक क्रान्ति नहीं हो पायी है उन औपनिवेशिक राष्ट्रों के पूँजीपतियों की प्रतिक्रियावादिता के दो मुख्य कारण हैं। एक कारण तो यह है कि सामन्तवादी-वर्ग के ही अनेक सदस्यों ने पूँजीवादी उद्योगधन्धों में अपनी पूँजी लगा रखी है। हमारे प्रान्त के ही कई ऐसे जमींदार मिलेंगे जिनकी आमदनी जमींदारी के अलावा उद्योगधन्धों से भी होती है। ऐसे पूँजीपतियों का जमींदारी-प्रथा का समर्थन करना स्वाभाविक ही है। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि मौजूदा जमाने में स्वयं पूँजीवादी-प्रथा के खिलाफ मजदूरों का आन्दोलन भी शुरू हो जाता है। पूँजीवादी-प्रथा के ह्रास और सामाजिक क्रान्ति के इस युग में पूँजीपति-वर्ग यह देखता है कि सामन्तशाही आर्थिक प्रभुत्व मिटाने का अर्थ होता है—उत्पादन के साधनों में व्यक्तिगत-सम्पत्ति का अन्त करने के आत्मघातक सिद्धान्तों को स्वीकार कर लेना, अगर पूँजीपतियों ने जमींदारों की सम्पत्ति छीनी जाने में मदद दी तो उनकी सम्पत्ति भी खतरे में पड़ जा सकती है। ऐसी हालत में उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगतसम्पत्ति और सामन्तवादी-वर्ग दोनों एक हो जाते हैं। पूँजीपति-वर्ग प्रजा-सत्तात्मक क्रान्ति का नेतृत्व करने के स्थान पर उसका विरोध करने को तैयार हो जाता है।

श्रमिक और बुद्धिजीवी वर्ग का परिवर्तन में योगदान

आचार्य नरेन्द्र देवजी ने कहा कि पूँजीवादी-वर्ग के खिलाफ लड़कर भी शोषित-वर्ग प्रजा-सत्तात्मक क्रान्ति को सफल बनाते हैं। क्रान्ति को सफल बनाने का काम अब श्रमजीवी-वर्ग दूसरे शोषितों के साथ मिलकर करता है। जो वर्ग किसानों की इस आधारभूत माँग की पूर्ति करने के लिए तैयार हो उसी के पीछे किसान हो लेता है। फ्रांस में जो प्रजा-सत्तात्मक क्रान्ति हुई उसमें उसने पूँजीपतियों का नेतृत्व स्वीकार किया। रूस की राज्यक्रान्ति इसके विपरीत श्रमजीवी-वर्ग के नेतृत्व में हुई। श्रमजीवी-वर्ग का उद्देश्य पूँजीवादी व्यवस्था का ही अन्त करना होता है।

उपनिवेशों में प्रजा-सत्तात्मक क्रान्ति के कार्यक्रम को सफल बनाने में बुद्धिजीवी-वर्ग के क्रान्तिकारी तबके का विशेष महत्त्व होता है। औपनिवेशिक देशों में प्रजासत्तात्मक क्रान्ति श्रमजीवी-वर्ग की प्रधानता में सफल होती है, किन्तु उपनिवेशों का मजदूर पूँजीवादी देशों के मजदूरों की तरह शिक्षित नहीं होता। उपनिवेशों के मजदूरों के भीतर आरम्भ में वह राजनीतिक चेतना और वह शक्ति नहीं पायी जाती जिससे वे प्रजा सत्तात्मक युद्ध में सीधे नेतृत्व अपने हाथ में ले सकें। मजदूर-वर्ग को अपनी शक्ति और महत्व का ज्ञान कराने का कार्य उपनिवेशों में क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी-वर्ग के सदस्यों द्वारा सम्पन्न होता है। उपनिवेशों में ही क्यों, स्वतन्त्र पूँजीवादी राष्ट्रों में भी मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा का कार्य गैरमजदूर श्रेणी के समाजवादी बुद्धिजीवियों द्वारा होता है। मजदूर-वर्ग का नेतृत्व अगर उन पर ही छोड़ दिया जाय तो उनके अन्दर राजनीतिक चेतना आ ही नहीं सकती। वैसी हालत में उनके भीतर केवल पूँजीपतियों से सुधारवादी तरीके से लड़कर सुविधाएँ प्राप्त करने की आर्थिक चेतना ही आ सकती है।

आचार्य नरेन्द्र देवजी मार्क्सवाद के वर्गीय विश्लेषण को मूलतः स्वीकार करते थे और वर्गविहीन समाज को कायम करने के लिये वर्गसंघर्ष अनिवार्य समझते थे। वे वर्गसहयोग के अस्तित्व को भी स्वीकार करते थे और मानते थे कि विभिन्न वर्गों के हितों में संघर्ष होते हुए भी समाज के अस्तित्व के लिये किसी हद तक वर्ग सहयोग अनिवार्य है। इसके बिना तो "समाज छिन्न-भिन्न" हो जायेगा। पर वे वर्गसंघर्ष को वर्गसमाज का अनिवार्य घटनाक्रम मानते थे। उनका कहना था कि वर्गसंगठन और वर्गसंघर्ष द्वारा ही शोषितवर्ग शोषण और आधिपत्य से छुटकारा पा सकता है और ऐसे समाज का निर्माण कर सकता है जिसमें वह शान्ति और समृद्धि का जीवन बिता सके। इस तरह शोषितों का वर्ग-संघर्ष सामाजिक क्रान्ति का मुख्य उपकरण तथा समाजवादी वर्गविहीन समाज की स्थापना का आवश्यक साधन है।

शोषितों के वर्गसंघर्ष का समर्थन करते हुए नरेन्द्र देवजी कहते थे कि "वर्गसंघर्ष ही सामाजिक प्रगति का आधार रहा है। समाजवादी लोग वर्गसंघर्ष को

पैदा नहीं करते और न वे उसको पसन्द ही करते हैं। उनका उद्देश्य तो समाज का ऐसा संगठन करना है जिसमें परस्पर विरोधी वर्गों और उनमें निरन्तर चलनेवाले संघर्षों का अन्त हो जाय।" पर चूँकि वर्गसंघर्ष के बिना शोषण और आधिपत्य से छुटकारा मिलना सम्भव नहीं है और वर्गसंघर्ष द्वारा ही समाज का विकास हुआ है, इसलिये सोशलिस्टों को वर्गसंघर्ष के लिए शोषित वर्गों को सचेत और संगठित करना पड़ता है और उनमें ऐसी चेतना पैदा करनी होती है कि शोषित वर्गों की लड़ाई आर्थिक न रहकर राजनीतिक बन जाय। नरेन्द्र देव जी मार्क्स की इस बात को तसलीम करते थे कि वर्गसंघर्ष आर्थिक और राजनीतिक दोनों ही हैं। वे यह भी तसलीम करते थे कि पूँजीवादी युग में कल-कारखानों का मजदूर ही मुख्य क्रान्तिकारी वर्ग है। समाजवादी क्रान्ति का वही अग्रणी है इसका संगठन तथा उसकी चेतना और क्षमता समाजवादी क्रान्ति का मूल आधार है।

लेनिन की तरह आचार्यजी भी इस बात पर जोर देते थे कि केवल मजदूरों के बल-बूते पर समाजवादी क्रान्ति सम्भव नहीं, उसके लिए तो मध्यम श्रेणी के शिक्षितों का क्रान्तिकारी समाजवादी नेतृत्व भी आवश्यक है। आचार्यजी का कहना था कि मार्क्सवादियों के अनुसार क्रान्तिकारी सिद्धान्त के बिना क्रान्तिकारी आन्दोलन नहीं हो सकता और समाजवाद के दर्शन की सृष्टि तथा उसका विकास विद्वानों और चिन्तकों द्वारा ही होता है। आने वाले समाज की भविष्यवाणी उनके द्वारा ही होती है। इस तरह निम्न मध्यवर्गीय क्रान्तिकारी विचारक ही समाजवादी क्रान्ति के आध्यात्मिक साधन हैं।

किसानों के सम्बन्ध में अधिकांश मार्क्सवादी नेताओं की धारणाएँ आचार्य नरेन्द्र देव जी को मान्य नहीं थीं। उनके विचार में किसी वर्ग की क्रान्तिकारिता उसकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति पर निर्भर होती है। साम्राज्यशाही तथा आर्थिकदासता से शासित एशिया का किसान परिस्थितिवश मूलतः क्रान्तिकारी है। उनकी क्रान्तिकारी आवश्यकताओं के आधार पर उनकी क्रान्तिकारी भावनाओं को जागृत और पुष्ट किया जा सकता है।

उनकी धारणा थी कि एशिया में समाजवादी क्रान्ति की विजय के लिये आवश्यक है कि किसानों को संकीर्ण किसानवाद की बुराईयों को बताते हुए उन्हें समाजवादी क्रान्ति के प्रयत्नों में शामिल किया जाय तथा सहकारी संस्थाओं के माध्यम से उन्हें समाजवादी निर्माण-कार्य में लगाया गया। इस सम्बन्ध में उनके विचार बहुत हद तक एंगिल्स के विचारों से मिलते-जुलते थे जो छोटे किसानों को उनके हितों की रक्षा का विश्वास दिलाकर उनकी क्रान्तिकारी भावनाओं को जागृत कर उन्हें समाजवादी क्रान्ति में शामिल करना चाहते थे।

आचार्य नरेन्द्र देव जी का मत था कि भारत जैसे देश में समाजवादियों को एक साथ दो युगों का काम करना है। उन्हें कृषि-क्रान्ति और समाजवादी-क्रान्ति दोनों को सम्पन्न कर सामन्तशाही और पूँजीवाद दोनों को खत्म कर जनतन्त्र और समाजवाद दोनों को प्रतिष्ठित कर शोषणविहीन समाज कायम करना है। इस

काम के लिये क्रान्तिकारी शिक्षितों के साथ-साथ श्रमिकों और किसानों दोनों के क्रान्तिकारी सहयोग की जरूरत है ।

आचार्य नरेन्द्र देव के विचार में "जहाँ समाज में मौलिक परिवर्तन होना और राज्य-शक्ति का एक वर्ग के हाथ से निकलकर दूसरे वर्ग के हाथ में जाना ही क्रान्ति है, वहाँ ऐसे वर्गविहीन समाज की रचना करना जिसमें न कोई शासक है और न कोई शासित", सामाजिक क्रान्ति का लक्ष्य है । लेनिन की तरह आचार्य नरेन्द्र देव भी आतंक और षड़यन्त्र को क्रान्ति का अंग नहीं मानते थे । वे जनतांत्रिक उपायों के अभाव में क्रान्ति के लिये संगठित सशस्त्र संघर्ष का समर्थन करते थे पर हर परिवर्तन में सशस्त्र क्रान्ति को आवश्यक और लाभप्रद नहीं समझते थे । एंगिल्स की तरह आचार्यजी भी बालिग मताधिकार को क्रान्तिकारी सिद्धान्त मानते थे सामाजिक विकास की ओर एक "क्रान्तिकारी कदम" समझते थे । वह एंगिल्स की इस बात से सहमत थे कि बालिग मताधिकार पर आधारित जनतन्त्र में जनतान्त्रिक ढंग से सामाजिक क्रान्ति को आगे बढ़ाया जा सकता है । बहुत से नए हथियारों के आविष्कार से सरकारी पक्ष की फौजी ताकत बहुत बढ़ गयी है और उसके विरुद्ध सशस्त्र विप्लव कठिन हो गया है तथा जनतन्त्र जनतान्त्रिक उपायों से आगे बढ़ने की बजाय विप्लव का नारा लगाना हिमाकत होगी, शासक वर्गों के हाथ में खेलना होगा । आचार्य नरेन्द्र देव जी की धारणा थी कि इस देश में समाजवादियों का कर्त्तव्य है कि वे जनतन्त्र विरोधी भावनाओं और शक्तियों से जनतन्त्र की रक्षा करें, जनतांत्रिक सिद्धान्तों के प्रति जनता की श्रद्धा को दृढ़ करें, राजनीतिक जनतन्त्र को सबल बनायें और जनतांत्रिक ढंग से समाजवादी क्रान्ति को सफल करें, समाजवादी समाज स्थापित करें ।

आचार्यजी जनतांत्रिक उपायों में शान्तिमय हड़तालों और सत्याग्रह जैसे संघर्षों को भी शामिल करते थे । सत्याग्रह के सम्बन्ध में आचार्य नरेन्द्र देव और महात्मा गांधी दोनों में कुछ मौलिक मतभेद थे । जहाँ महात्मा गांधी सत्याग्रह को विरोधी के हृदय परिवर्तन का उपाय समझते थे, वहाँ आचार्यजी सत्याग्रह को विरोधी के हृदय परिवर्तन का उपाय मानते थे । जहाँ कांग्रेसी सरकारों के पोषक बहुत से गांधीवादियों का विचार है कि स्वराज्य में सत्याग्रह का कोई स्थान नहीं, वहाँ आचार्य नरेन्द्र देव का कहना था कि जब गांधीजी स्वराज्य में सत्याग्रह को समाजवादी समाज कायम करने का और अन्याय के प्रतिकार का उचित उपाय समझते थे, तब उसे शोषित अपने शोषण के निवारण के लिये भी जरूर प्रयोग कर सकते हैं और इस सम्बन्ध में गांधीवादियों का विरोध अनुचित है । नरेन्द्र देव जी की धारणा थी कि सत्याग्रह को वर्गसंघर्ष या क्रान्ति का एक उपकरण स्वीकार कर लेने से "मार्क्सवाद के किसी सिद्धान्त को कोई हानि नहीं पहुँचती ।" उनका कहना था कि जहाँ मार्क्स के लिये सब प्रभावशाली उपायों का विश्लेषण करना असम्भव था वहाँ देशकाल के अनुसार कार्यक्रम में विभिन्नता का होना अनिवार्य है । देश विशेष में कभी-कभी ऐसी संस्थाएँ जन्म लेती हैं जिनकी प्रतिष्ठा

तथा गौरव सबको आकृष्ट करता है और जिनका प्रयोग देश विशेष के अनुभव के अनुकूल होता है। आचार्यजी के विचार में सत्याग्रह को अपनाने से गांधीवाद और मार्क्सवाद का समन्वय नहीं होता।

निष्कर्ष

समाजवादी व्यवस्था के परिवर्तन के मूल में आचार्यजी इस देश के किसानों को रखना चाहते थे और तब उनके दृष्टि पथ में बड़े किसान नहीं बल्कि वे छोटे भूमिहीन किसान थे जो सच्चे अर्थों में मजदूर ही थे। इस देश में सबसे असंगठित-वर्ग भूमिहीन मजदूरों का है और इस देश के समाजवादी आन्दोलन की यह एक बड़ी देन है कि उसने इस असंगठित वर्ग को संगठित करने का प्रयत्न किया। उसी के दबाव के चलते कांग्रेस को समय-समय पर अपने घोषणा-पत्रों में व्यापक फेरबदल करने पड़े और सन् १९३० ई० में नमक सत्याग्रह के कमजोर पड़ने पर उत्तरभारत में मंदी के दौर के चलते भूखों मर रहे भूमिहीन किसानों के लाभार्थ लगान बन्दी आन्दोलन को चलाने के लिए कांग्रेस सफल हुई। सन् १९३५ ई० के एक्ट की घोषणा के बाद हुए चुनावों से विजयी होने के बाद कांग्रेस ने जब कुछ राज्यों में अपनी सरकार गठित की तो उन्होंने उसके प्रमुख कार्यों में किसानों की कर्ज माफी और जमींदारी उन्मूलन को रखा। उत्तरप्रदेश कांग्रेस में उस समय समाजवादियों का वर्चस्व था जिसका दबाव इन दोनों कानूनों पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

श्रमिकों और बुद्धिजीवियों की क्रान्तिकारी भूमिका पर भी आचार्यजी ने विस्तार से विचार किया और यह माना कि समाजवादियों को कृषिक्रान्ति और समाजवादीक्रान्ति दोनों को साथ-साथ पूरा करना है।

पंचम अध्याय

राजनीतिक विचार एवं कर्म

आचार्य नरेन्द्र देव के राजनैतिक विचार

आचार्य नरेन्द्र देव को भारतीय समाजवाद का जनक कहा जाता है। आचार्य नरेन्द्र देव जी प्रजातांत्रिक समाजवाद के आधार-स्तम्भ हैं। वे मार्क्स के समान एक वैज्ञानिक समाजवादी थे। एक वैज्ञानिक समाजवादी तथा रूसी क्रान्ति का महान् प्रशंसक होने के साथ ही नैतिक मूल्यों में भी उनकी गहरी आस्था थी। वे समाजवाद को मानवीयता पर आधारित एक सांस्कृतिक आन्दोलन मानते थे। अपने समाजवादी चिन्तन में बराबर सामाजिक क्रान्ति का उन्होंने समर्थन किया। वे मानते थे कि समाजवाद को स्थापित करने के लिए वर्गसंघर्ष अनिवार्य है जिसके द्वारा एक वर्ग विहीन समाज की स्थापना सम्भव हो सके जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार विकास का समान और पूर्ण अवसर प्राप्त हो सके। वे कहते थे कि पुरानी आर्थिक प्रणाली का नाश करके उसके स्थान पर एक नई आर्थिक प्रणाली कायम करना एक ऐसी घटना है जो कि मामूली सुधारवाद के रास्ते नहीं हो सकती। समाज के ढाँचे में आधारभूत परिवर्तन की ऐतिहासिक आवश्यकता क्रान्ति द्वारा ही पूर्ण हो सकती है। पर वे सुधार को क्रान्ति का आवश्यक अंग समझते थे तथा नूतन समाजवादी समाज के निर्माण के लिए संघर्ष के साथ ही क्रान्तिकारी रचनात्मक कार्य भी आवश्यक समझते थे।

आचार्य नरेन्द्र देव मार्क्सवादी आधार पर मानव समाज का विश्लेषण करते थे तथा आदिम अवस्था से लेकर समाजवाद तक के सामाजिक विकास की प्रक्रिया पर विचार करते थे। वे बताते थे कि उत्पादन की शक्तियों का विकास होने पर किस प्रकार वर्गों की उत्पत्ति हुई तथा समाज में धनी निर्धन का भेद प्रकट हो गया। स्वामी और दास, सामन्त और कृषक तथा पूँजीपति और मजदूर आदि के वर्गों का विवेचन करते हुए उन्होंने भारतीय समाज पर इसे लागू करते हुए लिखा है कि यहाँ पर किन्हीं-किन्हीं स्थानों पर गुलामी के जमाने की यादगारें मिलेंगी। सामन्तशाही जमाने का आर्थिक ढाँचा दिखाई पड़ेगा और पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली के युग में तो हम रह ही रहे हैं. अतः हम किसी युग की बात करते हैं तब हमारा मतलब उस समाज में प्रचलित प्रधान आर्थिक-प्रणाली से होता है। मार्क्स के समान आचार्यजी का भी विचार है कि मनुष्य ही इतिहास का सृजन करनेवाला सक्रियकर्ता है। जनता को स्वतंत्रता तथा जनतन्त्र के सस्ते नारों द्वारा बहका कर उसमें चेतना नहीं उत्पन्न की जा सकती।

मार्क्सवाद के ढंग पर सामाजिक विकास की प्रक्रिया को स्वीकार कर आचार्य नरेन्द्र देवजी ने कुछ उन गलत फहमियों को दूर करने का प्रयास किया जो इसके विषय में प्रचलित है। वे वैज्ञानिक समाजवाद के समर्थक हैं तथा उनका दृढ़ विचार है कि केवल समाजवाद का नाम लेने से कुछ न होगा, क्योंकि हिटलर भी अपने को राष्ट्रीय समाजवादी कहता था। आचार्य जी लिखते हैं कि—"यहाँ भी भारतीय समाजवाद, वर्णाश्रम समाजवाद, मुस्लिम समाजवाद और वैदिक समाजवाद आदि तरह-तरह के समाजवादों का हवाला देकर यह कहा जाने लगा है कि मार्क्स और लेनिन द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक समाजवाद विदेशी हैं तथा अपने देश में इसकी आवश्यकता नहीं।" परन्तु आचार्य नरेन्द्र देवजी का मत था कि इतने से ही समाजवाद त्याज्य नहीं हो सकता। क्या विदेशी होने से यूरोप वालों के लिये वेदान्त तथा योग त्याज्य है ? रेल तथा तार का आविष्कार भी तो पश्चिमी देन है। अतः उत्पत्ति स्थान का प्रश्न उठाना मूर्खता है, उसके गुण-दोष पर विचार करना चाहिये। जीवनसंग्राम इतना उत्कृष्ट है कि अब भारतवर्ष आधुनिक काल की विशेषताओं से अपने को पृथक नहीं रख सकता। अतः उसे पाश्चात्य समाजवाद का भी आश्रय लेना होगा। आचार्यजी इस तथ्य से भलीभाँति परिचित हैं कि मार्क्सवाद के दार्शनिक पक्ष द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के बिना सामाजिक विकास की प्रक्रिया को ठीक से नहीं समझा जा सकता। उनका कथन है कि "मार्क्सवादी दर्शन हमें यह बताता है कि विश्व का व्यापार कोई बना-बनाया खेल नहीं है। यह किसी ढाँचे के भीतर काम नहीं कर रहा है, इसका कोई स्थिर स्वरूप नहीं है, सारा जगत् एक प्रक्रिया है और प्रति क्षण उसमें रूपान्तर होता रहता है। भौतिक पदार्थ का यह विकास या रूपान्तर एक सीधी रेखा में अर्थात् यंत्रवत् नहीं होता। विकास की प्रगति में हर क्षण आन्तरिक असंगतियाँ उत्पन्न होती रहती हैं और इन्हीं असंगतियों के द्वारा ही नया रूपान्तरण होता है।"

आचार्य नरेन्द्र देव मार्क्सवादी ढंग पर ही पूँजीवाद का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं कि आन्तरिक असंगतियों के परिणाम स्वरूप किस प्रकार समाज आदिम साम्यवादी युग से आरम्भ होकर आधुनिक युग की पूँजीवादी व्यवस्था तक पहुँचता है। पूँजीवाद को वे श्रम के शोषण पर आधारित एक त्रुटिपूर्ण व्यवस्था मानते हैं। उनका विचार है कि जिस तरह धर्म मानवता को विकृत तथा खण्डित करता है, उसी तरह उत्पादन की पूँजीवादी प्रक्रिया मानवश्रम के गौरव को नष्ट कर देती है।

आचार्य नरेन्द्र देवजी उन आधुनिक अर्थशास्त्रियों का विरोध करते हैं जो पूँजीवाद को समर्थन देते हैं तथा कहते हैं कि उनमें इतिहास के ज्ञान की कमी है वे कोरे अर्थशास्त्री हैं। अर्थशास्त्र के नियम शाश्वत नहीं हैं, वे सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। इस सन्दर्भ में मार्क्सवाद की इतिहास की गत्यात्मकता को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि यदि आर्थिक नियम अटल होते तो सामाजिक तथा आर्थिक विकास की सम्भावना ही न रह

पाती । पूँजीवादी राज्य का विवेचन करते हुए आचार्य नरेन्द्र देवजी लिखते हैं कि "राजनीतिक स्वतन्त्रता मानव को स्वतन्त्र नहीं करती । वर्तमान सामाजिक प्रणाली पूँजीवादी है ।" आचार्यजी का मत है कि पूँजीवादी उत्पादन जहाँ मुट्ठी भर पूँजीपतियों में सम्पत्ति को केन्द्रित करता है, वहाँ वह असंख्य अकिंचन भी पैदा करता है । इस सर्वहारा मजदूर के प्रति सहृदयता दर्शाते हुए वे स्वीकारते हैं कि वर्तमान प्रणाली के दोषों को दूर करने का साधन सर्वहारा मजदूर ही है । यहाँ उनका मत मार्क्सवाद लेनिनवाद के प्रोलेतेरीएत के समान है ।

इतिहास का गत्यात्मक प्रवाह और मार्क्सवाद

आचार्य नरेन्द्र देव मजदूर वर्ग को समाजवादी क्रान्ति का अग्रदूत मानते हैं । उनकी धारणा है कि जिस समाज में उत्कृष्टता की कसौटी धन हो, उसका पतनोन्मुख होना सुनिश्चित है । वैज्ञानिक समाजवाद के समर्थक आचार्य नरेन्द्र देव जी तथा एक मार्क्सवाद के अनुयायी के विचारों में प्रर्याप्त ऐक्य है । मार्क्स के साहित्य के गहन अध्ययन के बाद आचार्यजी ने पाया कि मार्क्स ने समाजवाद को मानवमुक्ति का द्योतक स्वीकार किया है । मानव को शोषणमुक्त बनानेवाले मार्क्सवाद को अपना आदर्श स्वीकारते हुए आचार्यजी ने लिखा कि पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के व्यापक प्रसार ने मार्क्सवाद को जन्म दिया है और मार्क्स ने जो व्यवस्था हमारे सम्मुख रखी वह प्राचीन काल से ही समाज में विद्यमान थी । समाज में आर्थिक विकास के कारण जो सर्वांगीण परिवर्तन होता जा रहा है, वह द्वन्द्वात्मक ढंग से वर्गसंघर्ष के माध्यम से हुआ है । मार्क्स की विशेषता केवल यही है कि उसने अपने मित्र एंगेल्स की सहायता से वैज्ञानिक ढंग से इन नियमों का विवेचन करते हुए उन्हें एक विचार पद्धति में संग्रथित किया है, जिसे हृदयंगम करके हम समाज के भूत और वर्तमान इतिहास को समझ सकते हैं और भविष्य के लिये अपना कार्यक्रम निर्धारित कर सकते हैं । स्पष्टतः परिलक्षित होता है कि आचार्यजी ने मार्क्स के दोनों प्रमुख सिद्धान्तों वर्गसंघर्ष, भौतिकवादी द्वन्द्ववाद को स्वीकार किया था ।

आचार्यजी का मत था कि इतिहास एक गतिमान प्रवाह है, जिसे केवल गत्यात्मक पद्धति के द्वारा ही समझा जा सकता है । उन्हें इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या भी स्वीकार थी । उन्हें यह यकीन (विश्वास) न था कि वे कोरे सुधारवाद से काम चला सकते हैं । उनकी इच्छा थी कि समाजवादी व्यवस्था को लागू करने के लिए आर्थिक-सामाजिक क्रान्ति से काम लिया जाय । उन्होंने इस बात को स्वीकारा कि—"क्रान्ति नये समाज की प्रसववेदना है, एक पतित समाज से उन्नत समाज की ओर जाने के लिए क्रान्ति एक अनिवार्य सीढ़ी है ।" अतः एक क्रान्तिकारी के रूप में आचार्यजी मार्क्स के इस कथन की सहमति देते थे कि बल नये समाज को गर्भ धारण करनेवाली प्रत्येक पुराने समाज की दाई अर्थात् नूतन समाज को जन्म देने में बल ही पुराने समाज की सहायता करता है । आचार्यजी के विचार

में मार्क्सवाद तथा गाँधीवाद का सन्तुलित समन्वय स्पष्टतः दृष्टिगत होता है। दोनों ही प्रत्येक व्यक्ति को पूर्णरूपेण आत्म अभिव्यक्ति का, स्वयं को अपनी योग्यता, अन्तर्निहित प्रसुप्त शक्तियों के अधिकतम विकास का पूर्ण अवसर देना चाहते हैं।

प्रतिबन्ध केवल यह है कि अज्ञानवश यह विकास ऐसी दिशा में न हो जिससे दूसरों के विकास में बाधा पड़े। ऐसा पूर्ण विकास तभी सम्भव है जब प्रत्येक को अपने अनुकूल शिक्षा सुलभ हो। पैसे का अभाव किसी बालक को शिक्षा प्राप्ति से वंचित कर दे, यह समाज के माथे पर बहुत बड़ा कलंक है। दोनों ही आर्थिक विषमता को समाप्त करना चाहते हैं। अपने अनुरूप शिक्षा, अपने अर्थ और काम की तुष्टि की सुविधा, मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है। कोई ऐसी व्यवस्था जिसमें एक के श्रम का लाभ दूसरे को पहुँचे, जिसमें मानव को जीविकोपार्जन हेतु अपमान व तिरस्कार का पात्र बनना पड़े। एक मार्क्सवादी अनुयायी के ही समान आचार्य नरेन्द्र देवजी भी उस दुर्व्यवस्था को समाप्त करना चाहते हैं, जिसमें समाज संचालन का सूत्र उन हाथों में रहे जिनके पास अटूट सम्पदा है। किन्तु साथ ही वे सामाजिक भौतिक अभ्युदय को वास्तविक आध्यात्मिक लक्ष्य के साधन के रूप में देखना चाहते हैं।

आचार्य नरेन्द्र देवजी समाजवाद के लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि समाजवाद का ध्येय वर्गविहीन समाज की स्थापना है। समाजवाद प्रचलित समाज का इस प्रकार संगठन करना चाहता है कि वर्तमान विरोधी स्वार्थों वाले शोषक और शोषित पीड़क और पीड़ित वर्गों का अन्त हो जाय, वह सहयोग के आधार पर संगठित व्यक्तियों का ऐसा समूह बन जाय जिसमें एक सदस्य की उन्नति का अर्थ सम्भवतः दूसरे सदस्य की उन्नति हो तथा वह मिलकर सामूहिक रूप से परस्पर उन्नति करते हुए जीवन व्यतीत कर सके।

आचार्यजी के विचारों पर महात्मा गाँधीजी के अद्भुत व्यक्तित्व का भी प्रभाव पड़ा है। आचार्यजी के आर्थिक विचार मार्क्सवाद तथा गाँधीवाद दोनों से ही अत्यधिक प्रभावित होने के कारण आचार्यजी को मार्क्सवादियों में गाँधीवादी तथा गाँधीवादियों में मार्क्सवादी कहा जाता रहा है। गाँधीजी के ही समान आचार्यजी भी सत्य के उपासक रहे, किन्तु अहिंसा के सिद्धान्त में उतनी आस्था न थी।

समाजवादी नैतिकता और गाँधी

आचार्य नरेन्द्र देवजी नैतिकता के सदैव आग्रही रहे। समाजवादियों से वे सर्वदा कहते रहे हैं कि दलित तथा शोषित वर्ग के प्रति आदर-सम्मान का भाव रखना चाहिये तथा जनता की सेवा एक उत्तम सेवक के रूप में करनी चाहिए। गाँधीवादी चिन्तन से प्रभावित आचार्यजी साधनों की पवित्रता को अनिवार्य स्वीकारते हैं। आचार्यजी ने अपने समाजवादी विचारों को गाँधीजी के समान ग्रामों की शोषित जनता के इर्द-गिर्द केन्द्रित किया। वे कहते हैं कि सामाजिक और आर्थिक विषमता को दूर कर, मनुष्य को मानवता से विभूषित कर, आत्मोन्नति के लिये सबसे ऊँचा

उठाकर, जाति-पाँति और सम्प्रदाय के बन्धनों को तोड़कर ही हम अहिंसा की सच्चे अर्थों में प्रतिष्ठा कर सकते हैं। यदि किसी ने यह शिक्षा दी तो गाँधीजी ने दी। वर्तमान जगत् की विषमता समाप्त करना ही उनके समाजवाद का लक्ष्य रहा। आचार्य नरेन्द्र देवजी ने कहा कि आज जब हम कहते हैं, कि स्वतन्त्रता, समता आदि के आदर्शों को हमें सिद्ध करना है तो हमारा अर्थ उस अर्थ से भिन्न होता है जो कि फ्रांस की राज्यक्रान्ति के नेताओं का था। फ्रांस की राज्यक्रान्ति का अर्थ उन सामन्तवादी विषमताओं को हटाना था जो पूँजीवाद के विकास के मार्ग में बाधक थीं। आज हमारा उद्देश्य उन विषमताओं तथा बन्धनों को दूर करना है जो पूँजीवाद के प्रसार से उत्पन्न हुई हैं और जो आज उत्पादन की शक्तियों को आगे बढ़ने से रोक रही हैं।

आचार्यजी ने पूँजीवाद के दुष्परिणामों की ओर ध्यानाकृष्ट करते हुए कहा—"पूँजीवादी प्रणाली के संसारव्यापी होने के कारण आज संसार भर में पूँजीपतियों का बोलबाला हो रहा है। प्राचीन काल के सामन्तों का स्थान पूँजीपतियों ने ले लिया है। राष्ट्र (देश) और संसार (विश्व) की दौलत मुट्ठीभर पूँजीपतियों के हाथ में आ गयी है। लन्दन शहर के व्यापारी ब्रिटिश साम्राज्य भर की बागडोर अपने हाथ में रखते हैं। फ्रांस की लाखों की आबादी पर राज्य करनेवाले मात्र दो सौ धन कुबेरों के परिवार हैं। यही हालत हर जगह पायी जाती है। हर राष्ट्र दो मुख्य शोषक और शोषित भागों में बँट गया है। एक ओर तो लक्ष्मी के लाडले मुट्ठी-भर पूँजीपति हैं जो शानदार महलों में रहते हैं जिनके अधिकार में उत्पादन, विनिमय और वितरण के सभी साधन हैं। दूसरी ओर शोषितवर्ग के वे बहुसंख्यक अभागे लोग हैं जिनकी एकमात्र पूँजी अपनी श्रमशक्ति है, जो अपने परिश्रम से समाज की सभी वस्तुएँ पैदा करते है, पर जिनकों न पेट भरने को अन्न और न तन ढँकने को कपड़े हैं—जिनका कार्य अमीर पूँजीपतियों की दया पर निर्भर रह कर दिन-रात शोषण की चक्की में पिसते रहना ही है।" उनका हृदय सर्वहारा के प्रति करुणा की भावना से ओत-प्रोत हैं।

आज के समाज में व्याप्त पूँजीवादी प्रजातन्त्र के विरुद्ध आचार्यजी का विचार है कि पूँजीवादी प्रजातन्त्र की स्थापना से आज की दुनिया में आजादी कायम हो गयी है, किन्तु श्रमजीवियों के लिये यह आजादी पूँजीपतियों की शर्त पर अपना आत्मसमर्पण करने या बदले में भूखों मरने की ही आजादी है। सच तो यह है कि साधारण मनुष्यों के लिये जीवन की कठिनाईयाँ सामन्तवादी युग की अपेक्षा कई गुना ज्यादा बढ़ गई हैं। गरीबी और अमीरी उस समाज में भी बहुत दर्जे तक थी, किन्तु आज का जैसा हाल न था कि एक तरफ सारी सम्पत्ति चन्द इने-गिने हाथ में इकट्ठा हो गयी है और दूसरी तरफ लाखों मेहनत करनेवाले परिवार भूखों मरते हैं। सामन्तवादी जमाने में उत्पादन की शक्तियों का आज जैसा विकास न था, जीवन की बहुत सी सुविधाएँ जो आज मिल सकती हैं, प्राप्त न थी। पर आज तो हर देश में बेकारों की एक बहुत बड़ी फौज खड़ी हो रही

है । जो लोग अपने काम में लगे हुए हैं, उनको अपने श्रम का पूरा मुआवजा मिलना तो दूर रहा उल्टे हमेशा उन्हें यह डर लगा रहता है कि किसी भी क्षण वे बेकारों के गिरोह में फेंक दिये जा सकते हैं ।

आज की सामाजिक व्यवस्था इस प्रकार की है कि मेहनत कोई करे, खाये कोई दूसरा ! आज की दुनिया की लूट-खसोट तथा शोषण की इस प्रणाली का नाम है—पूँजीवाद । जहाँ एक तरफ चन्द लोग हैं, जो कल-कारखानों, जमीनों, खदानों, औजारों, उत्पादन के साधनों के मालिक हैं और दूसरी तरफ हैं वे असंख्य लोग जिनके पास कोई सम्पत्ति, उत्पादन के साधन बिल्कुल नहीं हैं या नाम मात्र को हैं । वे मजदूरों के रूप में भाड़े पर काम करने को मजबूर हैं । उत्पादन के साधनों से वंचित होने के कारण वे जीवन-निर्वाह के साधनों से भी वंचित हैं । उनके पास अपनी मेहनत करने की ताकत, श्रम-शक्ति को बेचने के अतिरिक्त जीवन-निर्वाह करने का कोई रास्ता नहीं है ।

आचार्य नरेन्द्र देवजी का कहना है कि आज के समाज में यह भीषण विषमता क्यों है ? इस विषमता का कारण यह है कि उत्पादन, विनिमय तथा वितरण के साधनों पर चन्द पूँजीपतियों का अधिकार है । उत्पादन के इन साधनों में—मिल, कारखानें, बैंक आदि में—काम करनेवालों का इन साधनों पर कोई अधिकार नहीं है । प्राचीन काल में जबकि गृहशिल्प प्रणाली की प्रधानता थी, आजकल की भाँति बड़े पैमाने पर पैदावार नहीं होती थी, उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार हुआ करता था तथा बहुत हद तक पैदावार करनेवाले व्यक्तियों को अपनी पैदावार का लाभ मिलता था । आजकल बड़े पैमाने पर पैदावार होती है, पर उत्पादन के साधनों पर समाज का या उनमें काम करनेवाले व्यक्तियों का कोई अधिकार न होकर व्यक्तिगत पूँजीपतियों का अधिकार होता है । फलस्वरूप सारा नफा इन व्यक्तिगत पूँजीपतियों की ही जेब में जाता है और मजदूरों को मुश्किल से उनके पेट भरने के लिए दिया जाता है । आचार्यजी के इस कथन से इस बात का पता चलता है कि समाज में ऐसा अन्याय व्याप्त क्यों है ? इसे स्पष्ट करते हुए आचार्यजी कहते हैं पूँजीवाद का नतीजा न सिर्फ समाज के लिए ही बल्कि पूँजीपतियों के लिये भी घातक होता है । चूँकि समाज का बहुसंख्यक भाग इन परिश्रम करनेवालों का है जिनकी क्रयशक्ति दिन-बदिन घटती ही चली जाती है, इसीलिये पूँजीपतियों को अपने कारखाने का माल बेचना दिन ब दिन मुश्किल होता जा रहा है । यों तो किसी योजना के अनुसार पैदावार न होने के कारण पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में संकट आया ही करते थे, लेकिन श्रमिक जनता की क्रयशक्ति के ह्रास के फलस्वरूप अब इस संकट ने स्थायी रूप धारण कर लिया है । इस प्रकार उत्पादन की शक्तियों और विनिमय के बीच घोर असंगतियाँ उपस्थित हो गयी हैं । समाजवाद का उद्देश्य इन्हीं असमानताओं और असंगतियों को दूर करना है । अतः आज समाज की अवस्था दीन-हीन है—पूँजीवादी व्यवस्था के कारण । पूँजीपति खुशहाल—जनता बदहाल, पूँजीपति दिन पर दिन और

दौलतमन्द—जनता दिन पर दिन कंगाल और दरिद्र यानि मेहनत करनेवालों तथा उस मेहनत को हड़प करनेवालों के बीच खाई बढ़ती जाती है।

आचार्यजी समाजवाद के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यदि कुछ लोग यह समझते हैं कि समाजवाद हर प्रकार की आजादी या समानता कायम करने जा रहा है तो यह उनकी भूल होगी। समाजवाद पूर्ण स्वतन्त्रता लाने का दावा नहीं करता। समाजवादी समाज में भी समाज के सदस्यों में शारीरिक और मानसिक अन्तर रहेंगे ही। समाजवाद यह अवश्य करेगा कि वह शोषक वर्ग का अन्त करके, असमानता का आर्थिक आधार नष्ट कर देगा और सबको अवसर की समानता प्रदान करेगा।

मार्क्स और एंगेल्स के सामाजिक विश्लेषण तथा सामाजिक विकास की प्रक्रिया को वे मूलतः स्वीकार करते थे। पर वे मार्क्सवाद के भौतिकतत्त्वों के साथ-साथ उसके मानवीयतत्त्वों पर भी जोर देते थे। वे मार्क्सवाद के इस सिद्धान्त को स्वीकार करते थे कि उत्पादक शक्तियों के विकास के अनुरूप सम्बन्ध कायम होते हैं, उत्पादक सम्बन्धों को जोड़कर समाज का आर्थिक ढांचा बनता है तथा आर्थिक ढांचे के आधार पर राजनीतिक तथा सांस्कृतिक ढांचे की दीवार खड़ी होती है।

आचार्यजी मार्क्स के इस सिद्धान्त को भी स्वीकार करते थे कि किसी विशेष परिस्थिति में किसी विशेष प्रकार के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करनेवाले महापुरुष स्वयं बदली हुई परिस्थितियों का परिणाम होते हैं और उनका सिद्धान्त भी समाज में इसीलिये स्वीकार किया जाता है कि वह नयी परिस्थिति के अनुकूल होता है। वे यह भी स्वीकार करते थे कि किसी समाज की विचार प्रणालियों में अर्थात् प्रचलित दर्शन, धर्म, राजनीति आदि में उस समय आधारभूत परिवर्तन होता हैं, जबकि समाज की रचना में आधारभूत परिवर्तन होता है। पर आचार्यजी मार्क्सवाद की इन बातों पर भी बल देते थे कि मनुष्य और परिस्थिति दोनों परिवर्तनशील तथा अस्थिर है, जिस प्रकार मनुष्य परिस्थितियों को बनाता है, उसी प्रकार परिस्थितियाँ मनुष्य को बनाती हैं और कानूनी और राजनीतिक संस्थाएँ आर्थिक ढाँचे का परिणाम होते हुए भी स्वतन्त्र शक्तियाँ बन जाती हैं और इतिहास की गतिविधि को प्रभावित करती है। इस प्रकार आचार्यजी के विचारानुसार ऐतिहासिक विकास में अनेक कारण काम करते हैं और नयी सामाजिक व्यवस्था को कायम करने के लिये अनुकूल सामाजिक परिस्थिति और प्रगति के साथ-साथ मनुष्यों का सचेष्ट प्रयत्न भी आवश्यक होता है।

आचार्य नरेन्द्र देवजी लेनिन की इस बात को सही स्वीकारते थे कि क्रान्ति के लिये क्रान्तिकारी परिस्थिति और क्रान्तिकारी प्रयत्न दोनों ही आवश्यक हैं। उनकी धारणा थी कि क्रान्ति स्वतः सफल नहीं होती। क्रान्ति का संगठन सुदृढ़ होने से ही और क्रान्ति के संचालकों की दृष्टि स्पष्ट तथा रचनात्मक होने से ही क्रान्ति सफल होती है। वे स्वीकार करते थे कि पुरानी आर्थिक प्रणाली का नाश

करके उसके स्थान पर एक नयी आर्थिक प्रणाली कायम करना एक ऐसी घटना है जो कि मामूली सुधारवाद के रास्ते से नहीं हो सकती। समाज के ढाँचे में आधारभूत परिवर्तन की ऐतिहासिक आवश्यकता क्रान्ति द्वारा ही पूर्ण हो सकती है। पर वे सुधार को क्रान्ति का आवश्यक अंग समझते थे और नवीन समाजवादी समाज के निर्माण के लिये संघर्ष के साथ-साथ क्रान्तिकारी रचनात्मक कार्य भी आवश्यक समझते थे। आचार्यजी मार्क्सवाद के वर्गीय विश्लेषण को मूलतः स्वीकार करते थे तथा वर्गविहीन समाज को कायम करने के लिये वर्गसंघर्ष आवश्यक समझते थे। वे वर्ग सहयोग के अस्तित्व को भी स्वीकार करते थे तथा मानते थे कि विभिन्न वर्गों के हितों में संघर्ष होते हुए भी समाज के अस्तित्व के लिये किसी हद तक वर्ग सहयोग अनिवार्य है। इनके बिना तो समाज छिन्न-भिन्न माना जायेगा। पर वे वर्गसंघर्ष को वर्ग समाज का अनिवार्य घटनाक्रम मानते थे।

संघर्ष : क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यक शर्त

आचार्यजी का कहना था कि वर्गसंगठन तथा वर्गसंघर्ष द्वारा ही शोषित-वर्ग शोषण तथा आधिपत्य से विमुक्ति प्राप्त कर सकता है तथा ऐसे समाज का निर्माण कर सकता है, जिसमें वह शान्ति और समृद्धि का जीवन व्यतीत कर सके। इस प्रकार शोषितों का वर्गसंघर्ष सामाजिक क्रान्ति का मुख्य उपकरण तथा समाजवादी वर्गविहीन समाज की स्थापना का आवश्यक साधन है। मार्क्स ने अपने वर्गसंघर्ष के सिद्धान्त को इस प्रकार बताया है। शोषितों के वर्गसंघर्ष का समर्थन करते हुए आचार्यजी कहते थे कि वर्ग संघर्ष ही सामाजिक क्रान्ति का आधार रहा है। समाजवादी लोग वर्गसंघर्ष को पैदा नहीं करते और न वे उसे पसन्द ही करते हैं। उनका उद्देश्य तो समाज का ऐसा संगठन करना है जिसमें परस्पर विरोधी वर्गों तथा उनमें निरन्तर चलनेवाले संघर्षों का अन्त हो जाये। पर चूँकि संघर्ष के बिना शोषण और आधिपत्य से मुक्ति पाना सम्भव नहीं है तथा वर्गसंघर्ष द्वारा ही समाज का विकास हुआ है अतः सोशलिस्टों को वर्गसंघर्ष के लिये शोषित वर्गों को सचेत और संगठित करना पड़ता है तथा उनमें ऐसी चेतना उत्पन्न करनी पड़ती है कि शोषित वर्गों की लड़ाई आर्थिक न रहकर राजनीतिक बन जाय।

आचार्यजी मार्क्स की इस बात को स्वीकार करते थे कि वर्गसंघर्ष राजनीतिक एवं आर्थिक दोनों ही हैं। उनका यह भी मानना था कि पूँजीवादी युग में कल कारखानों का मजदूर ही मुख्य क्रान्तिकारी वर्ग है। समाजवादी क्रान्ति का वही अग्रणी है। उसका संगठन तथा उसकी चेतना व क्षमता समाजवादी क्रान्ति का मूलाधार है। आचार्यजी का कहना था कि समाज में विकास उसकी आन्तरिक असंगतियों के जरिये होता है। वह असंगतियाँ जब अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है या पार कर जाती हैं तो सामाजिक क्रान्ति होती है। यह भी स्पष्ट है कि हमारे अब तक के सामाजिक ढांचे में जो कि शोषक और शोषित वर्गों के आधार पर संघटित रहा है, यह क्रान्ति वर्गसंघर्ष की चरम सीमा पर पहुँचने पर

ही घटित होती रही है। आचार्यजी का कहना था कि मार्क्सवाद यह मानता है कि जब तक समाजवाद नहीं आ जाता, तब तक वर्गों की स्थिति बनी रहती है। मार्क्स के अनुसार सर्वहारा वर्ग ही स्थायी रूप से पूँजीवाद का विरोध कर सकता है। अन्य वर्ग भी पूँजीवाद का विरोध करते हैं, किन्तु उनका पूँजीवादी समाज में कोई न कोई स्वार्थ निहित रहता है। अतः वे पूँजीवाद का विनाश नहीं, अपितु सुधार चाहते हैं। अतएव पूँजीवाद के विरुद्ध क्रान्ति केवल मजदूर दल के नेतृत्व में ही हो सकती है।

सामाजिक वर्ग की परिभाषा देते हुए आचार्य नरेन्द्र देव जी कहते हैं— समाजवादी जब वर्गों का उल्लेख करता है तो वह समाज में प्रचलित उन उत्पादन सम्बन्धों को ध्यान में रखता है जिनपर समाज की आर्थिक प्रणाली आश्रित होती है। वर्ग या सामाजिकवर्ग उन व्यक्तियों का समूह है, जो सामाजिक, उत्पादन में एक तरह का कार्य करते हैं और उत्पादन के क्रम में लगे हुए दूसरे व्यक्तियों के साथ उनका सम्बन्ध भी एक ही सा होता है। यह एक सा सम्बन्ध श्रम के साधनों के सम्बन्ध में भी लागू होता है। आचार्यजी प्रसिद्ध समाजवादी विद्वान् बुखारिन के आधार पर मध्यम वर्ग, परिवर्तनशील वर्ग, मिश्रित वर्ग तथा वर्गच्युत वर्ग आदि का भी उल्लेख करते हैं। वे दास, कृषक, श्रमजीवी आदि के विद्रोहों का विवरण देते हुए वर्गसंघर्ष को अनिवार्य मानते हैं।

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि "वितरण के क्षेत्र में एक वर्ग के सदस्यों की आमदनी भी प्रायः एक सरीखी होगी। उदाहरणार्थ हम आज के समाज में मजदूरों और पूँजीपतियों को देखते हैं। सभी मजदूरों के समूह—चाहे वे कपड़े की मिलों में काम करते हों, खानों में काम करते हों, या और कहीं, एक ही श्रेणी में गिने जायेंगे। सामाजिक उत्पादन में आर्थिक वस्तुओं की पैदावार में, इनका भाग एक साथ है। ये सभी उत्पादन के साधनों से रहित हैं। अर्थात् मिलों या कारखानों के मालिक वे स्वयं नहीं हैं। सभी अपनी श्रमशक्ति बेचकर मजदूरी कमाते हैं। उत्पादन के क्रम में लगे हुए दूसरे लोगों अर्थात् मिल मालिकों आदि के प्रति सामूहिक रूप से इनका सम्बन्ध एक सरीखा है। इसलिये सभी समूहों के मजदूर एक ही मजदूर श्रेणी में गिने जायँगे। इसीप्रकार पूँजीपतियों का भी एक वर्ग है। चाहे कपड़े के मिल के मालिक हों, चाहे खानों के मालिक हों, अथवा हथियारों के कारखानों के मालिक हों सभी उत्पादन के क्रम में एक सा भाग रखते हैं। ये सभी उत्पादन के साधनों के मालिक हैं। ये सभी मजदूरों की श्रमशक्ति खरीद कर उससे नफा कमाते हैं। उत्पादन के क्रम में लगे हुए दूसरे समूहों के साथ उनका सम्बन्ध एक सा है।

यद्यपि अब तक का हर समाज उत्पादक सम्बन्धों के आधार पर कई वर्गों में बाँटा जा सकता है, किन्तु आधारभूत रूप से हर समाज में दो ही वर्ग पाये जाते हैं। एक तो वे लोग जिनका स्थान समाज में मालिकों का होता है और उत्पादन के साधनों पर जिनका एकाधिपत्य होता है, दूसरा वह वर्ग जिसका काम

हुक्म बजालाने का होता है, जो पहले वर्ग के लिये दास बनकर कार्य करता है और उसके द्वारा शोषित किया जाता है। ये दोनों वर्ग परस्पर एक दूसरे के विरोधी होते हैं। दोनों आधारभूत वर्गों में सदा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में वर्गसंघर्ष जारी रहता है। प्राचीन काल में दास और स्वतन्त्र मालिक, मध्ययुग में सामन्तगण और कृषकदास और वर्तमान के पूँजीवादी समाज में पूँजीपति और मजदूर इसीप्रकार के आधारभूत वर्ग हैं। इन आधारभूत वर्गों के अतिरिक्त भी समाज में कई वर्ग पाये जाते हैं। उन वर्गों का स्वार्थ अन्ततोगत्वा उन्हीं आधारभूत वर्गों में से किसी एक के साथ होता है। इसमें शक नहीं कि कुछ वर्ग ऐसे भी पाये जाते हैं, जिनका स्वार्थ थोड़ा बहुत दोनों वर्गों के साथ होता है, परन्तु इन दो आधारभूत वर्गों से स्वतन्त्र इनका अपना कोई पृथक् आर्थिक स्वार्थ नहीं होता।

राज्य और समाज में सम्बन्ध

आचार्य नरेन्द्र देव के अनुसार स्वतन्त्रता मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। किसी भी सामाजिक व्यवस्था या दर्शन में अन्य सभी बातों में महत्त्वपूर्ण व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा उसका व्यक्तित्व है। नरेन्द्र देव जी व्यक्ति के 'स्व' में विश्वास करते थे तथा उसके विकास का समाज में पर्याप्त अवसर मिलना चाहिये। कोई सामाजिक व्यवस्था व्यक्तित्व के विकास पर कुठाराघात नहीं कर सकती। नरेन्द्र देवजी ने यह कहा कि स्वतन्त्रता तथा प्रजातांत्रिक भावना व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अतः वह न तो निरंकुश शासन को और न ऐसी नीतियों को सहन कर सकता है जिनसे उसके व्यक्तित्व के विकास का मार्ग अवरुद्ध होता है।

राज्य के सम्बन्ध में आचार्य नरेन्द्र देव की धारणा अधिकांशतः मार्क्सवाद से प्रभावित थी। मार्क्स की भाँति वे भी यह विश्वास करते थे कि राज्य शासकवर्ग के हितों पर आधारित होता है। राज्य वर्गभेद को जन्म देने, उसे बनाये रखने तथा दलितवर्ग के शोषण का एक साधन है। एक दृष्टि से नरेन्द्र देव ने वर्तमान पूँजीवादी राज्य की कटु आलोचना की। नरेन्द्र देव जी ने इस बात पर बल दिया कि राज्य वर्ग विशेष के हितों का प्रतिनिधित्व करता है तथा उसके माध्यम से एक वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण करता है। वे राज्य रूपी यंत्र पर इसलिये नियंत्रण चाहते थे जिससे कि उसकी शोषणकारी प्रवृत्ति को रोका जा सके।

नरेन्द्र देवजी के अनुसार आधुनिक पूँजीवादी राज्य "जनता की सरकार, जनता के लिए सरकार तथा जनता के द्वारा सरकार" के नारे के आवरण में फलते-फूलते हैं। पूँजीवाद राज्य सैद्धान्तिक रूप से जनता को राजनीतिक अधिकार तथा मताधिकार प्रदान करते हैं, किन्तु इससे जनता को वास्तविक स्वतन्त्रता उपलब्ध नहीं होती है। नरेन्द्र देव ने यह कहा कि मनुष्य तभी वास्तविक रूप से स्वतन्त्र हो सकते हैं जबकि उसकी भौतिक आवश्यकताओं को एक सामाजिक प्राणी के रूप में उसकी सम्पूर्ण आवश्यकताओं से पृथक् न किया जाये।

आचार्य नरेन्द्र देव "राज्य के विलीनीकरण" के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते थे बल्कि वे राज्य के स्थायी अस्तित्व को स्वीकार करते थे। वे राज्य संस्था के विरुद्ध नहीं थे, बल्कि साम्राज्यवादी राज्य के विरुद्ध थे जो हिंसा, शक्ति तथा शोषण के सिद्धान्त पर आधारित हैं। वे राज्य को समाप्त नहीं करना चाहते थे बल्कि उसे सामाजिक परिवर्तन का साधन बनाना चाहते थे। अतः वे राज्यों को प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों पर आधारित करना चाहते थे। नरेन्द्र देवजी सर्वाधिकारवादी राज्य के पक्ष में नहीं थे। नरेन्द्र देव जी का यह विश्वास था कि एक समाजवादी राज्य में वर्ग विशेष के हित का अन्त हो जायेगा तथा एक वर्गविहीन समाज की स्थापना हो जायेगी। किसी भी वर्ग का शोषण नहीं होगा। नरेन्द्र देव जी ने यह विश्वास व्यक्त किया कि एक समाजवादी राज्य में ही व्यक्ति अपने पाशविक अस्तित्व को त्याग करके मनुष्य की भाँति रहेगा।

आचार्य नरेन्द्र देव ने १९५५ ई० में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का जो 'नीति विवरण' तैयार किया था, उससे राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में उनके विचारों का पता चलता है। उन्होंने यह विचार व्यक्त किया है कि राज्य को समाज में प्रगतिशील भूमिका निभानी चाहिये। नीति विवरण में यह कहा गया था कि "राज्य कृषकों को उनकी कठिनाइयों के समाधान में सहायता करेगा।" इस प्रकार नरेन्द्र देव जी ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहते थे जिसमें जनता विशेषकर कृषकों का कल्याण राज्य का उत्तरदायित्व हो। नरेन्द्र देव भारत में एक विकेन्द्रित प्रजातांत्रिक राज्य के पक्ष में थे। नीति विवरण में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई थी— विकेन्द्रित समाजवादी राज्य में व्यापक मताधिकार के आधार पर निर्वाचित ग्राम पंचायत ग्राम में राज्यसत्ता का मुख्य अंग होगा।

आचार्य नरेन्द्र देवजी समाजवाद को मानवीय हितों का संरक्षक मानते थे अतः वह एक हिंसा का दर्शन नहीं है। उन्होंने लिखा था कि— "मार्क्स ने एक स्थान पर कहा है कि सर्वहारा मजदूर को दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं की अपेक्षा शौर्य, आत्मविश्वास एवं स्वतन्त्रता की कहीं ज्यादा जरूरत है। रोजा लग्जेमबर्ग ने फ़्रेञ्ज मेहरिंग को एक पत्र लिखा था कि समाजवाद रोटी का सवाल नहीं है बल्कि एक सांस्कृतिक आन्दोलन है जो संसार में एक महती विचारधारा को प्रभावित करता है, इस सांस्कृतिक आन्दोलन का केन्द्र मानव है, मानव सर्वोपरि है। जो सिद्धान्त वाद या विचार—चाहे वह कोई धर्म हो या दर्शन अथवा अर्थशास्त्र—मानव के उत्कर्ष को घटाता है वह मार्क्स को मान्य नहीं है।

नरेन्द्र देवजी मानवता की यथार्थवादी सेवा के प्रेरक थे उन्होंने समाजवाद को एक नैतिक और आध्यात्मिक विशिष्टिता प्रदान की। वे मार्क्सवाद की विशिष्टिता तथा उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि "मार्क्स ने जनता को खोई हुई मानवता को फिर से पाने का उपाय ही नहीं बताया, बल्कि उसको इस कार्य के लिये तैयार किया। "मार्क्स ने मानवता को पुनः प्रतिष्ठित करने के प्रयत्नों को नहीं छोड़ा। उसने कभी भी पूँजीपतियों की नाराजगी या धमकियों की परवाह नहीं

की । लाख मुसीबतें झेलने पर भी वह कभी अपने पथ से विचलित नहीं हुए । उनका दर्शन एक जीता जागता दर्शन है जिससे मनुष्य को एक नवीन स्फूर्ति और प्रेरणा मिलती है । जो आज समाज में पद-दलित, तिरस्कृत, अशिक्षित और दरिद्र हैं उनमें नये जीवन का संचार करना, उनके तमाविष्ट हृदय में एक नवीन ज्योति को जगाना मार्क्स के दर्शन का ही काम है ।" आचार्यजी का मत था कि लड़ाई मजदूरवर्ग से नैतिक उत्कर्ष की अपेक्षा करती है । अतः उन्होंने मार्क्स और मार्क्सवाद को मानवता का हितैषी माना था । उनका विश्वास था कि मानवतावादी समाज मनुष्य को विवशता के क्षेत्र से हटकर उसे स्वाधीनता के राज्य में ले जाना चाहता है । आचार्य नरेन्द्र देवजी को मानवतावादी समाजवाद में पूर्ण आस्था थी ।

आचार्य नरेन्द्र देव जनतन्त्र में घोर आस्था रखते थे । उन्होंने कभी अपने को आस्था में ऊँचा नहीं समझा । उनका निश्चित मत था कि किसी संगठन का महत्त्व उसके उच्च नेताओं द्वारा नहीं, बल्कि उसके साधारण कार्यकर्ताओं द्वारा आँका जाता है । उनकी बहुजन समाज के प्रति आस्था थी, जनहित की वृद्धि ही उनके जीवन का लक्ष्य था । वे जनमत का सदा ध्यान रखते थे और जनजागृति पर उनका पूरा विश्वास था । आचार्य नरेन्द्र देव जी जनतंत्र को सर्वोत्तम शासन पद्धति के साथ-साथ सर्वोत्तम जीवन निधि भी मानते थे ।

आचार्य नरेन्द्र देवजी पूँजीवादी प्रजातन्त्र के विरोधी थे । उनका जनतन्त्र पूँजीवादी प्रजातंत्र से सर्वथा अलग था । उन्होंने पूँजीवादी प्रजातंत्र की आलोचना करते हुए लिखा था कि "कहा जाता है कि पूँजीवादी प्रजातंत्र की स्थापना से आज की दुनिया में आजादी कायम हो गई है, किन्तु श्रमजीवियों के लिये यह आजादी पूँजीपतियों की शक्ति पर अपना आत्मसमर्पण करने या बदले में भूखों मरने की आजादी है । सच तो यह है कि आजकल के पूँजीवादी समाज में साधारण मनुष्य के लिये जीवन की कठिनाईयाँ सामन्तवादी युग की अपेक्षा कई गुना बढ़ गई । राष्ट्र की एकता राष्ट्रीयता के भाव पर ही आधारित होती है । समाजवादी राष्ट्रीयता मानवीय स्वाधीनता की पोषक होती है ।" उनके विचार से राष्ट्रीयता ने ही भारत को स्वाधीन कराया । उनका मत था कि राष्ट्रीयता तथा जनतन्त्र की भावना ने ही भारत को स्वतंत्रता की राह दिखलाई । वह राष्ट्रीयता के विषय में कहते हैं—"राष्ट्रीयता का अर्थ हिन्दू या मुस्लिम राष्ट्रीयता नहीं है । एक देश की भौगोलिक सीमा के भीतर रहनेवाले विविध धर्म और बिरादरी (जाति) के लोग जब अपनी एकता का अनुभव करते हैं तभी राष्ट्रीयता जन्म लेती है ।" आचार्यजी गाँधीजी के सत्याग्रह में सहयोग देते रहे । फिर भी उन्हें अहिंसा के सिद्धान्त पर विश्वास नहीं था, क्योंकि बिना हिंसा के अंग्रेजों से राज्य की शक्ति भारतीयों को मिल सकेगी, इस पर उन्हें सन्देह था । लेकिन फिर भी वे समाजवाद के लिए नैतिक साधनों के उपयोग के पक्ष में थे । अतः वे गाँधीजी के रचनात्मक कार्यों में कम विश्वास करते थे और भारतीय स्वाधीनता के लिये जनक्रान्ति को आवश्यक समझते थे ।

आचार्य नरेन्द्र देव अपने मानवीय समाजवाद में समानता पर बल देते हैं तथा सभी पर समान उत्तरदायित्व के पक्ष में थे। वे भारतीय कृषि की उन्नति हेतु किसानों को मानवतावादी समाजवाद में समान भागीदार बनने तथा सहकारिता लागू करने को अति आवश्यक समझते थे। वे इस विषय में कहते थे कि "भूमि की उत्पादन शक्ति को बढ़ाया जाना चाहिये तथा इसके लिये कृषि को सहकारी आधार पर संगठित किया जाना चाहिये। सभी प्रकार के ऋणों को समाप्त कर देना चाहिये तथा किसानों के लाभ के लिये कम ब्याज पर धन देने की व्यवस्था हो।" आचार्य नरेन्द्र देव ने भारतीय कृषि की समस्याओं को समानता एवं सहकारिता आदि रचनात्मक योजनाओं से दूर करने की योजना प्रस्तुत की।

अतः आचार्य नरेन्द्र देवजी ने भारत की सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं का वर्गसंघर्ष के दृष्टिकोण से अध्ययन किया तथा निम्न मध्यवर्ग तथा जनता के मध्य एकता पर वे बल देते रहे। उनकी आकांक्षा थी कि समुचित आर्थिक कार्यक्रम के द्वारा किसानों तथा मजदूरों को कांग्रेस के साथ सम्बद्ध किया जाना चाहिये जिससे ये वर्ग अधिकाधिक राष्ट्रीय संघर्ष में सहयोग दें। अतः उनकी विचारधारा एक उत्साही मार्क्सवादी की विचारधारा थी। लेकिन उन्होंने अन्य साम्यवादियों के समान न रहकर पक्के कांग्रेसी के रूप में स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लिया।

आचार्य नरेन्द्र देवजी साम्राज्यवाद के घोर विरोधी थे। वे इसे पूँजीवादी व्यवस्था के राज्य का परिणाम मानते थे। नरेन्द्र देव का यह मत था कि पूँजीवादी व्यवस्था में स्वतन्त्र स्पर्धा होती है जो एकाधिकारवादी व्यवस्था को जन्म देती है, जिनमें उत्पादन के साधन तथा पूँजी कुछ व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित हो जाती है। नरेन्द्र देवजी का मत था कि ब्रिटेन की साम्राज्यवादी आवश्यकताओं के कारण ही भारत को पराधीन बनाया गया था, अतः समाजवाद भारतीय स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक हो सकता है। नरेन्द्र देव का यह विचार था कि समाजवाद एक ऐसा सिद्धान्त तथा आन्दोलन है जिसका प्रयोग पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद का अन्त करने में किया जा सकता है। अतः नरेन्द्र देव भारतीय स्वाधीनता के लिए समाजवादी विचारधारा को अपनाया जाना आवश्यक समझते थे।

आचार्यजी ने देश के स्वाधीनता आन्दोलन में पैंतीस वर्षों तक सक्रिय रूप से भाग लिया। पं० जवाहरलाल नेहरू आचार्य नरेन्द्र देव की प्रतिभा एवं योग्यता से अत्यन्त प्रभावित थे। नरेन्द्र देव मार्क्सवादी होने के कारण तत्कालीन कांग्रेस की विचारधारा से सहमत नहीं थे। अतः अपनी समाजवादी प्रवृत्ति की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति के लिये उन्होंने पृथक् समाजवादी दल की स्थापना की। वे भारतीय समाज को शोषण, उत्पीड़न तथा विषमताओं एवं कुंठाओं से मुक्त करना चाहते थे। अन्याय के विरुद्ध उनमें क्रान्तिकारी विद्रोह की भावना थी। समाज में व्याप्त बुराईयों व अन्याय व अत्याचार से पीड़ितों के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था कि "वर्तमान सामाजिक व्यवस्था ने मनुष्य को एक

विशेष दिशा में मोड़कर शक्तिहीन तथा व्यक्तित्वहीन करके दास बना दिया है उसके लिए यह रूखा निस्सार अस्तित्व है । वह अपनी शुद्धता के प्रति खूब जागरूक है । निराशावादिता एवं कुटिलता केवल अस्थायी अवस्थायें हैं और निश्चय ही यह मनुष्य ऊपर उठेगा और जीवन को एक बलिष्ठ रूप देगा ।" वस्तुतः आचार्य नरेन्द्र देव भारत की स्वाधीनता को सामाजिक व आर्थिक विचारधारा से समन्वित करना चाहते थे ।

आचार्य नरेन्द्र देवजी हड़ताल को भावात्मक एवं कार्यनीतिक दोनों ही दृष्टि से उचित एवं महत्त्वपूर्ण समझते थे । इस प्रकार जार्ज सोरेल के आम हड़ताल के श्रम संघवादी सिद्धान्त का प्रभाव आचार्य नरेन्द्र देव पर अधिक पड़ा । वे आम हड़ताल को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझते थे तथा इसके द्वारा राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त किया जा सकता है । आमहड़ताल से शासन की अर्थ व्यवस्था सामान्य रूप से चलनी कठिन हो जायेगी तथा वर्तमान शासन का सम्पूर्ण आर्थिक ढाँचा ठप्प हो जायेगा । इसप्रकार विदेशी शोषणकर्ता आर्थिक व्यवस्था के रूप होने के कारण भारत छोड़ने पर बाध्य हो जायेंगे । यदि आम हड़ताल सफलतापूर्वक संगठित हो जाये तो जनता के संगठित स्वरूप के द्वारा विदेशी शासन के विरुद्ध प्रचण्ड एवं प्रभावशालीशक्ति तैयार होगी जो भारतीय सामाजिक क्रान्ति के लिये अत्यन्त आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है । इसप्रकार आचार्य नरेन्द्र देवजी के विचार में आमहड़ताल सामाजिक क्रान्ति के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथा इससे उदित सामाजिक क्रान्ति की आधारशिला होगी ।

आचार्य नरेन्द्र देव पर मार्क्सवाद का अत्यधिक प्रभाव था । वे मार्क्सवाद के भौतिकवादी द्वन्द्ववाद के प्रबल समर्थक रहे हैं । वे मार्क्सवाद में आवश्यकतानुसार परिवर्तन चाहते थे, फिर भी वे उसे संशोधित नहीं करना चाहते थे, क्योंकि वे वर्न्सटाइन के संशोधनवाद से प्रसन्न नहीं थे । वे कहते थे कि इसने मार्क्सवाद के मूलतत्त्वों को ही समाप्त कर दिया है । वे इतिहास की भौतिक व्यवस्था के समर्थक थे तथा उनका विश्वास था कि पूँजीवाद के विकास की सम्भावनायें समाप्त हो चुकी हैं । वे भौतिक पदार्थ को आदिम बीज सत्ता मानते थे । मार्क्सवाद की विचारधारा की भाँति ही ये भी पूँजीवाद को समझने के लिये पूर्व प्रचलित सामन्तवादी व्यवस्था का अध्ययन आवश्यक समझते थे । वे समाज में गुणात्मक परिवर्तनों को क्रान्ति के माध्यम से हुआ मानते थे, न कि समाज सुधार द्वारा । इस विषय में उन्होंने कहा है कि क्रान्ति समाज की प्रसव वेदना है । एक समाज से उन समाज के लिये क्रान्ति एक अनिवार्य सीढ़ी है । वस्तुतः आचार्य नरेन्द्र देव जी मार्क्स की सामाजिक क्रान्ति की धारणा में पूर्णतः विश्वास रखते थे ।

आचार्य नरेन्द्र देवजी ने कहा कि हमारा वर्गविहीन समाज स्थापित करने का लक्ष्य वर्गसंघर्ष के साधन को अपनाने से ही सिद्ध हो सकता है । आज समाज में शोषक और शोषित वर्गों के बीच जो संघर्ष चल रहा है उसमें हमारा फर्ज शोषित जनता मे ऐसी चेतना पैदा करना है कि शोषित वर्गों की लड़ाई आर्थिक

न रहकर राजनीतिक बन जाय। हमें शोषित वर्गों के सदस्यों के मन में यह बात बैठा देना है कि जबतक समाज की प्रचलित व्यवस्था कायम है और उत्पादन के साधनों पर पूँजीपतियों का कब्जा है तबतक उनकी हालत नहीं सुधर सकती।

आदिम समुदायों में वर्ग व्यवस्था का पूर्णतया अभाव था तथा मानव प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं द्वारा अपनी अपेक्षाकृत सीमित आवश्यकता की पूर्ति सरलतापूर्वक कर लेते थे। अतः प्रकृति द्वारा जीवित रहने के साधनों का वितरण समान होने के कारण वर्गों का जन्म उस समय नहीं हुआ था। किन्तु ज्योंही वितरण में भेद आया, त्योंही समाज वर्गों में स्वतः विभाजित होता गया। मार्क्स के अनुसार यह विभाजन शासक व शासित, शोषक व शोषित, पीड़क व पीड़ित, धनी व निर्धन वर्गों में होता है। अपने वर्गसंघर्ष के सिद्धान्त में मार्क्स ने तीन महान् वर्गों को बताया है पहला जो श्रमशक्ति के हकदार हैं, दूसरा जो पूँजीपति हैं, तीसरा जो जमींदार हैं। इनके साधन क्रमशः इसप्रकार है मजदूरी, लाभ तथा लगान। भारत के स्वतन्त्र होने के बाद जमींदारी समाप्त कर दी गयी, किन्तु सफल जगत् में शेष दो महान् वर्ग अपने मध्य विकरालतम दूरी को शनैः शनैः और भी गहनता देते हुए आज भी विद्यमान है।

वर्गसंघर्ष और सकारात्मक प्रतिरोध

आचार्यजी ने कहा कि मार्क्स के अनुसार आज के युग में इन वर्गों का जन्म बड़े पैमाने पर पूँजीवादी उद्योग-धन्धों के पनपने के फलस्वरूप हुआ है। पूँजीवादी क्रान्ति का यही प्रत्यक्ष प्रभाव तथा सर्व प्रमुख परिणाम है। एक राष्ट्र में औद्योगीकरण तथा श्रमविभाजन के परिणामतः सर्वप्रथम व्यावसायिक व औद्योगिक श्रम, कृषि श्रम से, तथा शहर, ग्राम से पृथक हो जाते हैं। फलतः पृथक-पृथक स्वार्थ समूहों का जन्म होता है। श्रमविभाजन के ही आधार पर विभिन्न वर्गों में निश्चित प्रकार के श्रम में सहयोग करनेवाले लोगों में भी विभाजन हो जाता है। श्रमविभाजन का यह स्तर पारस्परिक सम्बन्धों को भी निश्चित करता है। अतः स्पष्ट है कि वर्गों का जन्म जीविकोपार्जन के आर्थिक साधनानुसार ही होता है। विभिन्न उत्पादन कार्यों से लगे व्यक्ति अपनी एकमात्र पूंजी श्रम को ही बेचकर जीविका अर्जित करते हैं तथा ये मेहनतकश या श्रमिकवर्ग कहलाते हैं। इनके ठीक विपरीत इनसे एक बहुत छोटा वर्ग पूँजीपतियों का होता है, जो इनके काम के खरीददार होते हैं। इस शोषकवर्ग के हाथ में उत्पादन के समस्त साधन केन्द्रित होते हैं, जिनके बल पर शोषितवर्ग का ये शोषण करते हैं। यह शोषण, जो आदिकाल से होता आ रहा है उस वर्ग में असन्तोष को अंकुरित करता है तथा यह असन्तोष वर्गसंघर्ष से उपजता है। मार्क्स के इस सिद्धान्त को उसके मूल में आचार्यजी ने स्वीकार किया।

आचार्य नरेन्द्र देवजी मार्क्सवाद के वर्गीय विश्लेषण को मूलतः स्वीकार करते थे और वर्गविहीन समाज को कायम करने के लिये वर्गसंघर्ष अनिवार्य समझते

थे। वे वर्ग सहयोग के अस्तित्व को भी स्वीकार करते थे और मानते थे कि विभिन्न वर्गों के हितों में संघर्ष होते हुए भी समाज के अस्तित्व के लिये किसी हद तक वर्गसहयोग अनिवार्य है। इसके बिना तो समाज छिन्न-भिन्न हो जायेगा। पर वे वर्गसंघर्ष को वर्गसमाज का अनिवार्य घटनाक्रम मानते थे। आचार्यजी का कहना था कि वर्गसंगठन और वर्गसंघर्ष द्वारा ही शोषित वर्ग शोषण और आधिपत्य से छुटकारा पा सकता है और ऐसे समाज का निर्माण कर सकता है जिसमें वह शान्ति और समृद्धि का जीवन बिता सके। इस तरह शोषित का वर्गसंघर्ष सामाजिक क्रान्ति का मुख्य उपकरण तथा समाजवादी वर्गविहीन समाज की स्थापना का आवश्यक साधन है।

आचार्य नरेन्द्र देवजी कहते हैं हमारा वर्गविहीन समाज स्थापित करने का लक्ष्य वर्गसंघर्ष के साधनों को अपनाने से ही सिद्ध हो सकता है। आज समाज में शोषक और शोषित वर्गों के बीच जो संघर्ष चल रहा है उसमें हमारा फर्ज शोषित जनता में ऐसी चेतना पैदा करता है कि शोषित वर्गों की लड़ाई आर्थिक न रहकर राजनीतिक बन जाय। हमें शोषित वर्गों के सदस्यों के मन में यह बात बैठा देनी है कि जबतक समाज की प्रचलित अवस्था कायम है और उत्पादन के साधनों पर पूँजीपतियों का कब्जा है तबतक उनकी हालत नहीं सुधर सकती। यही आचार्यजी ने स्पष्ट किया कि सामाजिक संरचना में बदलाव तभी सम्भव है जब वर्गसंघर्ष के सिद्धान्त को व्यवहार में लाया जाय, क्योंकि इसी के द्वारा शोषित जनता को उसकी सुप्तावस्था से जागृत कर उसमें चेतना का प्रस्फुटन सम्भव है।

आचार्य नरेन्द्र देवजी इस चेतना के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहते हैं शोषक वर्गों, यानि जमींदार और पूँजीपति तथा शोषित वर्गों अर्थात किसान, मजदूर व दूसरे सताये हुये तबकों के बीच संघर्ष तो आज भी जारी है। परन्तु आज उनकी यह लड़ाई आर्थिक लड़ाई मात्र है। कारखानों के मजदूर बड़ी तादाद में संगठित रूप में मालिकों से मोर्चा लेता है तथा अपनी इस लड़ाई में कुर्बानी भी बहुत करते हैं। लेकिन उनकी यह लड़ाई मजदूरी बढ़ाने, काम के घण्टे घटाने, अपने साथियों पर किये गये अत्याचारों को घटाने या इसी प्रकार की दूसरी शिकायतों को रफा कराने के लिए होती हैं। यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि मजदूरों की यह सारी लड़ाई वर्तमान व्यवस्था के भीतर केवल अधिकाधिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिये ही होती हैं। मालिकों का कारखानों पर जो अधिकार है, उसको वे चुनौती नहीं देते। हमें मजदूरों को समझाना है कि समाज के मौजूदा आर्थिक ढांचे को कायम रखते हुए केवल छोटे-मोटे अधिकारों के लिये लड़ने से काम न चलेगा बल्कि सारी मजदूर जमात को संगठित होकर एक ऐसी लड़ाई लड़नी पड़ेगी जिसमें मौजूदा आर्थिक-व्यवस्था का ही अन्त हो जाय और एक ऐसी नयी आर्थिक-प्रणाली की स्थापना की जाय जिसमें आज की तरह उत्पादन के साधनों पर किसी एक वर्गविशेष का अधिकार हो। ऐसे ही नये समाज में हम युगों से चले आते हुए शोषक और वर्ग विभेद का अन्त कर सकेंगे और समाज

के हर परिश्रमी सदस्य को उसके व्यक्तित्व के विकास का उचित अवसर प्रदान कर सकेंगे।

विश्व में समाजवाद के विरोधियों की भी कमी नहीं है। ये विरोधी लोग समाजवाद को समाज में वर्ग विशेष को (मजदूर एवं किसान) भड़काने और वर्ग-विद्वेष भड़काने का कारण समझते हैं। ऐसे ही लोगों के भ्रम को दूर करने के लिये आचार्य नरेन्द्र देव जी कहते हैं कि समाजवादियों के विरुद्ध अनभिज्ञ लोगों के द्वारा, विशेषकर शोषकवर्ग के सदस्यों द्वारा, यह अभियोग लगाया जाता है कि वे समाज के भीतर वर्ग-विद्वेष की सृष्टि कर रहे हैं। इन लोगों के कथनानुसार समाज में शान्ति कायम है किन्तु समाजवादी लोग विभिन्न वर्गों को आपस में लड़ाकर अशान्ति पैदा करना चाहते हैं, वे शान्ति के शत्रु और घृणा के प्रचारक हैं। पर यदि हम वस्तुतः स्थिति की जांच करें तो इससे अधिक यथार्थता से दूर और कोई बात न होगी। सच तो यह है कि जो लोग समाजवादियों के विरुद्ध इसप्रकार का अभियोग लगाते हैं वे न तो समाज की वास्तविकता पर ध्यान देते हैं, न उन्हें सामाजिक विकास के नियमों का पता है और न वे वर्ग युद्ध का ठीक-ठीक अर्थ ही समझते हैं। शोषकवर्ग के अनेक सदस्य तो जान बूझ कर लोगों के मन में भ्रम पैदा करने के लिए ही ऐसी मनगढ़न्त बातों का प्रचार करते हैं। वर्ग युद्ध समाजवादियों का पैदा किया हुआ नहीं है। वह तो समाज में हमेशा चलता रहता है और उसी समय से चलता आया है जब से वर्गों की उत्पत्ति हुई और यदि हम गम्भीरतापूर्वक, मार्क्सवादी व्याख्या की रोशनी में अब तक के इतिहास का अध्ययन करें तो हमें पता चलेगा कि अब तक समाज में जो प्रगति हुई है प्रगति की एक मंजिल से उठकर जब-जब मानव समाज एक दूसरी ऊँची मंजिल पर पहुँचा है, तब-तब कार्य वर्गसंघर्ष के द्वारा ही सम्पादित हुआ है। वर्गसंघर्ष ही सामाजिक प्रगित का आधार रहा है। समाजवादी लोग वर्गसंघर्ष पैदा नहीं करते हैं और न तो वे उसको पसन्द ही करते हैं। उनका उद्देश्य तो जैसाकि हम कह चुके हैं, समाज का ऐसा संगठन करना है जिसमें परस्पर विरोधी वर्गों और उनमें निरन्तर चलनेवाले वर्गसंघर्ष का अन्त हो जाय। लेकिन चूँकि हम किसी सामाजिक उद्देश्य की सिद्धि तभी कर सकते हैं जबकि हम सामाजिक प्रगति के नियमों का अध्ययन करें और उन नियमों के अनुसार अपने कार्य की दिशा निर्धारित करें, इसलिए समाजवादियों को बाध्य होकर वर्गसंघर्ष को अपनाना पड़ता है। वर्गसंघर्ष द्वारा ही समाज की उन्नति होती आयी है समाजवादी इस कठोर सत्य की उपेक्षा नहीं कर सकते। ऐसी अवस्था में जबकि समाज में वर्गसंघर्ष चल रहा है तब तो हमारे लिए केवल यही रास्ता बचा रहता है कि हम यह चुन लें कि हमें शोषक और शोषित इन दोनों वर्गों में से किस वर्ग का साथ देना है।

आचार्य नरेन्द्र देवजी इतिहास से वर्गसंघर्ष के अनेक उदाहरण देते हुए भारतीय परिस्थितियों का मार्क्सवादी विश्लेषण करते हैं। वे कहते हैं कि बिना सामन्तशाहीवर्ग के शोषण को खत्म किये हुए किसानों की आमदनी नहीं बढ़ायी

जा सकती है। वे महत्त्वपूर्ण टिप्पणी करते हैं कि उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत सम्पत्ति और उससे उत्पन्न होनेवाले सामाजिक शोषण को बनाए रखनेवाले पूँजीपति वर्ग और सामन्तवादीवर्ग दोनों एक हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में पूँजीवादीवर्ग के खिलाफ लड़कर भी शोषितवर्ग प्रजासत्तात्मक क्रान्ति को सफल बनाते हैं।

आचार्य नरेन्द्र देवजी क्रान्ति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि वर्गसंघर्ष के द्वारा ही अब तक समाज तरक्की की एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर जाता रहा है। आर्थिक उत्पादन की प्रणाली अपने विकास के क्रम में एक ऐसी अवस्था को पहुँच जाती है कि उस ढाँचे के मातहत रहकर उत्पादन की शक्तियाँ आगे उन्नति नहीं कर सकती उनका विकास रुक जाता है—उत्पादन सम्बन्धों और उत्पादन शक्तियों का विरोध चरमसीमा पर पहुँच जाता है। उस समय उत्पादक शक्तियों के विकास के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पुराना आर्थिक ढाँचा नष्ट किया जाय और एक नयी आर्थिक प्रणाली कायम की जाय जिसमें उत्पादक शक्तियों के ऊपर से वे बन्धन उठ जायें जोकि उसके विकास को रोकते रहे हैं। पुरानी आर्थिक प्रणाली का नाश करके उसके स्थान पर एक नयी आर्थिक प्रणाली कायम करना एक ऐसी घटना है जोकि मामूली सुधारवाद के रास्ते नहीं हो सकती। सुधारवाद के जरिये किसी ढाँचे को तभी तक बदला जा सकता है जबतक ढाँचे की बुनियाद को कायम रखते हुए उसमें ऊपरी तब्दीलियाँ की जाती हैं। जब ढाँचे में बुनियादी तब्दीली का सवाल उठता है तब वे स्थिर स्वार्थवाले वर्ग जो यह देखते हैं कि उनकी सुविधाएँ बुनियादी तब्दीली की बदौलत खत्म होने वाली हैं, अपने प्राणों की बाजी लगाकर, अपनी सारी ताकत के साथ, इस प्रकार की तब्दीली की मुखालिफत करते हैं। फलस्वरूप समाज के ढांचे में आधारभूत परिवर्तन की ऐतिहासिक आवश्यकता क्रान्ति के द्वारा ही पूर्ण होती है।

समाजवाद के विरोधियों द्वारा समाजवादियों पर घृणा का प्रचार करने के आरोप को बेबुनियाद बताते हुए आचार्य नरेन्द्र देव जी ने कहा, जो समाजवादी अन्ततोगत्वा वर्गविहीन समाज की रचना करना चाहते हैं उनके सम्बन्ध में ऐसा किसप्रकार कहा जा सकता है? इसके अतिरिक्त इस समय भी समाजवादी व्यक्तिगत घृणा को दूर करने का ही प्रयत्न करता है। उदाहरण के लिए आज हम देखते हैं कि जब एक मजदूर अपने मालिक से मजदूरी के लिए लड़ता है तब वह उसे घृणा की दृष्टि से देखता है, लेकिन समाजवादी मजदूर को यह बतलाता है कि अगर मजदूर को उचित मजदूरी नहीं मिलती तो इसमें दोष व्यक्तिगत रूप से खास मालिक का नहीं है, बल्कि उस पूँजीवादी प्रणाली का है जिसने उत्पादन के साधनों को मुट्ठी भर पूँजीपतियों के हाथ में दे दिया है। अगर मजदूरवर्ग शोषण सम्बन्ध से मुक्ति चाहता है तो उसे वह व्यक्तिगत रूप से पूँजीपतियों को हानि पहुँचाने की भावना से काम करके या मशीनों को तोड़-फोड़कर नहीं, बल्कि पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली को मिटाकर और मशीनों पर शोषित वर्गों का कब्जा करके ही मिल सकती है। इसी प्रकार समाजवादी मजदूरों में चलने

वाली प्रतिस्पर्धा और घृणा को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। बेकारी और गरीबी के इस युग में हर मजदूर दूसरे मजदूर को बीज रूप में प्रतिद्वन्द्वी समझकर उससे घृणा करता है, किन्तु समाजवाद मजदूरों को यह बतलाता है कि वे आपस में सहयोग करके और संगठित होकर ही शोषणरहित समाज की रचना कर सकते हैं। व्यक्तिगत घृणा को दूर करने के लिए समाजवादियों को श्रेय मिलना चाहिये। समाज में प्रचलित शोषण-सम्बन्ध के प्रति समाजवादी जरूर घृणा पैदा करता है और उसे वह उचित समझता है, क्योंकि वर्तमान दुर्दशा के प्रति घृणा उत्पन्न करके ही हम व्यक्ति के मन में उस दुर्दशा के प्रति विद्रोह पैदा कर सकते हैं।

समाजवाद : सभी परिवर्तनों का मूलमंत्र

आचार्यजी ने यह स्पष्ट किया कि समाजवाद केवल संकुचित आर्थिक प्रश्नों पर ही विचार नहीं करता, समाजवाद मूलरूप से मानवता के सिद्धान्त पर आधारित है। इसे स्पष्ट करते हुए आचार्यजी ने कहा कि भौतिकवाद के सिद्धान्त को मानने के कारण समाजवाद के विरुद्ध प्रायः यह आक्षेप किया जाता है कि समाजवाद केवल संकुचित आर्थिक दृष्टिकोण से ही सब प्रश्नों पर विचार करता है और इसलिये वह कोई आदर्श समाज के सम्मुख उपस्थित नहीं करता जिनकी पूर्ति के लिये मनुष्य को आत्मत्याग करना पड़े। अज्ञानवश लोग समाजवाद पर लांछन लगाते हैं, किन्तु इस इल्जाम में सत्य का लवलेश भी नहीं है। प्रमुख समाजवादियों की जीवनी ही इस इल्जाम को झुठलाती है। वैज्ञानिक समाजवाद के जन्मदाता मार्क्स का जीवनचरित्र जिन्होंने पढ़ा है, वे अच्छी तरह जानते हैं कि किस कष्ट से उसने अपनी जिन्दगी व्यतीत की थी और आर्थिक कष्ट होते हुए भी उसने एक क्षण के लिये मानवसमाज की सेवा के लक्ष्य को नहीं छोड़ा। उसकी जिन्दगी में ऐसे मौके अक्सर आये जब घर में खाने तक को न था, घर से बाहर निकलने के लिये कपड़े तक न थे और फर्ज के बोझ से वह पिसा जा रहा था। लेकिन वह सदा निश्चलभाव से अपनी साधना में लगा रहा और सख्त से सख्त मुसीबत में भी अपने सिद्धान्त पर अटल रहा। लोग कह सकते हैं कि अपनी खफ्त को पूरा करने के लिए कार्लमार्क्स ने यह सब कष्ट सहे होंगे, पर जिन सिद्धान्तों का उसने निरूपण किया है उनमें उच्चआदर्शों के लिये जगह नहीं है। आमतौर से यह समझा जाता है कि समाजवाद महज रोटी के सवाल को हल करने की कोशिश करता है और चूँकि वह इतिहास को वर्गसंघर्ष की प्रक्रिया मात्र मानता है। इसलिए उससे किसी ऊँचे आदर्श की कल्पना करना व्यर्थ है।

आचार्य नरेन्द्र देवजी इसी भ्रम का निवारण करते हुए कहते हैं कि हम प्रमुख समाजवादियों की उक्तियों से ही नहीं, वरन् समाजवाद के मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि लोगों की यह धारणा बिल्कुल गलत है। एकबार मार्क्स ने स्वयं कहा था कि उसकी खाल इतनी मोटी नहीं है कि वह मानवसमाज के कष्टों की ओर अपनी पीठ फेर दे। हट्टेन ने मार्क्स के

बारे में बिल्कुल ठीक कहा है कि उसका हृदय इतना विशाल और कोमल था कि औरों की अपेक्षा मानवसमाज के साधारण से साधारण दुःख भी उसको ज्यादा प्रभावित करते थे। जिस प्रकार भूकम्पमापक यंत्र पृथ्वी के सूक्ष्म से सूक्ष्म कम्पन का भी हिसाब रखता है उसी तरह मार्क्स मनुष्य के साधारण से साधारण कष्ट का हिसाब रखता था। समाज के इस अन्याय को वह बर्दाश्त नहीं कर सकता था कि एक वर्ग के लोग सम्पन्न और सुसंस्कृत हों और दूसरे गुलामों की तरह रात-दिन मेहनत करने पर भी जिन्दगी की साधारण आवश्यकताओं से वंचित रखे जायँ। जो लोग श्रम करते हैं और समाज की दौलत को पैदा करते हैं, जो पृथ्वी के गर्भ से सोना, चाँदी आदि धातु, कोयला और तेल निकालते हैं, जो कारखानों में तरह-तरह का तिजारती माल तैयार करते हैं, जो रेल और जहाज द्वारा दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने तक माल पहुँचाते हैं, जो बड़े-बड़े महल खड़े करते हैं और इस पृथ्वी को सजाते हैं, वे स्वयं जानवरों की जिन्दगी गुजारते हैं, गन्दे और तंग मकानों में रहते हैं—जहाँ हवा की गुजर नहीं, मैले-कुचैले कपड़े पहनते हैं और शिक्षा से वंचित रखे जाते हैं। समाज का वह अनाचार जो करोड़ों मानव संतान को मानवता से वंचित कर उन्हें जानवर की सी जिन्दगी बसर करने के लिए मजबूर करता है, मार्क्स को चोट पहुँचाता था। मार्क्स ने एक स्थल पर कहा है कि सर्वहारा मजदूर को रोजमर्रा के भोजन की अपेक्षा शौर्य, आत्मविश्वास, स्वाभिमान और स्वातंत्र्य की ही ज्यादा जरूरत है। रोजा लग्जेम्बर्ग ने फ़ेञ्ज मेहरिंग को एक पत्र में लिखा था कि समाजवाद, रोटी का सवाल नहीं है बल्कि एक सांस्कृतिक आन्दोलन है जो संसार में एक महती विचारधारा को प्रवाहित करता है। इस सांस्कृतिक आन्दोलन का केन्द्र मानव है। मानव सर्वोपरि है जो सिद्धान्त वाद या विचार—चाहे वह कोई धर्म हो अथवा दर्शन या अर्थशास्त्र—मानव के उत्कर्ष को घटाता है, वह मार्क्स को मान्य नहीं है।

आचार्य नरेन्द्र देवजी एक सच्चे मार्क्सवादी के समान मार्क्स के इन विचारों के समर्थक हैं। आगे आचार्यजी पूँजीवादी प्रथा के दोष पर प्रकाश डालते हैं। अनेक लोग यह समझते हैं कि अमीर-गरीब होना विधि का विधान है। यह पूर्वजन्म के कर्मों का फल है तथा मनुष्य का इसमें कोई दखल नहीं है। पर मानव समाज का इतिहास अपने विकास क्रम को स्पष्ट करता है कि यह धारणा भ्रामक है। मनुष्य का, मनुष्य द्वारा शोषण अनुचित है। अमीर-गरीब का भेद न हमेशा से रहा है न रहेगा। मनुष्य समाज के प्रारम्भिक काल में कहीं किसी किस्म का शोषण न था। मनुष्यों में भ्रातृभाव था। आज जिन देशों में समाजवाद है, वहाँ भी न यह असमानता है और न शोषण को कोई स्थान। शोषणपूर्ण समाज का आरम्भ दास-प्रथा से हुआ। तत्पश्चात् सामन्ती-समाज कायम हुआ जिसकी बुनियाद थी—मुट्ठी भर सामन्तों द्वारा भू-दासों-किसानों का शोषण। पूँजीवादी समाज का आर्थिक ढाँचा सामन्ती-समाज के आर्थिक ढाँचे से निकला। पूँजीवाद का जन्म गिरती-ढहती सामन्तशाही के गर्भ से हुआ है। मानवसमाज में शोषण और लूट-खसोट

की प्रणाली तब कायम हुई, जब समाज में निजी-सम्पत्ति का आविर्भाव हुआ। निजी-सम्पत्ति को यदि सार्वजनिक-सम्पत्ति—सबकी सम्पत्ति में बदल दिया जाय तो शोषण का ढाँचा चरमरा कर मिट-गिर जाता है। समाजवादी समाज में निजी-सम्पत्ति के खात्मे के साथ ही शोषण का खात्मा हो जाता है। पूँजीवाद का पूरा इतिहास, उसका उदय और विकास—भयंकर शोषण, जुल्म तथा लूट-खसोट का इतिहास है। पूँजीवादी प्रणाली के आरम्भ की दो प्रमुख शर्तें हैं। पहली शर्त यह है कि चन्द हाथों में दौलत का भण्डार जमा हो, दूसरी यह कि गरीब और तबाहहाल लोगों की एक बड़ी फौज तैयार हो जाय जो निजी तौर पर आजाद हो, पर जिनके पास न तो उत्पादन के कोई साधन हों, न जीविका के दूसरे तरीके और जो पूँजीपतियों की गुलामी करने के लिये स्वयं को बेचने पर मजबूर हो जायें।

आचार्यजी पूँजीवादी प्रथा के दोषों के विषय में कहते हैं—जिस तरह धर्म मानवता को विकृत और खण्डित करता है, उसी तरह उत्पादन की पूँजीवादी प्रक्रिया मानव-श्रम के गौरव को नष्ट कर देती है। इस प्रक्रिया में मजदूर उत्पादन के साधनों से पृथक् कर दिया जाता है। मजदूर का श्रम भी और तिजारती माल की तरह बाजारभाव पर बाजार में बिकता है। मजदूर मेहनत-मशक्कत कर जो वस्तु तैयार करता है उसपर उसका प्रभुत्व नहीं होता। मजदूर उत्पन्न वस्तु को अपने से अलग समझता है। यह श्रम उसके लिये स्वाभाविक नहीं है, इसलिए उसको उसमें रस नहीं आता। वह श्रम कर प्रसन्न नहीं होता और न उससे उसकी शारीरिक और बौद्धिक शक्ति का स्वच्छन्द विकास ही होता है। इससे उसका स्वास्थ्य अवश्य बिगड़ता है और उसकी आत्मा का हनन होता है। इसलिए श्रमिक अपने व्यक्तित्व को अपने श्रम से बाहर ही अनुभव करता है। ऐसा श्रम मनुष्य को प्रकृति और अपने व्यक्तित्व से अलग कर देता है। जितना ही अधिक वह श्रम करता है उतनी ही शक्तिशाली वह दुनिया बनती जाती है जिसका कि वह निर्माण करता है और उतना ही दरिद्र और अकिंचन वह स्वयं और उसका आंतरिक संसार होता जाता है। ऐसे ही श्रम से व्यक्तिगत-सम्पत्ति की उत्पत्ति होती है और उत्पादन पर उनलोगों का ही प्रभुत्व होता है जो स्वयं कुछ पैदा नहीं करते। पूँजीवादी आर्थिक-व्यवस्था की यह एक मौलिक घटना है। इसीलिए एंगेल्स ने कहा है कि इन्सान की हैसियत से चेतनापूर्वक उत्पादन की प्रक्रिया में लगो, नकि बतौर क्षुद्र व्यक्तियों के, जिनमें सामाजिक चेतना नहीं है और इसी तरह तुम तमाम कृत्रिम असंगतियों और विरोधों का अन्त कर सकोगे। इसीलिए मार्क्स कहते हैं कि मानव-समाज का उद्धार सामाजिक शक्तियों के ऐसे नवीन संगठन द्वारा ही हो सकता है जो मनुष्य को उन साधनों का मालिक बनावे जो उनको जीवन प्रदान करते हैं। इसीलिए समाजवाद व्यक्तिगत-सम्पत्ति का निश्चित लोप चाहता है, क्योंकि यह मनुष्य को अपने श्रम से अलग करती है। व्यक्तिगत-सम्पत्ति के लोप से ही मानव-समाज मानवता के गुणों से संयुक्त किया जा सकता

है। इसी तरह पूर्ण चेतना के साथ मानव सच्चे मनुष्यत्व को पुनः प्राप्त कर सकता है। मानव के स्वास्थ्य लाभ के लिए समाजवाद की आवश्यकता है।

आचार्यजी अर्थशास्त्रियों के विकृत-दृष्टिकोण की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि हमारे अधिकांश अर्थशास्त्री पूँजीवाद का समर्थन करते हैं। उनमें इतिहास के ज्ञान की कमी है। वे कोरे अर्थशास्त्री हैं। वे यह नहीं देखते कि मनुष्य उत्पादन की शक्तियों की वृद्धि करता हुआ आपस में एक निश्चित् सम्बन्ध स्थापित करता है और इस सम्बन्ध का रूप और प्रकार निश्चित रूप से बदलता है, जब उत्पादन की शक्तियाँ बदलती हैं और उनकी वृद्धि होती है। आज की उत्पादन-प्रणाली से जो सामाजिक सम्बन्ध हैं, वे तभीतक कायम हैं जबतक वर्तमान प्रणाली कायम है। अर्थशास्त्र के जो नियम उन्होंने निश्चित किये हैं वे अटल और शाश्वत तो नहीं हैं। वे केवल वर्तमान प्रणाली को ही लागू होते हैं, एक विशेष ऐतिहासिक सामाजिक सम्बन्धों के द्योतक हैं जो अस्थायी हैं। इन सम्बन्धों के बदलते ही नियम भी बदल जायेंगे। इसलिए इन नियमों को अटल बनाना मूर्खता है। यदि ये नियम अटल होते तो सामाजिक और आर्थिक विकास की सम्भावना ही न रह जाती। आज मनुष्य में बेतरतीबी और अस्त-व्यस्तता है। मनुष्य, मनुष्य के खिलाफ संघर्ष करता है और सब व्यक्ति, जो एक दूसरे से अपने व्यक्तित्व के कारण ही अलग किये गये हैं—सबके विरुद्ध संघर्ष करते हैं। सामन्तशाही जमाने के नियन्त्रणों और बन्धनों से मुक्त होकर प्राथमिक शक्तियाँ अबाधगति से परिचालित होती हैं और यद्यपि जाहिरा देखने में व्यक्ति स्वतन्त्र मालूम होता है, तथापि वास्तव में वह गुलाम है। जो अवयव उससे पृथक् कर दिये गये हैं, जैसे सम्पत्ति, श्रम और धर्म—उनकी अबाधगति को यह भूल से अपनी स्वतन्त्रता समझता है, किन्तु असलियत यह है कि यही अबाधगति उनकी गुलामी और मानवता से उसके अलग किये जाने को जाहिर करती है।

आचार्य नरेन्द्र देवजी पूँजीवादी राज्य की विशेषताओं को बतलाते हुए कहते हैं कि पूँजीवादी राज्य में मनुष्य को जो राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है उसका अर्थ केवल इतना ही है कि वह पूँजीवादी समाज का सदस्य और राज्य का नागरिक बन जाता है। वर्तमान राज्य मनुष्य के साधारण अधिकारों को स्वीकार करता है। राज्य राजनीतिक दृष्टि से व्यक्तिगत सम्पत्तियों को स्वीकार नहीं करता और इसलिये वोट का अधिकार प्रदान करने में वह जायदाद का लिहाज नहीं करता। राज्य ने जन्म, शिक्षा और व्यवसाय के फर्क को भी राजनीतिक दृष्टि से मिटा दिया जब उसने अपने विधान में सबको समानरूप से राजनीतिक अधिकार प्रदान किया। धर्म का अस्तित्व भी किसी प्रकार राज्य के पूर्ण विकास में बाधक नहीं माना गया। किन्तु पूर्णरूप से विकसित राज्य प्रधानतः सामाजिक जीवन का ही प्रतिनिधित्व करता है, नकि मानव के भौतिक जीवन का। राज्य जब मनुष्य के साधारण अधिकारों को स्वीकृत करता है तब उसका अर्थ केवल इतना ही होता है कि वह पूँजीवादी समाज के व्यक्ति के अस्तित्व को और साथ ही साथ

मानव-जीवन के बौद्धिक और भौतिक अवयवों की अबाधगति को स्वीकार करता है। इसप्रकार राज्य मनुष्य को धर्म के बन्धनों से नहीं मुक्त करता, वह केवल उसको धार्मिक स्वतन्त्रता अर्थात् किसी धर्म विशेष को अपने लिये चुन लेने का अधिकार ही प्रदान करता है। इसीतरह राज्य केवल वोट का हक देने में सम्पत्ति, जन्म और व्यवसाय के कृत्रिम भेदों का लिहाज नहीं करता। किन्तु इस विधान से व्यक्तिगत-सम्पत्ति का लोप नहीं हो जाता। राजनीतिक स्वतन्त्रता मानव को स्वतन्त्र नहीं करती। मानव तो तभी स्वतन्त्र होगा जब उसका जीवन खण्डित न हो, जब उसके जीवन के बौद्धिक और भौतिक अवयव उससे पृथक् न कर लिये जायें जबकि वह एक सामाजिक जीवन होकर अपनी जिन्दगी बसर करे और अपना काम-काज देखे और जब मनुष्य अपनी प्राकृतिक-शक्तियों को सामाजिक-शक्तियों की तरह संगठित कर सामाजिक-शक्ति को राजनीतिक-शक्ति के रूपमें अपने से अलहदा न करे। विविध खण्ड-शास्त्र जो मनुष्य के अवयवों को उससे पृथक् कर उनका अध्ययन करते हैं, मानवता के आलोक में क्षीण और सारहीन नजर आते हैं। अतः स्पष्ट है कि पूँजीवादी समाज में प्राप्त राजनीतिक-स्वतन्त्रता वास्तव में मनुष्य को स्वतन्त्र नहीं बनाती। समाजवादी समाज मनुष्य की सामाजिक-शक्ति एवं राजनीतिक-शक्ति को संगठित करके उसे एक पूर्ण सामाजिक-जीव के रूप जीवन यापनकरने तथा कार्यकरने का अवसर प्रदान करती है।

कार्लमार्क्स को आचार्यजी ने मानवता का सर्वश्रेष्ठ उपासक बताया तथा कहा कि मार्क्स काल्पनिक दुनियाँ में विचरण न करके इसी दुनियाँ की ठोस हकीकत को अपने अनुसन्धान का आधार बनाता है। आचार्यजी का कहना है कि उसने (मार्क्स ने) किसी सुन्दर संसार की कल्पना नहीं की है। वह पुरानी दुनिया को अन्धेरे से रोशनी में लाकर उसकी परीक्षा और आलोचना करना चाहता है और इसतरह ऐतिहासिक विकास के सिद्धान्तों का निरूपण कर वह दुनिया की तलाश करता है। अब तक के जो दर्शन हैं वह जीवन की पहेली का हल पका-पकाया तैयार रखते हैं, किन्तु मार्क्स सदा के लिए सब अवस्थाओं का पहले से ही नहीं उत्तर दे देता। वर्तमान जगत की आलोचना करना वह अपना काम समझता है और निहायत बेदर्दी के साथ वह इस कार्य को सम्पन्न करता है। वह नतीजों से घबराता नहीं और अधिकारियों के साथ टक्कर लेने से भी नहीं डरता। उसकी शिक्षा है कि ऐतिहासिक विकास के क्रम को समझने की कुंजी समाज में है। मनुष्य सामाजिक है। संसार से बाहर उसका अस्तित्व नहीं है। प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था का आधार उत्पादन की क्रिया और वस्तु विनिमय होता है। क्या उत्पन्न होता है, कैसे उत्पन्न होता है और उत्पन्न वस्तुओं का विनिमय किसप्रकार होता है ये बातें निश्चित करती हैं कि उत्पन्न वस्तुओं का वितरण कैसे होगा और समाज में वर्ग विभाजन किस प्रकार होगा। इसप्रकार सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक क्रान्तियों के अन्तिम कारणों की तलाश मनुष्यों के मस्तिष्क में न

होनी चाहिये, अपितु उत्पादन के प्रकार और विनिमय के परिवर्तनों में। इन कारणों का पता युग के दर्शन में नहीं किन्तु समय के आर्थिक संगठन में मिलेगा। यह ज्ञान बढ़ता जाता है कि वर्तमान सामाजिक संस्थाएँ बुद्धिसंगत और न्याययुक्त नहीं हैं। यह इस बात का चिन्ह है कि उत्पादन के तरीकों में और विनिमय के प्रश्नों में खामोशी के साथ ऐसे परिवर्तन होते रहे हैं जो सामाजिक व्यवस्था के अब अनुकूल नहीं पड़ते। इससे यह भी स्पष्ट है कि जो उपाय उन बुराईयों को दूर कर सकते हैं, जिनका पता चला है उनको भी किसी न किसी रूप में उत्पादन की बदली हुई अवस्था में मौजूद रहना चाहिये। इन उपायों को बुद्धिबल से ईजाद नहीं करना है किन्तु मौजूदा उत्पादन की अवस्था में से तलाश करके निकालना है। वर्तमान सामाजिक प्रणाली पूँजीवादी है। ज्यों-ज्यों इसका विकास होता जाता है त्यों-त्यों उत्पादन की शक्तियों और उत्पादन के प्रकार का संघर्ष बढ़ता जाता है। यह संघर्ष किसी भी इच्छा के अधीन नहीं है। यह उन लोगों की भी इच्छा के परे है जो इस संघर्ष को पैदा करते हुए मालूम होते हैं। वर्तमान प्रणाली की बुराइयों को दूर करने का साधन सर्वहारा मजदूर है। पूँजीवादी उत्पादन जहाँ मुट्ठी भर पूँजीपतियों में सम्पत्ति को केन्द्रित करता है वहाँ वह अकिंचन मजदूर को भी पैदा करता है। पूँजीवादी समाज का एक यह वर्ग है जो सार्वभौमिक चरित्रवाला है, क्योंकि इसकी तकलीफें सार्वभौमिक है। यह किसी विशेष अधिकार की माँग नहीं करता, क्योंकि कोई खास अन्याय उसके साथ नहीं किया गया है क्योंकि वह स्वयं सरापा अन्याय है। यह वर्ग किसी इतिहास सिद्ध अधिकार के नाम पर अपील नहीं करता किन्तु मानवता के नाम पर ही इसकी अपील होती है, यह वर्ग बिना अन्य वर्गों के नजात दिलाये नजात नहीं पा सकता। यह वह वर्ग है जिसमें मानवता का सर्वथा लोप हो गया है और यह मानवता को पूरी तरह प्राप्त करके ही अपने को पा सकता है। सर्वहारा मजदूर में आत्मचेतना की कमी है। जब उसको उस प्रणाली का ज्ञान होगा जो उसको सदा सच्चेमानव की पदवी प्रदान कर सकती है, तब उसका विस्तार होगा। समाजवाद का सिद्धान्त तभी एक शक्ति के रूपमें परिणित हो सकता है तब जनता उससे प्रभावित हो और उसे अपनावे। जो सिद्धान्त जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है वही कार्य में परिणत होता है। सर्वहारा मजदूर का लोप किये बिना मार्क्सवादी-दर्शन का सिद्धान्त कार्यरूप में परिणत नहीं होता और मजदूर सिद्धस्त को कार्य रूप में परिणित किये बिना अपना विस्तार नहीं कर सकता।

आचार्यजी ने पूँजीवादी समाज की विशेषता स्पष्ट करते हुए कहा कि ज्यों-ज्यों पूँजीवादी प्रणाली विकसित होती है, उत्तरोत्तर उत्पादन की शक्तियों तथा प्रकार का संघर्ष तीव्र से तीव्रतम होता जाता है। पूँजीवाद का सर्वस्व मेहनतकशों के शोषण पर निर्भर है। पूँजीपति उत्पादन के साधनों का मालिक होता है और मजदूर पूँजीपति के लिए कार्यकरने और उसके शोषण के जुये को कंधे पर रखने को मजबूर होता है। पूँजीवादी व्यवस्था में सबसे अधिक शोषितवर्ग होने की अपनी

स्थिति के कारण, मजदूरवर्ग पूँजीपतिवर्ग के विरुद्ध संघर्ष में सबसे आगे रहता है। आचार्यजी स्वीकारते हैं कि मजदूरवर्ग में आत्मचेतना की कमी है। जब वह समझ लेता है कि वह मानव रूपमें तभी जी सकेगा जब पूँजीवादी व्यवस्था को समूल उखाड़ फेंके, तब वह संघर्ष करने को तैयार होता है। मार्क्स का दर्शन समाजवादी समाज की स्थापना चाहता है, जो सर्वहारावर्ग के अस्तित्व की समाप्ति पर ही निर्भर है।

किसानों के सम्बन्ध में अधिकांश मार्क्सवादी नेताओं की धारणाएँ आचार्य नरेन्द्र देवजी को मान्य नहीं थी। उनके विचार में किसी वर्ग की क्रान्तिकारिता उसकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति पर निर्भर होती है। साम्राज्यशाही तथा आर्थिकदासता से त्रसित एशिया का किसान परिस्थितिवश मूलतः क्रान्तिकारी है। उनकी क्रान्तिकारी आवश्यकताओं के आधार पर उनकी क्रान्तिकारी भावनाओं को जागृत और पुष्ट किया जा सकता है। उनकी धारणा थी कि एशिया ने समाजवादी क्रान्ति की विजय के लिये आवश्यक है कि किसानों को संकीर्ण किसानवाद की बुराईयों को बताते हुए उन्हें समाजवाद का ऐतिहासिक महत्व समझाया जाय, उनके आर्थिक-संघर्षों को समाजवादी संघर्षों से सम्बन्धित कर उन्हें समाजवादी क्रान्ति के प्रयत्नों में शामिल किया जाय तथा सहकारी संस्थाओं के माध्यम से उन्हें समाजवादी निर्माण कार्य में लगाया जाय। इस सम्बन्ध में उनके विचार बहुत हद तक एंगेल्स के विचारों से मिलते जुलते थे जो छोटे किसानों को उनके हितों की रक्षा का विश्वास दिलाकर उनकी क्रान्तिकारी भावनाओं को जागृत कर उन्हें समाजवादी क्रान्ति में शामिल करना चाहते थे। आचार्यजी का मत था कि भारत जैसे देश में समाजवादियों को एक साथ दो युगों का काम करना है। उन्हें कृषि-क्रान्ति और समाजवादी-क्रान्ति दोनों को सम्पन्न कर सामन्तशाही और पूँजीवाद दोनों को खत्म कर जनतन्त्र और समाजवाद दोनों को प्रतिष्ठित कर शोषणविहीन समाज कायम करना है। इस काम के लिये क्रान्तिकारी शिक्षितों के साथ-साथ श्रमिकों और किसानों दोनों के क्रान्तिकारी सहयोग की आवश्यकता है।

जनतान्त्रिक तरीके से क्रान्ति

आचार्य नरेन्द्र देवजी के विचार में जहाँ समाज में मौलिक परिवर्तन होना और राज्यशक्ति का एक वर्ग के हाथ से निकल कर दूसरे वर्ग के हाथ में जाना ही क्रान्ति है, वहाँ ऐसे वर्गविहीन समाज की रचना करना, जिसमें न कोई शासक है और न कोई शासित, सामाजिक-क्रान्ति का लक्ष्य है। लेनिन की तरह आचार्य नरेन्द्र देव भी आतंक और षडयंत्र को क्रान्ति का अंग नहीं मानते थे। वे जनतांत्रिक उपायों के अभाव में क्रान्ति के लिये संगठित सशस्त्र-संघर्ष का समर्थन करते थे पर हर परिस्थिति में सशस्त्र-क्रान्ति को आवश्यक और लाभप्रद नहीं समझते थे। एंगेल्स की तरह आचार्यजी बालिग मताधिकार को 'क्रान्तिकारी सिद्धान्त' मानते थे, सामाजिक विकास की ओर एक क्रान्तिकारी कदम समझते

थे। वह एंगेल्स की इस बात से सहमत थे कि बालिग मताधिकार पर आधारित जनतन्त्र में जनतांत्रिक ढंग से सामाजिक-क्रान्ति को आगे बढ़ाया जा सकता है। बहुत से नये हथियारों के आविष्कार से सरकारी पक्ष की फौजी ताकत बहुत बढ़ गयी है और उसके विरुद्ध सशस्त्र विप्लव कठिन हो गया है तथा जनतंत्र में जनतांत्रिक उपायों से आगे बढ़ने की बजाय विप्लव का नारा लगाना हिमाकत होगी, शासक-वर्गों के हाथ में खेलना होगा। आचार्यजी की धारणा थी कि इस देश में समाजवादियों का कर्त्तव्य है कि वे जनतन्त्र विरोधी भावनाओं और शक्तियों से जनतन्त्र की रक्षा करें, जनतांत्रिक सिद्धान्तों के प्रति जनता की श्रद्धा को दृढ़ करें, राजनीतिज्ञ जनतन्त्र को सबल बनायें, और जनतांत्रिक ढंग से समाजवादी-क्रान्ति को सफल करें, समाजवादी-समाज स्थापित करे।

आचार्य नरेन्द्र देवजी मार्क्सवाद के नैतिक तथा सांस्कृतिक तत्त्वों पर विशेष बल देते हैं। वे समाजवाद को एक वृहद नैतिक तथा सांस्कृतिक आन्दोलन समझते हैं। उनके विचारानुसार मार्क्स की विचार सरिणी का मुख्य विषय मानव था। आचार्य नरेन्द्र देव जी का विचार था कि समाजवादी सांस्कृतिक आन्दोलन का केन्द्र मानव है।

आचार्य नरेन्द्र देव मार्क्स और एंगेल्स से सहमत थे कि वर्ग समाज में मानवीय प्रेरणाओं का विकास अवरुद्ध हो जाता है और वर्गविहीन समाज में ही सच्ची मानवीयता सम्भव है। एंगेल्स की तरह आचार्यजी यह तसलीम करते थे कि कुछ नैतिक नियम और आदर्श दीर्घकालीन होते हैं, पर वे यह भी मानते थे कि गतिशील और परिवर्तनशील संसार में सामाजिक परिवर्तनों के साथ नैतिक नियमों और सिद्धान्तों में भी तबदीली होती रहती है और नैतिक आदर्शों का सामाजिक आदर्शों से घनिष्ट सम्बन्ध है। उन्हें एंगेल्स का नैतिक विश्लेषण मूलतः स्वीकार था। उनकी तरह वे भी मानते थे कि सामाजिक व्यवस्था के साथ-साथ नैतिक संहिता भी बदलती है, वर्ग समाज में शोषक और शोषितों के नैतिक आदर्शों में संघर्ष होता है, जहाँ शोषकवर्ग प्रचलित सामाजिक व्यवस्था की पोषक नैतिक व्यवस्था और धारणाओं का समर्थन करता है, वहाँ शोषितवर्ग और उसके समर्थक विद्वान् क्रान्तिकारी नैतिकता को प्रतिपादित करते हैं, प्रचलित सामाजिक व्यवस्था और नैतिक पद्धतियों के आन्तरिक विरोधों की ओर ध्यान दिलाते हैं, वर्ग समाज के सामाजिक और नैतिक नियमों की समीक्षा और आलोचना करते हैं और क्रान्ति के पक्ष में क्रान्तिकारी नैतिक तत्त्वों को प्रस्तुत करते हैं। आचार्यजी की राय थी कि वर्गविहीन समाजवादी समाज में ही नैतिक सिद्धान्तों के आन्तरिक विरोधों और संघर्षों का समाधान हो सकता है और सारे समाज को मान्य नैतिक व्यवस्था प्रतिष्ठित हो सकती है।

आचार्य नरेन्द्र देवजी प्रत्येक क्रान्तिकारी के लिये मानवीय व्यवहार आवश्यक समझते थे। वे मानवता को समाजवाद का आधार मानते थे। मानवता से अनुप्राणित होना प्रत्येक समाजवादी कार्यकर्ता का कर्त्तव्य समझते थे। वे उनके

लिए सामंजस्यशील, सौजन्य, शिष्टाचार और नैतिक नियमों का पालन करना जरूरी समझते थे। उनका कहना था कि समाजवादी आन्दोलन को ऐसे विद्याचरण सम्पन्न कार्यकर्ताओं की जरूरत है कि जो समाजवाद को अपने जीवन का लक्ष्य बनाने को तैयार हों, जो अपने जीवन को जनता के जीवन से आत्मसात करने को उद्यत हों जो निष्काम सेवा के द्वारा प्राप्त उन्नयन और उमंग को ही उसका समुचित पुरस्कार समझें। वे चाहते थे कि प्रत्येक कार्यकर्त्ता अपने जीवन में "ज्ञान की पिपास" सत्य की आराधना, मौलिक सिद्धान्तों का स्पष्ट ज्ञान, नयी संस्कृति और नये समाज में निष्ठा, चरित्र की दृढ़ता और काम की लगन आदि गुणों का पोषण करे। वे तो शोषित वर्गों को भी समाजवादी मूल्यों और लक्ष्यों तथा समाजवादी व्यवस्था के प्रमुख सिद्धान्तों और प्रणालियों की जानकारी कराना तथा नैतिक व्यवहार में उन्हें दीक्षित करना जरूरी समझते थे। मजदूरों को सम्बोधित करते हुए नरेन्द्र देव जी ने एक लेख में लिखा है कि "नैतिक तथा आध्यात्मिक विशिष्टता प्राप्त करने का प्रयत्न वर्गसंघर्ष का अविच्छिन्न अंग है। समाजवाद की लड़ाई मजदूरवर्ग के नैतिक-उत्कर्ष की अपेक्षा करती है। यदि हम नैतिक आधार पर पूँजीवाद को घृणित बताते हैं तो हमको एक नैतिकस्तर पर समाज को एक नई दृष्टि देनी चाहिए।" वे मार्क्स से सहमत थे कि सर्वहारा मजदूरों को प्रतिदिन के भोजन की अपेक्षा आत्मविश्वास, स्वाभिमान और स्वतन्त्रता की कहीं अधिक जरूरत है।

इन सब बातों को मद्देनजर रखते हुए हम कह सकते हैं कि आचार्यजी मार्क्सवादी थे, पर उनका मार्क्सवाद रूसी कम्युनिज्म और कट्टरता का सहचर नहीं था। वह हर दर्शन की तरह मार्क्सवादी दर्शन को भी विकासशील मानते थे और स्वयं उन्होंने उसके विकास में योगदान दिया था। एक तो उन्होंने उदात्त राष्ट्रीयता और समाजवाद के समन्वय पर जोर देकर, और उत्तरदायी व्यापक राष्ट्रीयता को समाजवाद का अंग बनाकर मार्क्सवाद की एक बड़ी समस्या का समाधान किया। दूसरे उन्होने कृषि-क्रान्ति और समाजवादी-क्रान्ति के योग पर जोर देकर और समाजवादी-क्रान्ति के लिये मजदूरों और किसानों के संयुक्त-मोर्चा की जरूरत बताकर तथा समता के आधार पर किसानों और मजदूरों के पारस्परिक सम्बन्ध कायम करने का पाठ पढ़ाकर मार्क्सवाद की दूसरी बड़ी समस्या का समाधान किया। तीसरे, सहकारिता और समूहीकरण का मौलिक भेद बताकर और सहकारिता को समाजवादी व्यवस्था का अंग बनाकर, उसके आधार पर किसानों की स्वेच्छा द्वारा ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था के निर्माण पर उन्होंने जोर दिया और इसतरह समूहीकरण के कारण समाजवाद के विरुद्ध किसानों के संघर्ष को शान्त करने का उन्होंने योग बताया। चौथे उन्होंने जनतांत्रिक विकेन्द्रीकरण, औद्योगिक जनतंत्र और अर्ध स्वतन्त्र कारपोरेशनों द्वारा समाजीकृत उद्योगों की व्यवस्था के सिद्धान्तों का मार्क्सवाद में प्रवेश करा कर उसे व्यापक और जनतांत्रिक रूप प्रदान किया और जनतांत्रिक केन्द्रवाद के सर्वसत्तावाद और केन्द्रित नौकरवाद से उसकी

रक्षा की। पाँचवे, जनतंत्र और समाजवाद की असंगति की धारणा का विरोध करके जनतंत्र की प्रेरणा को मानव प्रकृति का अंग बताकर, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, और मानवीय अधिकारों की प्रधानता स्वीकार करके, आर्थिक जनतंत्र और राजनीतिक जनतंत्र के सम्बन्ध को स्थापित करके, जनतंत्र में विरोधीदल के महत्त्व को तसलीम करके, जनतांत्रिक राज्य में जनतांत्रिक भावनाओं को जागृत, सुदृढ़ और व्यापक बताते हुए जनतांत्रिक उपायों से, जिसमें सत्याग्रह और हड़ताल भी शामिल है, समाजवादी समाज बनाने पर जोर देकर, उन्होंने मार्क्सवाद के जनतांत्रिक स्वरूप को निखारा और पुष्ट किया और उसे व्यक्ति पूजा और पार्टी डिक्टेटरशिप द्वारा विकृत किये जाने से बचाया। छठे, व्यक्ति की क्रियाशील शक्ति पर जोर देकर तथा यह बताकर कि व्यक्ति प्रकृति पर सक्रिय प्रतिक्रिया करता है, परिस्थितियों की सम्भावनाओं के आधार पर परिस्थितियों को बदलता है, प्रकृति को बदलता है, अपने स्वभाव को बदलता है, अपनी शक्ति का विकास करता है, उन्होंने मार्क्स के अनियतिवादी तत्त्व को पुष्ट किया और उसके मनोविज्ञान की कमी को पूरा करने की तरफ कदम बढ़ाया। सातवें, दीर्घकालीन नैतिक मूल्यों का और सामान्य शील का पालन मार्क्सवादियों के लिये भी जरूरी बताकर मानवता को मार्क्सवाद का आधार स्वीकार कर और मार्क्सवादी समाज के नैतिक मूल्यों का विश्लेषण कर मार्क्सवाद के नैतिक स्वरूप को पुष्ट किया और उसके नैतिक भण्डार को परिपूर्ण किया। आंठवें, समाजवादी संस्कृति के कतिपय मूलतत्त्वों की व्याख्याकर और उसे समाजवादी समाज के निर्माण का महत्त्वपूर्ण अंग बनाकर उन्होंने मार्क्सवाद के सांस्कृतिक लक्ष्य की अभिवृद्धि की।

आचार्यजी द्वारा मार्क्सवाद में कुछ परिमार्जन एवं परिवर्तन करने के कारण कतिपय कट्टरपंथी समाजवादी उन पर संशोधनवाद का आरोप लगाते हैं, पर आचार्यजी ने इस अभियोग को अस्वीकार करते हुए कहा कि "मार्क्सवाद कोई अटल सिद्धान्त नहीं है। जीवन की गति के साथ वह भी बदलता है। इसकी विशेषता इसका क्रान्तिकारी होना है। मार्क्स की शिक्षा में हेर-फेर करना उससमय तक संशोधनवाद नहीं है, जबतक आप इस परिवर्तन से उसके क्रान्तिकारी तत्त्व को सुरक्षित रखते हैं। मार्क्सवाद को एक जिन्दा शास्त्र मानने में ही उसका गौरव है। वास्तव में आचार्यजी का यह योगदान मार्क्सवाद के मानवतावादी तथा जनतंत्रात्मक तत्त्वों का पोषण व विकास है।"

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में जो नेतृत्व विकसित हुआ वह साम्राज्य विरोधी रहा। एक प्रखर समाजवादी के समान आचार्य नरेन्द्र देव जी लेनिन की इस धारणा से सहमत हैं कि साम्राज्यवाद, पूँजीवाद की चरम सीमा है। लेनिन ने अपनी पुस्तक "साम्राज्यवाद पूँजीवाद की चरम अवस्था" में प्रमाणित किया है कि किसप्रकार उन्नीसवीं शताब्दी में पूँजीवाद तेजी से विकसित होता गया तथा उसने संसार में उपनिवेश बनाए। आचार्य नरेन्द्र देवजी आर्थिक-शोषण पर आधारित साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक प्रवृत्ति का विवेचन करते हुए कहते हैं कि भारत

अनेक प्रकार से ब्रिटिश सत्ता के शोषण का शिकार है। आचार्य नरेन्द्र देव जी एक सच्चे मार्क्सवादी के समान यह मानते हैं कि साम्राज्यवाद एक विश्वव्यापी व्यवस्था है। आचार्य नरेन्द्र देव सामन्तशाही राज्य-व्यवस्था की तुलना में पूँजीवादी लोकतांत्रिक-व्यवस्था को श्रेष्ठ समझते हैं। वे इस बात को भी स्वीकारते हैं कि सामन्तवादी आर्थिक-व्यवस्था की तुलना में पूँजीवादी आर्थिक-व्यवस्था में श्रमिक जनता अधिक स्वाधीन है। सामन्तों के अर्ध दासों की तुलना में औद्योगिक मजदूरों को कहीं अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। पर पूँजीवादी-व्यवस्था में भी वे मानव स्तर पर नहीं पहुँच पाते क्योंकि उनका शारीरिक, बौद्धिक विकास नहीं हो पाता, साथ ही आर्थिक परतंत्रता के कारण राजनीतिक स्वतंत्रता मानव को पराधीनता से पूर्णतया छुटकारा नहीं दिला पाती। सामाजिक और सांस्कृतिक असमानताएं जन-जीवन में लोकतांत्रिक भावनाओं के विकास में बहुत बड़ी बाधा है। आर्थिक विषमताओं तथा संघर्षों का निराकरण करके ही लोकतंत्र को स्वस्थ एवं सफल बनाया जा सकता है। समाज में लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रतिष्ठित किया जा सकता है। आर्थिक लोकतन्त्र द्वारा ही आर्थिक इजारादारी तथा राजनीतिक लोकतन्त्र की विषमता का ठीक तौर पर निराकरण सम्भव है।

साम्राज्य विरोधी भूमिका में समाजवाद

आचार्य नरेन्द्र देवजी की धारणा थी कि पूँजीवाद विकास की उस चरम-सीमा को पहुँच गया है कि जहाँ वह उत्पादन की वृद्धि में रुकावट डालता है। पूँजीवादी-प्रथा अपना काम समाप्त कर चुकी है। समाज की भावी उन्नति के लिए इस प्रथा का लोप आवश्यक है। पूँजीवाद की मर्यादित सीमा के भीतर उन्नति की अब कोई गुंजाईश नहीं है। वे यह स्वीकार करते थे कि पूँजीवादी पद्धति की बराइयाँ प्राचीन समाज में नहीं पायी जाती थी। पर उनके विचार में "उनकी निज की बुराइयाँ कुछ कम नहीं थीं। अतीत के पुनरुज्जीवन का प्रयत्न बालू से तेल निकालने के प्रयत्न की तरह सर्वथा विफल होगा, आज तक जो उन्नति हुई है उसको ताक पर रखकर नहीं, परंच उसका उपयोग करके ही हमारा अभीष्ट सिद्ध होगा। यदि हम मशीन युग की बुराइयों से बचना चाहते हैं तो उसका यह तरीका नहीं है कि हम पीछे कदम रखें और सारी औद्योगिक उन्नति को खत्म करके संसार की गरीबी और मुसीबत को बढ़ा दें। जब छोटे से वर्ग का उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व नहीं रहेगा और वे सारे समाज की मिल्कियत हो जायेंगे तब ही पूँजीवाद की आन्तरिक विषमता का निराकरण हो सकेगा। वैज्ञानिक समाजवाद को अपनाकर ही हम पूँजीवादी प्रथा के लाभ को सुरक्षित रखते हुए उसके दोषों को दूर कर सकेंगें।"

वर्तमान समय में प्रत्येक पूँजीवादी देश असाधारण संकट की अवस्था में है। यह अवस्था क्षणिक तथा अस्थायी नहीं है। यह अवस्था पूँजीवाद के अन्त का आरम्भ घोषित करती है। इस बार संकट आर्थिक दायरे तक ही सीमित नहीं

है। आर्थिक आधार के ह्रास के साथ-साथ पूँजीवाद की समग्र सामाजिक तथा आर्थिक पद्धति छिन्न-भिन्न होने लगती है। ह्रास के स्पष्ट चिन्ह और लक्षण पूँजीवादी विचार पद्धति के क्षेत्र में भी दीख पड़ते हैं। निराशा, प्रतिगामी-भाव, आदर्शवाद का प्रचलन, रहस्यवाद की पुनरुत्पत्ति, विज्ञान और वैज्ञानिक तरीकों का परित्याग तथा मध्ययुग के पंडित और टीकाकारों के तरीकों का फिर से प्रचार—यह सब इस बात का सबूत है कि पूँजीवादी विचार पद्धति के ध्वंस का क्रम असाधारण रीति से गहरा है। यदि पूँजीवादी राष्ट्रों के आर्थिक संकट ने उत्पादन को कई पीढ़ियों के पीछे फेंक दिया है तो पूँजीवादी विज्ञान पर आये हुए संकट ने विज्ञान को सैकड़ों वर्ष पीछे फेंक दिया है।

आचार्य नरेन्द्र देवजी का विचार था कि आज पूँजीवाद की अन्तिम अवस्था साम्राज्यवाद अपने विनाश के कगार पर है। पूँजीवाद अन्तिम सांसे ले रहा है फिर भी इसका अन्त स्वतः होनेवाला नहीं है। इसे समाप्त करने का उत्तरदायित्व इतिहास ने मजदूर वर्ग को दिया है तथा मजदूर वर्ग पूँजीवादी दुनिया के कोने-कोने में इसके लिये संघर्ष कर रहा है। पूँजीवाद भारी नैतिक व राजनीतिक पराजय प्राप्त कर चुका है। इतिहास ने उसे मानव जाति के विरुद्ध अपराधी घोषित करते हुए तिरस्कृत किया है, फिर भी उसकी राजनीतिक, आर्थिक और संहारक ताकत बहुत अधिक है। पूँजीवाद मरणासन्न हताशा के साथ हर सम्भव तरीके से अपनी सत्ता को कायम रखने का प्रयास कर रहा है। पूँजीवाद नये हालात के अनुसार अपने को टालने का प्रयास कर रहा है। पूँजीवाद एक नाशवान व्यवस्था है, जिसका नाश तथा समाजवादी क्रान्ति की विजय अवश्यम्भावी है। उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में कांग्रेस, कम्युनिस्ट तथा सोशलिस्ट पार्टी के कार्यक्रमों की चर्चा करते हुए आचार्यजी कहते हैं कि कांग्रेस पार्टी राष्ट्रीयकरण के प्रश्न की उपेक्षा करते हुए नियंत्रित पूँजीवाद की नीति अपनाते हुए, मिश्रित अर्थनीति की बात कहती है, वहाँ कम्युनिस्ट पार्टी विदेश की पूँजी जब्त करने की तथा देशीपूँजी के विकास के लिये अधिक सुविधायें तथा सहायता देने का वादा करती है। इसके विपरीत सोशलिस्ट पार्टी बैंकों और बीमा कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण को प्राथमिकता देते हुए विदेशी पूँजी से अधिकृत खानें और चाय-बगान के साथ-साथ बुनियादी धन्धों तथा वस्त्र, सीमेन्ट और चीनी आदि धन्धों के राष्ट्रीयकरण पर जोर देती है। आचार्यजी का निश्चित मत था कि सोशलिस्ट पार्टी के इस कार्यक्रम से देशी और विदेशी दोनों प्रकार की पूँजियों का प्रभुत्व नष्ट होगा और समाजवाद के प्रारम्भिक कदमों का निरूपण होगा।

आर्थिक समानता की समस्याओं और कृषि समस्या पर कांग्रेस पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम की कड़ी आलोचना करते हुए आचार्य नरेन्द्र देव ने कहा कि सोशलिस्ट पार्टी के सुझावों पर अमल करने से कृषि व्यवस्था में समुचित सुधार होगा, किसानों का जीवन स्तर ऊँचा उठेगा और समानता की वृद्धि होगी। सोशलिस्ट पार्टी चाहती है कि छोटे जमींदारों का प्रबन्ध करते हुए जमींदारी बिना

किसी मुआवजे के खत्म की जाय, वह यह भी चाहती है कि जमीनों का फिर से इसप्रकार बँटवारा हो कि वही जमीन रखने का अधिकारी हो जो अपने हाथ से खेती करने को तैयार हो और किसी खेतिहर परिवार के पास औसत पैदावार की तीस एकड़ से अधिक जमीन न हो ।

आचार्य नरेन्द्र देव के राजनीतिक कर्म

आचार्य नरेन्द्र देवजी के राजनीतिक कर्म, राजनीतिक विचार कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं । उन्होंने जिस प्रकार किसान आन्दोलन व मजदूर आन्दोलन द्वारा भारतीय समाज के सर्वहारा वर्ग के आर्थिक पक्षों को मजबूत करने के लिए सामाजिक-क्रान्ति करने को प्रेरित किया उसी में भारतीय समाजवाद मूलरूप से निहित है । उनका विचार था कि जबतक किसानों और मजदूरों को उनके श्रम का उचित मूल्य नहीं प्राप्त होगा तबतक भारतीय समाज व्यवस्था में इसी तरह अव्यवस्था व्याप्त रहेगी ।

किसान आन्दोलन में आचार्य नरेन्द्र देवजी का योगदान वैचारिक और सैद्धान्तिक अधिक रहा है, यद्यपि उन्होंने किसानों के बीच भी सक्रिय रूपसे कार्य किया । वह किसान आन्दोलन के माध्यम से ही पहले-पहल सार्वजनिक जीवन से जुड़े । जवाहरलाल जी से उनका परिचय इसी आन्दोलन के सिलसिले में हुआ । शुरू में फैजाबाद जिले में किसानों के बीच उन्होंने जमकर कार्य किया । सन् १९३० ई० में किसानों की दशा की जानकारी प्राप्त करने के लिये वे उत्तर प्रदेश के कई जिलों में गये और सन् १९३२ ई० में प्रान्तीय कांग्रेस द्वारा संगठित कमेटी के सदस्य की हैसियत से सारे प्रान्त के किसानों की दयनीय अवस्था का उन्होंने अध्ययन किया । सन् १९३४ ई० में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना के बाद किसानों का संगठन और उनके हितों की रक्षा एवं अभिवृद्धि ही आर्थिक क्षेत्र में नरेन्द्र देवजी का एक मुख्य काम था । उनकी धारणा थी कि भूमि व्यवस्था में कतिपय सुधारों द्वारा किसानों की समस्या का समाधान नहीं हो सकता । जमींदारी-प्रथा का उन्मूलन ही इस समस्या का सही हल है । देश की आर्थिक प्रगति और किसानों की अभिवृद्धि इसी में निहित है । इस काम के लिये किसानों को वर्ग-संघर्ष के लिये तैयार करना वे अत्यन्त आवश्यक समझते थे । उनके विचार में क्रान्तिकारी राजनीतिक और आर्थिक संघर्षों द्वारा ही किसानों का उद्धार हो सकता है और इसीलिये सम्प्रति सामाजिक परिस्थिति में हिन्दुस्तानी किसान मूलतः क्रान्तिकारी है । उनकी क्रान्तिकारी आवश्यकताओं के आधार पर उनकी क्रान्तिकारी भावनाओं को जागृत करना तथा राजनीतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता संघर्ष के लिये उन्हें संगठित और तैयार करना आचार्यजी नितान्त आवश्यक समझते थे । वे किसानों की माँगों के आधार पर उनकी क्रान्तिकारी वर्ग-चेतना को जागृत करके कृषि-क्रान्ति को समाजवादी-क्रान्ति का अंग बनाते हुए किसानों और मजदूरों के संयुक्त क्रान्तिकारी प्रयत्नों के जरिये आजादी हासिल करना और समाजवादी-समाज स्थापित करना चाहते थे ।

किसान आन्दोलन : नयी भूमिका

आचार्यजी किसानों को समाजवाद की भावना में दीक्षित कर सहकारी संस्थाओं के माध्यम से उन्हें समाजवादी निर्माण कार्य में लगाना चाहते थे। उनका मत था कि सहकारिता में गाँवों और किसानों का भला है। स्वतन्त्र किसान के रूपमें जनतन्त्र के आधार पर सहकारी समाज में गाँवों का पुनः निर्माण आवश्यक है। उनके मतानुसार इसीतरह किसान अपनी चिरकालीन दासता से छुटकारा पा सकता है। वे किसानों को सब प्रकार के शोषण से मुक्त कर सहकारिता के माध्यम से अपने बल पर खड़ा करना चाहते थे। वे किसानों के हितों के समर्थकं थे, पर किसानवाद के विरोधी थे। उनकी राय थी कि यह संकुचित किसानवाद सब प्रश्नों को किसान-वर्ग के संकुचित दृष्टिकोण से देखता है, उसकी मनोवृत्ति मध्यमवर्गीय किसान की है और निम्न मध्यम श्रेणी का अर्थतन्त्र ही उसकी आर्थिक व्यवस्था का आधार है। आचार्यजी की राय में किसानवाद का दृष्टिकोण अवैज्ञानिक है और यह मनोवृत्ति किसान को जरूरत से अधिक महत्त्व प्रदान करती है। वे किसानों को समाजवाद का ऐतिहासिक महत्त्व समझाते हुए किसान आन्दोलन को समाजवादी रंग में रंगना चाहते थे।

आचार्य नरेन्द्र देवजी चाहते थे कि कांग्रेस किसानों और मजदूरों की सुसंगठित संस्थाओं को मान्यता प्रदान करते हुए उन्हें सामूहिक सदस्यता और प्रतिनिधित्व द्वारा अपने से सम्बद्ध करे। सन् १६३४ ई० के बाद वे इसके लिये सतत् प्रयत्न करते रहे। सन् १६३६ ई० में उन्होंने प्रान्तीय कांग्रेस के सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय अभिभाषण में इस बातपर जोर देते हुए कहा कि जनता के दैनिकजीवन के आर्थिक-संघर्ष को साम्राज्य विरोधी संग्राम से सम्बन्धित करने से ही जनता राष्ट्रीय आन्दोलन में सजीव भाग लेने को तैयार की जा सकती है। किसान और मजदूर का संगठन और उनकी संस्थाओं के साथ कांग्रेस का प्रत्यक्ष सम्बन्ध आवश्यक है। मजदूर और किसान संघों के सदस्यों को कांग्रेस में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। यह केवल इसलिये नहीं कि कांग्रेस के सम्मुख उनका दृष्टिकोण रखा जा सके, किन्तु इसलिये कि वह कांग्रेस के निर्णयों को अधिकाधिक प्रभावित कर सकें। कांग्रेस के सदस्य की हैसियत से नहीं, किन्तु अपनी संस्थाओं के प्रतिनिधि की हैसियतं से ही वे यह काम कर सकते हैं। कई बार किसानों और मजदूरों के संगठनों के सामूहिक सम्बन्ध तथा प्रतिनिधित्व के लिये कांग्रेस संविधान में संशोधन पेश किये गये, पर इन प्रयत्नों में कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। कांग्रेस के बहुमत ने गांधीजी के नेतृत्व में सामूहिक सम्बन्ध के सिद्धान्त को मानने से इन्कार कर दिया। फिर भी कांग्रेस पर किसानों का प्रभाव बढ़ता ही गया। राजनीति और आर्थिक परिस्थिति के साथ-साथ समाजवादी शक्तियों का तथा गांधीजी, नेहरूजी और कतिपय दूसरे नेताओं का नेतृत्व इस प्रभाव के मूलकारण थे। आचार्यजी का भी इसमें विशेष योगदान था।

सन् १९३२ के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बाद बिहार, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र आदि प्रान्तों में किसान आन्दोलन ने काफी जोर पकड़ा। विभिन्न प्रान्तों और जिलों में किसान सभाएँ संगठित हुई और बड़े-बड़े प्रान्तीय और जिला किसान सम्मेलन हुए जिनमें हजारों किसानों ने भाग लिया और उनकी माँगों को दोहराया गया। अखिल भारतीय किसान सभा की भी स्थापना हुई। उसका प्रथम अधिवेशन अप्रैल सन् १९३६ ई० को बिहार प्रान्त के प्रमुख किसान नेता स्वामीसहजानन्द की अध्यक्षता में हुआ। इस सम्मेलन के आयोजन में संयुक्त प्रान्त के समाजवादी कार्यकर्ता श्री मोहनलाल गौतम, स्वामी भगवान आदि का काफी योगदान था। इसमें कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेता सर्वश्री अच्युत पटवर्धन और डॉ० राममनोहर लोहिया ने जमींदारी उन्मूलन का जोरदार शब्दों में समर्थन किया। उ०प्र० में किसान सभाओं के संगठन में नरेन्द्र देव जी के नेतृत्व में समाजवादी शक्तियों का विशिष्ट योग था। इस कार्य में नरेन्द्र देव जी के साथ जिन व्यक्तियों ने कार्य किया उनमें श्री मोहनलाल गौतम तथा स्वामी भगवान का विशिष्ट स्थान था। सन् १९३४ ई० से सन् १९४७ ई० तक नरेन्द्र देव जी के नेतृत्व में इन लोगों ने विभिन्न पदों से समाजवादी आन्दोलन के साथ-साथ किसान आन्दोलन में डट कर काम किया।

सन् १९३९ ई० में नरेन्द्र देव जी अखिल भारतीय किसान सभा के गया अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये। उस समय प्रो० रंगा किसान सभा के प्रधानमंत्री थे। दोनों के सामाजिक दृष्टिकोण और लक्ष्य कुछ भिन्न थे। नरेन्द्र देव जी मार्क्सवादी थे, उनका सामाजिक विश्लेषण मूलतः मार्क्सवादी था। समाजवादी-समाज की स्थापना उनका लक्ष्य था। प्रोफेसर रंगा को नरेन्द्र देव जी का मार्क्सवादी विश्लेषण तथा किसानवाद की समीक्षा स्वीकार नहीं थी। पर आचार्यजी की तरह प्रोफेसर रंगा भी सामन्तशाही के विरोधी और जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के पक्ष में थे। दोनों ही राष्ट्रवादी थे और स्वतन्त्रता संघर्ष के वीर सेनानी थे। दोनों राष्ट्र की स्वतन्त्रता तथा किसानों के उद्धार के लिये कांग्रेस और किसान संगठन के सहयोग को जरूरी समझते थे और कम्युनिस्टों के कांग्रेस विरोधी प्रचार को देश के लिये हानिकारक समझते थे। इस सम्मेलन की सफलता में बिहार के प्रमुख किसान नेता स्वामी सहजानन्द तथा बिहार की कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के प्रमुख नेताओं और कार्यकर्ताओं का विशिष्ट योगदान था। सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, रामनन्दन मिश्र, जदुनन्दन शर्मा, बागेश्वर मिश्र, रामवृक्ष बेनीपुरी, रामचन्द्र शर्मा आदि का सक्रिय सहयोग था। गया तो उस समय कांग्रेस समाजवादी आन्दोलन का गढ़ था। स्थानीय कार्यकर्ताओं के बलबूते पर ही वहाँ किसान सभा का अधिवेशन नियंत्रित किया गया था तथा उसकी शानदार कामयाबी उन्हीं के सतत् प्रयत्नों का परिणाम था।

आचार्य नरेन्द्र देवजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में किसान सभाओं और कांग्रेस संगठनों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों पर जोर दिया और कहा कि जहाँ औपनिवेशिक-

शोषण और आधिपत्य से मुक्ति की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए किसान सभाओं को राष्ट्रीय स्वतंत्रता के प्रतीक और साम्राज्य विरोधी संघर्ष के प्रमुख उपकरण कांग्रेस के साथ सहयोग करना चाहिये, वहाँ कांग्रेस को भी समझना चाहिए कि किसान सभाओं के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार और राष्ट्रीय आधार पर उनका विकास ही देश की प्रगति के हित में है। इस गया अधिवेशन में किसान सभा में नरेन्द्र देवजी के नेतृत्व में निश्चय किया कि कांग्रेस को उसके साम्राज्य विरोधी संघर्ष में किसान सभाओं द्वारा सहयोग प्रदान किया जाय और इसतरह देश में एक स्वतन्त्र जनतांत्रिक राज्य स्थापित किया जाय। उन्होंने निश्चय किया कि किसानों के दिन-प्रतिदिन के संघर्षों को एक वृहद साम्राज्य विरोधी संघर्ष में तथा कृषि-क्रान्ति में परिपक्व किया जाय, जिसके द्वारा किसान अपनी जमीन के मालिक बन जायँ, राज्य और किसानों के बीच के सभी मध्यवर्ती शोषकों के शोषण का अन्त हो, कर्जे के बोझ से किसानों का छुटकारा हो और वे अपने श्रम के लाभ का पूरा-पूरा उपभोग कर सकें। इस सम्मेलन में निश्चय किया गया कि किसानों के राजनीतिक संघर्षों को तीव्र किया जाय, सरकार द्वारा आयोजित भारतीय संघ व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष की आवश्यकता की जानकारी किसानों को करायी जाय, आनेवाले देशव्यापी संघर्ष के औचित्य का उनमें प्रचार किया जाय तथा कांग्रेस, अखिल भारतीय किसान सभा, अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस और दूसरे साम्राज्य विरोधी संगठनों का एक संयुक्त मोर्चा बनाया जाय।

जब सन् १९४२ ई० के स्वतन्त्रता संघर्ष में कांग्रेस के ये सब नेता और कार्यकर्ता जेल चले गये जो किसान सभाओं में काम करते थे तब उनकी अनुपस्थिति में कम्युनिस्टों ने किसान सभाओं पर अपना प्रभुत्व जमा लिया, उनको अपने रंग में रंग लिया। स्वतन्त्रता संघर्ष के खत्म होनेपर एक नये किसान संगठन की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। सन् १९४६ ई० में स्वामी सहजानन्द और श्रीइन्दुलाल याज्ञिक ने एक किसान संघ बनाया। उसमें सब विचारों के लोग सम्मिलित हो सक्ते थे। पर ये दोनों कम्युनिस्ट विचारधारा से काफी प्रभावित थे और उनके द्वारा संचालित किसान संघ भी बहुत हद तक कम्युनिस्ट रंग में ही रंग गया। मार्च सन् १९४९ ई० में सोशलिस्ट पार्टी ने अपने पटना अधिवेशन में किसानों और मजदूरों की संस्थाओं के सामूहिक सम्बन्ध और प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त की अपने संविधान में व्यवस्था की और किसान पंचायत संगठन समिति बनायी। इस समिति के अध्यक्ष डॉक्टर राममनोहर लोहिया, उपाध्यक्ष स्वामीभगवान और मंत्री श्रीरामनन्दन मिश्र मनोनीत हुए।

सन् १९४९ ई० में पटना अधिवेशन से पहले ही उत्तर प्रदेश की किसान पंचायत का प्रान्तीय सम्मेलन कानपुर जिले के सिठमरा ग्राम में आचार्य नरेन्द्र देवजी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में उन्होंने किसानों की माँगों को दोहराते हुए उन्हें जागरूक होकर अपनी संगठित शक्ति द्वारा अपने हितों के लिये संघर्ष करने की तथा शोषणविहीन समाजवादी समाज बनाने की सलाह दी।

इस आन्दोलन के नेतृत्व में आजमगढ़ आदि कई जिलों में नावाजिब बेदखलियों के विरुद्ध किसानों ने डटकर संघर्ष किया।

२५ नवम्बर सन् १९४६ ई० को डॉक्टर राममनोहर लोहिया की प्रेरणा से सोशलिस्ट पार्टी और किसान पंचायत के संयुक्त नेतृत्व में लखनऊ में किसानों का एक बड़ा प्रदर्शन हुआ। इस जुलूस में पचास हजार से अधिक किसान सम्मिलित थे। इस दिन उ० प्र० के मुख्यमंत्री पं० गोविन्दवल्लभ पंत को किसानों की माँगों का एक परिपत्र दिये जाने का निर्णय था। पर पंतजी लखनऊ से बाहर चले गये। इस सूचना के मिलने पर जुलूस में 'किसान जागा, पंत भागा' के जोर-जोर से नारे लगने लगे। आचार्यजी ने इसप्रकार के नारे लगाना ठीक न समझकर उसे बन्द करने का आदेश दिया। उनके कहने पर भी उनसे काफी दूर पर यह नारा इसतरह लगता रहा कि नरेन्द्र देवजी उसे न सुन सकें। श्रीदामोदरस्वरूप सेठ ने किसानों के परिपत्र को विधानसभा भवन की दीवार पर चस्पा किया। इस अवसर पर नरेन्द्र देवजी ने अपने ओजस्वी भाषण में किसानों के प्रति सरकार की उपेक्षा तथा अन्याय की भर्त्सना एवं जमींदार उन्मूलन सम्बन्धी सरकार की योजना की कड़ी समीक्षा करते हुए कहा कि जमींदारी उन्मूलन कोष की योजना अवश्य ही असफल रहेगी। उन्होंने गांधीजी के दाण्डीयात्रा से किसानों के इस प्रदर्शन की तुलना करते हुए आशा प्रगट की कि यह प्रदर्शन प्रान्त में एक नये जीवन का संचार करेगा। जो परिपत्र श्रीदामोदरस्वरूप सेठ ने चस्पा किया था उसमें किसानों की निम्नलिखित नौ माँगे थीं :

(१) जमींदारी फौरन खत्म की जाय। भूमि खेतिहरों की हो। भूमिधर और असामियों के सब भेद मिटा दिये जायँ तथा सबके लिए एक और समान कानून हो।

(२) भूमि इस तरह बाँटी जाय कि तीस एकड़ से अधिक कोई जोत न हो। इतनी नयी जमीन तोड़ी जाय कि प्रत्येक किसान परिवार के पास कम से कम साढ़े-बारह एकड़ जमीन हो।

(३) छोटी मशीनों द्वारा संचालित गृह उद्योग प्रत्येक गाँव में चलाये जाएँ और गाँव के नवयुवकों को कला-कौशल की शिक्षा दी जाय।

(४) गाँवों में सहकारी कार्यों को प्रोत्साहन दिया जाय।

(५) नयी जमीनों को खेती के काम में लाने के लिये भूमिसेना का संगठन किया जाय।

(६) खेती से पैदा पदार्थों तथा कपड़ा, सीमेन्ट आदि उपभोग्य सामग्रियों की कीमतों में सन्तुलन हो।

(७) जमींदारी के खत्म होने पर किसानों से उतनी रकम वसूल की जाय कि जितनी जमींदार उस जमीन के लिये मालगुजारी देता है।

(८) खेतिहर मजदूरों के कर्जे माफ हों और वे अपनी जमीनों से बेदखल न किये जायँ।

(६) खजाने की आमदनी का एक पर्याप्त हिस्सा ग्रामोत्थान के लिये गाँव पंचायतों और जिला बोर्डों के सुपुर्द किया जाय।

२५ नवम्बर सन् १६४६ ई० को ही श्री जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में पटना में किसान प्रदर्शन हुआ। फरवरी सन् १६५० ई० में डॉक्टर राममनोहर लोहिया की अध्यक्षता में रीवां में हिन्द किसान पंचायत का पहला अधिवेशन हुआ जिसमें आचार्य नरेन्द्र देव जी ने भी किसानों के हितों के समर्थन में एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया। ३ जून सन् १६५१ ई० को देहली में बहुत शान के साथ जनवाणी दिवस मनाया गया जिसके प्रदर्शन में पहलीबार जोर से नारा लगा कि "रोजी रोटी कपड़ा दो–वर्ना गद्दी छोड़ दो"। किसान पंचायत के तत्वावधान में कई प्रान्तों में किसानों के बहुत से संघर्ष हुए, जिनमें सोशलिस्ट पार्टी के बहुत से कार्यकर्ताओं ने डटकर हिस्सा लिया। सन् १६५४ ई० में सारे उ०प्र० में आबपाशी आन्दोलन हुआ जिसमें हजारों सत्याग्रहियों को सजा भुगतनी पड़ी। ४ जुलाई को डॉक्टर राममनोहर लोहिया स्वयं फरुखाबाद में गिरफ्तार हुए। पर हाईकोर्ट ने अध्यादेश को अवैधानिक घोषित करते हुए उनकी गिरफ्तारी गैरकानूनी करार दी। अतः डॉक्टर राममनोहर लोहिया के साथ-साथ सब सत्याग्रही छोड़ दिये गये।

आठ अगस्त सन् १६४६ ई० को युक्त प्रान्त की लेजिसलेटिव असेम्बली ने एक प्रस्ताव द्वारा जमींदारी प्रथा को, जिसमें काश्तकारों और राज्य के बीच के सभी मध्यवर्ती शामिल थे, खत्म करने के सिद्धान्त को स्वीकार किया और निश्चय किया कि मध्यवर्तियों के हकों को मुआवजा देकर हासिल कर लिया जाय। उसको आदेश दिया गया कि वह इस मकसद के लिए एक स्कीम तैयार करने को एक कमेटी नियुक्त करे। इस प्रस्ताव के मुताबिक सरकार ने मुख्यमंत्री पं० गोविन्द वल्लभ पंत की अध्यक्षता में जमींदारी उन्मूलन कमेटी बनायी गयी। इस कमेटी को आचार्य नरेन्द्र देव ने सन् १६४७ ई० में एक लिखित स्मृतिपत्र भेजा। इस स्मृतिपत्र में उन्होंने लिखा कि जमींदारी प्रथा के उपद्रव और आज तक जमींदारों द्वारा किसान पर किये गये अत्याचारों को ध्यान में रखते हुए यदि इस प्रश्नपर विचार किया जाय तो मुआवजा देने और जमींदारों के पास जमीन छोड़ने की बात पीछे पड़ जाती है। भूमि तो प्रकृति की देन है इसके साथ सारे समाज के जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसको किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं समझा जा सकता। वस्तुतः वह राष्ट्र की पवित्र धरोहर है। उसकी उर्वरता समाज का धन है। उसकी रक्षा और अभिवृद्धि राष्ट्र का कर्त्तव्य है। पर मध्यवर्ती जमींदारों ने तो इसकी नितान्त उपेक्षा ही की है। किसानों का शोषण तथा विलासिता और आवारागर्दी की जिन्दगी बिताना ही उनका एकमात्र जीवनलक्ष्य रहा है। आचार्यजी ने मध्यवर्तियों के भूमि स्वामित्व के अधिकारों की समालोचना करते हुए कहा कि कुछ तो ऐसे

हैं जो बिना एक पैसा खर्च किये ही विशाल भूमि के स्वामी बन बैठे हैं। बड़े मध्यवर्तियों में अवध के तालुकेदार इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनको विभिन्न प्रकार से मूल्य चुकाना पड़ा है। किन्तु समय के दौरान में इन जमींदारों ने कानूनी तौर से मिलनेवाला लगान तो वसूल ही किया, पर इसके अतिरिक्त नजरानों, गुप्त लगान, अनाधिकृत सायर आदि रकमों को भी बहुत नीच और जंगली तरीकों से वसूल किया है। उन्होंने बताया कि समय-समय पर काश्तकारों को बेदखल करने के लिये उन्होंने तरह-तरह के उपाय निकाले और कई कानून बनवाये, ताकि अधिक लगान और नया नजराना लेकर वे दूसरे काश्तकारों को खेत दे सकें।

आचार्यजी ने स्मृतिपत्र में लिखा कि जिसतरह से जमींदारों ने किसानों को लूटा, खसोटा और चूसा है यदि उसका हिसाब लगाया जाय तो किसानों के ऋण से उऋण होना जमींदारों के बूते की बात नहीं है। उनकी राय में ऐसी हालत में मुआवजा देने का सवाल ही नहीं उठता। आचार्य जी ने मुआवजे के सम्बन्ध में जमींदारों की माँग कों पूरा करना असम्भव बताया। स्मृतिपत्र में उन्होंने कहा कि चालू बाजारदर पर जमींदारी की कीमतें चुकाना न तो उचित है न शक्य है। जमींदारों की यह माँग कि जितना वार्षिक लगान वे पाते हैं उसके बराबर सालाना सूद की रकम उन्हें मुआवजे में मिले, बिल्कुल ही वाहियात अनुचित और असम्भव है। आचार्यजी की राय थी कि भूमि प्राप्त का कानून दरअसल जमीन के छोटे टुकड़ों के लिये बना था, जिनकी कीमत काफी ऊँची दी जा सकती थीं, लेकिन जब सारे प्रान्त की भूमि सम्पत्ति लेने की बात हो, तो यह सम्भव नहीं हो सकता।

आचार्य नरेन्द्र देवजी ने लिखा कि चूँकि सन् १९३५ ई० में ऐक्ट की २९९वीं धारा के अनुसार मुआवजा देना और मुआवजे के सिद्धान्त को बताना जरूरी है, इसलिए उनकी राय में नये कानून में मुआवजे के सिद्धान्त को निश्चय तो किया जाय, पर सिद्धान्त निश्चित करते समय केवल जमींदारों के हितों का ध्यान न रखा जाय, बल्कि यह भी देखा जाय कि सरकार इतना दे सकती है या नहीं, वरना मुआवजे की रकम कागज पर धरी रह जायेगी। आचार्यजी की राय में न तो पूरी बाजारदर दी जाय और न मुआवजा ही दिया जाय। बल्कि भूमिहृत जमींदारों को पुर्नवास की समुचित रकम देने के लिये एक ऐसा पैमाना कायम किया जाय जिसके अनुसार छोटे जमींदारों को अधिक से अधिक और बड़े जमींदारों को क्रमशः कम मिले। यह रकम घटाते जाकर किसी को पाँच लाख से अधिक न दी जाय। इसप्रकार पुनर्वास की कुल रकम हिसाब से सौ करोड़ के लगभग होती है। यदि बंजर जमीन का मुआवजा देना ही पड़े तो वह दो रुपये एकड़ से अधिक नहीं होना चाहिये। उनकी राय में उस समय किसानों से जो २४ करोड़ रुपये लगान में वसूल किया जाता था उसमें से पहले की तरह ८ करोड़ रुपये मालगुजारी की शक्ल में सरकार ले, ८ करोड़ रुपये मुआवजे की

अदायगी में खर्च किये जाएँ, ४ करोड़ की छूट किसानों को दी जाय और ४ करोड़ रुपये भूमि सुधार में लगाये जाएँ ।

सन् १९४७ ई० में बनारस जिला किसान सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने घोषित किया कि 'समाजवादी सिद्धान्ततः मुआवजा देने के विरोधी हैं' और कहा कि हमारे देश में मुआवजा देने का प्रश्न, सिद्धान्त की दृष्टि से इसलिए भी नहीं उठता कि जमींदारी प्रथा हमारे देश की अपनी प्रथा न होकर विदेशी शासन द्वारा अपनी सुविधा और सहायता के लिये खड़ी की गयी प्रथा है । उन्होंने जमींदारों की धांधलियों का जिक्र करते हुए किसानों के हितों की समुचित रक्षा की तथा सार्वजनिक चरागाहों, मार्गों और जंगलों पर जमींदारों के बेजा क़ब्जे को रोकने की माँग की । सहकारी खेती की आवश्यकता बताते हुए उन्होंने कहा कि समूचे गाँव के लोग मिलकर सहकारी खेती की प्रथा को अपनावें, सबकी जमीन एक साथ जोती और बोयी जाय । फसल काटने के समय क्षेत्रफल के हिसाब से पैदावार बाँट ली जाय । खेती के विकास के लिये सरकार द्वारा सिंचाई का समुचित प्रबन्ध किया जाय और सस्ते दर पर सूद देनेवाले सहकारी बैंक खोलकर किसानों को साहूकारों के पंजे से मुक्त कराया जाय तथा सहकारी समितियों द्वारा खरीद और बिक्री की व्यवस्था की जाय । आचार्यजी ने अपने इस भाषण में किसानों की मनोवृत्ति के बदलने पर जोर दिया और कहा कि हमें किसानों के मस्तिष्क से भाग्यवाद को निकाल फेंकना है । उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होना सिखाना है एक दूसरे के साथ सहयोग करना सिखाना है । ग्राम और नगर के फर्क को मिटाने के लिये शोषण पर आधारित सामन्तवाद तथा पूँजीवाद का अन्त किया जाना जरूरी बताते हुए उन्होंने कहा कि 'शोषणमुक्त समाज की स्थापना के लिये किसान-सभाओं को मजदूर सभाओं के साथ घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करके आन्दोलन करना होगा ।'

सन् १९४८ में युक्त प्रान्तीय सरकार द्वारा नियुक्त जमींदारी उन्मूलन कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित की गयी । इस रिपोर्ट में इसबात को स्वीकार करते हुए भी कि छोटे किसानों पर से लगान के बोझ को कम करने की जरूरत है, इस काम को चालीस वर्ष तक मुलतवी रखने का सुझाव दिया गया, दस एकड़ तक के किसानों के लगान में कुछ कमी की सिफ़ारिश की गयी । रिपोर्ट में यह भी स्वीकार किया गया कि जमीन के पुनर्वितरण से सामाजिक न्याय और उत्पादन की वृद्धि होगी, पर उसका यह कहकर विरोध किया गया कि इसके कारण गाँवों में बड़े-बड़े किसानों के विद्रोह का भय है और भूमि के वितरण के बाद सारी पैदावार को किसान स्वयं खा जायेंगे और नगरों की जनता के लिये कुछ बाकी नहीं रहेगा । रिपोर्ट में यह बात मानी गयी कि खेती के काम में पूँजी लगाना, उसमें घाटे-नफे की जिम्मेदारी लेना, खेती का प्रबन्ध करना और खेती के काम में अपना श्रम लगाना किसान के चार काम हैं, पर इनमें से पहले तीन काम ही प्रमुख काम स्वीकार किये गये । इसतरह से जमींदारी के उन्मूलन की सिफारिश करते समय

युक्त प्रान्तीय कमेटी ने सबप्रकार के मध्यवर्तियों के अधिकारों के उन्मूलन की सिफारिश नहीं की। रिपोर्ट में शिकमियों तथा सीर और खुदकाश्त के किसानों को छः महीने के अन्दर बेदखल करने की जमींदारों को छूट दी गयी। रिपोर्ट में जमींदारी उन्मूलन के समय जमींदारों को मुआवजा देने की और छोटे-छोटे जमींदारों को मुआवजे के साथ-साथ पुनर्वास देने की सिफारिश की गयी। मुआवजे और पुनर्वास की सब रकम किसानों से वसूल करना जरूरी समझा गया, और इसके लिये यह सुझाव दिया गया कि किसानों से पुराना लगान ही मालगुजारी के रूपमें वसूल किया जाय और दस साल का लगान वसूल करके किसानों को भूमिधरी के अधिकार बेचे जाएँ। आचार्यजी को जमींदारी उन्मूलन कमेटी की ये सिफारिशें मंजूर नहीं थीं। उनके विचार में कमेटी की रिपोर्ट धारा सभा के मन्तव्य को ठीक तौरपर पूरी नहीं करतीं और उसे प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता। उसकी सिफारिशों में जहाँ भूमि के पुनर्वितरण के विचार का विरोध किया गया है, वहाँ भूमिहीन किसानों के हितों के समुचित संरक्षण की अपेक्षा की गयी है। कमेटी के सुझाव शिकमीदारों के बहुत बड़े हिस्से को अधिकार विहीन कर देते हैं, अलाभकर जोतों के किसानों को भी राहत नहीं पहुँचाते। मुआवजे के सम्बन्ध में कमेटी ने जिस व्यवस्था की सिफारिश की है उससे छोटे जमींदारों का पुनर्वास असम्भव है और बड़े जमींदारों को काफी बड़ी रकम मिल जाती है।

उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित होने के कुछ अर्से के बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा नियुक्त कृषि सुधार समिति लखनऊ गयी। जमींदारी उन्मूलन कमेटी की रिपोर्ट की आलोचना करते हुए आचार्यजी ने भूमिसुधार सम्बन्धी विचारों को इस समिति के सामने रखा। उनका अपना प्रस्ताव था कि 'सरकार और कृषकों यानी जमीन जोतनेवालों के बीच कोई मध्यवर्ती लोग न हों, जमीन के पुनर्वितरण का अधिकार सरकार तुरन्त अपने हाथ में ले, और पुनर्वितरण के बाद किसी हाथ में तीस एकड़ से अधिक जमीन न हो।' आचार्यजी का सुझाव था कि जमींदारों से जो मालगुजारी वसूल होती है वही रकम किसानों से वसूल की जाय और उन्हें पुराना लगान देने पर मजबूर न किया जाय। उनका विशेष आग्रह था कि "जो खाते लाभकर नहीं हैं उन खातों के किसानों के खाते जबतक लाभकर नहीं बन जाते तबतक यदि इन्हें पूरे लगान की छूट नहीं दी जा सकती हो तो कम से कम इस लगान को बहुत कुछ घटा दिया जाय।" मुआवजे के सम्बन्ध में मार्क्सवादियों तथा दूसरे समाजवादियों के विचारों का विश्लेषण करते हुए नरेन्द्र देवजी ने कहा कि हमारी राय में किसी को भी जमीन का मालिक समझकर क्षतिपूर्ति की रकम न दी जाय, पर जिन लोगों से जमीन ली जाय उनके पुनर्वास का प्रबन्ध किया जाय। इस हिसाब से अमीरों को क्षति पूर्ति का कोई अधिकार नहीं होगा, पर गरीबों को अधिक से अधिक रकम मिलनी ही चाहिए और उनके लिये ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए कि वे कोई नया उद्योग-धन्धा शुरू कर सकें। पर यदि सरकार मुआवजा देना

चाहे तो यह नियम बनाया जाय कि किसीको एक लाख रुपये से अधिक मुआवजा में नहीं दिया जायगा। और जिन मालिकों को दस हजार रुपये से अधिक मुनाफा मिलता है उन्हें मुनाफ़े की तिगुना रकम ही दी जायेगी। उन्होंने छोटे जमींदारों के पुनर्वास के सम्बन्ध में जमींदारी उन्मूलन कमेटी की सिफारिशें नाकाफी बताते हुए सुझाव दिया कि जो छोटा जमींदार दूसरों के परिश्रम का शोषण न कर, हल चलाना चाहे उन्हें जमींन की शक्ल में पुनर्वास दिया जाय। उन्होंने शिकमी काश्तकारों के हकों को तसलीम करने तथा बेदखलियों को बन्द करने पर जोर दिया। सामूहिक खेतों का विरोध करते हुए उन्होंने सहकारी खेती का समर्थन किया और सुझाव दिया कि उसके सम्बन्ध में किसानों का जन-मत लिया जाय और यदि समाज के दो तिहाई से अधिक बालिग लोग सहकारी खेती के पक्ष में हों तो उसे आरम्भ कर दिया जाय। ऐसे खेतों को विशेष अवसर और विशेष सुविधाएँ दी जानी चाहिए ताकि दूसरे लोग भी इसका अनुकरण करने लगें।

आचार्य नरेन्द्र देवजी ने कहा कि देहातों में लोकतंत्रात्मक चाल-ढाल, रहन-सहन तथा लोकतंत्र की परम्परा स्थापित करने के लिए सहकार की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करना नितान्त आवश्यक है। सहकार ही ग्राम-जीवन का आधार होना चाहिए ताकि जनता परस्पर सहयोग करना सीखे। सहकार से उत्पादन करे और सहकार से ही अपने उत्पादन का क्रय-विक्रय करे। इस सहकार की अभिवृद्धि के लिये पंचायत पद्धति का पुनरुद्धार किया जाय। उन्होंने इसबात पर भी जोर दिया कि कृषि सम्बन्धी मजदूर को कम से कम मजदूरी निश्चित करनेवाला कोई कम से कम मजदूरी का कानून शीघ्र ही बनाया जाय और जब नये सरकारी फार्म बन जाएँ, तब भूमिहीन किसानों को उनपर बसने को राजी किया जाय। उनकी दशा को सुधारने के लिए सहकार के आधार पर गृहशिल्प के धन्धों को चलाना भी जरूरी है। गाँवों की दशा को सुधारने के लिए उन्होंने गाँव के स्कूल और पाठशालाओं को सामाजिक जीवन के केन्द्र बनाये जाने पर जोर दिया और आशा की कि हमारे नवयुवक शिक्षा ग्रहणकर इस योग्य बनेंगे कि जनता की सेवा के लिये वे गाँवों में रह सकें।

सन् १९४९ ई० में उ० प्र० के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने जमींदारी प्रथा को खत्म करने के लिये एक विधेयक विधानसभा में प्रस्तुत किया। इस विधेयक में किसानों को भूमिधर, सीरदार, अधिवासी, असामी—इस चार वर्गों में बाँट दिया गया था। जबकि सभी जमींदारों को अपनी सीर और खुदकाश्त पर भूमिधर के अधिकार प्राप्त थे, वहाँ इन अधिकारों को हासिल करने के लिए सीरदार को दसगुने लगान और शिकमियों को बीस गुने लगान की अदायगी जरूरी थी। इस विधेयक में सीरदार से उसी लगान को वसूल करने की व्यवस्था की गयी थी जो किसान उससमय जमींदार को देता था, जबकि भूमिधर से उसका आधा लेने की और शिकमी से असामी की हैसियत से दुगना लगान वसूल करने की व्यवस्था थी। इस विधेयक में बेदखलियों पर रोक तो लगायी गयी थी, पर खुद काश्त

के नाम पर किसानों और शिकमियों से जमीन ले लेने की व्यवस्था कर दी गयी थी। जमीन के वितरण के प्रश्न की तो नितान्त उपेक्षा की गयी थी। उस विधेयक में और भी कई ऐसी धाराएँ थीं कि जिनकी मदद से पुराने जमींदार बड़े-बड़े फार्म बना सकते थे तथा अपने पास पुराने बाग रख सकते और नये बाग लगा सकते थे। भूमिहीन खेतिहर मजदूरों के हितों की रक्षा की भी की व्यवस्था नहीं की गयी थी। इस विधेयक में छोटे और बड़े जमींदारों में भेद तो किया गया था। जहाँ सब जमींदारों को एक ही शरह पर मुआवजे की व्यवस्था थी, वहाँ छोटे और मझोले जमींदारों के लिये मुआवजे के अतिरिक्त विभिन्न शरह के आधार पर पुनर्वास की भी व्यवस्था थी। पर मुआवजे की कोई अधिकतम हद निश्चित नहीं की गयी थी और मुआवजे की जो शरह निश्चित की गयी थी वह बड़े जमींदारों को एक बड़ी रकम की वसूली का हकदार बना देती थी, जबकि छोटे जमींदारों को इतनी कम रकम मिलती थी कि जिससे उनका पुनर्वास असम्भव ही था।

इस विधेयक से सोशलिस्ट पार्टी बिल्कुल असन्तुष्ट थी। उसने इसकी कड़ी आलोचना करते हुए उसके सुधार के लिये बहुत से सुझाव प्रस्तुत किये। किसानों का चार भागों में विभाजन, भूमिधरी की व्यवस्था, जमीन के पुनर्वितरण की व्यवस्था की कमी, शिकमी और खेतिहर मजदूरों के हितों के संरक्षण का अभाव, खुदकाश्त के नाम पर जमींदारों को बेदखली की छूट आदि बातें उसे पसन्द नहीं थीं। सोशलिस्ट पार्टी को विधेयक की मुआवजा सम्बन्धी धाराएँ भी ठीक नहीं मालूम होती थीं। उसने मुआवजे के सिद्धान्त का विरोध करते हुए छोटे जमींदारों के पुनर्वास की समुचित व्यवस्था की माँग की। सोशलिस्ट पार्टी के सुझावों का विरोध करते हुए एक सरकारी प्रवक्ता ने आचार्यजी के सन् १९४७ ई० के स्मृतिपत्र की ओर संकेत करते हुए सोशलिस्ट पार्टी की मुआवजा सम्बन्धी तजबीज को आचार्य नरेन्द्र देव जी के विचारों के विपरीत बताया।

इसके जवाब में आचार्यजी ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने विधेयक की आलोचना करते हुए सोशलिस्ट पार्टी के सुझावों का समर्थन किया। उन्होंने विधेयक की कुछ धाराओं को तो जमींदारी उन्मूलन कमेटी के सुझावों से भी अधिक खराब बताया। इस विधेयक में उन्होंने लिखा, जमींदारी प्रथा को खत्म करने की कोई अवधि निश्चित नहीं की गयी है, जमींदारों को हजारों एकड़ के फार्म रखने की इजाजत है और गरीब किसानों के बोझ में कोई कमी नहीं की गयी है। आचार्यजी ने यह भी लिखा कि जब कांग्रेस वर्गविहीन समाज बनाने का दावा करती है तब किसानों को भूमिधर, सीरदार, अधिवासी और असामी इन चार वर्गों में क्यों बाँटती है। उन्होंने लिखा कि जमींदारी उन्मूलन की यह योजना 'अधिगामी' ही समझी जा सकती है जो गरीब किसानों में जमीन का फिर से बँटवारा करने की व्यवस्था नहीं करती। जबकि लगभग सत्तर प्रतिशत जोतें अलाभकर हैं, उस समय बड़ी जोतों को तोड़कर ही उनकी संख्या को कम किया

जा सकता है। उन्होंने यह भी लिखा कि जबकि जमींदारी उन्मूलन कमेटी का सुझाव था कि गाँव पंचायतों की स्वीकृति से गाँव समाज के लोगों में ही भूमि को हस्तान्तरित किया जा सकता है, वहाँ इस विधेयक में भूमिधरों को भूमि हस्तान्तरित करने के अनियंत्रित अधिकार दे दिये गये हैं और वे चाहें तो अपनी भूमि को उन लोगों को भी बेच सकते हैं जिनका कृषि के व्यवसाय से कोई सम्बन्ध नहीं है। आचार्यजी ने यह स्वीकार किया कि सन् १९४७ ई० में जो योजना उन्होंने जमींदारी उन्मूलन कमेटी के सामने पेश की थी वह सोशलिस्ट पार्टी की मौजूदा योजना से भिन्न है। पर इसका एकमात्र कारण यह है कि उस समय सन् १९३५ ई० के एक्ट की २९९ धारा के कारण देश मुआवजा देने को बाध्य था और अब स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद उस धारा को बदला जा सकता है और मुआवजे की बात खत्म की जा सकती है। उन्होंने लिखा कि वे उस समय भी मुआवजे के सिद्धान्त को गलत समझते थे और सोशलिस्ट पार्टी ने जो नयी योजना तैयार की है वह मूलतः उनके सिद्धान्तों को मानती है, उनकी मौजूदगी में ही बनी है और उसे वे स्वीकार करते हैं। सरकार की योजना से अपनी १९४७ ई० की योजना की तुलना करते हुए आचार्यजी ने बताया कि जहाँ उन्होंने अपनी योजना में अधिक से अधिक एक सौ करोड़ रुपये मुआवजे में देने का सुझाव रखा था, वहाँ सरकार की योजना में १७० करोड़ रुपये मुआवजे में देने का अनुमान है और जहाँ उन्होंने सिफारिश की थी कि किसानों को लगान में चार करोड़ रुपये साल की छूट दी जाय और अलाभकर जोतों के किसानों के लगान में काफी कमी की जाय, वहाँ सरकार किसी किसान को भी लगान में छूट देना नहीं चाहती। अन्त में उन्होंने सरकारी प्रवक्ता से पूछा कि क्या सरकार सन् १९४७ ई० के उनके परिपत्र के अनुरूप विधेयक में संशोधन करने को तैयार हैं और कहा कि यदि सरकार ऐसा करे तो वे अपनी पार्टी को उसे मंजूर करने के लिये राजी करने का प्रयत्न करेंगे।

स्वतन्त्रता के बाद स्थानीय स्वायत्त शासन को दृढ़ बनाने के निमित्त उ० प्र० में बालिग मताधिकार के आधार पर गांव पंचायतों और गाँव अदालतों की नयी व्यवस्था की गयी। फरवरी सन् १९४८ ई० को चुनाव कराना निश्चित हुआ। सोशलिस्ट पार्टी यह नहीं चाहती थी कि गाँव पंचायतें और पंचायती अदालतें दलबन्दी के दलदल में फँसे, इसलिये उसकी उ०प्र० की कार्यसमिति ने निश्चय किया कि पार्टी की ओर से इन संस्थाओं के लिये उम्मीदवार खड़े न किये जाएँ। इसके बाद कांग्रेस ने भी यही निश्चय किया। चुनाव के कुछ दिन बाद प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने निश्चय किया कि सरकार गाँव पंचायतों और पंचायती अदालतों के सोशलिस्ट पंचों के काम की जाँच करे और जाँच के बाद सोशलिस्ट सदस्यों के विरुद्ध कार्यवाही करे। पंचायती इंसपेक्टरों ने भी पंचों को मजबूर करना शुरू किया कि वे दस साल के लगान की वसूली में सरकार के कर्मचारियों का साथ दें, वरना वे ग्राम पंचायतों या पंचायती अदालतों से इस्तीफा दे दें। इसी जमाने

में २६ मई सन् १६४८ ई० को डॉक्टर राममनोहर लोहिया की प्रेरणा से उनकी अध्यक्षता में लखनऊ में पंच सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए नरेन्द्र देवजी ने गाँवों में शोषितों का संयुक्त-मोर्चा कायम करने पर पंचों का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने गाँववालों को बालिग मत के आधार पर अपने प्रतिनिधियों को भेजने का अधिकार दिये जाने पर खुशी जाहिर की और कहा कि बालिग मताधिकार एक क्रान्तिकारी अधिकार है। यह प्रजातन्त्र की आधारशिला है। जम्हूरियत का बुनियादी पत्थर है। जाति, समुदाय या सामाजिक हैसियत का भेद किये बगैर सभी बालिग स्त्री-पुरुषों को एक दर्जा दिये बिना जम्हूरियत प्रजातन्त्र कायम नहीं हो सकता। उन्होंने स्वीकार किया कि 'ग्राम पंचायतों के चुनाव में ऊँच और नीच जातियों का संघर्ष वस्तुतः शोषकों और शोषितों के बीच चलने वाले संघर्ष का रूप है और वह बहुत हद तक हिन्दुस्तान की सामाजिक परिस्थिति का परिणाम है।' पर उनके विचार में संघर्ष की यह शक्ल खतरे से खाली नहीं थी। इस संघर्ष को सही शक्ल देना वे समाजवादियों का कर्त्तव्य समझते थे। उन्होंने कहा कि 'कुचला हुआ मजदूर आर्थिक एकाधिकार का दोष जाति की ऊँचाई को देता है। वह यह नहीं देख पाता कि शोषक और शोषित ऊँची और नीची दोनों जातियों में बँटे हैं। देहात का गरीब बिरादरी की परिभाषा में ही सोचता है। हमें देहात की शोषित जनता को समझाना है कि जाति, वंश और सम्प्रदाय के भेदों को भुलाकर शोषक वर्गों के आर्थिक प्रभुत्व के विरुद्ध वे संयुक्त-मोर्चा कायम करें।'

इस सम्मेलन के कुछ दिन बाद नरेन्द्र देवजी ने गाँव पंचायतों के काम में प्रान्तीय सरकार के अनावश्यक हस्तक्षेप और पंचों पर नामुनासिब दबाव डालने के विरोध में एक वक्तव्य प्रकाशित किया। उन्होंने लिखा कि देश में जनतांत्रिक परम्पराओं को प्रतिष्ठित करने के लिए जरूरी है कि पार्टी और सरकार के भेद को कायम रखा जाय और पार्टी को सरकार के नाम पर जनतांत्रिक संस्थाओं के कार्य में हस्तक्षेप करने की इजाजत न हो। विकेन्द्रित जनतन्त्र की रक्षा के लिये यह भी जरूरी है कि प्रान्तीय सरकार स्थानीय जनतांत्रिक संस्थाओं के कार्य में हस्तक्षेप न करे और संस्था के सदस्यों को अपनी-अपनी इच्छा और मत के अनुसार स्थानीय मामलों के प्रबन्ध की आजादी हो। जनतन्त्र में यह बहुत सम्भव है कि जहाँ किसी एक विशेष दल का प्रान्त में बहुमत हो, वहाँ किन्हीं विशेष स्थानों पर किसी दूसरे दल का बहुमत हो। विकेन्द्रित जनतंत्र का यही गुण है कि जिन स्थानों पर उन पार्टियों का बहुमत हो कि जो सारे प्रान्त में अल्पमत रखती हैं, उन स्थानों में वे पार्टियाँ वहाँ की जनता की राय के अनुसार वहाँ की स्थानीय समस्याओं का प्रबन्ध करें। प्रान्तीय सरकारों को कोई अधिकार नहीं कि वे ग्राम पंचायतों और पंचायती अदालतों की स्वतंत्रता का अपहरण कर उन्हें एक सरकारी एजेन्सी में तबदील कर दें। उनका निश्चित मत था कि दस गुने लगान की वसूली गाँव पंचायतों का काम नहीं है और इसलिये इस काममें सरकारी

कर्मचारियों को मदद करने के लिये पंचों को मजबूर नहीं किया जा सकता। आचार्यजी ने लिखा कि जनतांत्रिक परम्परा की प्रतिष्ठा के लिये जरूरी है कि इस विषय पर गाँव पंचायतें तटस्थ रहें और कोई पंच किसी शक्ल में पंचायत के अपने अधिकार या प्रभाव को इस काम में इस्तेमाल न करे। हाँ, यदि वे चाहें तो व्यक्तिगत हैसियत से अपने-अपने मत के मुताबिक इस प्रश्न पर अपने विचार जनता पर प्रकट कर सकते हैं।

सन् १९४९ ई० में पछवा हवा और ओलों के कारण देवरिया जिले में फसल को बहुत क्षति पहुँची। क्षति कितनी हुई इसके सम्बन्ध में किसानों और सरकारी कर्मचारियों में मतभेद था। किसानों का कहना था कि फसल इतनी कम हुई है कि कानून के मुताबिक उनका लगान माफ हो जाना चाहिए। सरकार का कहना था कि केवल सैंतीस गाँवों की दशा ही बहुत खराब हुई है, उन्हीं में लगान की माफी होनी चाहिए। सोशलिस्ट पार्टी की प्रान्तीय कार्य समिति ने परिस्थिति की जाँच के लिए सर्वश्री गेंदा सिंह, मुकुट बिहारी लाल और स्वामी भगवान की एक जाँच कमेटी नियुक्त की। यह कमेटी जाँच करके इस निश्चय पर पहुँची कि क्षति जिले भर में है और पटवारियों पर विश्वास न करके इसकी निष्पक्ष जाँच करना जरूरी है। आचार्यजी की अनुमति से कमेटी के सदस्य, मुख्यमंत्री पण्डित गोविन्दवल्लभ पंत से मिले और उनसे बहुत ही विनम्रता से कहा कि उनकी जैसी व्यापक सहानुभूति रखनेवाले किसी गैरसरकारी सज्जन से दशा की जाँच कराना उचित होगा। उनसे यह भी कहा गया कि यह जाँच किसी गैरसरकारी कांग्रेसी नेता या कार्यकर्ता के सुपुर्द भी की जा सकती है। पर पंतजी ने कहा कि नई स्वतन्त्र सरकार बन जाने के बाद यह कैसे समझा जा सकता है कि गाँव के पटवारी उनकी व्यापक सहानुभूति से अनुप्राणित नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि जब गैरसरकारी सदस्य को चढ़ने के लिये जीप दी जायगी और सफरखर्च के लिये भत्ता दिया जायगा, तब वह भी सरकारी आदमी हो जायगा। कुछ देर की बातचीत के बाद उन्होंने कहा कि गैरसरकारी व्यक्तियों में उत्तरदायित्वों की भावना का अभाव है। पंतजी की यह बात सुनकर कमेटी के सब सदस्य चुप रह गये। उनकी समझ में नहीं आता था कि जब गैरसरकारी व्यक्तियों के प्रति पंतजी की ऐसी धारणा है तब फिर क्या कहा जा सकता है, फिर भी गेंदा सिंह जी अपनी बात कहते ही रहे। पर पंत जी ने कोई बात नहीं सुनी। कमेटी के सदस्य अपना-सा मुँह लेकर खाली हाथ लौटे और उन्होंने आचार्य नरेन्द्र देवजी को सब हाल सुनाया। दूसरे कई सार्वजनिक संस्थाओं और कार्यकर्ताओं ने भी पंतजी का ध्यान देवरिया के किसानों की ओर दिलाया। पर उनकी बात भी नहीं सुनी गयी। आखिर सोशलिस्ट पार्टी ने किसानों का शान्तिमय सत्याग्रह शुरू किया।

अप्रैल सन् १९५० ई० में नरेन्द्र देवजी ने सोशलिस्ट पार्टी की पंजाब शाखा के सम्मेलन की जालन्धर में अध्यक्षता की। अपने अध्यक्षीय भाषण में

उन्होंने और बहुत सी बातों का जिक्र करते हुए पार्टी के कार्यकर्ताओं को किसानों और खेतिहर मजदूरों के संघर्षों में डटे रहने की सलाह दी। उन्होंने कहा कि "जब तक कोई पार्टी गरीबों की, दुःखी जनता की, समस्याओं को लेकर संघर्ष नहीं करती उसे शक्ति नहीं मिल सकती। अगर आप जनता की तहरीकों को नहीं उठाते और वोट के चक्कर में फँस जाते हैं तो मैं आपको बताऊँ कि जनतांत्रिक समाजवाद नहीं हो सकता। जनतांत्रिक समाजवाद तो इस बात की माँग करता है कि आप जनता की माँगों को समझ कर उनके लिये आन्दोलन करें। आन्दोलन और संघर्ष से जो शक्ति मिलती है वह और किसी तरह नहीं मिल सकती। उनसे अनुभव प्राप्त होता है और अनुभव ही ठीक लाभदायक पुस्तक है। कांग्रेस ने जब कभी आन्दोलन किये इसके बाद उसे शक्ति प्राप्त हुई। आप भी आन्दोलन करें। मैं आपको विश्वास दिलाऊँ कि कोई कुर्बानी बेकार नहीं जाती। अगर कोई फल इस समय नहीं मिलता तो कल जरूर मिलेगा। अगर जनता यह समझ ले कि सोशलिस्ट पार्टी ने उनके लिये कुर्बानी की-है तो जनता जरूर आपका साथ देगी।

यह बातें आचार्य नरेन्द्र देवजी ने हिसार जिले के बेदखलियों के विरुद्ध संघर्ष के सिलसिले में कही थी। इस जिले में दादा गणेशीलाल जी के नेतृत्व में सोशलिस्ट पार्टी के तत्त्वावधान में किसानों ने बेदखलियों के विरुद्ध एक प्रभावशाली संघर्ष किया था। इस संघर्ष से प्रभावित हो मुख्यमंत्री भीमसेन सच्चर ने बेदखलियाँ बन्द करने का वायदा किया। पर कुछ दिन बाद उनके स्थान पर श्री गोपीचन्द भार्गव मुख्यमंत्री बने और उन्होंने सच्चरसाहब के वायदे को पूरा करने से इन्कार कर दिया। इस पर सोशलिस्ट पार्टी को फिर संघर्ष शुरू करना पड़ा और फिर सरकार को मजबूर होकर बेदखलियाँ बन्द करने के सम्बन्ध में कानून बनाना पड़ा।

इस संघर्ष के साथ-साथ सन् १९४९ ई० और १९५३ ई० के दरम्यान सोशलिस्ट पार्टी और गाँव पंचायतों के नेतृत्व में दो और संघर्ष खेतिहरें और शिकमियों के चलाये गये। होशियारपुर में बाबा महेन्द्र गोपाल सिंह के नेतृत्व में उन खेतिहारों के लिये संघर्ष हुआ जो पश्चिमी पंजाब को छोड़ पूर्वी पंजाब में आये थे। ये खेतिहर बटाई पर कुछ जमीनें पश्चिमी पंजाब में बड़े किसानों की जोतते थे। उनकी माँग थी कि जब पश्चिमी पंजाब के किसानों को पूर्वी पंजाब में जमीन मुआवजे की शक्ल में मिली तो खेतिहरों को भी मिलनी चाहिए।

सन् १९४७ ई० के एक निर्णय के अनुसार पश्चिमी पंजाब के निष्क्रान्त लगभग ६७ हजार शरणार्थी काश्तकारों को निष्क्रात मुसलमान खेतिहरों की जमीनें दे भी दी गयीं थी। पर शरणार्थी भूमिस्वामियों के दबाव पर सरकार ने केवल उन्हें ही जमीने देने का निर्णय किया और शरणार्थी खेतिहरों को बेदखल करना शुरू कर दिया, उनके पुनर्वास की समस्या पर उचित ध्यान देना जरूरी नहीं समझा।

तीसरा संघर्ष फिरोजपुर और अम्बाला जिलों में सरदार हरभजन सिंह के नेतृत्व में पूर्वी पंजाब के पुराने मुसलमान जमींदारों के हिन्दू और सिक्ख शिकमियों के पक्ष में था। इन शिकमियों का कहना था कि जब पाकिस्तान में चले जाने के कारण मुसलमान जमींदारों की जमीनों को सरकार ने निष्क्रान्त सम्पत्ति घोषित कर उसपर अधिकार जमा लिया, उन्हें पश्चिमी पंजाब से आनेवाले किसानों में वितरित किया, उस समय पुराने भूमिस्वामियों के काश्तकारों के हक तो सुरक्षित रहने ही चाहिए, उन हकों की उपेक्षा तो उनके साथ अन्याय होगा। इन संघर्षों में सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं को काफी कष्ट सहन करना पड़ा। श्री हरभजन सिंह आदि कार्यकर्ताओं को बार-बार जेल की यातनाएँ सहन करनी पड़ी।

अन्त में इन संघर्षों के फलस्वरूप किसानों और खेतिहरों को बहुत कुछ लाभ हुआ। सरकार को कई कानून पास करने पड़े, अपने व्यवहार में भी तब्दीली करनी पड़ी। पर पंजाब के साम्प्रदायिक वातावरण की तीव्रता के कारण सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं की कुर्बानियों का सोशलिस्ट पार्टी के भविष्य पर कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा। आचार्यजी ठीक ही कहते थे कि सम्प्रदायवाद और जातिवाद— राष्ट्रीयता, जनतन्त्र और समाजवाद के शत्रु हैं तथा सम्प्रदायवाद और जातिवाद पर विजय पाकर ही समाजवादी शक्तियों के आधार पर समाजवादी समाज का निर्माण किया जा सकता है।

'नेशनल हेरल्ड' लखनऊ के १० फरवरी १९४६ ई०, २५ जुलाई १९४७ ई० और ३० मार्च १९४८ ई० के अंकों में व्यक्त किये गये आचार्यजी के विचारों के अनुसार एक अकेला नेता समाजवादी राज्य की स्थापना नहीं कर सकता। ऐसा राज्य किसानों और मजदूरों द्वारा और एक ऐसी पार्टी द्वारा ही कायम किया जा सकता है जिसमें इन वर्गों का बहुमत हो। नरेन्द्र देव जी किसानों का संगठन इसलिए विशेष रूपसे आवश्यक मानते थे कि भारत में ब्रिटिश शासन ने ही जमींदारों को बनाया था और ये जमींदार एक वर्ग के रूपमें अपने को राष्ट्रीय आन्दोलनों से अलग रखे हुये थे।

डॉ० आशागुप्ता ने लिखा है—आचार्यजी ने पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों को अस्वीकृत कर दिया था। पूँजीवाद को इसलिए कि वह शोषण और निष्ठुर स्वार्थों पर आधारित था और साम्यवाद को इसलिए कि वह नागरिक स्वतंत्रताओं को नकारता था। किसानों के आन्दोलन की क्रान्तिकारी सम्भावनाओं को आचार्यजी मानते थे, किन्तु 'नियो पिजेण्डिज्म' अर्थात् उनका मालिकाना प्रभुत्व उनको मंजूर नहीं था।

अपने जीवन के जो लक्ष्य आचार्य नरेन्द्र देवजी ने निर्धारित किये थे— पहला देश की मुक्ति, दूसरा समाजवादी समाज की स्थापना। उनका विचार था कि हमारे विश्वविद्यालय देश में लोकतंत्र के अनुरूप वैचारिक तथा भावनात्मक वातावरण तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। वह चाहते थे कि विश्वविद्यालय सर्जनात्मक विचारों के केन्द्र बनें, इनके माध्यम से किसानों तथा

सुधी-वर्ग में निकट सम्पर्क कायम हो तथा इनके मध्य विचारों के आदान-प्रदान से समाज विकसित हो ।

मजदूर आन्दोलन की अपरिहार्यता

आचार्यजी ने कहा कि सचेत सुसंगठित मजदूर ही समाजवादी आन्दोलन की रीढ़ है । पूँजीवाद के शोषण के विरुद्ध मजदूरों का वर्ग-संघर्ष ही समाजवादी क्रान्ति का मूल मंत्र है । मजदूरों की आर्थिक आवश्यकताएँ और आकाँक्षाएँ ही उनके संगठन और संघर्ष का मूल आधार है । इसलिये कतिपय विचारकों और क्रान्तिकारियों की राय में मजदूरों के क्रान्तिकारी आर्थिक संघर्ष द्वारा ही समाजवादी-क्रान्ति सम्भव है । पर मार्क्स की धारणा थी कि केवल आर्थिक संघर्षों द्वारा पूँजीवाद का विनाश तथा समाजवादी समाज की स्थापना सम्भव नहीं है । उनके द्वारा तो मजदूरों को आर्थिक क्षेत्र में कुछ सुविधाएँ ही प्राप्त हो सकती हैं । आर्थिक व्यवस्था में सुविधाजनक वर्ग के आर्थिक हितों का संरक्षण राज्य द्वारा होता है । राज्य की शक्ति को अधिकार में करके तथा उसका क्रान्तिकारी प्रयोग करके ही समाजवादी शक्तियाँ आर्थिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सकते हैं, पूँजीवादी व्यवस्था के स्थान पर समाजवादी आर्थिक व्यवस्था तथा वर्गविहीन, शोषणविहीन समाज स्थापित कर सकती है । इस काम की सिद्धि के लिये तो मजदूरों में राजनीतिक चेतना पैदा करनी होगी, उन्हें समझाना होगा कि आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन के बाद ही पूँजीपतियों के आधिपत्य और शोषण से छुटकारा हो सकता है, प्रतिदिन के झंझटों और मुसीबतों से पिण्ड छुड़ाया जा सकता है । इस बात के लिये मजदूरों के प्रतिदिन की आर्थिक संघर्षों को समाजवादी क्रान्ति से सम्बन्धित करना होगा तथा उन्हें जीवन के क्रान्तिकारी लक्ष्य से अनुप्राणित हो आगे बढ़कर समाजवादी राजनीतिक संघर्षों में क्रान्तिकारी भाग लेना होगा ।

नरेन्द्र देवजी वर्गसंघर्ष के इस मार्क्सवादी विश्लेषण से सहमत थे । उनकी धारणा थी कि औद्योगिक श्रमिक अपने अनुभवों और आर्थिक संघर्षों द्वारा केवल ट्रेड यूनियन मनोवृत्ति को ही विकसित कर सकते हैं, मध्यमवर्गीय क्रान्तिकारी चिन्तकों और कार्यकर्ताओं के सम्पर्क से ही उन्हें समाजवाद का सन्देश प्राप्त हो सकता है, राजनीतिक संघर्षों में भाग लेकर ही वे अपने में राजनीतिक चेतना विकसित कर सकते हैं तथा समाजवादी समाज को प्रतिष्ठित करने में अग्रदूत का काम कर सकते हैं । इसलिए आचार्यजी चाहते थे कि मजदूरों की आर्थिक आवश्यकताओं और आकाँक्षाओं के आधार पर सब सम्प्रदायों और बिरादरियों के औद्योगिक मजदूरों को ट्रेड यूनियनों में संगठित किया जाय, उनके दिन-प्रतिदिन के झगड़ों को व्यापक वर्गसंघर्ष में परिणत कर उनमें वर्गचेतना को जागृत किया जाय, उनके आर्थिक संघर्षों को राष्ट्र में व्यापक राजनीतिक संघर्षों से सम्बन्धित कर उन्हें राजनीतिक संघर्षों में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाय

तथा राजनीतिक संघर्ष के समाजवादी आर्थिक स्वरूप को विकसित किया जाय। आचार्य नरेन्द्र देव मजदूरों का आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक प्रशिक्षण आवश्यक समझते थे। उनकी राय में मजदूरों को मौजूदा आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति का तथा समाजवाद के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक लक्ष्यों और मूल्यों का ज्ञान कराया जाय, उन्हें सम्प्रदाय और जात-पाँत की संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठकर देश की समस्याओं पर सोचने के लिए प्रोत्साहित किया जाय, उनके सांस्कृतिक जीवन को यथा शक्य परिष्कृत किया जाय तथा उनकी सहज नैतिक प्रेरणाओं को जागृत और विकसित करने में उन्हें प्रोत्साहित किया जाय, उन्हें जनतान्त्रिक सहकारी कार्य-पद्धति के अभ्यास की ओर प्रेरित किया जाय।

आचार्यजी के विचार में 'नैतिक तथा आध्यात्मिक विशिष्टता प्राप्त करने का प्रयत्न वर्गसंघर्ष का अविच्छिन्न अंग है।' उनका कहना था कि 'समाजवाद की लड़ाई मजदूर वर्ग के नैतिक उत्कर्ष की अपेक्षा करती है। यदि हम नैतिक आधार पर पूँजीवाद को घृणित बताते हैं तो हमको एक नैतिकस्तर पर समाज को एक नयी दृष्टि देनी चाहिए।' उनकी धारणा थी कि 'सर्वहारा मजदूरों को रोजमर्रा के भोजन की अपेक्षा आत्मविश्वास, स्वाभिमान और स्वतन्त्रता की कहीं अधिक जरूरत है।' नरेन्द्र देवजी मजदूरों तथा ट्रेड़ यूनियन के कार्यकर्ताओं का समुचित प्रशिक्षण भी आवश्यक समझते थे।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते-होते बम्बई के मजदूरों में इतनी राजनीतिक जागृति हो गयी थी कि उन्होंने सन् १६०८ ई० में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की सजा के विरोध में कई दिन की हड़ताल की थी, फिर भी सन् १६२० ई० में लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में ट्रेड यूनियन कांग्रेस के संगठन के बाद ही भारतीय मजदूरों के आन्दोलन ने देशव्यापी संगठन का स्वरूप धारण किया तथा उसके जरिये मजदूरों में धीरे-धीरे राजनीतिक चेतना जागृत हुई। इस ट्रेड यूनियन कांग्रेस में सब राजनीतिक विचारों के कार्यकर्ता शामिल थे। उदारवादी सर्वश्री शिवाराव और एस० एम० जोशी, राष्ट्रवादी दीवान चम्मन लाल तथा सर्वश्री वी० वी० गिरि और जमुनादास मेहता, मार्क्सवादी श्री शिवनाथ बनर्जी तथा कम्युनिस्ट सर्वश्री श्रीपाद अमृत डांगे, आर० एस० निम्बकर, देशपाण्डे आदि सभी इसमें शामिल थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा श्री सुभाषचन्द्र बोस प्रभृति राष्ट्रीयस्तर के राजनीतिक नेता भी इनके अधिवेशनों की अध्यक्षता के लिये निमन्त्रित किये जाते थे। फिरभी दूसरे तत्त्वों की तुलना में कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं का प्रभाव दिन पर दिन बढ़ता जाता था।

२० मार्च सन् १६२६ ई० को सर्वश्री बी० एफ० ब्रेडले, फिलिप स्प्राट, लेस्टर, हटचिन्सन, श्रीपाद अमृत डांगे, निम्बकर, सोहनसिंह जोशै, केदारनाथ सहगल आदि इकतीस ट्रेड यूनियन कार्यकर्ता भारत सम्राट के विरुद्ध षडयन्त्र करने के अभियोग में गिरफ्तार कर लिये गये। उन सब पर युक्त प्रान्त के प्रसिद्ध

नगर मेरठ में षड़यन्त्र का मुकदमा चलाया गया। सबूत पक्ष ने अभियुक्तों के क्रिया कलापों के साथ-साथ विश्वव्यापी कम्युनिस्ट आन्दोलन की नीति-रीति तथा गतिविधि का विस्तृत विश्लेषण करते हुए षड़यन्त्र को साबित करने का प्रयत्न किया। यह मेरठ षड़यन्त्र का मुकदमा चार वर्ष तक चलता रहा। १५ जनवरी सन् १९३३ ई० को मेरठ के दौरा जज ने तीन व्यक्तियों को रिहा करते हुए बाकी अभियुक्तों को षड़यन्त्र का दोषी करार देते हुए सजाएँ कर दी। पर अगस्त सन् १९३३ ई० को इलाहाबाद हाई कोर्ट ने बहुत से अभियुक्तों को रिहा करते हुए बाकी सबकी सजाएँ बहुत कम कर दी। जिस व्यक्ति को मेरठ की अदालत ने आजीवन कालेपानी की सजा दी थी, हाईकोर्ट ने उसकी सजा घटाकर तीन वर्ष कर दी। जिन व्यक्तियों को बारह वर्ष के कालेपानी की सजा दी गयी थी, उनकी सजाएँ दो वर्ष कर दी गयी। दस वर्ष की सजाएँ घटाकर एक वर्ष कर दी गयीं। जिन्हें इससे कम दण्ड दिये गये थे, उन्हें हाई कोर्ट ने या तो बिल्कुल रिहा कर दिया या उनकी सजा इतनी घटा दी कि वे हाई कोर्ट के फैसले के दिन छोड़ दिये गये। इस मुकदमें में श्री शिवनाथ बनर्जी भी गिरफ्तार किये गये थे जो आगे चलकर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो गये। यह राजनीतिक और आर्थिक क्रान्ति पर विश्वास करते थे, रूस की क्रान्ति को फ्रांस की अठारहवीं सदी की क्रान्ति के बाद संसार की सबसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना तथा सामाजिक क्रान्ति मानते थे। मार्क्सवाद पर उनकी दृढ़ निष्ठा है। मज़दूरों की सेवा और जनतांत्रिक समाजवादी समाज की स्थापना ही उनके जीवन का लक्ष्य था।

मेरठ षड़यन्त्र के मुकदमे ने मज़दूरों में राजनीतिक चेतना को तथा कम्युनिस्टों के प्रभाव को घटाने के बजाय इतना बढ़ाया कि राष्ट्रवादी और उदार विचार के मजदूर नेताओं के लिये ट्रेड यूनियन कांग्रेस में कम्युनिस्टों के साथ काम करना असम्भव हो गया। सन् १९३० ई० में सर्वश्री एन०एम० जोशी, वी० वी० गिरि, शिवाराव, नायडू, एस० एस० जोशी आदि ने ट्रेड यूनियन कांग्रेस को छोड़कर ट्रेड यूनियन फेडरेशन कायम की। आगे चलकर तृतीय कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के सन् १९२८ ई० के आदेशानुसार कम्युनिस्टों ने सन् १९३९ ई० में ट्रेडयूनियन कांग्रेस को छोड़कर लाल ट्रेड यूनियन कांग्रेस का गठन किया और इस मंच से सभी गैरकम्युनिस्ट मजदूर नेताओं की भर्त्सना शुरू की।

सन् १९३४ ई० में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के बनने के समय मजदूर आन्दोलन, तीन प्रतिद्वन्द्वी संघटनों में विभाजित था। आचार्यजी को इसका बहुत क्षोभ था। उनको इसबात की खुशी थी कि 'हिन्दुस्तान में मजदूर आन्दोलन शुद्ध ट्रेड यूनियन स्वरूप आगे ओर बढ़ रहा है। श्रमिक वर्ग धीरे-धीरे राजनीतिक चेतना विकसित कर रहा है।' पर उन्हें दुःख था कि "अवसरवादी नेताओं ने उनकी श्रेणी में फूट पैदा कर दी है और मजदूरों को गुमराह कर रखा है। क्षमता-सम्पन्न क्रान्तिकारी नेतृत्व की कमी है, संगठन अपूर्ण है। इसलिये मजदूरों

की हड़तालें इतनी बार असफल होती हैं।" उन्हें विश्वास था कि 'अगर एकता के प्रयास सफल हुए और ठीक ढंग का नेतृत्व मिला तो मज़दूर आन्दोलन शीघ्र ही बहुत शक्तिशाली बन जाएगा।' पर उन्हें दुःख था कि औद्योगिक श्रमिकों के प्रति कांग्रेस की उपेक्षा के कारण संगठित मजदूर यूनियनों में कांग्रेस के प्रति विरक्ति और दुराव पैदा हो गया है और मजदूरों को राजनीतिक हड़ताल के लिये आह्वान करना कांग्रेस के लिये असम्भव हो गया है। नरेन्द्र देवजी यह स्वीकार करते थे कि श्रमिकवर्ग 'क्रान्तिकारी शक्ति' है और 'महान् राजनीतिक ताकत' बन सकता है, राष्ट्रीय आन्दोलन पर अपना प्राधान्य प्रतिष्ठित कर सकता है। पर उनके विचार में हिन्दुस्तान की तात्कालिक परिस्थिति में यह तभी सम्भव है जबकि कांग्रेस द्वारा संचालित साम्राज्य विरोधी संघर्ष में श्रमिक शामिल हों। मजदूरवर्ग के राजनीतिक प्रभाव के विस्तार के लिये जरूरी है कि राष्ट्रीय संघर्ष के निमित्त आम हड़ताल के अस्त्र का प्रयोग कर वह निम्न मध्यम श्रेणी के दिल में हड़ताल की क्रान्तिकारी सम्भावनाओं को बिठला दें। कांग्रेस द्वारा संचालित राष्ट्रीय संघर्ष से मजदूरों को अलग रखने की कम्युनिस्टों की नीति तो 'आत्मघाती' है। इस नीति पर चलकर मजदूर न राजनीतिक शक्ति बन सकते हैं और न देश का कोई भला कर सकते हैं।

सन् १९३४ ई० में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना के बाद ही बहुत से ट्रेड यूनियन कार्यकर्ता उसमें शामिल हो गये और उनके सहयोग से पार्टी के नेतृत्व ने मजदूर आन्दोलन को सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाने के प्रयत्न किये। इस कार्यमें श्री मेहरअली का विशेष योग था। राजनीतिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस से अपना सम्बन्ध जोड़ना ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने उचित समझा। दोनों में एक लिखित समझौता हुआ जिसके अनुसार निश्चय हुआ कि पार्टी अपनी यूनियनों को ट्रेड यूनियन कांग्रेस से सम्बद्ध करेगी और उसे मजदूरों का केन्द्रीय संगठन मानेगी और ट्रेड यूनियन कांग्रेस पार्टी को मजदूरवर्ग की राजनीतिक संस्था स्वीकार करते हुए उसका समर्थन करेगी। आचार्यजी के कतिपय विद्यार्थी उनकी प्रेरणा से मज़दूर आन्दोलन में जुट गये। उनमें सर्वश्री हरिहरनाथ शास्त्री, राजाराम शास्त्री तथा बृजकिशोर शास्त्री प्रमुख थे। ये सब स्वतन्त्रता संघर्ष में भाग लेते, मजदूरों का संगठन करते, उनके संघर्षों का नेतृत्व करते और उनके साथ उनके निमित्त कष्ट सहते। जहाँ सर्वश्री हरिहरनाथ शास्त्री और राजाराम शास्त्री ने कानपुर के मजदूर आन्दोलन के संगठन में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया और मजदूरों की बहुत सी हड़तालों का समुचित नेतृत्व किया, वहाँ श्री बृजकिशोर शास्त्री ने आगे चलकर बिहार तथा उ० प्र० के चीनी के कारखानों के मजदूरों के संगठन और संघर्षों में बहुत क्षमता के साथ हिस्सा लिया।

आचार्य नरेन्द्र देव की तरह बसावनसिंह जी मार्क्सवादी थे, मार्क्सवाद के मौलिक सिद्धान्तों पर उनकी निष्ठा थी। पर कम्युनिस्टों के कुचक्रों तथा दुरंगी

नीतियों के ये बहुत विरोधी थे। उनकी राय में कम्युनिस्टों से समझौते की बातचीत करना व्यर्थ ही है। कम्युनिस्टों से सदा सतर्क रहना ही बसावनसिंह जी उचित समझते थे। मजदूरों का संगठन और नेतृत्व आर्थिक क्षेत्र में उनका विशिष्ट कार्य था हिन्द मजदूर सभा, कोयला मजदूर संगठन, रेलवे मेन फेडरेशन आदि मजदूर संस्थाओं के संगठन, संचालन और संघर्षों के नेतृत्व में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान था।

सन् १९३७ ई० में युक्त प्रान्त में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल के संगठित होने के कुछ अर्से बाद सरकार ने कानपुर के मिल मजदूरों की दशा की जाँच के लिए कांग्रेस के प्रसिद्ध नेता श्री राजेन्द्रप्रसाद जी की अध्यक्षता में मद्रास के मजदूर नेता श्री शिवाराव तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के प्राध्यापक प्रोफेसर एस०के० रुद्रा की एक जाँच कमेटी नियुक्त की। नरेन्द्र देव जी स्वयं इस कमेटी में इसलिये शामिल नहीं हुए की समाजवादी होने के नाते पूँजीपति उन पर शक करते और नाजायज चालों से एक पुण्यकार्य में पक्षपात का इलजाम लगाते। पर पूँजीपतियों ने श्री राजेन्द्रप्रसाद जी पर भी दोषारोपण करते हुए जाँच कमेटी की सिफारिशों को मानने से इनकार कर दिया। पूँजीपतियों के इस रुख से क्षुब्ध हो मई सन् १९३८ ई० में कानपुर के मजदूरों ने हड़ताल कर दी। मजदूरों के आन्दोलन का समर्थन करते हुए नरेन्द्र देव जी ने सरकार से अपील की कि वह पूँजीपतियों के दबाव की उपेक्षा करते हुए कमेटी की रिपोर्ट को पूरी तौरपर मंजूर करके उसकी सिफारिशों को शीघ्र से शीघ्र लागू करें।

जनवरी सन् १९३८ ई० को कानपुर कर्मचारियों के एक सम्मेलन में भाषण देते हुए नरेन्द्र देव जी ने कहा कि जिस प्रकार यूरोप के देशों में कानून द्वारा 'कर्मचारियों को भोजन के लिए पर्याप्त समय दिया जाता है, सप्ताह में एक दिन की छुट्टी दी जाती है, काम के घण्टे नियत कर दिये जाते हैं, वर्ष में साप्ताहिक छुट्टी के अतिरिक्त कुछ और छुट्टियाँ सवेतन दी जाती हैं और प्राविडेन्ट फण्ड का आयोजन किया जाता है, उसी तरह अपने प्रान्त के बड़े-बड़े बाजारों के कर्मचारियों के हित में एक विधान बहुत जल्द बनना चाहिए।'

सन् १९३८ ई० में बिहार प्रान्त में डालमियानगर के मजदूरों के संघर्ष का निपटारा कराने के लिए ट्रिब्यूनल बनी। श्री बसावन सिंह के कहने पर नरेन्द्र देव जी मजदूरों के प्रतिनिधि की हैसियत से इस ट्रिब्यूनल में काम करने को राजी हो गये। बीमार पड़ जाने के कारण नरेन्द्र देव जी इसमें तो मजदूरों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सके और वह काम उनके स्थान पर श्री फूलनप्रसाद वर्मा को करना पड़ा, पर इससे डालमियानगर के मजदूरों से उनका विशेष सम्बन्ध कायम हो गया। नरेन्द्र देवजी वहाँ के मजदूरों की हलचल में विशेष दिलचस्पी लेते और श्री बसावन सिंह को यथोचित सहायता और सलाह देते रहते। जब सन् १९४० ई० में बसावन सिंह जी की अनुपस्थिति में डालमियानगर के मजदूरों ने युद्ध के बोनस के सम्बन्ध में हड़ताल की, तब नरेन्द्र देवजी स्वयं वहाँ गयें, मजदूरों का उचित

नेतृत्व किया और पार्टी की बिहार शाखा के संयुक्त मंत्री श्री विश्वेश्वरप्रसाद कोयराला को संघर्ष के समुचित संचालन के लिये वहाँ भेजा । हड़ताल में मजदूरों को सफलता मिली । सन् १९४६ ई० में जब वहाँ के मजदूरों ने फिर हड़ताल की तब नरेन्द्र देवजी मिलमालिक और मजदूर दोनों की ओर से 'पंच नियुक्त हुए और उन्होंने समझौता कराया ।

सन् १९३५ ई० में तृतीय कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल ने अपने सन् १९२८ ई० के निर्णय को बदल कर संसार की कम्युनिस्ट पार्टियों को आदेश दिया कि फासिज्म और नाजीवाद की बढ़ती हुई शक्ति का मुकाबला करने के लिए उन्हें जनतांत्रिक समाजवादी और राष्ट्रवादी शक्तियों से मिलकर एक संयुक्त जनतांत्रिक मोर्चा बनाने का प्रयत्न करना चाहिए । इस आदेश के आधार पर भारत के कम्युनिस्टों ने लाल ट्रेड यूनियन कांग्रेस भंग कर दी और वे फिर आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस में शामिल हो गये । सन् १९३८ में ट्रेड यूनियन फेडरेशन भी ट्रेड यूनियन कांग्रेस में शामिल हो गयी । पर कुछ अर्से के बाद ही इस संस्था में फिर विघटन शुरू हो गया । सन् १९३९ ई० में विश्वयुद्ध शुरू होने के बाद आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने युद्ध विरोधी प्रस्ताव पारित करते हुए भारत की स्वतंत्रता की माँग की । प्रस्ताव द्वारा घोषित किया गया कि उस युद्ध में, जो भारत में स्वतन्त्रता और जनतन्त्र स्थापित करने में सफल न हो, भारत का हिस्सा लेना भारत तथा श्रमिकवर्ग को लाभदायक नहीं होगा । इस प्रस्ताव के पारित होने के कुछ अर्से के बाद हालैण्ड, डेनमार्क, बेलजियम आदि देशों पर जर्मनी की विजय से त्रसित हो श्री एम० एन० राय ने युद्ध में ब्रिटिश सरकार की सहायता करने का निश्चय किया और 'इण्डियन फेडरेशन ऑफ लेबर' के नाम से एक अलग मजदूर संगठन स्थापित किया । आगे चलकर ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के कम्युनिस्ट और राष्ट्रवादीतत्त्वों के लिये भी साथ-साथ काम करना उस समय असम्भव हो गया, जब जर्मनी और रूस में युद्ध छिड़ जाने के बाद भारतीय कम्युनिस्टों ने युद्ध को जनयुद्ध घोषित करते हुए भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष का विरोध तथा ब्रिटिश सरकार का समर्थन शुरू किया । युद्ध के जमाने में स्वतन्त्रता संघर्ष के सिलसिले से समाजवादी और राष्ट्रवादी कार्यकर्ताओं के गिरफ्तार हो जाने पर कम्युनिस्ट पार्टी तथा 'इण्डियन फेडरेशन ऑफ लेबर' मजदूर आन्दोलन पर छा गया तथा ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस में समाजवादियों और राष्ट्रवादियों के लिये काम करना कठिन हो गया । युद्ध के बाद कम्युनिस्टों ने जो विघटनकारी नीति अपनायी उसका समर्थन भी इन दोनों के लिए असम्भव था ।

ऐसी परिस्थिति में मई सन् १९४७ ई० में सरदार वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में आयोजित एक सम्मेलन में इण्डियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस संगठित हुई । अहमदाबाद का मजदूर संघ इस नयी संस्था का प्रारम्भिक आधार था । मजदूर क्षेत्र में कांग्रेस सरकार की औद्योगिक और श्रमिक नीति का समर्थन ही इस संस्था का वास्तविक उद्देश्य था । इस उद्देश्य में सरकार को पर्याप्त सफलता

भी मिली और सरकार की पूरी सहायता से इस संस्था की भी काफी अभिवृद्धि हुई ।

मार्च सन् १६४८ ई० में सोशलिस्ट पार्टी के नासिक अधिवेशन के अवसर पर मजदूर संगठनों से सम्बन्ध रखने वाले पार्टी के कार्यकर्ताओं ने प्रान्तों में हिन्द मजदूर पंचायतों का संगठन जारी रखते हुए एक व्यापक राष्ट्रीय संस्था को बनाने का निश्चय किया । पार्टी के प्रधानमंत्री श्री जयप्रकाश नारायण के निमंत्रण पर नवम्बर सन् १६४८ ई० को मजदूर वर्ग की सात पार्टियों के सौ ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं का बम्बई में सम्मेलन हुआ । इसमें निर्णय हुआ कि ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस तथा इण्डियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस से अलग एक तीसरा अखिल भारतीय मजदूर संस्थान बनाया जाय और इस काम के लिए कलकत्ते में ट्रेड यूनियनों की प्रतिनिधि सभा बुलायी जाय। यह सम्मेलन दिसम्बर सन् १६४८ ई० में कलकत्ते में हुआ । इसमें छः लाख मजदूरों के लगभग छः सौ प्रतिनिधियों ने 'हिन्द मजदूर सभा' कायम करने का निश्चय किया । 'एक ऐसे समाजवादी राज्य को प्रतिष्ठित करना जिसमें श्रमिक को अपने बौद्धिक और शारीरिक व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का अवसर हो' हिन्दू मजदूर सभा का मुख्य लक्ष्य घोषित किया गया । 'सब श्रमिकों के लिए निर्वाह योग्य मजदूरी, प्रत्येक नागरिक के लिये सुरक्षित कार्य, पूर्ण सामाजिक संरक्षण की योजनाओं की तथा व्यापक स्वास्थ्य रक्षा की व्यवस्था, श्रमिकों के आराम का समुचित प्रबन्ध, निःशुल्क अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था तथा व्यवसायिक प्रशिक्षण की सुविधा एवं सामूहिक सौदे के अधिकार की कारगर वास्तविक मान्यता' उसके दूसरे लक्ष्य घोषित किये गये । अपने घोषणापत्र में हिन्द मजदूर सभा ने ट्रेड यूनियन कार्य के रचनात्मक पक्ष पर विशेष जोर दिया । श्रमिकों के हितों के संरक्षण और अभिवृद्धि के लिये सतत् प्रयत्न और संघर्ष के साथ-साथ श्रमिकों के उद्योगों के समुचित विकास में तथा देश के जनतांत्रिक जीवन में सक्षम भाग लेने की योग्यता की वृद्धि भी उसने अपना प्रमुख कार्य निश्चित किया । यद्यपि इस संगठन में कई राजनीतिक तत्त्व शामिल थे, पर इसके संचालन में प्रारम्भ से ही सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं का प्रमुख योग था ।

श्री अशोक मेहता ने प्रारम्भ में दो वर्ष तक उसके प्रधानमंत्री का काम किया, उसके बाद भी कई वर्ष तक वे उसके कार्य का निर्देशन करते रहे । उनके अलावा सर्वश्री जी०जी० मेहता, शिवनाथ बैनर्जी, देवेन सेन, बागाराम तुलपुले, मनोहर कोतवाल, बसावन सिंह, राजाराम शास्त्री, पीटर अलवरेस, ब्रजकिशोर शास्त्री, एस० एम० जोशी, वी० डी० जोशी, चिनन दुराई, सनन मेहता, नटवर शाह आदि सैकड़ों समाजवादी कार्यकर्ताओं ने हिन्द मजदूर सभा से सम्बद्ध ट्रेड यूनियनों द्वारा श्रमिकों की सेवा की । इनमें श्री वी० डी० जोशी सन् १६५४ ई० में तथा श्री राजाराम शास्त्री सन् १६५६ ई० में इण्डियन नेशनल ट्रेडयूनियन कांग्रेस में चले गये तथा जब सन् १६६६ ई० में श्री चिनन दुराई ने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को

छोड़कर कांग्रेस में शामिल होने का निश्चय किया तब हिन्द मजदूर सभा से सम्बन्धित कोयम्बटूर सूत मिल मजदूरों की यूनियन ने उन्हें मन्त्रिपद से अलग कर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नेता श्री ए० सुब्रह्मण्यम् को अपना मंत्री नियुक्त किया। पर सोशलिस्ट पार्टी के कतिपय कार्यकर्ताओं ने इस पार्टी को छोड़कर कांग्रेस में शामिल हो जाने के बाद भी हिन्द मजदूर सभा से अपना पुराना सम्बन्ध बनाये रखा। सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं के अलावा, मनिबेन कारा तथा सर्वश्री अनिल मित्रा, अनथानी पिले, रजनी मुकर्जी, बी० बी० कारनिक, खेडकीकर, रुइकर आदि बहुत से लब्धप्रतिष्ठ मजदूर नेताओं ने भी हिन्द सभा का महत्त्वपूर्ण नेतृत्व किया। इनमें श्री रजनी मुकर्जी आगे चलकर कम्युनिस्टों द्वारा निर्देशित ऑल इण्डिया ट्रेडयूनियन कांग्रेस में शामिल हो गये। जिस समय मजदूर आन्दोलन इस तरह विभिन्न संगठनों में बढ़ रहा था, रेलवे मेन्स फेडरेशन ने अपनी एकता बनाये रखते हुए मजदूर आन्दोलन की एकता को पुनः कायम कराने की कोशिश की। इस फेडरेशन का मजदूर क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान था। कई वर्ष तक इस संस्था के अध्यक्ष की हैसियत से श्री जयप्रकाश नारायण ने इसका नेतृत्व किया।

हिन्द मजदूर सभा के संगठन के तीन महीने बाद मार्च सन् १९४९ ई० में पटना में आचार्य नरेन्द्र देवजी की अध्यक्षता में सोशलिस्ट पार्टी का वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ। अपने अध्यक्षीय भाषण में नरेन्द्र देव जी ने हिन्द मजदूर सभा की नीति-रीति का समर्थन, इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस की गतिविधि की आलोचना तथा कांग्रेसी सरकारों के पक्षपात की भर्त्सना एवं उसकी औद्योगिक नीति की समीक्षा की। उन्होंने कहा कि 'औद्योगिक झगड़ों के निपटारे के लिये सरकार ने जो व्यवस्था की है', उससे मजदूरों के सामूहिक रूपसे सौदा करने के अधिकार में अनेक बाधाएँ उपस्थित होती हैं। औद्योगिक झगड़ों को तय करने के लिये सरकार ने समझौता बोर्डों और औद्योगिक पंचायती अदालतों की स्थापना की है, किन्तु उनकी व्यवस्था इतनी जटिल है तथा उनकी कार्य प्रणाली इतनी धीमी और दीर्घ सूत्री है कि उससे मालिकों का ही लाभ होता है और मजदूरों की पर्याप्त रक्षा नहीं हो पाती। इतना ही नहीं, कारखाना समितियों का विधान तो औद्योगिक लोकतन्त्र की जड़ ही काट देता है। इस विधान में कारखाने के सब मजदूरों को अपने वोट से अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार देने के बजाय राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त मजदूर यूनियन को ही सब मजदूरों की ओर से प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया गया था। इससे बहुत से वे मजदूर जो मान्यता प्राप्त यूनियनों के सदस्य नहीं होते थे, वास्तविक प्रतिनिधित्व से वंचित रहते थे। इसे गलत बताते हुए नरेन्द्र देवजी ने मान्यता के सम्बन्ध में सरकार की पक्षपातपूर्ण नीति की कड़ी आलोचना की। उन्होंने कहा कि 'सरकार गैर-कांग्रेसी संगठनों की उपेक्षा करती है। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर संघ को वह मजदूरों का सबसे अधिक प्रतिनिधित्व करनेवाली संस्था स्वीकार करती है। युक्त प्रान्त में तो इसे ही कारखाना समितियों के सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार दे दिया गया है। अपनी

कारखाना समितियों के लिये कार्यकर्ताओं को निर्वाचित करने के मजदूरों के लोकतांत्रिक अधिकार पर यह एक प्रहार है। फलतः अनेक कारखानों की कारखाना, समितियाँ अपने मजदूरों का प्रतिनिधित्व नहीं करती और मजदूरों का विश्वास उन्हें प्राप्त नहीं है।' इस लोकतन्त्र विरोधी प्रथा के कुप्रभावों पर रोशनी डालते हुए नरेन्द्र देवजी ने यह भी बताया कि अक्सर 'कारखाना समितियाँ मजदूर यूनियनों के विरोध में खड़ी कर दी जाती हैं' और इस तरह 'मजदूरों की संगठित शक्ति को दबाने के लिये कानून का प्रयोग किया जाता है।' कांग्रेसी सरकारों की इस नीति से उन्हें ऐसा पता चलता था कि 'मजदूर आन्दोलन को छिन्न-भिन्न कर देना कांग्रेस द्वारा नियंत्रित भारतीय राष्ट्रीय मजदूर संघ को अप्रत्यक्ष सहायता और स्वीकृति प्रदान कर मजदूरों को उसके कब्जे में आ जाने के लिये विवश करना तथा हड़ताल करने के अधिकारों से मजदूरों को वंचित करना ही सरकार का एकमात्र उद्देश्य है।' उन्हें इस बात का दुःख था कि "भारतीय राष्ट्रीय मजदूर संघ समझौता वार्ता तथा पंचायत पर ही विश्वास करता है और किसी भी स्थिति में हड़ताल करना उसे स्वीकार नहीं है।" सरकार द्वारा गैर-कांग्रेसी यूनियनों की उपेक्षा, वैधानिक कार्यों का विरोध एवं उनके कार्यकर्त्ताओं के विरुद्ध दमन नीति के प्रयोग की जोरदार शब्दों में भर्त्सना करते हुए नरेन्द्र देवजी ने सरकार को चेतावनी दी कि 'हड़ताल करने के अधिकार की अमान्यता के तथा संगठित रूप से उचित मजदूरी माँगने के अधिकार पर विभिन्न प्रतिबन्धों के फलस्वरूप शान्ति पूर्ण तरीकों पर से स्वभावतः मजदूरों का विश्वास उठ जायगा।' उन्होंने कहा कि 'सरकार, जो अन्य दलों पर राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये मजदूरों को बरगलाने का दोषारोपण करती है', स्वयं पक्षपात की दोषी है और इस पक्षपातपूर्ण नीति का परित्याग करके ही सरकार मजदूर समस्या का समाधान कर सकती है। उन्हें इस बात का खेद था कि सरकार मजदूरों के असन्तोष के आधारभूत कारणों का समाधान न करके पूँजीपतियों को प्रसन्न करने की नीति अपना रही है, वह उत्पादन में वृद्धि करने के लिए मजदूरों से अपील करती है, किन्तु प्रतिनिधि तथा प्रभावशाली संगठनों की उपेक्षा करके और मजदूरों के सिर पर अनुचित ढंग से एक ऐसे संगठन को लाद करके जो वस्तुतः थोड़े से मजदूरों का ही प्रतिनिधित्व करता है, वह उत्पादन-वृद्धि के कार्य में सहयोग देने से मजदूरों को हतोत्साहित करती है। आचार्यजी की धारणा थी कि 'कांग्रेसी सरकार की नीतियों में निम्न मध्यम वर्ग की मानसिक स्थिति की छाया झलकती है जिसमें न तो जनक्रान्ति के पथ पर चलने का साहस है और न अपने स्वार्थों को पूर्ण रूप से पूँजीवादी वर्ग के स्वार्थों से मिला देने की इच्छा ही है।'

कांग्रेसी सरकारों के पक्षपात के कारण हिन्द मजदूर सभा के कार्यकर्ताओं और यूनियनों को विशेषतः प्रारम्भ में बहुत सी कठिनाइयों और परेशानियों का सामना करना पड़ा। उनके काम में नाना प्रकार की बाधाएँ उपस्थित की गयी। तमिलनाडु, बिहार, कर्नाटक, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में मजदूर आन्दोलन से सम्बन्धित

बहुत से पार्टी कार्यकर्ताओं को बिना किसी अपराध के उनके कार्य क्षेत्रों से सरकार ने निष्कासित कर दिया तथा उनमें से कुछ को निरर्थक गिरफ्तार भी कर लिया। जबकि हिन्द मजदूर सभा से सम्बन्धित यूनियनों को खत्म कर देने के लिये मजदूरों पर बेजा दबाव डाला गया, महाराष्ट्र तथा मैसूर आदि में राष्ट्रीयकृत यातायात तथा रेलवे के मजदूरों को इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस की यूनियनों में ही शामिल होने के लिए मजबूर किया गया। संयुक्त प्रान्त में तो इनटक की यूनियनों को ही मान्यता दी गयी तथा हिन्द मजदूर सभा द्वारा संगठित यूनियनों के साथ मालिकों तथा सरकार दोनों ने दुर्व्यवहार किया।

कोयम्बटूर और डालमियानगर में मजदूरों की हड़ताल को तोड़ने के लिये मिल मालिकों ने गुण्डों का प्रयोग किया और सरकार ने गुण के अत्याचार से मजदूरों की रक्षा करने के बजाय स्वयं पुलिस द्वारा मजदूरों के बच्चों तक को परेशान और त्रसित किया। कोयम्बटूर में पुलिस का अत्याचार पराकाष्ठा की सीमा का भी उल्लंघन कर गया और अन्ततोगत्वा सरकार की रजामन्दी से जो समझौता हुआ उसको लागू कराने के प्रति भी सरकार ने उपेक्षा की। डालमियानगर में श्री बसावनसिंह द्वारा सुसंगठित पुरानी यूनियन की मान्यता की माँग को ठुकरा कर मिल मालिकों और सरकार ने अत्याचार और दमन द्वारा मजदूरों की शक्ति को कुचल देने की कोशिश की। शान्तिपूर्ण हड़ताल को भंग करने के लिए फौज का उपयोग किया गया और निकटस्थ ग्रामों के निवासियों को हड़तालियों के साथ सहानुभूति रखने के कारण आतंकित किया गया। हड़तालियों के नेता बसावन सिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। जमशेदपुर में सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति के सदस्य अहमद्दीन को गिरफ्तार कर लिया गया और पार्टी के अनेक कार्यकर्ताओं को निष्कासित भी कर दिया गया।

आचार्य नरेन्द्र देवजी ने कांग्रेसी सरकारों के इस प्रकार के अत्याचार और पक्षपातपूर्ण व्यवहार की कड़े शब्दों में आलोचना करते हुए उन्हें आगाह किया कि इन तरीकों के परिणाम स्वरूप शान्तिपूर्ण तरीकों पर से स्वभावतः मजदूरों का विश्वास जाता रहेगा। इस चेतावनी का सरकार पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। उसका पक्षपात जारी रहा। सरकार और मालिकों की दुधारी मार के कारण हिन्द मजदूर सभा की प्रगति ठीक तौर पर नहीं हो पायी। यह इनटक किसी की प्रगति नहीं कर पायी। फिर भी उसने श्रमिक क्षेत्र में सम्मानित स्थान प्राप्त कर ही लिया।

अगस्त सन् १९५० ई० को हिन्द मजदूर सभा के नेतृत्व में एक वृहद हड़ताल बम्बई के मजदूरों ने शुरू की। यह हड़ताल दो महीने तक चलती रही। यह हड़ताल भी डालमियानगर के मजदूरों की हड़ताल की तरह ट्रेड यूनियन की मान्यता के प्रश्न पर ही की गयी थी। मिल मालिकों ने इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस से सम्बन्धित यूनियन की ही मान्यता स्वीकार की। हिन्द मजदूर सभा का कहना था कि मान्यता प्राप्त यूनियन का इतने कम मजदूरों से सम्बन्ध

है कि उसे मजदूरों की प्रतिनिधि संस्था नहीं कहा जा सकता। उसकी माँग थी कि कारखाने के सब मजदूरों के वोट से ही उनके प्रतिनिधियों का चुनाव होना तथा मान्यता दी जानी चाहिये। सरकार ने इस प्रश्न पर मजदूरों का साथ देने के बजाय मिल मालिकों का ही साथ दिया। यह देखते हुए भी कि आई० एन० टी० यू० सी० की यूनियन के विरुद्ध मजदूरों की इतनी बड़ी हड़ताल है, उस यूनियन की मान्यता को बनाये रखना ही उसने उचित समझा। उसने क़ानून और व्यवस्था के नाम पर मजदूरों की शक्ति को कुचलने की कोशिश की। बहुत से मजदूर और सोशलिस्ट कार्यकर्ता जेल में भेज दिये गये। इस हड़ताल के दौरान में प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू बम्बई गये। वहाँ श्री अशोक मेहता जो इस हड़ताल का नेतृत्व कर रहे थे, नेहरूजी से मिले। नेहरूजी ने इस मामले में हस्तक्षेप करने से इनकार किया और नासिक से एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने कहा कि मजदूरों की माँगे उचित है अथवा नहीं यह वे नहीं जानते, पर अगर यह माँगे ठीक भी हैं तब भी मजदूरों ने हड़ताल करके गलती की है और उनकी शिकायतों को दूर करने के लिये इस समय कुछ नहीं किया जा सकता।

पं० नेहरू के इस वक्तव्य पर नरेन्द्र देवजी ने २४ सितम्बर सन् १९५० ई० को एक प्रेस वक्तव्य दिया। इसमें आचार्यजी ने बम्बई सरकार और प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू के व्यवहार के प्रति क्षोभ प्रकट करते हुए हड़ताल का समर्थन और मजदूरों के साहस और धैर्य की प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि यह दुःख की बात है कि इस सम्पत्ति के हकों और मनुष्यों के हकों के संघर्ष में बम्बई की सरकार अपनी दमन-शक्ति का मजदूरों को घुटने टेकने को बाध्यकरने के लिये प्रयोग कर रही है। आचार्यजी यह मानने को तैयार नहीं थे कि राष्ट्रीय सरकार की हुकूमत में मजदूरों को हड़ताल करने का कोई हक नहीं। हमारी राजनीतिक स्वतन्त्रता पूँजी और श्रम के संघर्ष को खत्म नहीं कर सकी है, फिर मजदूरों को हड़ताल के हक से कैसे वंचित किया जा सकता है। जनतांत्रिक आदर्शों पर दृढ़ रहने की पंडित नेहरू ने जो अपील की थी उसके जवाब में नरेन्द्र देव जी ने उनसे पूछा कि क्या बम्बई सरकार ने इनटक को बम्बई के सूती मिल मजदूरों का एकमात्र प्रतिनिधित्व होने की मान्यता देकर जनतांत्रिक कार्य किया है ?

आचार्य नरेन्द्र देवजी ने सरकार को आगाह किया कि अगर सरकार मजदूरों के साथ इसलिये न्याय करने को तैयार नहीं कि उन्होंने हड़ताल की है, तब वह दिन दूर नहीं कि ज़ब मजदूर लोग वैधानिक और शांतिमय उपायों से विश्वास खोकर उन राजनीतिक दलों के प्रभावों और कन्ट्रोल में आ जायेंगे, जिन्हें हिंसा और तोड़-फोड़ में विश्वास है। यह बात जनतन्त्र के लिये बड़ी हानिकर होगी, यदि जनता अपनी शिकायतों के निवारण के लिये हिंसा का प्रयोग करने को मजबूर हो। अन्त में उन्होंने जनता से अनुरोध किया कि वह इस संघर्ष में

बम्बई के मजदूरों का साथ दें और २७ सितम्बर को देशभर में उनके समर्थन में सभाएँ करें ।

सन् १९५१ ई० में कांग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी की औद्योगिक और श्रमिक कार्यक्रमों की तुलना करते हुए नरेन्द्र देव जी ने कहा कि जब कि कांग्रेस अपने चुनाव घोषणा में राष्ट्रीयकरण के प्रश्न पर चुप है और मजदूर के हितों के अधिकांश प्रश्नों की उपेक्षा करती है, सोशलिस्ट पार्टी बैंकों और बीमा कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण को प्राथमिकता देते हुए खानों, चाय बगान तथा बुनियादी धन्धों एवं वस्त्र, चीनी और सीमेन्ट आदि उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का वायदा करती है तथा व्यक्तिगत उद्योगों के साथ-साथ राष्ट्रीयकृत उद्योगों के प्रबन्ध में भी मजदूरों को हिस्सा दिलाने की प्रतिज्ञा करती है । उन्होंने कहा कि सोशलिस्ट पार्टी अपने चुनाव घोषणा में बीमारी और बेकारी के 'बीमा' तथा वृद्ध अवस्था में 'पेन्शन' दिलाने का मजदूरों से वायदा करते हुए उन्हें विश्वास दिलाती है कि स्वतन्त्र संगठन बनाने तथा हड़ताल करने के उनके अधिकार पूर्णरूप से सुरक्षित रहेंगे । उन्होंने कहा कि इसतरह सोशलिस्ट पार्टी का कार्यक्रम मजदूरों की सामाजिक स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करता है ।

सितम्बर सन् १९५२ ई० में सोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर प्रजा पार्टी ने मिलकर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का संगठन किया जिसमें फार्वर्ड ब्लाक का एक ग्रुप भी शामिल हो गया । इस नयी पार्टी के भी सभी कार्यकर्ताओं ने मजदूर क्षेत्र में हिन्द मजदूर सभा द्वारा काम करना ही उचित समझा । १९ जून सन् १९५३ ई० को प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के बैतूल अधिवेशन के अवसर पर पार्टी के साठ ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं ने मजदूर आन्दोलन की एकता को सुदृढ़ करने का निश्चय किया । उनका विचार था कि ट्रेड यूनियन एकता जो स्वयं वांछनीय है श्रमिकवर्ग की बढ़ती हुई कठिनाइयों की पृष्ठभूमि में इससमय और भी अधिक अभीष्ट हो गयी है । इस समय जबकि मिलमालिक और सरकार दोनों ने ही मजदूरों की छँटनी शुरू कर दी है, पंचवर्षीय योजना नौकरी के अवसरों की समुचित वृद्धि में असफल रही है, मालिकों द्वारा मजदूरों की छँटनी का भय बढ़ रहा है, सरकार के हस्तक्षेप द्वारा राहत मिलने की आशा कम हो गयी है, एक संयुक्त जनतांत्रिक आन्दोलन ही, जो दलबन्दी की राजनीति और सरकार के प्रभाव से मुक्त हो, परिस्थिति का सामना कर सकता है । मजदूर आन्दोलन के कतिपय क्षेत्रों में एकीकरण की प्रक्रिया पर सन्तोष प्रकट करते हुए कन्वेंशन में अपनी राय व्यक्त की कि जबतक एकीकरण की प्रक्रिया को बोधपूर्वक सुनियोजित ढंग से सब स्वतन्त्र और जनतांत्रिक ट्रेड यूनियनों को एक संयुक्त ट्रेड यूनियन आन्दोलन में संगठित करने के उद्देश्य से आगे नहीं बढ़ाया जाता, यह प्रक्रिया शीघ्र ही क्षीण हो सकती है या वह ऐसे तीव्र पारस्परिक सन्देह और विरोध में भ्रष्ट हो सकती है जिससे ट्रेड यूनियन आन्दोलन का विघटन और भी गंभीर हो जाय ।

ट्रेड यूनियन आन्दोलन की एकता को बढ़ाने के निमित्त सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, अशोक मेहता, सुरेश चन्द्र बनर्जी, ब्रजकिशोर शास्त्री और शिवनाथ बनर्जी की एक कमेटी गठित की गयी। इस कन्वेंशन ने यह भी निश्चय किया कि उसकी अपनी राय में संयुक्त ट्रेड यूनियन आन्दोलन निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए।

(१) मालिकों, सरकार और राजनीतिक दलों के प्रभुत्व से ट्रेड यूनियनों की स्वतंत्रता।

(२) अंतिम आश्रय के रूप में हड़ताल का अधिकार।

(३) यूनियन के आन्तरिक प्रबन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता।

(४) मतगणना द्वारा समकक्ष यूनियनों के भेदों का निबटारा।

(५) जनतांत्रिक समाजवादी समाज के ध्येय को स्वीकार करना।

इस कन्वेंशन के निर्णयों के आधार पर इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस से एकीकरण की बातचीत बहुत काल तक चलती रही, पर सभी प्रयास असफल सिद्ध हुए।

दिसम्बर सन् १९५५ ई० में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने अपने गया सम्मेलन में आचार्य नरेन्द्र देव के निर्देशन में जो नीति-घोषणा स्वीकार की उसमें घोषित किया गया कि समाजवादी समाज में राष्ट्रीयकृत उद्योगों की व्यवस्था ऐसी हो जायगी कि जिसमें मजदूरों को अधिकाधिक स्वतंत्रता तथा सुरक्षा सुलभ हो सके और उनके प्रबन्ध में मजदूरों को स्वायत्त शासन के अधिकार प्राप्त हों। इस घोषणा में काम करने का अधिकार और कर्त्तव्य स्वीकार करते हुए कहा गया कि अधिकतम उत्पादन और सुख के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी स्थिति में रखा जाय जिससे वह समाज को अपना सर्वोत्तम योगदान कर सकें और उसे एक अच्छा जीवन यापन तथा अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये समुचित साधन सुलभ हो सके। अतएव यदि कोई व्यक्ति सामाजिक हित की दृष्टि से आवश्यक कार्य को अपनी योग्यतानुसार अच्छे से अच्छे ढंग से करता है तो उसे उसका ऐसा प्रतिफल भी मिलना चाहिए जिससे, वह सभ्य नागरिक जीवन व्यतीत कर सके। इस प्रकार का प्रतिफल स्वयं उसके मानवीय गुण में निहित है। इस निम्नतर राष्ट्रीय स्तर के ऊपर पुरस्कार में अन्तर समाजहित की दृष्टि से किया जा सकता है।

प्रतिफल की इस व्यवस्था से हर किसी को सुरक्षा और पर्याप्तता सुलभ होगी तथा कुछ लोगों को कुछ विशेष सुविधाएँ इसलिये प्राप्त हो सकेंगी कि उनकी सेवाएँ समाज के लिए अधिक उपयोगी हैं। इस नीति-घोषणा में मजदूरों के ऐसे प्रशिक्षण की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया जिससे मजदूर-वर्ग का पिछड़ापन दूर हो, उनमें सामाजिक जागरुकता तथा निर्णय करने की क्षमता उत्पन्न हो,

समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना जागृत हो और कम से कम उद्योग की वास्तविक स्थिति की जानकारी प्राप्त हो सके जिससे उनका सम्बन्ध हो ।

उद्योगों के समाजीकरण के समर्थन में सम्पत्ति के अधिकार का विश्लेषण करते हुए नीति-घोषणा में कहा गया कि राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के विकास में सारी जनता की सम्पत्ति समाज का मुख्यआधार है और सम्पत्ति के अधिकार को समाज के हितों के विरुद्ध व्यवहृत नहीं किया जा सकता । उसमें घोषित किया गया कि सभी मानव अधिकार सामाजिक, क्रियात्मक और विकासात्मक हैं और सामाजिक कर्त्तव्यों के साथ उनका अविच्छिन्न सम्बन्ध है । सम्पत्ति का अधिकार भी इस नियम का अपवाद नहीं हो सकता । सम्पत्ति भी एक सामाजिक संस्था है और अन्य सामाजिक संस्थाओं के समान ही सामाजिक कानूनों, आवश्यकताओं और परिस्थितियों से शासित होती है । उसे सामाजिक हित का साधन बनना होगा । सभी देशों में सम्पत्ति सम्बन्धी कानूनों में समय-समय पर परिवर्तन हुए हैं और प्रायः बिना किसी प्रकार का मुआवजा दिये ही स्वामित्व के अधिकारों में परिवर्तन किया गया है और उन्हें समाप्त कर दिया गया है ।

निष्कर्ष

आचार्य नरेन्द्र देव भारतीय समाजवाद के निर्माताओं में से प्रमुख थे । महात्मा गांधी के नेतृत्व में कार्य करते हुए सन् १९३४ ई० के आस-पास जिन विचारकों के मन में विकल्प पैदा हुआ और जिन्हें अनुभव हुआ कि स्वतन्त्रता-संग्राम में मात्र गांधीवादी विचारधारा का समर्थन करके आवश्यक बदलाव नहीं लाया जा सकता है, चाहे वे कोई भी रास्ता अख्तियार करें । कुछ लोग और अधिक रूढ़िवादी हो गये तथा धार्मिक मत-मतान्तरों में खो गये जबकि कुछ अतिशय क्रान्तिकारी होकर आतंकवाद की ओर गये और उससे लौटकर वामपंथी विचारों से प्रभावित होकर साम्यवादी हो गये । आचार्य नरेन्द्र देव इन दोनों से अलग मार्क्स के समाजवादी विचारों से प्रभावित होते हुए भी उसकी भारतीय परिस्थितियों के बीच विकसित होनेवाले विशिष्ट रूप के विश्वासी थे । उनके प्रभाव के चलते जब सन् १९३४ ई० में समाजवादी दल की स्थापना कांग्रेस की छत्रछाया में ही की गई तो यह बात बिना किसी दुविधा के उस समय के सभी समाजवादियों ने स्वीकार की । वैज्ञानिक समाजवाद के विश्वासी होते हुए भी आचार्यजी उसके मानवीय और सांस्कृतिक विशेषताओं को महत्त्व देने के पक्ष में थे जिसके तरफ पश्चिम के साम्यवादियों की विशेष रुचि नहीं थी । आज इतने वर्षों बाद जब रूस सहित पश्चिम के सभी साम्यवादी देश अपने ही विरोधाभासों के मलवे के नीचे दफन हो रहे हैं । आचार्य नरेन्द्र देव के विचारों का पुनः मूल्यांकन होना चाहिए ।

वे मजदूर वर्ग को समाजवादी-क्रान्ति का अग्रदूत मानते थे लेकिन भारतवर्ष में किसानों के क्रान्तिकारी पक्ष की उपेक्षा भी वे नहीं करना चाहते थे । इसीलिए वे इस देश के किसान आन्दोलन से शुरू से ही जुड़े हुए थे और इस विश्वास

के साथ किसानों को मुक्ति-मोर्चे पर आगे लाना चाहते थे क्योंकि बिना उनके सहभागिता के इस देश में कोई भी समाजवादी-क्रान्ति चरितार्थ नहीं हो सकती थी।

पूँजीवाद के सम्बन्ध में उनके स्पष्ट विचारों से और उसके दुष्परिणाम से उन्होंने कभी आँखे नहीं मोड़ी इसीलिए वे पूँजीवाद की सम्पत्ति के साथ-साथ उत्पादन की शक्तियों पर सही लोगों के प्रभुत्व के लिए भी चिन्तित थे और इस चिन्ता में वे सर्वहारा के अधिनायकवाद तक जाने को तैयार नहीं थे। वे लोकतांत्रिक पद्धति के विश्वासी थे और चाहते थे कि जो भी परिवर्तन हो, इसी पद्धति से हो। परिवर्तन के लिए संघर्ष ज़रूरी है लेकिन उसमें विचार-अंधता नहीं आनी चाहिए, ऐसा उनका कहना था।

इतिहास की भौतिकवादी द्वन्द्ववाद की व्यवस्था के वे पूर्णतः समर्थक थे लेकिन इतिहास की समीक्षा उन्होंने बड़े ही उदार और आस्थाशील मन से की थी। समाज के प्रगतिशील और प्रक्रियावादी तत्त्वों के निरन्तर चलते संघर्ष के वे बराबर प्रगतिशील तत्त्वों का समर्थन करते रहे और जो तत्त्व प्रवाह पतित थे उन पर उनकी चोट निरन्तर कड़ी से कड़ी होती चली गई। लेकिन इसके बाद भी वे अपने रोजमर्रा के जीवन में अत्यन्त उदार, विनम्र एवं समन्वयवादी बने रहे।

आचार्य नरेन्द्र देव भारतीय परिस्थितियों के अनुसार शोषणमुक्त समानतावादी समाज-व्यवस्था के मौलिक विचारक थे। उन्होंने इस प्रकार की समाज व्यवस्था हेतु सार्वजनिक कर्म किये। उनके विचार एवं कर्म में 'समाजवाद' की उपलब्धि का संश्लिष्ट प्रयास निरन्तर था।

समाजवादी सहयोगियों एवं अनुयायियों की टिप्पणियाँ

पं० जवाहरलाल नेहरू : अद्वितीय प्रतिभा पुरुष

टिप्पणी : एक अद्वितीय प्रतिभा के धनी ।

आचार्य नरेन्द्र देव दुर्लभ गुण सम्पन्न एक महत्त्वपूर्ण श्रेष्ठ पुरुष थे और उन्होंने कई क्षेत्रों में श्रेष्ठता प्राप्त की थी । असाधारण व्यक्तित्व के धनी इस मनीषी में दुर्लभ बुद्धि, दुर्लभ प्रतिभा, दुर्लभ सत्यनिष्ठा और अन्य बहुमूल्य गुण थे । केवल उनके शरीर ने ही उनका साथ नहीं दिया । मैं नहीं समझता कि इस सदन में कोई अन्य ऐसा है जिसका उनके साथ इतने लम्बे अरसे तक संग-साथ रहा जितना कि मेरा ।

चालीस वर्ष से भी अधिक का समय गुजरा जब हम दोनों साथ हुए स्वतन्त्रता संग्राम की धूल और धूप में तथा जेल जीवन की लम्बी नीरवता में जहाँ हमने विभिन्न स्थानों पर चार या पाँच साल मुझे वास्तविक अवधि इस समय याद नहीं आ रही है—साथ बिताये, हम अगणित अनुभवों और अनुभूतियों के सहभोगी और सहभागी रहे और जैसाकि अवश्यम्भावी था हम एक दूसरे को अन्तरंग रूप से जानने और समझने लगे । इसलिए मेरे लिए और हममें से बहुत से अन्य लोगों के लिए उनका निधन एक दुःखद हानि है, यह गहरा आघात है और साथ ही देश के लिए भी यह एक बड़ी क्षति है । हमें एक ओर व्यक्तिगत क्षति की पीड़ा का और दूसरी ओर सार्वजनिक जीवन में जो क्षति हुई है उसकी पीड़ा का अनुभव हो रहा और मन में यह कसक उठती है कि एक श्रेष्ठ गुणवान पुरुष हमारे बीच से उठ गया है और उन जैसा अब मिलना कठिन होगा ।

पं० जवाहरलाल नेहरू : पूर्व प्रधानमंत्री, भारत सरकार एवं राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष ।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण : आचार्य नरेन्द्र देव और मैं

टिप्पणी : भारतीय समाजवाद के सैद्धान्तिक विकास में आचार्यजी की देन महान् थी ।

आचार्य नरेन्द्र देव के विचारों तथा जीवन के सम्बन्ध में जितनी भी जानकारी सर्वसाधारण, विशेषकर युवकों को दी जा सके देश के लिए उतनी ही लाभकारी होगी । सार्वजनिक जीवन की जो आज दुर्दशा है तथा युवक जिस प्रकार दिग्भ्रमित हो रहे हैं, उस परिस्थिति में आचार्यजी से सम्बन्धित साहित्य जनमानस पर, विशेषकर शिक्षक, विद्यार्थी तथा सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के मानस पर, स्वस्थ प्रभाव डाल सकता है । वैसे तो सारे देश में सार्वजनिक जीवन का स्तर गिरता जा रहा है और विद्यार्थी समाज दिशाहीन तथा नकारात्मक बनता जा रहा है, परन्तु इन दोनों दृष्टियों से उ० प्र०, बिहार आदि राज्यों की दशा और भी चिन्तनीय है । आचार्यजी यूँ तो सारे भारत के थे, परन्तु इन राज्यों से उनका घनिष्टतम सम्बन्ध था । इसलिए नरेन्द्र देव का साहित्य इन राज्यों के लिये विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होगा ।

इसके अतिरिक्त हम लोगों के उपर नरेन्द्र देव जी का बड़ा भारी ऋण है । ऋण है उनके अपूर्व व्यक्तित्व का, उनके सौजन्य तथा स्नेह का, उनके बौद्धिक दान का, उनके नेतृत्त्व का, और सबसे अधिक उनके निश्छल, निस्पृह तथा भावुक चरित्र का, उनके त्याग और तप का । हम लोग इन सबका भरपूर लाभ उठा चुके हैं । इस ऋण से कभी उऋण नहीं होंगे और नरेन्द्र देव जी का स्मरण हमारे हृदयों को सदा निर्मल करता रहेगा । परन्तु हम नालायक साबित होंगे अगर जो कुछ हमने और हमारी पीढ़ी ने आचार्य से पाया है, उसमें से जितना भी सम्भव हो उतना ही आगे की पीढ़ियों के लिये छोड़ न जाय ।

सन् १९२०-२१ के असहयोग आन्दोलन में शामिल होने के लगभग पौने-दो वर्ष के बाद मैं सन् १९२२ के अगस्त में अध्ययन के लिये अमेरिका चला गया । सन् १९२९ ई० के नवम्बर के अन्त में मैं वहाँ से स्वदेश लौटा । तब तक आचार्य नरेन्द्र देव से मेरा कोई परिचय नहीं था, न उनके विषय में कोई जानकारी ही थी । सन् १९३० की जनवरी में समाजशास्त्र के मेरे अध्यापक, प्रोफेसर हर्बर्ट मिलर, अमेरिका से भारत यात्रा पर आये । उस समय वह मुझसे मिलने के लिए पटना भी आये और मैं उनको साथ लेकर वाराणसी गया जहाँ काशी विद्यापीठ में उनका और मेरा परिचय नरेन्द्र देव जी से हुआ । वाराणसी में जो थोड़ी बातचीत आचार्यजी से मेरी हुई उसका मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा । मैं उन दिनों मार्क्सवादी था । मेरी यह दृढ़ मान्यता थी कि लेनिन की शिक्षा के अनुसार कम्युनिस्टों को गुलाम देशों के राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन से कदापि पृथक नहीं होना चाहिये, भले ही वह आन्दोलन बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में चलता हो । अतः राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग रहकर कांग्रेस तथा गाँधीजी का विरोध

करने की जो नीति कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के आदेश पर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने उस समय अपना रखी थी उसे मैं गलत समझता था। आचार्यजी से बात करके मुझे लगा कि मुझे मेरे विचारों के सर्वथा अनुकूल एक मार्क्सवादी विद्वान् मिल गया। मुझे तो भारत में उन दिनों कोई जानता भी नहीं था, परन्तु आचार्यजी उ० प्र० के एक प्रभावशाली नेता तथा काशी विद्यापीठ के अध्यक्ष थे।

आचार्यजी से मिलने से कुछ ही दिन बाद मैं आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में काम करने लगा। कुछ ही महीने बाद नमक सत्याग्रह शुरू हुआ। तब से आचार्यजी और मैं अपने-अपने क्षेत्रों में आन्दोलन में ही लगे रहे। सन् १९३३ ई० में नासिक रोड सेन्ट्रल जेल में हम कुछ मित्रों ने कांग्रेस के अन्दर एक सोशलिस्ट पार्टी संगठित करने का निर्णय लिया। उसके बाद जब हम लोग जेल से छूटे तो काशी में कुछ मित्रों से मशविरा करने के बाद बिहार सोशलिस्ट पार्टी की तरफ से, जो पहले ही स्थापित हो चुकी थी, मैंने एक अखिल भारतीय सम्मेलन ऐसे कांग्रेस जनों का जो समाजवादी विचार के थे, पटने में बुलाया। उसकी अध्यक्षता के लिये मैंने नरेन्द्र देव जी से प्रार्थना की जिसे उन्होंने स्वीकार किया। इस सम्मेलन के बाद राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संघर्ष तथा समाजवादी आन्दोलन में आचार्यजी और मेरा निकटतम साथ हुआ। सह सम्बन्ध लगभग बीस वर्ष तक चलता रहा। हम दोनों ने मिलकर राष्ट्र की सेवा की, समाजवादी विचारों और शक्तियों को पुष्ट किया, कांग्रेस द्वारा संचालित राष्ट्रीय आन्दोलन की एकता और क्षमता को अक्षुण्ण बनाये रखते हुए उसे अधिक गतिशील, शक्तिशाली और क्रान्तिकारी बनाने की कोशिश की। सर्वश्री अच्युतपटवर्धन, मेहरअली, राममनोहर लोहिया से भी हम दोनों के घनिष्ट सम्बन्ध थे। पाँचों मिलकर काम करते थे। कांग्रेस समाजवादी पक्ष में कई शीर्षस्थ नेता मार्क्सवाद को उतना नहीं मानते थे जितना कि आचार्यजी ओर मैं। इस कारण से कई बार हम दोनों में और बाकी साथियों में मतभेद पैदा हो जाता था, परन्तु शुरू में हम सबमें ऐसा सौहार्द्र था कि मतभेदों के कारण कटुता पैदा नहीं होती थी।

सन् १९३० ई० के दशक के प्रारम्भ में भारतीय कम्युनिस्ट कांग्रेस के विरोधी थे और उससे अलग किसान मजदूर पार्टी बनाकर राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्त्व करने का प्रयास कर रहे थे, जिसका एकमात्र परिणाम राष्ट्रीय आन्दोलन की एकता तोड़ना ही हो सकता था। यद्यपि उनकी शक्ति इतनी थोड़ी थी और उनके तरीके इतने गलत थे कि उनके विरोध का कोई विशेष प्रभाव गाँधीजी के आन्दोलन पर नहीं पड़ पाता था। उस समय उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को भी सामाजिक फासिज्म आदि अपशब्दों से सम्बोधित करते हुए उसका विरोध किया। लेकिन जब जर्मनी में नात्सीवाद विजयी हुआ और स्तालिन की नीति सर्वथा विफल हुई तब उसने उस नीति को एकदम बदला। उस परिवर्तन की जानकारी भारतीय कम्युनिस्टों को देर से हुई, लेकिन जब हुई तब उन्होंने संयुक्त मोर्चे की बात शुरू की तथा कांग्रेस में भी घुसने का प्रयास किया। उसी समय कम्युनिस्ट पार्टी के तत्कालीन महामंत्री श्री पी० सी० जोशी से मेरा घनिष्ट परिचय

हुआ। कम्युनिस्टों के कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में प्रवेश करने की नीति का अनुसरण करना मैंने उचित समझा। मुझे उस समय आशा थी कि नात्सीवाद की सफलता से कम्युनिस्टों ने जो सबक सीखा था, उसकी वजह से मेरी नीति द्वारा भारत के मार्क्सवादी और साम्यवादी तत्त्वों का एक सम्मिलित दल बन सकेगा और वह दल कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी होगी। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के वे नेता जो मार्क्सवादी नहीं थे, इस नीति से असन्तुष्ट थे। परन्तु चूँकि आचार्यजी का समर्थन था, इसलिये इस नीति पर पार्टी चलती रही।

यहाँ इस बात को स्पष्ट करना आवश्यक है कि यद्यपि आचार्यजी ने मेरी नीति का समर्थन किया, फिर भी उस पर जितना मुझे विश्वास था उतना उन्हें नहीं था। वह किसी भी हालत में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का संगठन कम्युनिस्टों के हाथ में देने को तैयार नहीं थे। खेद है कि मेरे अन्धविश्वास के कारण दक्षिण के कुछ प्रदेशों में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की बागडोर कम्युनिस्टों के हाथ में चली गयी जिसके कारण कम्युनिस्ट संगठन और आन्दोलन से पृथक् कोई कांग्रेस समाजवादी संगठन या आन्दोलन केरल, तमिलनाडु, आन्ध्र आदि प्रदेशों में नहीं बन सका। इसी काल में अन्य प्रान्तों में भी कम्युनिस्टों ने अपनी गुप्त नीति के अनुसार कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अन्दर धीरे-धीरे अपने प्रभाव को बढ़ाने की तथा उसके कार्यकर्ताओं को तोड़कर अपने में मिलाने की कोशिश की। उनकी 'बोरिंग' फ्राम विदिन की नीति बहुत अंश में सफल हुई। जब इस नीति के दुष्परिणाम सामने आने लगे तब मेरी आँखें खुली। द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ जाने के बाद कम्युनिस्टों की नीति और गतिविधि से तंग आकर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में जितने कम्युनिस्ट थे, उनको पार्टी से निष्कासित किया गया। उस समय मैं जेल में था परन्तु यदि बाहर होता तो इस निर्णय से पूर्णतः सहमत होता। यद्यपि आचार्यजी का विश्वास मार्क्सवाद में अटल रहा, लेकिन मुझसे काफी पहले ही वह कम्युनिस्टों की चाल समझ चुके थे और इस निर्णय पर पहुँच चुके थे कि उनके साथ मिलकर काम नहीं हो सकता।

स्वराज्य प्राप्ति के बाद जब मेरे मन में यह विचार उठा कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को कांग्रेस से अलग हो जाना चाहिये तो आचार्यजी इस बात से पूरे सहमत नहीं थे। फिर भी कानपुर में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का युद्धोपरान्त जब पहला सम्मेलन हुआ तो उसमें पार्टी के नाम से कांग्रेस शब्द को हटा देने का उन्होंने विरोध नहीं किया। मेरे लिये कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का कांग्रेस से अलग होकर एक स्वतन्त्र समाजवादी दल बनाने की दिशा में यह एक बड़ा कदम था। कांग्रेस से अलग होने में आचार्यजी की जो हिचक थी वह उस समय दूर हुई जब कांग्रेस के विधान में संशोधन करके यह नियम बनाया गया कि कांग्रेस के अन्दर कोई ऐसी दूसरी संगठित पार्टी नहीं हो सकती जिसका अपना विधान और अनुशासन हो।

यहाँ यह भी उल्लेख करना अनुचित न होगा कि जब नासिक में इस बात का आखिरी फैसला हुआ तो चर्चाओं में राममनोहर लोहिया कांग्रेस छोड़ने के बारे

में उतने मजबूर नहीं थे। फिर भी सर्वसम्मति से नासिक सम्मेलन में निर्णय लिया गया। यह भी उल्लेखनीय है कि उस निर्णय के पहले कांग्रेस के नेताओं के साथ समाजवाद की दृष्टि से कांग्रेस को क्या करना चाहिये इस प्रश्न पर काफी चर्चा हो चुकी थी। उस चर्चा का हम लोगों के लिये कोई सन्तोषजनक परिणाम नहीं निकला था और हम लोग इस नतीजे पर पहुँच चुके थे कि उस समय कांग्रेस जिस प्रकार की बनी हुई थी वह समाजवाद की दिशा में अग्रसर नहीं हो सकती। नासिक के सर्वसम्मत निर्णय के पीछे हम लोगों की यह प्रतीति भी थी।

पिछले वर्षों में दल बदल का जो संक्रामक रोग देश के राजनीतिक जीवन में पैदा हुआ है उसको ध्यान में रखते हुए यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि जब नासिक में यह निर्णय हुआ कि समाजवादी कांग्रेस से पृथक हो जाएँ, तो साथ-साथ यह भी तय पाया कि उनमें से जो कांग्रेस टिकट पर चुनाव में सफल होकर विधान सभाओं के सदस्य बने हैं, उसको इस्तीफा देना चाहिए और फिर से उपचुनाव लड़ना चाहिये। उस निर्णय का सभी सम्बन्धित व्यक्तियों ने पालन किया। यह एक ऐसा आदर्श था जिसका स्मरण करके आज भी गौरव का अनुभव होता है।

सन् १९५२ ई० में सोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर प्रजा पार्टी के विलयन के सम्बन्ध में मेरा तथा राममनोहर लोहिया एवं अशोक मेहता आदि का आचार्यजी से मतभेद हो गया। आचार्यजी उन दिनों चीन गये हुए थे और उनकी अनुपस्थिति में ही कृपलानीजी आदि के० एम० पी० पी० के नेताओं से बातचीत होकर यह तय हो चुका था कि दोनों पार्टियों का संगम हो। जब आचार्यजी चीन से लौटे और इस निर्णय का उन्हें पता चला तो उन्हें बड़ा खेद हुआ। आज इतने वर्षों के बाद पीछे मुड़कर देखने पर मुझे भी लगता है कि अगर यह संगम नहीं होता तो शायद समाजवादी आन्दोलन के लिये श्रेयस्कर हुआ होता।

अपने मतभेदों की चर्चा छिड़ गयी है तो एक और मतभेद ध्यान में आता है। सन् १९५३ ई० में जब मैं पूना में डॉ० दीनशा मेहता के क्लीनिक में तीन सप्ताह का उपवास कर रहा था तभी जवाहरलाल नेहरूजी का एक पत्र मिला कि जब दिल्ली आओ तो मुझसे मिलना। मैंने उत्तर दिया कि उपवास के बाद जब स्वास्थ्य लाभ कर लूँगा तो रंगून एशियन सोशलिस्ट कान्फ्रेन्स में जाऊँगा और वहाँ से लौटने के बाद दिल्ली आकर उनसे मिलूँगा। मुझे दुःख है कि मेरे कतिपय मित्रों ने इतनी-सी बात पर यह सन्देह करना शुरू कर दिया कि जवाहरलालजी के साथ मेरी कोई साजिश चल रही है।

दिल्ली में जवाहरलाल जी से तीन दिनों तक कांग्रेस और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के परस्पर सहयोग के विषय पर चर्चा हुई। बाद में मैंने जवाहरलालजी को एक पत्र में १४ सूत्री कार्यक्रम लिख भेजा जिसको मैंने दोनों पार्टियों के परस्पर सहयोग का आधार बताया। लगभग तीन सप्ताह के बाद जवाहरलालजी से मिलकर फिर आखिरी निर्णय करना था। उन दिनों कृपलानीजी हमारी पार्टी के अध्यक्ष थे। उन्होंने पूरी तरह से सहयोग के विचार का समर्थन किया। दिल्ली वापस

जाने के पहले मैं काशी गया और वहाँ काफी विस्तार से नरेन्द्र देव जी से उस विषय पर चर्चा की। वह जवाहरलाल जी के प्रस्ताव के विरुद्ध थे। उनका कहना था कि कांग्रेस के साथ मिलकर काम करना असम्भव होगा। कांग्रेस, चाहे जवाहरलाल जी की निजी राय कुछ भी हो, समाजवाद से बहुत दूर हैं। उनका तीसरा कारण यह था कि शासन में घुसने के बाद अपने लोगों पर बुरा असर पड़ सकता है और उनकी दुर्बलताएँ बढ़ सकती हैं। इन दलीलों में ताकत थी। फिर भी मैं नरेन्द्र देव जी से सहमत नहीं हुआ। मैंने उनसे कहा कि अपने लोगों पर हमें विश्वास करना चाहिये। कांग्रेस समाजवादी संस्था न होते हुए भी यदि हमारे १४ सूत्री कार्यक्रम को या उसमें से अधिकांश को, मान लेती है तो हमारे और उसके सहयोग से समाजवाद को कुछ आगे बढ़ने का मौका मिलेगा, पार्टी की शक्ति और प्रभाव बढ़ेगा, और यदि अनुभव से यह सिद्ध हुआ कि कांग्रेस ने हमारे कार्यक्रम को सिर्फ ऊपरी दिल से माना है और हम आगे प्रगति नहीं कर रहे हैं तो हम इस्तीफा देकर बाहर आ सकते हैं और जनता के सामने इस चीज को सफाई से पेश करके उसको प्रभावित कर सकते हैं। मेरा यह विचार आज तक बदला नहीं है और आज भी मैं मानता हूँ कि यदि हमारी शर्तों पर सहयोग हो पाता तो समाजवाद के लिये अच्छा होता।

पाठकों को स्मरण होगा कि जवाहरलाल जी के प्रस्ताव का कोई परिणाम नहीं निकला। इसका एकमात्र कारण यही था कि जब दुबारा दिल्ली में उनसे मेरी मुलाकात हुई तो उन्होंने कहा कि मैंने सहयोग के लिये जो आधार बताया है, उसके लिये समय अनुकूल नहीं है। बिना किसी शर्त के सहयोग हो, यह तो सम्भव था, परन्तु उसके लिये मैं स्वयं तैयार नहीं था और बात वहीं पर खत्म हो गयी।

यह बात तो खत्म हो गयी, परन्तु दुर्भाग्यवश उसकी प्रतिक्रियाएँ पार्टी में बहुत खराब हुई जिसको अंग्रेजी में कैरेक्टर असेसिनेशन कहते हैं, उसका पूरा कैम्पेन शुरू हो गया जिसका प्रमुख शिकार मैं स्वयं था। चूँकि आचार्यजी सहयोग के विरुद्ध थे, इसलिये चरित्रहनन के शस्त्रों से सौभाग्यवश वे उस समय सुरक्षित रहे।

आचार्यजी से मेरा एक दूसरा मतभेद उस समय हुआ जब मैंने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से और सत्ता की राजनीति से अलग होकर सर्वोदय आन्दोलन में प्रवेश किया। मैंने यह कदम उठाने के पहले आचार्यजी से कोई परामर्श नहीं किया था, इसलिये भी कि मैं जानता था कि मैं अपनी बात उन्हें समझा नहीं पाऊँगा। उन्हें इस बात की शिकायत रही, लेकिन इससे भी बड़ी शिकायत यह थी कि मैंने पार्टी और राजनीति ही छोड़ दी।

जिन कारणों ने मुझे पार्टी और राजनीति छोड़कर सर्वोदय आन्दोलन में जाने को प्रेरित किया उनमें से वह आत्मिक दुःख भी था जो पार्टी में चरित्रहनन और उसके विघटन के समय मुझे हुआ। राजनीति में मतभेद तो पैदा होते ही हैं और जब वह एक मर्यादा के बाहर चले जाते हैं तो फिर जिनके मत मिलते

नहीं, उनका अलग हो जाना स्वाभाविक होता है। परन्तु हर मतभेद के लिये कोई गुप्त कारण है, कोई नीयत है, कोई आन्तरिक दुर्बलता है, इस प्रकार की जब चर्चा और प्रचार होता है तो वह अत्यन्त दुःखदायी होता है। आज तक मुझे विश्वास है कि उस समय के मतभेद इतने बड़े नहीं थे कि उनके कारण साथी अलग हों। परन्तु उनको ऐसा लगा कि वह साथ नहीं चल सकते। उनका अलग होना अनावश्यक होते हुए भी समझने लायक हो सकता है। परन्तु नीयत पर शक करना, चरित्रहनन का जहर फैलाना, यह तो राजनीति के दायरे के बाहर की बात होती है। मैं अपने तथा आचार्यजी, दोनों ही के बारे में कह सकता हूँ कि हममें से कोई भी न थक गया था, न पदलोलुपता का ही शिकार हो गया था, न हम यही चाहते थे कि पार्टी कांग्रेस में मिल जाए। हाँ, इतना है कि आचार्यजी का और मेरा, जवाहरलाल जी से बड़ा निकट का सम्बन्ध था। लेकिन जब हम लोगों की उनसे मुलाकात हो तो उसका यह कोई माने नहीं था कि उनके साथ समाजवादी आन्दोलन को खत्म कर देने का कोई षड़यन्त्र हम रच रहे हैं। उस एक बार को छोड़कर जवाहरलाल जी ने मेरा तथा पार्टी का अथवा जब सोशलिस्ट पार्टी थी तो उसको, कांग्रेस में मिलाने की या उसके साथ सहयोग करने की कोई बात मुझसे नहीं छेड़ी। परन्तु व्यक्तिगत मित्रता का भी जब ऐसा राजनीतिक अर्थ निकाला जाता तो उसका हमारे पास कोई जवाब नहीं था।

श्री अशोक मेहता ने कम्पलशन्स आफ बैकवर्ड इकानाँमी की जो बात अपनी बैतूल रिपोर्ट में लिखी थी, मैं उससे सहमत नहीं था। उस पर बौद्धिक विचार हो सकता था। पर बैतूल में तो हवा ही कुछ ऐसी जहरीली हो गयी थी जिसमें विचारों का आदान-प्रदान असम्भव था। वहाँ तो रूप यही दिया गया कि अशोक मेहता ने जयप्रकाश नारायण और सम्भवतः नरेन्द्र देव के इशारे से यह बात लिखी है। इस वातावरण से क्षुब्ध हो मैंने पार्टी की कार्यकारिणी से वहाँ इस्तीफा घोषित किया। यद्यपि लोगों के आग्रह पर मैंने अपना इस्तीफा वापस ले लिया, पर मेरे लिये पार्टी में काम करना कठिन हो गया और मैं धीरे-धीरे पार्टी से अलग हो गया। मेरे विचार में बैतूल कान्फ्रेन्स के दिन, भारतीय समाजवाद के लिये बुरे दिन थे। उसने विघटन की प्रक्रिया को बढ़ाया। उसका दुःखद प्रभाव आज भी उस आन्दोलन पर बना हुआ है और ऐसा नहीं लगता कि कभी उससे उसका उद्धार होगा। मैं तो पार्टी से अलग ही हो गया, परन्तु आचार्यजी उसमें कायम रहे और यथाशक्ति उसको आगे ले जाने का प्रयास करते रहे। इस प्रयास में जो मानसिक और हार्दिक क्लेश उन्हें हुआ, उसका घातक असर उनके स्वास्थ्य पर पड़ा। उनके जैसे उदार चरित, निष्कपट और महान् व्यक्ति के विषय में जो बातें उन दिनों कही गयी और उन लोगों के द्वारा जो चारित्र्य में उनको छू तक नहीं सकते थे, वह भारतीय समाजवादी आन्दोलन का एक अत्यन्त काला पृष्ठ है।

आचार्यजी के व्यक्तित्त्व, उनकी विद्वता, उनकी अपूर्व वक्तव्य शक्ति, इन सबके बारे में कुछ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान पीढ़ी उनके

इन गुणों से भलीभाँति परिचित है। फिर भी प्रकृत जन-सौजन्य, ईर्ष्या-द्वेष आदि से परे निर्मल चित्त, प्रसन्न मुद्रा, हास्यरस, सहज प्रेम, निस्पृह सेवा, विद्वत्ता, भाषण-शक्ति उनके व्यक्तित्व के कुछ ऐसे गुण हैं जिनका संक्षेप में उल्लेख आवश्यक लगता है। मैंने उनके साथ न जाने कितना समय बिताया होगा, अकेले भी और मित्र मंडलियों में भी। परन्तु मैंने कभी दूसरे की निन्दा करते हुए उन्हें नहीं सुना, ज्यादा से ज्यादा किसी के बारे में यह कह सकते तो इतना ही कि अमुक आदमी बहुत गड़बड़ है या तिकड़मी है। उससे कठोर या कटुतापूर्ण शब्द का प्रयोग उन्होंने उस काल में भी कभी नहीं किया जबकि उनके ही निकट के साथी उन पर तीखे और दूषित बौछार कर रहे थे। मैंने यह भी देखा कि दमें का दौरा पड़ने पर भी उनकी खुशमिजाजी बनी रहती थी और वे खुद अपने या दूसरे के मजाक में आनन्द लेते रहते थे। उनको लोगों ने अजातशत्रु की उपाधि दी थी। उनकी इन्सानियत अद्‌भुत थी। वहाँ कोई नहीं पहुँचपाता था। उनकी बौद्धिक शक्ति, उनका ज्ञान, उनकी वाक्पटुता, उनकी भाषण शक्ति अद्‌भुत थी। आचार्य नरेन्द्र देव राजनीतिक नेता तथा इतिहास और दर्शन के महान् पंडित तो ते ही, साथ ही साथ समाजवाद के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे। वे निःसंदेह विश्वव्यापी समाजवाद के एक बड़े नेता और विचारक थे। सिद्धान्त और व्यवहारिकता का उनमें उत्तम समन्वय था। उनकी विद्वत्ता के विषय में, खासकर इतिहास, दर्शन, समाजवाद, समाजशास्त्र, राजशास्त्र, संस्कृति आदि के ज्ञान के बारे में, कुछ कहना गैर जरूरी होगा। उसका सबूत तो उनकी पुस्तके, उनके लेख और भाषण आदि ही हैं। जहाँ तक वक्तृता की बात है आज बहुत लोग जीवित हैं जिन्होंने उनके हिन्दी और उर्दू के भाषण सुने होंगे। इनमें उनका मुकाबला कर सकने योग्य, देश में उँगली पर भी गिनने लायक लोग नहीं थे। उनके भाषण में जितनी भाषा की उत्तमता होती थी, उतनी ही विचार और तर्क की ऊँचाई और उसी प्रकार बोलने का तर्ज भी।

सन् १९२९ ई० के नवम्बर मास में लगभग साढ़े-सात वर्षों के बाद मैं अमेरिका से स्वदेश लौटा था। चूँकि इस अर्से में मैं एक कट्टर मार्क्सवादी बन चुका था, इसलिए स्वदेश लौटने पर यहाँ के मार्क्सवादियों से जल्द से जल्द सम्पर्क स्थापित करने की कोशिश मैंने की। मुझे निश्चित रूप से याद नहीं है कि असहयोग आन्दोलन के समय नरेन्द्र देव जी से मेरा परिचय हुआ था या नहीं। इतना तो याद है कि श्री श्री प्रकाशजी से मिलने के लिए जब मैं वाराणसी गया था, उस समय शायद उनके ही साथ मैं ठहरा था या काशी विद्यापीठ में मेरे ठहरने की व्यवस्था की गयी थी और वहीं आचार्यजी से मेरा परिचय हुआ। थोड़े ही दिनों में हमारी मित्रता बहुत प्रगाढ़ हो गयी। कट्टर मार्क्सवादी होते हुए भी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य मैं इसलिए नहीं बना कि राष्ट्रीय आन्दोलन के विषय में लेनिन की जो शिक्षा थी उससे कम्युनिस्ट पार्टी दूर पड़ गयी थी। लेनिन ने इस बात पर बहुत जोर दिया था कि पराधीन देशों में राष्ट्रीय स्वातंत्र्य के लिए साम्राज्यवाद के विरुद्ध जो भी आन्दोलन चले, भले ही वे राष्ट्रीय पूँजीपतियों

के प्रभाव में हो, कम्युनिस्टों को उससे सम्बन्ध विच्छेद नहीं करना चाहिए। परन्तु स्तालिन ने इस नीति को बदल दिया जिसके परिणाम स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन और संगठन में दरार पड़ गयी। भारत में कम्युनिस्ट पार्टी के उस समय के नेता श्री पूरनचन्द्र जोशी, अजय घोष आदि थे। उनसे मैं मिला और उन्हें समझने तथा समझाने की कोशिश की। परन्तु तब तक अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन और संगठन स्तालिन की तानाशाही के शिकार बन चुके थे और वहाँ स्वतन्त्र चिन्तन एवं कार्य के लिए कोई गुंजाईश नहीं रह गयी थी। भारतीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में भी यही स्थिति थी। लेकिन नरेन्द्र देव और अन्य ऐसे मार्क्सवादी थे जिन्होंने लेनिन का मार्ग नहीं छोड़ा था। इन मार्क्सवादी समाजवादियों में आचार्य नरेन्द्र देव अग्रणी थे। उनके प्रबुद्ध सहयोग से मार्क्सवादी समाजवादी आन्दोलन को एक नयी दिशा मिली। वह राष्ट्रीयता से जुड़ा और आजादी की लड़ाई में उसने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

आचार्यजी का चरित्र बहुत ऊँचा और आकर्षक था। मेरा ख्याल है कि उस समय के राष्ट्रीय नेताओं में आचार्यजी का स्थान बहुत ऊँचा था। राष्ट्रीय स्तर के वक्ताओं में मौलाना अबुलकलाम आजाद के बाद आचार्यजी का ही स्थान था। हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में वे धाराप्रवाह बोल सकते थे। उनकी वाक्पटुता अपूर्व थी। अंग्रेजी में भी वे अच्छा बोल लेते थे। देश की प्राचीन भाषाओं में संस्कृत और पाली पर उनका अधिकार था। विदेशी भाषाओं में अंग्रेजी के अलावा फ्रेंच की भी उन्हें अच्छी जानकारी थी। भारतीय संस्कृति का उन्हें गहरा अध्ययन था। बौद्ध दर्शन के भी वे अधिकारी ज्ञाता थे। समाजवादी आन्दोलन को ऐसे बड़े विद्वान् और मनीषी से बहुत बल मिला। उनके चिन्तन पूर्ण लेखों से भारतीय समाजवाद का बौद्धिक आधार पुष्ट हुआ और देश के बुद्धिजीवी वर्ग में उसकी प्रतिष्ठा हुई।

कालान्तर में मेरे विचारों में परिवर्तन हुआ और मार्क्सवाद के भौतिकवादी सिद्धान्तों में मेरा विश्वास हिल गया। धीरे-धीरे न केवल समाजवादी आन्दोलन से बल्कि दल एवं सत्ता की राजनीति से ही मैं अलग हो गया। इसी बीच समाजवादी आन्दोलन में बिखराव शुरू हुआ, जिसका कुप्रभाव आचार्यजी के रुग्ण स्वास्थ्य पर पड़ा और वे असमय ही चल बसे। उनके निधन से भारतीय समाजवादी आन्दोलन को जो धक्का लगा, उससे वह फिर उबर नहीं पाया।

यह निर्विवाद है कि भारतीय समाजवाद के सैद्धान्तिक विकास में नरेन्द्र देवजी की देन अप्रतिम है। उनके पांडित्यपूर्ण चिंतन का प्रभाव न केवल समाजवादी आन्दोलन पर, बल्कि राष्ट्रीय विकास के अन्य क्षेत्रों पर भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा। वे आधुनिक भारत के प्रमुख निर्माताओं में थे।

जयप्रकाश नारायण : भारत में समाजवादी आन्दोलन के लोकप्रिय नेता, सन् १९४२ के आन्दोलन के नायक, दो दशकों तक सर्वोदय आन्दोलन में रहने के बाद राजनीति में पुनः सक्रिय, आठवें दशक के प्रारंभिक वर्षों में देशव्यापी आन्दोलन के नेता, आपातकाल के बाद केन्द्र में गैर-कांग्रेस सरकार के स्थापक।

राममनोहर लोहिया : आचार्य नरेन्द्र देव

टिप्पणी : बौद्ध साहित्य, बौद्ध इतिहास और वर्तमान राजनीति के विद्वान्

मन्त्रिपद न लेना या लखनऊ विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर होने से इन्कार करना नरेन्द्र देव जी के लिए छोटी बातें हैं। फिर भी इन बातों का असर जनता पर पड़ता ही है। अंग्रेजी राज के रहते हुए कांग्रेसी मंत्री होने के लिए चाहे उससे देश का थोड़ा बहुत फायदा ही क्यों न होता हो, एक खास तबियत की जरूरत है और उसके अलावा नरेन्द्र देव जी ने साल भर तक आन्दोलन चलाया था कि मन्त्रिपद न लिये जाएँ। उन्होंने अपने सिद्धान्तों को निभाया और अपनी तबीयत का परिचय दिया। उड़ेलू तबीयत जो कम से कम खुद सिर्फ बड़ी चीजों में हाथ लगाना चाहती है, को ज्यादा चैन की जरूरत नहीं।

वाइसचांसलर होने से भी इन्कार किया। वही सबब। अंग्रेजी हुकूमत के होते हुए बड़े परिवर्तनों की आशा नहीं करनी चाहिये। फिर भी एक मौका था अवश्य, यह दिखाने के लिए कि कांग्रेस में भी विद्वान् होते हैं और देश को अपनी विद्वता से फायदा पहुँचाने के लिए। कुछ लोग यह समझ बैठे हैं कि कांग्रेसी त्यागी होते हैं, नेक होते हैं, दुनिया को सुधारना चाहते हैं लेकिन विद्वान् नहीं होते, एकतरफा होते हैं। यह बात कितनी गलत है, इसे आप चाहे जिस दृष्टिकोण से देखिए। इतिहास, दर्शन, राजनीति, साहित्य, अर्थशास्त्र सभी में कुछ कांग्रेसी विद्वान् के मुकाबले में हमारे यहाँ के कालेजी अध्यापकों की विद्या निर्णीय, खोखला और पुराना है। नरेन्द्र देव जी बौद्ध साहित्य, बौद्ध इतिहास और वर्तमान राजनीति के विद्वान् हैं।

काशी विद्यापीठ के आचार्य रहकर नरेन्द्र देव जी ने सैकड़ों के मानसिक विकास पर असर डाला और उनके शिष्य प्रान्त के कोने-कोने में राजनीति में, अख़बारगिरी में, किसान मजदूर आन्दोलन में अच्छा काम कर रहे हैं। चलती भाषा में, अपना आदमी हर जगह बैठा रखा है।

बौद्ध दर्शन पर नरेन्द्र देव जी ने बहुत कुछ लिख रखा है। उसे छपवाने की ज्यादा चिन्ता नहीं। यह उनकी एक आम तबीयत, कम से कम आजकल, मालूम पड़ती है कि किसी विषय पर जो कुछ सोचते हैं, उसे लिखने और छपवाने की प्रेरणा नहीं। एक तो रोजमर्रा के राजनैतिक प्रश्नों में इतने उलझे हुए रहते हैं, दिन में सोलह घण्टे मिलने वालों का तांता लगा रहता है, कि और चीजों का न अवकाश, न तबीयत ही। और दूसरे किसी विषय पर सोचते हुए, मेरी समझ में, नरेन्द्र देवजी आखिरी हद तक जाने में कुछ घबड़ाते हैं। ज्यादा मथने में अक्सर जहर निकला करता है न करने में कुछ बेशकीमती मोती भी हाथ नहीं लगते, लेकिन इस पर फैसला कौन करे ?

नरेन्द्र देवजी अपने लेखों को वक्तृता की शक्ल में बोला करते हैं। इसलिए

उनके भाषण शिक्षाप्रद भी होते हैं और जोशीले भी। हमेशा कुछ न कुछ समझाना होता है और जो समझाते हैं उसे उत्साह के साथ। आज हिन्दुस्तानी भाषा में नरेन्द्र देव जी के लिए कांग्रेस एक बहुत बड़ा और शायद अकेला बन्दरगाह है। उससे बहुत दूर तक तैर जाने की भी उनमें क्षमता है, लेकिन जहाँ देखा कि लौटना असम्भव या मुश्किल हो चला है, वापस तैर आने की भी उनमें क्षमता है। उनके कुछ साथी उनके दूर निकल जाने पर घबड़ाते हैं, रुक जाते हैं और उनकी तरफ देखने के सिवा और कोई चारा नहीं रहता और कुछ दूसरे साथी उनके लौट आने पर उनसे कुढ़ते हैं, लेकिन वापस आने के सिवा उन्हें कोई चारा नहीं। देखें कब और कैसे और कितना नरेन्द्र देव जी अपना माप बैठाते और सन्तुलन स्थापित करते हैं।

राममनोहर लोहिया : भारत में समाजवादी आन्दोलन के विलक्षण व्यक्तित्व एवं नेता, समाजवाद को वैचारिक मोड़ देने में अग्रणी, चौखम्भा राज, सप्त क्रान्ति आदि संकल्पनाओं तथा गैर कांग्रेसवादी रणनीति के जनक।

सम्पूर्णानन्द : 'आचार्य नरेन्द्र देव'

टिप्पणी : राजनीतिज्ञ बहुत मिल जायेंगे पर नरेन्द्र देव नही मिलेंगे ।

वर्षों की पुरानी मित्रता को भी राजनीति कभी-कभी नष्ट कर देती है, परन्तु ऐसा भी होता है कि सार्वजनिक सहयोग और साहचर्य कभी मित्रता में बदल जाता है । हमारा यह सौभाग्य था कि नरेन्द्र देव जी का और हमारा सार्वजनिक साथ स्नेह और मित्रता में बदल गया ।

शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो आचार्यजी के नाम से परिचित न हो और जिसको उनके सम्बन्ध में थोड़ा बहुत ज्ञान न हो । उनके निधन के समाचार ने ऐसे सभी लोगों को घोर दुःख में डाल दिया ।

वह उच्चकोटि के विद्वान् थे । संस्कृत और पाली दोनों में उनकी बहुत अच्छी गति थी । बौद्ध वाङ्मय, विशेषतः, बौद्ध दर्शन का उन्होंने बहुत गम्भीर अध्ययन किया था, परन्तु इस बात का दुःख है कि विद्वत् जगत उनके पाण्डित्य का लाभ न उठा सका । पहले तो उनको लिखने का कम अवसर मिला और दूसरे उनकी कृतियाँ अभी प्रकाशित भी नहीं हो पायी हैं । काशी विद्यापीठ से उनका आरम्भ से ही सम्बन्ध था । वह उन थोड़े से व्यक्तियों में से थे जिन्होंने विद्यापीठ को प्रतिष्ठा प्रदान की और उसकी ओर अच्छे विद्याव्यसनी और कार्यशील विद्यार्थियों को आकृष्ट किया । उनके छात्र आज भी उन दिनों को नहीं भूल सकते जब उन्होने आचार्यजी के चरणों में बैठकर इतिहास पढ़ा था । अध्यापक का लक्षण यही है कि वह छात्रेषु लब्धप्रतिष्ठः हो और आचार्यजी में यह गुण पूर्णतया पाया जाता था । राजनीति के क्षेत्र में उन्होंने जो काम किये हैं उनसे प्रायः सभी लोग परिचित हैं । सन् १९२१ ई० से स्वराज्य प्राप्ति तक कांग्रेस में रहकर और उसके बाद कांग्रेस से पृथक् होकर भी वह हमारे गणमान्य नेताओं में थे । समाजवाद के प्रति उनका प्रेम कुछ नया नहीं था । वह उस कांग्रेस समाजवादी दल के, जिसका जन्म बम्बई में सन् १९३४ ई० में हुआ था, संस्थापकों में थे और तब से बराबर उन अन्यतम विचारकों में थे जिन्होंने देश में समाजवाद की जड़ पुष्ट की है । उनके स्वभाव में वह रूखापन नहीं था जो दर्शन जैसे दुरूह विषयों को पढ़ने वालों में आ जाता है । वे हँसमुख आदमी थे, उनको मजाक करने और मजाक में भाग लेने में रस आता था । लोगों की खूब चुटकियाँ ले सकते थे । जो लोग उनसे काफी परिचित रहे हैं, उन्होंने देखा होगा कि उनमें वह विरल गुण था जिसे अंग्रेजी में सेंस आफ ह्यूमर कहते हैं । इसका सार यह है कि मनुष्य दूसरों पर ही नहीं बल्कि अपनी और अपनों की भूलों पर भी हँस सके । उनके स्वभाव और चरित्र का ही यह प्रसाद था कि उनका शत्रु शायद ही कोई होगा । राजनीतिक मतभेद चाहे जितने रहे हों परन्तु उनकी विद्या और उनके व्यक्तित्व का आदर उनका विरोधी भी करता था । यही कारण है कि आज भी कांग्रेस के अपने पुराने साथियों के साथ उनका सम्बन्ध पहले जैसा स्नेह और

आपसदारी का बना हुआ था ।

यद्यपि उनका शासन से कभी सम्बन्ध नहीं रहा, तथापि उन्होंने कई ऐसे सार्वजनिक काम किये हैं जिनसे शासन को सहायता मिली है और जिनका प्रभाव देश के सांस्कृतिक जीवन पर बहुत गहरा पड़ा है । उदाहरण के लिए उ० प्र० में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में दो बार जाँच कमेटियाँ बैठायी गयी और दोनों के अध्यक्ष नरेन्द्र देव जी ही थे । इसके अलावा जिस लिपि सुधार समिति की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए लखनऊ में डॉ० राधाकृष्णन् के सभापतित्व में अखिल भारतीय सम्मेलन हुआ, उसके अध्यक्ष भी आचार्यजी ही थे । इस सम्मेलन में लिपि सुधार की जो बातें स्वीकृत की गयी, उन सबका आधार प्रायः नरेन्द्र देव समिति की रिपोर्ट है । यह संशोधित लिपि धीरे-धीरे सारे देश में फैल रही है ।

मेरा उनका ३० वर्ष से ऊपर का साथ रहा है । कई दिन तक लगातार दिन-रात एक ही जगह रहने का अवसर आया । विद्यापीठ में वर्षों साथ-साथ काम करने का मौका मिला । घण्टों तक सांस्कृतिक, दार्शनिक और राजनीतिक प्रश्नों पर शास्त्रार्थ होता था । उन बातों की स्मृतियाँ सदा हरी रहेगी । सार्वजनिक जीवन में न जाने कितने लोगों का सम्पर्क होता है, न जाने कितने लोगों के विरोध में काम करना पड़ता है । राजनीति का क्षेत्र उन अनुभूतियों का एक प्रकार से शत्रु है जो जीवन को मधुर बनाती हैं । वर्षों की पुरानी मित्रता को भी राजनीति कभी-कभी नष्ट कर देती है परन्तु हाँ, ऐसा भी होता है कि सार्वजनिक सहयोग, सहकारिता और साहचर्य कभी मित्रता में बदल जाता है । हममें से कुछ लोगों का, जिनमें मद्रास के राज्यपाल श्रीप्रकाश अग्रगण्य हैं, वह सौभाग्य था कि नरेन्द्र देव जी का तथा हमारा सार्वजनिक साथ, स्नेह और मित्रता में बदल गया । इस मित्रता को ठेस लगने के कई अवसर आये परन्तु इसमें कभी रत्ती-भर अन्तर न पड़ा । उनको समझा-बुझा कर कोयम्बटूर भेजने में कुछ थोड़ा सा प्रयास मेरा ही था । मुझे इस बात का क्या पता हो सकता था कि मैं उनको ऐसी यात्रा के लिए भेज रहा हूँ जिसमें पुनः मिलने के लिये जगह नहीं है । यों तो वह दमा के रोगी थे और इस रोग से किसी की मौत होने की बात शायद ही सुनी गयी होगी, परन्तु मेरे मन में तो ऐसा आता है कि उनकी मृत्यु का कारण दमा नहीं था, राजनीति ने उनकी जान ली । बीमारी की हालत में भी लोग उनको छोड़ते न थे, सलाह मशविरा के लिए उनके पास आया करते थे और अपने मित्रों के लाख मना करने पर भी वह अपने को रोक नहीं सकते थे । घण्टों बात करते थे और वह भी बड़े जोर से । लम्बे-लम्बे नोट लिखाया करते थे और सबसे बढ़कर देश के लिए और अपनी पार्टी के लिए निरन्तर चिन्ता किया करते थे । उनके मित्र बराबर इस यत्न में रहते थे कि उनको ऐसी जगह भेज दिया जाये जहाँ लोग पास न पहुँच सकें । इस बात में कभी-कभी थोड़ी बहुत सफलता हो भी जाती थी, परन्तु चिन्तन को तो कोई रोक नहीं सकता और मुझको कोई सन्देह नहीं

है कि इस निरन्तर चिन्तन ने उनके जर्जर शरीर को और भी निःसार बना दिया।

आज मुझको उ० प्र० की विधान सभा में नरेन्द्र देव जी के निधन के सम्बन्ध में शोक प्रस्ताव उपस्थित करना पड़ा था। उस समय जैसा दृश्य—कम ही देखने को आया था। लोगों के चेहरे भरभराये हुए थे, आँखे डबडबायी हुई थीं। कुछ सदस्य तो आँसुओं को रोक ही नहीं सके। शरीर छूटने पर भी लोगों के हृदयों में निवास, मनुष्य को अमर बना देता है। बहुत से लोगों ने नरेन्द्र देव जी से स्फूर्ति प्राप्त की है। उन लोगों की जीवन चर्या ही दिवंगत आत्मा का पृथ्वी पर सबसे बड़ा स्मारक होगा।

उनके देहान्त से देश और विशेषतः उत्तर प्रदेश की जो क्षति हुई है, उसकी जल्दी पूर्ति नहीं हो सकती। अभी थोड़े दिन हुए मेरे एक और मित्र का देहान्त हुआ था। उस समय एक सज्जन के मुँह से उर्दू का शेर सुना था। नरेन्द्र देव जी के शरीर छोड़ने का समाचार मिलते ही वह मुझे यकायक याद हो आया :

"कल तो कहते थे कि हम बिस्तर से उठ सकते नहीं
आज दुनिया से चले जाने की, ताकत आ गयी ?"

मुझे इस बात का दुःख है कि समय की कमी के कारण मैं आचार्य नरेन्द्र देव जी के सम्बन्ध में जो छोटा सा लेख लिख रहा हूँ वह न तो उनके व्यक्तित्व के अनुरूप है और न उनके और मेरे ३५ वर्ष के पुराने सम्बन्ध के। इस सम्बन्ध का श्रीगणेश विचित्र ढंग से हुआ। उसकी जड़ में एक मतभेद था। बीकानेर में रहकर मैंने 'सम्राट अशोक' नाम की पुस्तक लिखी थी। वहाँ से इस्तीफा देकर काशी आने पर ज्ञानमण्डल से उसके प्रकाशन की बात चली। ज्ञानमण्डल वालों ने उसे आचार्यजी के पास सम्मति के लिए भेजा। उनका उसके कुछ अंशों के विषय में मतभेद था, विशेषतः वह उसके उस भाग को प्रामाणिक नहीं मानते थे जिसमें तत्कालीन कला पर विचार किया गया था। ज्ञानमण्डल वालों का यह कहना उचित ही था कि वे पुस्तक को तभी छाप सकते हैं जब उसके वे अंश निकाल लिये जायें जिन पर आचार्यजी को आपत्ति थी। परन्तु हठधर्मी करके मैंने यह कहा कि मैं पुस्तक में से एक शब्द भी बदलने को तैयार नहीं। फलतः यह ज्ञानमण्डल से प्रकाशित न हो सकी, थोड़े दिनों बाद कानपुर से निकली। आपस में जान पहचान का आरम्भ तो इस प्रकार हुआ परन्तु इस बात की इसके बाद न कभी आचार्यजी ने चर्चा की न मैंने और हमारे आपस के सम्बन्ध में इसके कारण कभी कोई फर्क न आने पाया। विद्यापीठ में तो साथ रहता ही था, उसके बाहर भी राजनीतिक क्षेत्र में काम करने के अवसर बराबर आते रहते थे। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठकों में बहुधा स्वर्गीय श्री शिवप्रसाद गुप्त, आचार्यजी, श्रीप्रकाशजी और मैं साथ ही जाया करते थे। उम्र भी बहुत अधिक न थी। सुनते सब कुछ थे परन्तु गम्भीर भाव से हमने बहुत कम लिया होगा। इसी प्रकार मध्य प्रदेश से श्री रविन्द्र राव, श्री भार्गव, सेठ गोविन्ददास और श्री छेदीलाल

आया करते थे । कुछ लोग ऐसा कहते थे कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में यह दो चाण्डाल चौकड़ियाँ हैं, परन्तु कभी-कभी हँसी-मजाक में हमारे हाथों अच्छा काम भी हो जाता था । गया कांग्रेस की एक महत्त्वपूर्ण घटना याद आती है । विचारणीय प्रश्न यह था कि कांग्रेसजन कौंसिलों में जायें या न जायें । बहस का अन्त ही न होता था । स्वागत समिति के सारे प्रबन्ध टूट गये । सभापति श्री चितरंजनदास शान्ति के साथ सबको बोलने का मौका देते थे । और तो कोई कम ही बोलता परन्तु न जाने कहाँ से मौलाना लोगों की बाढ़ सी आ गयी थी । इन सब लोगों की खिलाफत आन्दोलन में दिलचस्पी थी । दो-ढाई घण्टे से कम तो कोई बोलता ही न था और हर व्यक्ति कुरान और हदीस से लम्बे-लम्बे अवतरण देकर यह सिद्ध करता था कि कौंसिलों में जाना पाप है । जहन्नुम में पहुँचने का सीधा रास्ता है । ऐसा लगता था कि आज से १३०० वर्ष पहिले लिखी इन धार्मिक पुस्तकों में कौंसिल प्रवेश के प्रश्न पर ही विवेचन किया गया है । सब लोग ऊब गये थे परन्तु इस जाल के बाहर निकलने का कोई मौका न देख पड़ता था । आखिर काशी की चाण्डालचौकड़ी को एक बात सूझी । हमने बड़ी गम्भीरता के साथ देशबन्धु से यह प्रस्ताव किया कि अभी इस प्रश्न का निर्णय न किया जाय । विवाद स्थगित कर दिया जाये और काशी के कुछ विद्वान् बुला लिया जाए ताकि यह मालूम हो जाए कि हिन्दू धर्मशास्त्र इस विषय पर क्या कहते हैं । उनका मत पाने के बाद ही हम लोग इस पर यथार्थ निश्चय कर सकेंगे । जहाँ तक याद पड़ता है, इन्द्र विद्यावाचस्पति ने हमारा समर्थन किया । यह तो सब लोग समझते थे कि यह प्रस्ताव शरारत का है, परन्तु जोरों से उसका अनुमोदन हुआ । मौलाना लोगों की समझ में यह बात आ गयी कि अब इस बात को यहीं खत्म करना चाहिए और बहस समाप्त हो गयी ।

जिन लोगों को उनसे मिलने का अवसर मिला है वे जानते थे कि गम्भीर विद्वान् होते हुए भी वह कितने हँसमुख आदमी थे और चेहरे पर हँसी को प्रकट न करते हुए किस तरह मजाक की बाते करते थे । विद्यापीठ के उनके छात्रों और सह-अध्यापकों को ऐसे सैकड़ों उदाहरण याद होंगे । उनके धार्मिक विचार क्या थे यह कहना कठिन है, परन्तु बौद्ध दर्शन पर आस्था रखते हुए भी वह अनिश्वरवादी न थे, इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है । पुरानी धार्मिक कृतियों का उन्होंने परित्याग नहीं किया यद्यपि उनमें कुछ सुधार का समावेश किया । अपने लड़के का यज्ञोपवीत उन्होने विधिवत कराया परन्तु विधि में संशोधन यह हुआ कि गायत्री उपदेश पुरोहित के स्थान पर श्रीप्रकाशजी से कराया गया । नरेन्द्र देव जी का कहना था कि ऐसा उपदेश देने के लिए वे पुरोहित की अपेक्षा श्रेष्ठ अधिकारी हैं ।

हमारे देश में दुर्भाग्य से अभी यह हालत है कि जहाँ गम्भीर राजनीतिक मतभेद होता है, वहाँ आपस में कटुता आ जाती है । इतना ही नहीं, राजनीतिक मतभेद के कारण लोग ऐसे कामों में भी एक दूसरे के साथ सहयोग करने में

आना-कानी करते हैं जो सिद्धान्तदृष्ट्या राजनीतिक दलबन्दी से सर्वथा असम्बद्ध है। नरेन्द्र देवजी इन दोनों बातों से परे थे। सन् १९३६ ई० से ही मेरा कांग्रेस समाजवादी दल से जिसका जन्म देने वालों में मेरा भी स्थान था, मतभेद आरम्भ हुआ और वह काफी बढ़ता गया। दो-दो बार चुनाव लड़े गये जिनमें कांग्रेस और समाजवादी दल, जो पीछे से प्रजा समाजवादी दल में परिणत हो गया। एक दूसरे के विरुद्ध चुनाव के अखाड़े में उतरे परन्तु हमारा आपस का सौजन्य ज्यों का त्यों बना रहा। यह हम दोनों की दुर्बलता ही होगी परन्तु यह सत्य है कि न तो एक बार भी नरेन्द्र देव जी मेरे चुनाव क्षेत्र में बोलने आये और न मैं उनके क्षेत्र में गया। आपस में कोई समझौता नहीं हुआ था। यों ही हम दोनों के चित्त को ऐसी ही प्रेरणा हुई। हमारे आपस के व्यवहार को देखकर कोई कह नहीं सकता था कि हमारे बीच में किसी प्रकार की कोई दीवार है। मेरे घर के लोग उनको वैसा ही बुजुर्ग मानते जैसा उनके घर के लोग मुझको। इस बात की आवश्यकता है कि हम राजनीतिक क्षेत्र में इस प्रकार के सौहार्द्र को स्थान दें। पिछले चुनाव में नरेन्द्र देवजी का एक कांग्रेसी उम्मीदवार ने मुकाबिला किया। चुनाव के थोड़े ही दिन बाद प्रदेश में गवर्नमेण्ट बनी और मैं शिक्षामंत्री हुआ। मुझको माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में जाँच करने के लिए कमेटी नियुक्त करने की आवश्यकता प्रतीत हुई और इस काम के लिए नरेन्द्र देवजी से अच्छा कोई सभापति समझ में नहीं आया। मैंने उनसे अनुरोध किया और उन्होंने मेरे अनुरोध को स्वीकार कर लिया। हम दोनों को थोड़ी बहुत कटु आलोचना सहनी पड़ी, परन्तु मैंने प्रदेश के हित में ऐसा करना उचित समझा और नरेन्द्र देवजी ने उदारता और साहस के साथ मेरे इस अनुरोध को स्वीकार करना भी प्रदेश के हित में उचित समझा। इस बात की आवश्यकता है कि हम सब जो राजनीतिक क्षेत्र में काम करते हैं, राष्ट्रीय निर्माण के कामों में इसी प्रकार अपने को दलगत विचारों से ऊपर उठाना सीखें। यह जानते हुए कि यदि कोई अच्छा काम हुआ तो उसका श्रेय बहुत कुछ कांग्रेस सरकार और कांग्रेस दल को प्राप्त होगा, मेरी बात को मान लेना साधारण नैतिक साहस की बात नहीं थी।

हम लोगों में, जो आज से एक पीढ़ी पहले के हैं, एक रोग है, हम खाने के शौकीन होते हैं। यह दोष नरेन्द्र देव जी में भी था, पर मुसीबत यह थी कि बीमारी के कारण उनको अपने ऊपर कड़ा नियन्त्रण रखना पड़ता था। उनकी दो आदतें तो ऐसी थीं, जिनके लिए उनके मित्र जाकर हँसा करते थे। घड़ी के तो वे शत्रु थे। या तो घड़ी उनके पास होती ही न थी या कुछ दिनों के बाद गायब हो जाती थी। पीछे से शायद कुछ लोगों के दबाव के कारण घड़ी के प्रति उनका भाव कुछ बदला था। पर एक बात थी। घड़ी न रखते हुए भी समय का ज्ञान उनका बहुत अच्छा था। अन्दाज से न केवल घण्टा बल्कि पौन और आधे घण्टे तक को बहुत कुछ ठीक बता सकते थे।

रोग ने उनके शरीर को जर्जर कर दिया था। मैं नहीं कह सकता था

कि दमा जिस किसी को पकड़ता है उसे जीता नहीं छोड़ता है। परन्तु एक बात का दुःख अवश्य है कि उनके साथियों की असावधानी ने मृत्यु के हाथ बलवान बना दिये। अस्पताल में पड़े रहते थे, मित्रगण जबर्दस्ती उनको किसी दूर स्थान में आराम के लिए ले जाते थे, परन्तु वहाँ भी लोग पहुँच जाते थे और राजनीतिक प्रश्नों पर राय लेते थे, घण्टों बाते करते थे तथा लम्बे-लम्बे निबन्ध लिखवाते थे। कष्ट में पड़े हुए और कराहते हुए भी नरेन्द्र देवजी का सौजन्य और लोकहित का भाव उनको 'नहीं' करने की अनुमति न देता था। वे इस प्रकार की बातचीत के बाद और दुर्बल हो जाते थे। फिर से दौरा हो जाता था। कई-कई दिनों तक तड़पते रहते थे लेकिन लोग उनका पिण्ड न छोड़ते थे। मेरे जैसे साथियों ने उनसे कई बार कहा कि आप सक्रिय राजनीति से अलग हो जाइये। देश को राजनीतिज्ञ बहुत मिल जायेगा पर विद्वान् जल्दी नहीं मिलता। आप अवकाश के समय केवल लिखने-पढ़ने का काम करें। आप जो कुछ लिख जायेंगे वह देश के लिए तथा विद्वत् समाज के लिए आपकी अपूर्व देन होगी। हृदय से वह इस बात पर सहमत थे, परन्तु परिस्थितियाँ उनसे प्रबल थीं। घेरे के बाहर न उठ सके और एक दिन हमको बहुमूल्य नवरत्न से हाथ धोना पड़ा।

डॉ० सम्पूर्णानन्द : असहयोग आन्दोलन में हिस्सेदारी, बनारस समाजवादी ग्रुप का संयोजन, काशी विद्यापीठ में प्राध्यापक, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के बम्बई सम्मेलन १९३४ ई० के अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री, राजस्थान के राज्यपाल, 'समाजवाद' और 'चिद्विलास' के लेखक।

अच्युत पटवर्धन : जीवन दृष्टिदाता आचार्य

टिप्पणी : सामाजिक जड़ता से जूझते एक सतत क्रान्तिकारी

हमारे सामाजिक जीवन में गत पचास वर्षों के बीच कितने उलट फेर हुए और कितनी महान् विभूतियाँ हो गयीं। क्या क्रान्तिकारी व्यक्तित्व और सामाजिक उलट फेर में परस्पर कुछ सम्बन्ध है ? काल के प्रभाव से मानव व्यक्तित्व पाता है या अलौकिक व्यक्ति के बदौलत नया इतिहास बनता है ? यह एक पहेली है। पुराने जमाने से ही विचारक इसका हल ढूँढते आ रहे हैं। आज भी इस प्रश्न पर गहरा मतभेद है। किन्तु सम्प्रति हम इस विवाद में न पड़ें, तो भी इस विषय में दो मत सम्भव ही नहीं कि यह विचारणीय प्रश्न है।

आचार्य नरेन्द्र देव अपने आस-पास के सामाजिक जीवन से इतने समरस हो गये थे कि सामाजिक इतिहास से अलग उनमें क्या था, यह बताना कठिन है। उनमें गुणों की सूची बनायी जा सकती है, उनके बड़प्पन की तफसील दी जा सकती है पर उनके व्यक्तित्व में जो ओज, जो गतिशीलता और जो विभूतिमत्ता थी, वह एकमात्र सामाजिक पार्श्वभूमि पर ही प्रकट होती थी। भारतीय जीवन मूल्यों पर उन्हें प्रगाढ़ श्रद्धा रही। भारतीय संस्कृति का उन पर गहरा प्रभाव हो चुका था। उनका अध्ययन विशाल और तलस्पर्शी रहा। जीवन त्याग भरा था। इस तरह का उनका स्वरूप रहा। फिर भी उनके व्यक्तित्व का वास्तविक दर्शन तब तक नहीं हो सकता, जब तक सामाजिक प्रगति का रास्ता खोज निकालने के निमित्त उनके द्वारा निरन्तर चलने वाले चिन्तन, मनन और समाज की सभी छटपटों से एकरूप होने के उनके शौक की ओर ध्यान न दिया जाय। वे एक पीढ़ी के प्रतिनिधि थे। एक-एक पीढ़ी की सामाजिक आकांक्षाएँ और ध्येय उनके व्यक्तित्व में प्रतिबिम्बित हो उठे थे। उनके व्यक्तित्व की ये दोनों बातें घटक अवयवों का सा ही महत्त्व रखती है।

उनका स्वभाव अत्यन्त संकोची, निरहंकारी और संवेदनशील रहा। उनसे जिनका निकट का और आत्मीयतापूर्ण सम्पर्क हुआ, उन्हें उनके अकृत्रिम स्नेह भाव और सरलता पर आश्चर्य होने लगता। इतने कीर्तिमान, सुयोग्य और व्युत्पन्न कहे जाने वाले लोग व्यक्तिगत जीवन में कदाचित ही इतने सीधे, अकृत्रिम और पाप-भीरू तथा निश्छल स्नेहपूर्ण दिखाई पड़ते हैं। आचार्यजी की यह अपनी विशेषता रही कि उनके सार्वजनिक यश की छाँह कभी भी उनके अन्तःकरण पर न पड़ सकी। उन्हें इस बात की कभी कल्पना तक नहीं हुई कि सारी दुनिया मेरी ओर गौर से निहारती हैं, इसलिये दुनिया की निगाह में भरने लायक ही मेरा आचरण हो। उनके आचार-विचार में छूकर भी नाटकीयता नहीं थी। जब-तब बाल सुलभ सरलता और सहानुभूति का ही वहाँ अनुभव हुआ करता। उनके विशाल अध्ययन को हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी में वक्तृत्व का भी साथ मिल जाने से वे युवक-हृदय को तत्काल प्रभावित कर छोड़ते थे। सैकड़ों छात्र उनके पुजारी और

अनुयायी बन गये ।

आचार्यजी का जन्म फैजाबाद के वंश परम्परा से कुलीन परिवार में हुआ, पर ऐश आराम और सुख सुविधा के बड़प्पन से उन्हें जन्म भर घृणा रही । आगे चलकर त्याग, वक्तृत्त्व जैसे दो प्रभावी साधन हाथ लग जाने के बावजूद सत्ता पाने के बारे में उनमें चरम कोटि की उदासीनता थी । स्वयं को किसी भी बात की जरूरत न होने के कारण उन्हें राजनीति में सहज अनाशक्ति प्राप्त हो गई । फलतः वैयक्तिक ईर्ष्या-द्वेष उन्हें छू तक नहीं सका । वे भिन्न विचारवालों और विरोधियों का भी वस्तुनिष्ठ बुद्धि से मूल्य मापन कर पाते । इतने बकने पर भी उन्होंने समाजवादी दल के अध्यक्ष पद का जो कठिन उत्तरदायित्त्व सम्भाला, उसमें उनकी अलौकिक कर्त्तव्यनिष्ठा तो थी ही, उस समय उनकी अनासक्त स्नेह भावना और वस्तुनिष्ठ गुणग्राहकता और भी निखर उठी । डॉ० लोहिया ने विद्रोह का झण्डा उठाया । व्यक्तिगत रूप से नरेन्द्र देव जी पर अभियोग लगाये । फिर भी आचार्यजी के उदार अन्तर में कभी भूलकर भी उनके बारे में क्रोध या चिढ़ पैदा न हुई । उन्हें दुःख हुआ, वेदना हुई, पछतावा हुआ, पर चिढ़ या क्रोध कभी भी नहीं हुआ । यही उनकी विशेषता है ।

आचार्यजी ने किसी सदाचारी गृहस्थ की तरह राजनीतिक कार्य किया । उनमें न तो अलौकिकता की अकड़ थी और न त्याग का घमण्ड । पहले दर्जे की स्वाभाविकता और सादगी उनमें मौजूद थी । वे एकदम बह जाने वाले नहीं थे । उनमें धीरोदात्त गम्भीरता कूट-कूट कर भरी हुई थी । समुद्र की तरह दैनन्दिन राजनीति के आवेग (घबड़ाहट) और उर्मियों (पीड़ाओं) को वे अपने में पचा ले पाते थे । यही कारण है कि उनका चारित्र्य शत-प्रतिशत नम्बरी सिक्के की तरह स्वयं प्रकाशित रहा । उनकी सारी कृतियों पर सच्चाई की राजमुद्रा भलीभाँति उभरी दीख रही थी । वे जितने ही संकोची और विनीत रहे, उतने ही निस्पृह और स्पष्टवक्ता भी । जहाँ कहीं वे गये, उनके व्यक्तित्व से मुग्ध भक्तों और स्नेहीजनों का घेरा तेजोबल की तरह उनके चारों ओर लगा रहता । उनका दरवाजा सदैव सभी के लिए खुला था । महामना मदनमोहन मालवीयजी की तरह आचार्यजी का दरबार आठो पहर लगा ही रहता । काशी विद्यापीठ, उ० प्र० कांग्रेस दफ्तर, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय या लखनऊ युनिवर्सिटी में उनके सम्पर्क में आये हुए सभी व्यक्ति जन्मभर कृतज्ञतापूर्वक उनका स्मरण करेंगे । हिन्दुस्तान और विशेषतः उ० प्र० के नवयुवकों के लिए तो वे स्फूर्ति और श्रद्धा के स्थान ही बन गये थे । आचार्य जावडेकर और साने गुरूजी के गुणों का आचार्यजी में कुछ हद तक मनोरम मिश्रण बन आया था ।

आचार्य नरेन्द्र देव का जन्म १९वीं सदी में होने पर भी उनका कार्यकाल २०वीं सदी का पूर्वार्ध रहा । २०वीं सदी की जागतिक घटनाओं का संस्कार उनकी बुद्धि पर स्पष्टतः हो गया था । आचार्यजी की गणना आधुनिक विचार या दृष्टिकोण के निर्माताओं और उसके प्रचारकों में की जा सकती है । कांग्रेस और

समाजवादी दल के माध्यम से उन्होंने सारे देश को एक अमूल्य वैचारिक देन दी है। उनके अन्तर में विचार और आचार के बीच कभी भी अन्तर न होने से वे नेतृत्व का अपूर्व आदर्श उपस्थित कर सके। वे सदैव कहा करते कि विचार के लिए आचार की कसौटी तथा भावना और समाजहित बुद्धि का आधार चाहिए। यही उनकी जीवन साधना रही।

उनका कालेज जीवन से ही राजनीति की ओर झुकाव था। जब वे म्योर सेन्ट्रल कालेज में पढ़ रहे थे, तो इलाहाबाद में लोकमान्य तिलक पधारे। कालेज के छात्रों ने उनकी गाड़ी से घोड़े छोड़ दिये और स्वयं गाड़ी खींचते हुए उनका बड़ा जुलूस निकाला। आचार्यजी ने देशभक्ति के यौवन-सुलभ उन्माद का खूब उपभोग किया। उन्होंने क्रान्तिकारियों से नाता जोड़ लिया था। लोकमान्य के 'होम रूल लीग' का काम अपने कन्धों पर उठाते हुए उन्होंने राजनीतिक कार्यक्रम का श्रीगणेश किया। उसी समय पण्डित नेहरू से उनका परिचय हुआ, जो कुछ समय बाद दोनों के बीच गाढ़ स्नेह के रूप में परिवर्तित हो गया। लोकमान्य ने उन्हें यह अनुभूति करा दी कि भारतीय राजनीति दो परस्पर विरुद्ध शक्तियों का संघर्ष है। फिर असहयोग आन्दोलन का युग शुरू होते ही सन् १९२१ ई० में वकालत छोड़ वे 'काशी विद्यापीठ' के आचार्य बन गये। अध्ययन-अध्यापन और अन्वेषण के काम में उन्हें अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। वे मानते थे कि विद्यापीठ की सेवा ही मेरे हाथों सम्पन्न श्रेष्ठ पुरुषार्थ है। वे कहते हैं कि यही मेरी पूँजी है। सैकड़ों युवकों को उन्होंने संस्कृत किया और जीवनदृष्टि दी। आज उ० प्र० में कदाचित ही कोई अधिकारी, मंत्री या शिक्षक होगा, जिस पर आचार्यजी द्वारा संस्कार हुये दिखाई न पड़ें। उ० प्र० के मुख्यमंत्री विधान सभा में उन्हें श्रद्धांजलि समर्पित करते हुये विलख-विलख कर रो पड़े। सैकड़ों जगह अपने आप हड़तालें हो गयी। आचार्यजी पूरे राष्ट्र को आदरणीय और भूषणास्पद मालूम पड़ रहे थे।

लोकमान्य तिलक ने देश के सामने यह सिद्धान्त रखा कि भारतीय राष्ट्रवाद दो परस्पर विरोधी सत्ता केन्द्रों का संघर्ष है। किन्तु शस्त्रविहीन देश इस संघर्ष में टिक कैसे सकता है ? महात्मा गाँधी ने इस प्रश्न पर एक नयी कार्य पद्धति बनाई और देश पर छाई विफलता की तमोगुणी छाया हटाकर पुरुषार्थ का रास्ता साफ कर दिया। सन् १९३०-३२ ई० के दरमियान आचार्यजी को समाजवादी दर्शन का अनुभव हुआ कि पूँजीवादी युग में साम्राज्य सत्ता के विरुद्ध बढ़नेवाले आन्दोलन का वर्गस्वरूप ध्यान में रखकर अगर आर्थिक असन्तोष प्रकट कर दिया जाय, तो किस तरह एक नयी शक्ति का आविष्कार हो सकता है ? रूसी क्रान्ति का गम्भीर अध्ययन कर आचार्यजी ने अपने समकालीन युवकों को इस विषय में ये मौलिक विचार दिये "भारतीय समाजवाद लोकतन्त्र की पृष्ठभूमि पर आधृत हो और समाजवादी संगठन भारतीय राष्ट्रवाद की अविभाज्य आधार-शक्ति बने। यदि भारतीय राष्ट्रवाद पर एकमात्र ऐसी समाजवादी दृष्टि की छाप पड़े तो स्वातंत्र्योत्तर सभी समस्याएँ सहज ही हल हो सकेंगी। आचार्यजी ने बड़े ही अचूक ढंग से

देश को यह सत्य समझाया कि प्रतिनिधिक स्वायत्त शासन से कभी राष्ट्रवाद का पूर्ण विकास हो नहीं सकता। पिछड़े देशों के जनमानस की स्वतन्त्र प्रेरणा आर्थिक विकास के तीव्र तगादे की दूसरी पर्यायवाची अनुभूति है। इसलिए प्रतिनिधिक लोक शासन का पर्यवसान लोकतांत्रिक समाजवाद में ही होना चाहिए। फलस्वरूप समाजवादी दल को तो तत्त्व शुद्ध समाज-दर्शन का आधार मिला ही, उससे भी अधिक लाभ आज की पीढ़ी के सर्वसाधारण विचारक नागरिक को यह हुआ कि उन्हें आधुनिक भारत के ऐतिहासिक कार्य का अधिक स्पष्ट दर्शन सम्भव हो रहा है।"

क्रान्ति केवल तत्त्व दर्शन से नहीं होती। इतिहास निर्माण का काम केवल कार्यक्रम की रूपरेखा बनाने से पूरा नहीं हो जाता। क्रान्ति का क्षण और उस क्षण पर सर्वस्व का दाँव लगा लड़ाई लड़ने की सामर्थ्य पोथियों में नहीं मिलेगी। वह एक व्यक्तित्व का जादू है। इस तरह का नेतृत्व महात्मा गाँधी में है, यह बात आचार्यजी भली-भाँति जानते थे। यही कारण है कि गाँधीजी के दृष्टिकोण से स्पष्टतः मतभेद दीख पड़ने पर भी लड़ाई के दिनों में वे कभी भी उनसे दूर नहीं रहे। इतना ही नहीं, उन्होंने गाँधीजी की लड़ाई को नयी-नयी प्रवृत्तियों का आधार सुलभ कर दिया। आचार्य नरेन्द्र देव की दूरदृष्टि के कारण ही स्वराज्य पाने तक समाजवादी दल अपनी खुशी से कांग्रेस के अनुशासन में रहा और खुद कांग्रेस भी जमींदारी उन्मूलन जैसे क्रान्तिकारी कार्यक्रम से समरस हो सकी।

कांग्रेस में लड़ाकू मनोवृत्ति का दम न घुट जाय, पर साथ ही उग्र विचार के लोग अपनी अधीरतावश साम्राज्य विरोधी लड़ाई में फूट न पड़ने दें—इस बारे में सतर्कता बरतने का आग्रह आचार्यजी की दूरदर्शिता का एक उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है। इस बारे में सुभाष बाबू से बुराई लेने में वे नहीं हिचकिचाये। सरदार वल्लभभाई पटेल की नाराजगी से कांग्रेस राजनीति में अपनी वैयक्तिक पद वृद्धि की भी उन्होंने अधिक परवाह नहीं की।

इन सब घटनाओं में उनके दृष्टकोण की तेजस्वी छाप समाजवादी और राष्ट्रवादी राजनीति पर पड़ती है। इसका यह अर्थ नहीं कि वे सारी बातें उन्होंने अकेले ही कर डाली। लेकिन जिस दिशा में समाज का प्रवाह प्रवाहित होने पर देश की प्रगति के कदम तेजी से आगे बढ़ सकें, उसकी परिश्रम पूर्वक खोज करने और दिशा हाथ लगने पर कड़ाई के साथ उसका अवलम्बन करने की दृढ़ता जिन इने गिने कर्त्तव्यशील नेताओं में थी, उनमें निश्चय ही आचार्यजी की गणना की जा सकेगी। सन् १९३६ ई० से १९४६ ई० तक कांग्रेस में समाजवादी दल को जो महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ, उसमें आचार्यजी का वैयक्तिक मार्गदर्शन महत्त्व की बात है। यह सत्य मान लेने पर सहज ही इसकी कल्पना की जा सकती है कि आज की पीढ़ी के सामाजिक दृष्टिकोण में आचार्यजी के द्वारा किस तरह का संस्कार हो पाया है।

श्री जयप्रकाश और नरेन्द्र देव के बीच परिस्थिति के कारण अन्तर आ

गया । जयप्रकाशजी जब अमेरिका में पढ़ रहे थे, तभी से उनके दृष्टिकोण पर मार्क्सवाद और वैज्ञानिक भौतिकवाद की छाप पड़ी । इधर नरेन्द्र देव जी भारतीय संस्कृति को चाहनेवाले थे । फिर भी वे उन विचारकों के सम्पर्क में आये थे, जो हिन्दू समाज व्यवस्था के दोष स्पष्टतः देख चुके थे । फलतः नरेन्द्र देवजी को युवावस्था से ही इस बात की अनुभूति हो गयी थी कि हिन्दू धर्म समाज-जीवन को किंस तरह प्रतिगामी बनाता जाता है, विशेषकर जाति भेद और ऊँच-नीच की सड़ी कल्पनाओं से जनता किस तरह तमोगुण की शिकार बन जाती है । फिर भी उन्होंने भारतीय जीवन मूल्यों का यह सिद्धान्त कभी भी आँखों से ओझल नहीं किया कि समाज के लिए भौतिक साधनों की तरह शील भी आवश्यक है । प्रकृति पर हासिल की गयी विजय की अपेक्षा मनोजय को कभी गौण स्थान नहीं दिया जा सकता । आचार्यजी ने बौद्ध दर्शन का गम्भीर अध्ययन करने के लिए दीर्घ परिश्रम किया और उसके सहारे पाश्चात्य समाजवादी सम्प्रदाय की छिछली भौतिकवादी दृष्टि को अत्यन्त प्रगल्भ वैचारिक नींव सुलभ करा दी ।

आचार्यजी का समाजवाद दीर्घ अध्ययन और मनन पर आधृत था । उनका बौद्ध दर्शन पर गहरा, विशाल अध्ययन रहा । फिर भी उस अध्ययन को उन्होंने अनाग्रही संशोधक वृत्ति का योग दिया । अपनी इस संशोधक वृत्ति के कारण वे अपने मौलिक प्रश्नों का कभी-कभी बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया करते । इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण मैं कभी भूल नहीं सकता । जयप्रकाशजी ने जब से यह बताना शुरु कर दिया कि भौतिकवाद अपूर्ण है और जीवन में अध्यात्म के महत्त्व से कभी इनकार नहीं किया जा सकता, तभी से नरेन्द्र देवजी भी जीवन के मूल्यों पर बार-बार विचार करते रहे । किन्तु आचार्यजी का आधार कभी भी पाश्चात्य जड़वादियों जैसा ढीला-ढाला नहीं था, इसलिए कभी भी उन्हें अपने दृष्टिकोण में किंचित भी अपूर्णता प्रतीत नहीं हुई । एक दिन आपसी चर्चा में उन्होंने स्वयं ही इसका खुलासा कर दिया ।

भारत में जितने भी विभिन्न दर्शन बने उनमें ईश्वरवादी, निरीश्वरवादी, संन्यास मार्गी, द्वैती, अद्वैती, तांत्रिक, शक्ति, बौद्ध, जैन आदि अनेक पथ दिखाई पड़ने पर भी ये सभी दर्शन योगशास्त्र द्वारा किया गया मनोविश्लेषण समान रूप से मान्य करते हैं । योग मार्गानुसार किये गये मानवीय व्यक्तित्त्व के मूल्यमापन में जो महत्त्वपूर्ण अंतर पाया जाता है, निश्चय ही वह विचारणीय है । समाजवाद पाश्चात्य व्यक्तिवाद की प्रतिक्रिया से निकला हुआ एक दर्शन है । इसलिए उसमें इतना ही विचार मिल पाता है कि पाश्चात्य व्यक्तिवाद के मूल्य कितने सदोष हैं । इससे अधिक गहराई में उनकी दृष्टि पहुँच ही नहीं पायी । फलतः पाश्चात्य जड़वाद को मनोविज्ञान के क्षेत्र में अभी बहुत कुछ सीखना बाकी है ।

आचार्यजी ने यह बात बड़ी ही मार्मिकता से विशदकर बतायी और उसे बताते हुए उन्होंने इस बात पर अत्यधिक जोर दिया कि जड़वादी और हिन्दू धर्म की साम्प्रदायिक दोनों प्रवृत्तियों से अलग रहकर सामाजिक मूल्यों का स्वतन्त्र

चिन्तन किया जाय। यही कारण है कि उनकी विचार सृष्टि में आधुनिक भारतीय जीवन की प्रगति के प्रयत्नों का, छटपटों का प्रतिबिम्ब दीखता है।

इतिहास से संस्कार ग्रहण करनेवाले और अपने आस-पास के समाज जीवन को संस्कार देकर समाज में इतिहास बनाने की सामर्थ्य निर्माण करनेवाली मार्ग दर्शकता और प्रतिनिधिक व्यक्तिमत्ता—यही नरेन्द्र देव जी के जीवनचरित्र की महत्ता है। उनकी देह कष्ट के बारे में उदासीन ही रहा करती। वर्षों से उन्हें दमें की बीमारी रही। दो साल पहले यूरोप जाने पर, आस्ट्रिया के आल्प्स पर्वत के पास एक गाँव में वे उपचारार्थ चार मास रहे थे और उन्हें लाभ भी अच्छा हुआ। तब वे रोज आठ मील चल पाते थे। लेकिन वहाँ से लौटते ही पुनः दमा ने आ घेरा। मद्रास के राज्यपाल श्रीप्रकाशजी की आचार्यजी पर अत्यधिक भक्ति थी। वे ही उन्हें कांजीवरम् के निकट आरोग्य केन्द्र में आग्रह कर लिवा गये। लेकिन आखिर में आचार्यजी ने आशा छोड़ दी थी। उनके निधन से भारत की जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति यों ही सहज में कभी नहीं हो सकती।

अच्युत पटवर्धन : प्रखर समाजवादी नेता, अब स्वर्गीय।

सागर सिंह : भारत में समाजवाद के जनक

टिप्पणी : निर्मल विचारक तथा राजनीतिक संत ।

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में अग्रिम पंक्ति के सेनापतियों में आचार्य नरेन्द्र देव का महत्त्वपूर्ण स्थान है । राष्ट्रीयता और समाजवाद से अलंकृत उस युग को प्रदान किया गया उनका निराला नेतृत्व है । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मंच पर जहाँ गाँधीजी के नेतृत्व में जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, मौलाना आजाद, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, राजगोपालाचारी, जे० बी० कृपलानी प्रभृति नेता कार्य कर रहे थे, वहीं उसी मंच पर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेता के रूप में आचार्य नरेन्द्र देव को जयप्रकाश नारायण, डॉ० राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन, युसुफ मेहरअली, अशोक मेहता, एस० एम० जोशी और एन० जी गोरे जैसे लोगों का नेतृत्व करने का गौरव प्राप्त था ।

आचार्य नरेन्द्र देव के नेतृत्व के कारण कांग्रेस की नीतियों में परिवर्तन हुआ और देश के किसान भारतीय सभा और देशी रियासतों के लोग, प्रजा परिषद जैसे संगठनों के माध्यम से नरेन्द्र देव जी के नेतृत्व में कांग्रेस में सम्मिलित हुए । सन् १९३४ ई० में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के स्थापना सम्मेलन में अध्यक्ष के रूप में दिया गया उनका भाषण आज भी वैज्ञानिक समाजवाद का प्रामाणिक दस्तावेज माना जाता है । उनकी मृत्यु के एक वर्ष पूर्व सन् १९५५ ई० में गया में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में उनका अध्यक्षीय भाषण तथा उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया नीति वक्तव्य, जो गया थीसिस के नाम से प्रचलित है, जनतांत्रिक समाजवाद की आधारशिला है । उनका यह स्पष्ट मत है कि शोषण की समाप्ति के लिए समाजवाद लाना है । अतएव जब तक संगठन पर शोषितों का वर्चस्व न होगा तब तक ऐसी पार्टी के हाथ में सत्ता आ जाने पर भी समाजवाद स्थापित नहीं होगा ।

विश्व समाजवाद के चिन्तन में समाजवाद के साथ जनतांत्रिक विशेषण को जोड़ने का श्रेय आचार्य नरेन्द्र देव को ही है, जिसका प्रतिपादन उन्होंने मद्रास में सोशलिस्ट पार्टी के अधिवेशन मे किया था । "जनतांत्रिक समाजवाद ही क्यों" शीर्षक से उनका निबन्ध विश्व समाजवाद के चिन्तन में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ है । आज से ५४ वर्ष पूर्व उन्होंने जिस दिशा की ओर समाजवादियों को नेतृत्व प्रदान किया, रूस के नेता आज उधर देखने का प्रयास कर रहे हैं । उनके समाजवाद की सम्पूर्ण चिन्तन-प्रक्रिया के केन्द्र बिन्दु में मानव प्रतिष्ठित हैं ।

स्वतन्त्र भारत के लिये अपने अद्वितीय प्रकार के कार्य के कारण आचार्य नरेन्द्र देव ने काशी विद्यापीठ में बैठकर देश को लालबहादुर शास्त्री, हरिहरनाथ शास्त्री, त्रिभुवननारायण सिंह शास्त्री, अलगूराय शास्त्री, कमलापति शास्त्री, राजाराम शास्त्री आदि युवकों को प्रदान किया । उपर्युक्त सभी लोगों पर आचार्य नरेन्द्र देव की गतिमान राष्ट्रीयता और समाजवाद के विचार की स्पष्ट रूप से छाप पड़ी ।

उनके द्वारा दीक्षित और प्रशिक्षित इन युवकों ने स्वतन्त्रता संग्राम में बढ़ चढ़कर भाग लिया और बाद में देश के निर्माण में भी अपना भरपूर योगदान दिया।

गाँधीजी का नेतृत्व और राष्ट्रीय कांग्रेस तथा उसमें संगठित कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में आचार्य नरेन्द्र देव के तीन महत्त्वपूर्ण आयाम थे। उन्होंने (सीतारमैया) पट्टाभि और सुभाषचन्द्र बोस के बीच राष्ट्रपति के लिए हुए चुनाव में सुभाषचन्द्र बोस का समर्थन किया, उन्हें विजयी बनाया, किन्तु जब सुभाष बाबू के नेतृत्व की नीति के कारण कांग्रेस के टूटने का खतरा पैदा हुआ तो उन्होंने कांग्रेस के अन्दर वामपंथियों का नेतृत्व करते हुए कांग्रेस को १९३९ ई० की त्रिपुरी कांग्रेस में टूटने से बचा लिया। उनका यह दृढ़ मत था कि गाँधीजी ने भारतीय जनता के मानस से अपना ऐसा तारतम्य स्थापित कर लिया है कि जब तक संघर्ष का आह्वान वे नहीं करते कोई राष्ट्रव्यापी संघर्ष सम्भव नहीं होगा।

आचार्य नरेन्द्र देव के मतानुसार समाजवाद एक राजनीतिक प्रकार या प्रणाली नहीं है। वे समाजवाद को जीवन-दर्शन मानते हैं। उनके लिए समाजवाद नव सांस्कृतिक आन्दोलन है। इसका केन्द्र बिन्दु मानव है। मानव की संवेदनशीलता, मानव का शील और मानव की नैतिकता उसके मूलाधार हैं। उनके समाजवादी चिन्तन की रीढ़, मनुष्य और मनुष्यता है। उनके मतानुसार समाजवाद में व्यक्ति का व्यक्ति द्वारा तथा व्यक्ति समूह का व्यक्ति समूह द्वारा शोषण समाप्त होगा, वहीं समाजवाद में व्यक्ति की मर्यादा सुरक्षित रहेगी। वे समाजवादी व्यवस्था के लिए समाजवादी समाज भी आवश्यक मानते थे। वे वर्गों की आवश्यक उपस्थिति से सतर्क थे और वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए वर्ग संघर्ष की अनिवार्यता को स्पष्ट रूप से स्वीकार करते थे। इस प्रकार की मान्यता भारत के समाजवादी नेताओं में रखने का गौरव अकेले उन्हीं को प्राप्त था।

आचार्य नरेन्द्र देव की समाजवादी नैतिकता की तुलना ढूँढे नहीं मिलती। वे जिस नैतिकता को मानते थे उसमें अपने विरोधी के प्रति भी नैतिक होने की अनिवार्य प्रतिबद्धता थी। उनके इसी मार्ग से, इसी चिन्तन से अनिवार्य रूप से समाजवाद को जनतांत्रिक ही रहना है। उसे अधिनायकवाद की ओर देखना ही नहीं है। वे बहुधा कहा करते थे कि अपार शोषित जनसमुदाय मुट्ठीभर शोषकों पर जनतांत्रिक रास्ते से विजय प्राप्त कर विषमता को मिटा सकता है। अधिनायकवाद से पुनः एक दूसरे वर्ग का कालान्तर में निर्माण हो जायेगा, जबकि समाजवाद वर्गविहीन समाज व्यवस्था की स्थापना करता है। उन्होंने समाजवाद लाने के लिए शांतिमय वर्ग संघर्ष का आह्वान किया। उनका कहना था कि यदि शोषित जनता को यह ज्ञान हो जाये कि शोषण व्यक्ति द्वारा नहीं, बल्कि व्यवस्था द्वारा हो रहा है तो ज्ञान्न-प्रपन्न अपार समुदाय बहुजन हिताय, पूँजीवादी शोषण की व्यवस्था के स्थान पर समाजवादी शोषणमुक्त समाज व्यवस्था को बिना एक-एक बूँद खून बहाये स्थापित कर देगा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद और गाँधीजी के शहीद हो जाने पर जब कांग्रेस से अलग होकर सोशलिस्ट पार्टी के माध्यम से जनतांत्रिक समाजवाद के लिए

उन्होंने कूच किया तो सोशलिस्ट पार्टी में आने वालों के लिए यह अनिवार्य किया कि वे कांग्रेस छोड़ने के साथ ही कांग्रेस के टिकट से प्राप्त संसद और विधान सभा की सदस्यता भी अनिवार्य रूप से छोड़े और इस दुरूह कार्य को उन्होंने अपने अनुयायियों सहित कर दिखाया। विश्व के इतिहास में समूह रूप से इस प्रकार का नैतिक साहस इसके पूर्व और इसके बाद आज तक नहीं दिखलाया जा सका। राजनीतिक चिन्तकों का कहना है कि इस दिशा में उनके द्वारा प्रदान किया गया नेतृत्व दलबदल पर रोक का सबसे प्रभावकारी और नैतिक मार्ग है।

सन् १९३७ ई० में जब सीमित मताधिकार पर १८८५ ई० के इण्डिया ऐक्ट के अन्तर्गत चुनाव के फलस्वरूप कांग्रेस देश भर में अपार बहुमत से विजयी हुई, उस समय आचार्य नरेन्द्र देव यू० पी० कांग्रेस के अध्यक्ष थे। उनके नेतृत्त्व में इस राज्य में कांग्रेस विजयी हुई थी और वे स्वयं भी निर्वाचित हुए थे। महात्माजी ने पुरुषोत्तमदास टण्डनजी द्वारा आचार्यजी से यू० पी० सरकार का नेतृत्त्व करने और मुख्यमंत्री बनने को कहा। किन्तु चूँकि देश अभी गुलाम था, आचार्य नरेन्द्र देव ने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय समिति बुलवायी और यह प्रस्ताव पारित कराया कि जब तक देश गुलामी से मुक्त नहीं हो जाता तब तक कोई समाजवादी सरकार में सम्मिलित नहीं होगा। यह था उनका त्यागमय नेतृत्व। ऐसी थी हिमालय जैसी उनकी नैतिकता। स्वतन्त्रता के बाद लखनऊ विश्वविद्यालय तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में शिक्षा के क्षेत्र में उनके द्वारा की गयी देशसेवा सर्वदा स्मरण की जायेगी। आचार्य नरेन्द्र देव समिति द्वारा शिक्षा की समस्या के समाधान के लिए दी गई रिपोर्ट उनकी देशसेवा का एक अमूल्य उदाहरण है, जिसके लागू न किये जाने के कारण हम शिक्षा के क्षेत्र में अन्धेरे में भटक रहे हैं।

आचार्य नरेन्द्र देव ने राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए त्रिभाषा फार्मूला का समाधान सुझाया है। देश ने उसे भी दृढ़तर और ईमानदारी से लागू नहीं किया और राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर हम आज भी मस्तक उठाकर चल नहीं पा रहे हैं। आचार्य नरेन्द्र देव का व्यक्तित्व और नेतृत्व दोनों बहुआयामी था। वे स्पन्दनशील, राष्ट्रीयता के प्रबल पक्षधर थे तथा वे नवीन समाज रचना के लिए वर्ग संघर्ष की राह अपनाकर समाजवादी व्यवस्था के प्रति प्रतिबद्ध थे। वे आर्थिक विषमता पर जहाँ मार्क्स के विचार से प्रेरणा ग्रहण करते हैं तो सामाजिक विषमता और मानव की विपन्नता से त्राण उन्हें बौद्ध दर्शन में दिखाई पड़ता है। कुल मिलाकर आचार्य नरेन्द्र देव शोषणमुक्त वर्गविहीन समाज व्यवस्था के लिए जीवन भर अन्याय के विरुद्ध लड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं। भारत के सांस्कृतिक समुदाय द्वारा ऋषितुल्य सम्मान प्राप्त करने वाले आचार्य नरेन्द्र देव जहाँ अनीश्वरवादी दिखाई पड़ते हैं, वहीं मानव समाज की पीड़ा से मर्माहत जीवनादर्श को स्वयं में जीने का साहस उत्पन्न करके अपने युग के महान् सांस्कृतिक नेता के रूप में सौर मण्डल में प्रतिष्ठित हैं। विचारों में भिन्नता रहते हुए भी विवादग्रस्त राजनीति के शिखर पर रहते हुए भी वे अपने निर्मल जीवन और अपनी इन्सानियत के

कारण अपने जीवन काल में ही अजातशत्रु कहलाये ।

लोकनायक जयप्रकाश जहाँ उन्हें विश्व समाजवादी चिन्तन का प्रकाश स्तम्भ कहते हुए कहते हैं कि उनका-सा निर्मल पुरुष मैंने नहीं देखा, वहीं विदेशी विद्वान् लुई फिशर उनसे एक सप्ताह तक समाजवाद पर चर्चा करने के बाद कहते हैं कि "मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, कि मैं ज्ञान समुद्र में गोता लगा रहा हूँ ।" विनोबा भावे जहाँ उन्हें निर्वैर पुरुष कहते हैं वहीं अच्युत पटवर्धन का कहना है कि उनकी इन्सानियत की ऊँचाई को कोई छू नहीं सकता ।

स्वतन्त्र भारत के निर्माण के लिए, शोषण मुक्त समाज की स्थापना के लिए आचार्य नरेन्द्र देव युवकों को प्रशिक्षित करना चाहते थे । देश में आज भी आचार्य नरेन्द्र देव के अनेक अनुयायी, शिष्य और समर्थक राष्ट्र स्तर पर हैं और ऐसी प्रभावकारी स्थिति में हैं कि वे उस महान् पुरुष की इच्छा की पूर्ति करने में सहायक हो सकते हैं । यदि प्रतिवर्ष हम दो-ढाई सौ युवकों का प्रशिक्षण राष्ट्रीयता और समाजवादी ज्ञानप्रपन्नता के साथ कर सकें तो पाँच वर्ष में हम देश और समाज की प्रतिभा की पहचान बन जायेंगे, ऐसे ही प्रशिक्षित ज्ञानप्रपन्न युवक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का नेतृत्व कर सकेंगे जिसकी परिणति समाजवाद की स्थापना में होगी ।

३१ अक्टूबर १९८८ ई० से राष्ट्रनायक आचार्य नरेन्द्र देव का शताब्दी समारोह प्रारम्भ हो रहा है, जो सम्पूर्ण देश में सम्पूर्ण वर्ष मनाया जायेगा । इस एक वर्ष की अवधि में राष्ट्रीयता और समाजवाद पर यदि व्यापक आधुनिक परिवेश में हम चिन्तन, मनन, क्रियान्वयन करें, इस विचार से युवकों का प्रशिक्षण करें और आधुनिक राष्ट्र के निर्माण के हेतु आधुनिक दृष्टिकोण का समाज और सामाजिक बुद्धि उत्पन्न करें तो पुरातन युग में ले जानेवाली संकीर्णतावादी शक्तियाँ अपने आप तिरोहित हो जायेंगी । इस दिशा में आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा लिखित दो पुस्तकें—राष्ट्रीयता और समाजवाद, बौद्ध धर्म दर्शन—हमारे ज्ञान और कर्म के दो पंख होंगे ।

आचार्य नरेन्द्र देव का स्मारक वस्तुतः समाजवादी भारत है । स्वतन्त्र भारत में समाजवाद स्थापित हो जाने पर वही आचार्य नरेन्द्र देव का स्मारक होगा । वस्तुतः आचार्य नरेन्द्र देव भारत में समाजवादी आन्दोलन के जनक थे और अपनी अन्तिम सांस तक वे मन, वचन, कर्म से समाजवादी बने रहे और अपने निर्मलतम जीवन के अन्तिम प्रहर में अपने बेदाग हाथों में समाजवाद की पताका फहराते हुए शहीद हुए ।

वस्तुतः आचार्य नरेन्द्र देव शहीद हुए । उनके शरीर पर किसी ने गोली नहीं मारी, उन्हें किसी सरकार ने फाँसी पर नहीं चढ़ाया । परन्तु गिरते हुए स्वास्थ्य की दशा में भी सोशलिस्ट पार्टी का नेतृत्व करते हुए समाजवाद पर किये जा रहे आक्रमण की रक्षा करने में चिकित्सकों की सलाह का उल्लंघन कर उन्होंने अपना जीवन होम कर दिया । महानिर्वाण के पूर्व उनकी तीन आह—"आह लोहिया", "आह जयप्रकाश" और आह "मेरी पार्टी" । क्या ये तीन आहें हमें कुछ बता नहीं रही हैं ?

उन्होंने स्वयं ही अपने भाषण में कहा कि "लोग समझते हैं—वृद्ध है, जर्जर है, देशाटन कर नहीं सकते हैं, कर ही क्या सकते हैं। यदि लोगों ने यह समझा है तो लोगों ने बन्दे को पहचाना नहीं है। बन्दा अपना फर्ज बखूबी जानता है। आज मुझे उपनिषद् की उन ऋचाओं का स्मरण हो रहा है, जिसमें कहा गया कि कर्त्तव्य सम्मुख उपस्थित हो जाने पर मनस्वी अपनी लाचारियों को ध्यान नहीं देते। समाज के प्रति मेरे कर्त्तव्य निर्दिष्ट है। उसके लिए मेरा जीवन समर्पित है। मेरा दमे का दौरा और राजनीतिक दौरा, दोनों साथ-साथ चलेगा।" और जर्जर शरीर के बावजूद मन के अदम्य उत्साह के कारण और जनता की शक्ति के भरोसे वह महापुरुष वस्तुतः शहीद हो गया और वह महापुरुष जो स्वतंत्रता प्राप्त होने के समय कांग्रेस हाई कमान के महत्त्वपूर्ण नेता थे, जिसे महात्मा गाँधी १९४७ ई० में कांग्रेसाध्यक्ष बनाना चाहते थे, स्वतन्त्र भारत में जिसे सर्वोच्च पद देने की पहल की गई, अपने नवीन सांस्कृतिक आन्दोलन के लिए राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद समाजवाद की सह स्थापना के लिए अकेला चल पड़ा बियावान पथ पर, बिना सरोसामान और यह कहता गया कि "यह मेरे जीवन का वन पर्व है, किन्तु विश्वास रखिये, उद्योग पर्व भी आयेगा"। नरेन्द्र देव के जीवन में न सही, किन्तु समाजवाद की विजय निश्चित है। आचार्य नरेन्द्र देव के जन्मशती वर्ष में हम अपने को शुभ और अशुभ के बीच हो रहे निरन्तर संघर्ष के शुभ पक्ष में खड़े हों, यह परम आवश्यक है। आचार्य नरेन्द्र देव कहा करते थे कि जीवन शुभ और अशुभ का ताना बाना है। प्रकृति ने हमें ऐसा ही जीवन प्रदान किया है। शुभ का अशुभ से निरन्तर संघर्ष जारी है। इस संघर्ष में शुभ की विजय अवश्यम्भावी है।

अपने अन्तिम दिनों में आचार्य नरेन्द्र देव ने देशवासियों से कहा था कि "मेरे जीवन के कुछ ही दिन शेष हैं। शरीर सम्पत्ति अच्छी नहीं मिली मगर मन उत्साहवादी है। इसलिये मैं अकेला ही चल पड़ा हूँ बियावान पथ पर—बिना सरोसामान, जनता की शक्ति और अपनी सेवा के बल पर।"

आचार्य नरेन्द्र देव के जन्मशती वर्ष पर हम जनसेवा और जनशक्ति का अन्वेषण करके उसे अंगीकार करें और वर्गचेतना तथा वर्गसंघर्ष का मार्ग अपनाये तो राष्ट्रीयता की ओर समाजवाद की बहुत बड़ी सहायता होगी।

सागर सिंह : सन् १९४० से आचार्य जी से सम्पर्क, उ० प्र० प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष—१९६७-१९७१, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य—१९७१-७४, समाजवादी आन्दोलन में अनेक बार जेल यात्रा, कवि, लेखक, पत्रकार, प्रख्यात अधिवक्ता, पूर्व उपाध्यक्ष एवं अध्यक्ष—उ० प्र० बार कौंसिल, संरक्षक—राष्ट्रीय युवा पत्रकार संघटन, चेयरमैन—डिसिप्लीनरी कौंसिल (उ० प्र० बार कौंसिल) तथा सदस्य—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय कोर्ट।

चन्द्रशेखर : आचार्य नरेन्द्र देव

टिप्पणी : सफलता के शाश्वत मानदण्ड ।

सिद्धान्तो में अटूट आस्था, आदर्शों में प्रतिबद्धता और आचरण में उनकी अभिव्यक्ति इनका समन्वय था, आचार्य नरेन्द्र देव का व्यक्तित्व । आस्था कभी हिली नहीं, सिद्धान्त की राह पर चलते उनके कदम कभी डगमगाये नहीं, सारी जिन्दगी संघर्ष में बीती । यह संघर्ष उनकी वह पाठशाला थी जिसमें उन्होंने नई जीवन विधा की सीख ली थी । समता के समाज की स्थापना का व्रत, इसके लिये अथक प्रयास, उसमें आये उतार-चढ़ाव से बिना प्रभावित हुए मंजिल की ओर जो कदम बढ़े, वे कभी रुके नहीं । उनकी जिन्दगी ने अनगिनत लोगों को उस राह पर चलने की प्रेरणा दी, उनकी मौत भी सहारा बन गई—उन लाखों लोगों के लिये जो मंजिल तक पहुँचने का सपना संजोये, उनके द्वारा बताई गई राह पर निकल पड़े थे और आज भी तात्कालिक सफलता का मोह छोड़ दूरगामी परिणाम को नजर में रखकर, आगे बढ़ने की कोशिश में लगे हुये हैं ।

आचार्यजी की मृत्यु पर हम लोगों के मित्र, समाजवादी क्रान्तिकारी कवि, स्व० चन्द्रिका सिंह 'करुणेश' ने जो पंक्तियाँ लिखीं वे ही आचार्यजी के जीवन का सही मूल्यांकन है—

जिलाये रहते तुम्हें बस कहाँ हमारा है,
यहीं तो आदि से अब तक मनुष्य हारा है,
सिवाय मौत के कोई तुझे झुका न सका
तेरा मरना भी बस जीने का एक सहारा है । **—करुणेश**

आचार्य नरेन्द्र देवजी की जन्मशती के इस साल में जब हम उनकी याद करते हैं तो कभी-कभी ऐसा लगता है कि—सदियों पहले ऋषिकुल परम्परा का कोई ऐसा संत हो जिसे जीवन की कठोर साधना से अनुपम शक्ति का वरदान मिला हो, अपने लिये नहीं, दूसरों के लिये जीने की कला का, जिसने सुख-दुख को समान समझा, क्योंकि उसकी पीड़ा की अनुभूति जन-जीवन की व्यथा से जुड़ी हुई थी । हमारे अतीत में जो भी शुभ है, कल्याणकारी है, उसे अक्षुण रखने का संकल्प, किन्तु जो विकृतियाँ, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता है, उसके विरुद्ध संघर्ष करने का दृढ़ निश्चय, उसके लिये उत्सर्ग की भावना, मंजिल तक पहुँचने का अदम्य उत्साह और अपनी कल्पना को साकार करने के लिये कोई भी कुर्बानी करने के लिये मन की तैयारी, ऐसा लगता है ये सब सिमटकर आचार्यजी के रूप में हमारे बीच मौजूद था । अतीत का अथाह ज्ञान, वर्तमान को समझने की अद्भूत क्षमता और सुन्दर भविष्य में अडिग आस्था की त्रिवेणी थी आचार्यजी की जिन्दगी ।

प्रयाग विश्वविद्यालय से राजनीतिशास्त्र की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद एक साल तक सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्त्ता के रूप में काम करने का अनुभव

बहुत कुछ उत्साहवर्द्धक नहीं रहा । बड़े नेताओं से प्रारम्भिक सम्पर्क से एक झटका सा लगा । सन् १९५२ ई० के आम चुनावों के नतीजों ने सारे संकल्पों को हिला-सा दिया । आर्थिक परेशानी, स्वास्थ्य की गिरावट और चुनाव के परिणामों के कारण राजनीतिक निराशा, इनका सम्मिलित प्रभाव यह रहा कि मैंने हिन्दू विश्वविद्यालय में शोध-कार्य प्रारम्भ किया । समाजवादी नेता प्रो० मुकुटबिहारी लालजी शोध कार्य में हमारे प्रोफेसर थे । दो-तीन महीने मैंने लगन से इस काम में बिताये । इसी बीच पूर्वी उ० प्र० के जिलों में कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा हिंसात्मक कार्यवाही जोरों पर चल रही थी । सोशलिस्ट पार्टी ने उस क्षेत्र में विशेषरूप से जन-जागरण करने का निश्चय किया । काशी विद्यापीठ में एक बैठक हुई । एक समिति बनी जिसके संयोजक वयोवृद्ध नेता फरीदुलहक अन्सारी बने । निर्णय यह लिया गया कि कोई युवक साथी उनके सहयोग के रूप में सह-संयोजक बने ।

स्व० श्री राजनारायणजी ने उस समय मेरे नाम का प्रस्ताव किया । मैं उहापोह में था कि क्या करूँ ? इसी बीच प्रो० मुकुटबिहारी लाल ने समिति के सामने यह बात कही कि मैं शोध कार्य में लगा हूँ और इस बीच में कोई ऐसा उत्तरदायित्व मुझे नहीं देना चाहिए । मुझे आज भी आचार्यजी की वह मुद्रा, वह बात याद है । उन्होंने मुझसे कहा "चन्द्रशेखरजी अगर देश नही रहेगा तो कौन पढ़ेगा आपकी थीसिस को । छोड़िये, कहाँ आ गये प्रो० साहब के चक्कर में, कुछ देश बनाने का काम कीजिए ।" आज भी वे शब्द मेरे कानों मे गूँज रहे हैं । उसके बाद मन में कोई संशय नहीं रहा । सब कुछ छोड़कर पूरी तरह राजनीति में लग गया । जो निकल पड़े तो कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा । कैसी अनोखी शक्ति इन चन्द शब्दों में थी ? वह उद्‌बोधन, वह प्रेरणा, वह संदेश, वह उपदेश— जीवन का एक सहारा बन गया । देश तो नहीं बना पाये, पर उसे बनाने की तमन्ना को विपरीत परिस्थितियाँ अब तक मिटा नहीं सकीं । ऐसा केवल मेरा अपना अनुभव नहीं है । मेरे जैसे हजारों, लाखों लोगों ने उनसे ऐसी प्रेरणा प्राप्त की । जिसके दर्शन मात्र से सारे प्रश्नों के उत्तर मिल जाये, उसे यहाँ सही संत माना गया है और इसी अर्थ में हमारे एक कवि मित्र ने आचार्यजी को ऋषिकुल परम्परा का अन्तिम सोपान कहा है ।

बुद्ध की करुणा को आचार्यजी ने आत्मसात किया—उस करुणा को मार्क्स के तेवर के साथ अपनी जीवन यात्रा का सम्बल बनाया । वह करुणा आँसू बहाने की विवशता में नहीं बदली । उससे एक दृढ़ संकल्प के साथ समाज की विकृतियों के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा मिली । आचार्यजी ने समाज के वर्ग भेद को समझा था । उनकी मान्यता थी कि यदि करोड़ो की जिन्दगी में एक नई रोशनी लानी है— तो कुछ लोगों के स्वार्थ को आघात लगेगा ही । उससे बचा नहीं जा सकता । उनका कहना था कि बुद्ध ने भी बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की बात की थी, कभी सर्वजन हिताय की बात नहीं चलाई । यदि नया समाज बनाना है तो स्थिर स्वार्थ के लोगों के विरुद्ध संघर्ष करना ही होगा, यदि इस दिशा में दृढ़

निश्चय के साथ आगे बढ़ें तो वही संकल्प एक उज्जवल भविष्य में आस्था का आधार बनेगा। इसी कारण आचार्यजी की जिन्दगी में विसंगतियों को कोई स्थान नहीं। अत्यन्त निकट से जिन्होंने उन्हें देखा, चाहे उनके प्रशंसक हों या आलोचक, उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। राजनीतिक विचारधारा में मतभेद होते हुए आचरण में एक ऊँचे धरातल पर व्यवहार का अभ्यास, दूसरों द्वारा की गई अभ्यर्थना या भर्त्सना से प्रभावित हुए बिना अपनी राह पर चलते रहने की कला आचार्यजी के जीवन को अनूठा बना देती है। इसीलिए उनकी मौत पर आचार्य विनोबाभावे ने उन्हें निर्वैर पुरुष की संज्ञा दी थी, उनकी ज्ञान गंगा से लाभान्वित होने वाले पं० जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें "चलता फिरता ज्ञानकोष" कहा था। उनके व्यक्तित्व की शुचिता, निष्ठा और उत्सर्ग की भावना से प्रभावित होकर महात्मा गाँधी ने उन्हें अनमोल रत्न (हीरा) बताया था और जयप्रकाशजी उन्हें अपना मार्गदर्शक कहने में गर्व का अनुभव करते थे। पर आचार्यजी के जीवन पर जैसे इन बातों का कोई असर ही न हो। निर्विकार, निर्लिप्त, प्रशंसा अपस्तुति से बिलकुल अछूता। उनका काम करने का तरीका स्वयं में निराला था। अत्यन्त निकट के लोगों ने उनकी तीखी आलोचना की। कटुतापूर्ण व्यंगात्मक विशेषणों से उन्हें सम्बोधित किया। पर किसी के सामने न तो उन्होंने उसका प्रतिकार किया और न तो उस पर अपने आहत मन के उद्‌गारों की अभिव्यक्ति की। सदा चेहरे पर वही मुस्कुराहट, वही आत्मविश्वास और कुछ करगुजरने का दृढ़ निश्चय और उससे अनुप्राणित अनूठा व्यक्तित्त्व—सहज ही लोगों को आकृष्ट कर लेता था।

राजनीतिक मतभेद, व्यक्तिगत कटुता का कारण न बनें ऐसी उनकी मान्यता थी। विचारों में दृढ़ता, किन्तु आचरण में संयम और शिष्टाचार का सिद्धान्त आचार्यजी की सीख थी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में कुलपति के पद से पं० जवाहरलाल नेहरू को उनके सामने ही यह कहने की उन्हीं में सामर्थ्य थी कि सत्ता में बैठे उनके लोगों ने विद्या मंदिर के दरवाजे बन्द करने का प्रयास किया, पर वे सफल नहीं हुए। इतिहास का यह सबक हमें भूलना नहीं चाहिये। विद्यार्थी आन्दोलन में उमड़ती उदण्डता से गुस्से में आकर जवाहरलालजी ने विश्वविद्यालय को बन्द करने की धमकी दी थी और आचार्यजी उन्हें यह सीख दे सकते थे। स्वभाव में सरल, वाणी में मृदुल आचार्यजी के निर्णयात्मक कदम को समझने में कभी-कभी लोगों ने भूल की। समाजवादी आन्दोलन के अन्तिम बिखराव की घड़ी में एक मित्र ने उन्हें सलाह दी थी कि वे बड़े हैं, सब कुछ भूल जायें। आचार्यजी के वे शब्द आज भी हमें स्मरण हैं जब उन्होंने कहा था कि "मैं नरेन्द्र देव हूँ, महादेव नहीं जो विषपान कर सकूँ। अगर अनुशासन टूटेगा तो उस पर कार्यवाही करने के लिए विवश हूँ। चाहे इसके परिणाम जो भी हों", किन्तु इस कठोर निर्णय के पीछे मन में कोई कटुता नहीं थी, कोई दुराव नहीं था, केवल कर्त्तव्य पालन की भावना थी।

राजनीतिक उतार-चढ़ाव और इसके संघर्ष की कहानी की गतिविधियों से वे भली-भाँति परिचित थे। नासिक में सोशलिस्ट पार्टी ने जब कांग्रेस छोड़ने का निर्णय लिया, उस समय आचार्यजी ने अपने भाषण में कहा था, "मैं पहला व्यक्ति हूँ जो आज कांग्रेस छोड़ने के पक्ष में हूँ।" जोरों की तालियाँ बजी। आचार्यजी ने कहा, "हटना आसान नहीं है, हो सकता है कोई नाम लेने वाला न रहे।" सभा में सन्नाटा छा गया। आचार्यजी ने हँसकर कहा—"घबड़ाइये नहीं, ऐसा नहीं होगा। जो कौमें तरक्की करना चाहती हैं वे नये चश्मों की तलाश में रहती है। नये प्रयास की जरूरत है। जिन्दगी में उतार-चढ़ाव आते ही हैं", और वर्षों तक इसी मान्यता को उन्होंने अपने उस सन्देश में दुहराया जब उन्होंने कहा "शुभ और अशुभ जीवन का ताना बाना है। ऐसा ही जीवन प्रकृति ने हमें दिया है। शुभ की शक्तियाँ विजयिनी हों और अशुभ की पराभूत हों, यही प्रयास मानव सभ्यता के प्रारम्भिक दिनों से रहा है। यह संघर्ष अनवरत चलता रहेगा और यही शोषित और उपेक्षित समाज की वह पाठशाला है जहाँ से हमें कई सीख सीखनी हैं।" इसी मान्यता के कारण वे प्रेरणा के स्रोत रहे। कितने झटके लगे लेकिन हर पराजय को उन्होंने अपनी आस्था और विश्वास के सहारे नई शक्ति के स्रोत के रूप में बदल दिया। राजनीति उनके लिए तात्कालिक लाभ का हथियार नहीं थी। समता के समाज की स्थापना के लिए अदम्य साधन थी और उस साधन को उन्होंने समझ बूझकर अंगीकार किया था। सत्ता का मोह उन्हें हिला नहीं सका। सत्ताधारी उनके आत्मविश्वास को डिगा नहीं सके और उन्होंने तात्कालिक राजनीतिक लाभ के लिए समझौते की बात नहीं की। आज हम आचार्यजी जन्मशती मना रहे हैं। तात्कालिक लाभ की बेतहाशा दौड़ में अवसरवादी समझौतों के बादल हमारे राजनीतिक जीवन पर छाये हुए हैं। सिद्धान्तों और आदर्शों की बात अब बेमानी हो गई है। तात्कालिक राजनीतिक सफलता के आधार पर राजनीतिक व्यक्तियों का मूल्यांकन होता है। फिर राजनीति एक साधन नहीं रही, यह एक तपस्या नहीं, सत्ता हथियाने का एक हथियार मात्र रह गई। आचार्यजी ने कभी इस तरह की राजनीति को स्वीकार नहीं किया। इसके साथ समझौता करने से इन्कार किया। उनकी स्मृति ही प्रेरणा दे सकती है कि फिर से राजनीतिक निर्णय, सिद्धान्तों और आदर्शों के आधार पर हों। यदि सभी मान्यतायें मिट गयी, जानी मानी संस्थाओं में गिरावट आ गयी, राजनीतिक मूल्यों को तिलांजलि दे दी गयी और राजनीतिक जीवन से शिष्टाचार और संयम समाप्त हो गया तो फिर कौन बचा सकता है, इस राष्ट्र को अराजकता की ओर जाने से ?

सत्ता हथियाने में सफल लोगों की कहानी, उनकी जिन्दगी की चकाचौंध से प्रभावित हुए बिना हम नहीं रह पाते। इसी कारण उनकी सफलता को ही हम राजनीति की धारा का इतिहास मान बैठते हैं, उसी आकलन के आधार पर हम राजनीतिक व्यक्तियों का मूल्यांकन करने लगते हैं और यह भूल जाते हैं कि कितनी क्षणिक है यह चमक-दमक। राजनीति का इतिहास उन्होंने बनाया जो अपनी

जिन्दगी में कुछ न पा सके किन्तु काल पथ पर अपने अमिट पद चिन्ह छोड़ गये। उन्होंने ही दिशा बोध कराया—उन्होंने ही उत्सर्ग का पाठ पढ़ाया। मानव मर्यादा के लिए सब कुछ न्यौछावर करने की शक्ति दी। जिस समाज ने इनको अनदेखा किया, वह गिरावट की ओर जाने से नहीं रुक सका। कभी-कभी ऐसे अवसर भी आते हैं जब ऐसी बात करनेवालों का लोग उपहास भी करते हैं, उनको भुलाने का प्रयास भी होता है। यह भूल प्रायः उन लोगों के द्वारा की जाती है जो सत्ता और सम्पत्ति पर अपने अधिकार को शाश्वत मान बैठते हैं। यह एक भूल है—राजनीतिक नासमझी है। इस भूल से बचने के लिए हमें आचार्य नरेन्द्र देव जी जैसे व्यक्तिलिल्स्ें की याद का सहारा लेना होगा। उनकी जन्मशती के साल में हमें उनके जीवन से जो प्रेरणा मिलेगी वह हमें सामाजिक शक्तियों का सही विश्लेषण करने की क्षमता देगी। अपने को समाज के साथ जोड़कर समस्याओं के समाधान की समझ देगी और अच्छाई-बुराई के बीच निरन्तर चलते संघर्ष में अपने सीमित दायरे में निर्णायक कदम उठाने की क्षमता देगी।

चन्द्रशेखर : महामंत्री, उ० प्र० प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, १६५६-१६६२, सदस्य, राज्य सभा, १६७२-१६७७, मीसा के अन्तर्गत नजरबंद, अध्यक्ष : जनता पार्टी, १६७७-८७, सदस्य लोकसभा, १६७७-१६८४ और पूर्व प्रधानमंत्री, भारत सरकार।

मधु दण्डवते : आचार्यजी की विरासत

टिप्पणी : संख्या नहीं श्रेष्ठता के समर्थक

आचार्यजी के बारे में जब हम सोचते हैं और विचार करते हैं कि उनके सारे विचारों का सार क्या है, तो मेरे जैसे कार्यकर्त्ता को यह लगता है कि आचार्यजी का जीवन और उनकी विचारधारा में बुद्ध की करुणा, गाँधी की मानवता और कार्लमार्क्स की वैज्ञानिकता इन तीनों का दर्शन किया जा सकता है। अपनी जिन्दगी के आखिरी क्षण तक आचार्यजी ने कहा कि मैं कट्टर मार्क्सवादी हूँ मगर उनके मार्क्सवाद में किसी प्रकार की हठधर्मिता नहीं थी। सवाल था कि इस देश में समाजवादी परिवर्तन किस रास्ते से होगा ? आचार्यजी की आस्था थी कि शान्तिमय और जनतांत्रिक तरीके से यह परिवर्तन होगा लेकिन यह कहते हुए भी उन्होंने कहा कि यह मेरी दृष्टि मार्क्स के विचारों के साथ संगत है, और वे कई मर्तबा आग्रह करके हमें बताते थे कि कार्लमार्क्स ने १८४३ ई० के मेनीफेस्टो में कुछ भी कहा हो लेकिन हेग में इण्टरनेशनल वर्किंग मैन्स एसोसियेशन की जब बैठक ८ सितम्बर १८७२ ई० में हुई तो एक भाषण में उन्होंने कहा कि दुनिया के सभी देशों में और सभी परिस्थितियों में समाजवादी परिवर्तन एक ही रास्ते से नहीं होगा, और उन्होंने नाम लेकर बताया कि हो सकता है कि अमरीका, इंग्लैण्ड और हालैण्ड को अगर मैं अच्छी तरह से समझता हूँ तो हालैण्ड में भी यह परिवर्तन शांतिमय तरीके से भी हो सकता है और उन्होंने कहा था कि देश की परम्परा, वहाँ की सोच, वहाँ की संस्थाएं, सब का प्रभाव वहाँ के परिवर्तन की प्रक्रिया पर होगा। इसलिए उन्होंने कहा कि यहाँ भी शांतिमय परिवर्तन हो सकता है।

दूसरी एक बात उन्होंने समाजवादी-क्रांति के बारे में कहा—कि जिस वक्त मार्क्स ने अपने विचार तैयार किए, उस वक्त की परिस्थिति ऐसी थी कि उन्होंने समझा कि सिर्फ हर मुल्क का जो औद्योगिक मजदूर है, वही इस क्रांति का अगुवा रहेगा, लेकिन उन्होंने कहा कि हिन्दुस्तान, चीन, यूगोस्लाविया जैसे विकासशील देशों में किसान भी परिवर्तन की एक महान् शक्ति है। गाँधी ने यह बराबर समझा और हिन्दुस्तान का राष्ट्रवादी आन्दोलन हिन्दुस्तान के किसान की ताकत पर चला और उन्होंने कई मर्तबा कहा, यह इतिहास की आकस्मिकता नहीं है कि सन् १९४२ ई० में हम लोगों ने अंग्रेजों को सबसे बड़ी चुनौती दी और कई लोगों ने प्रति सरकार कायम की। बलिया में मिदनापुरी और सकारा में जहाँ किसान आन्दोलन मजबूत था, और गाँधीजी ने अपने आन्दोलन में खेरा का सत्याग्रह और साथ ही साथ चम्पारण, बारदोली का सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा किसानों की शक्ति संगठित की थी, उसका ही नतीजा यह रहा कि १९४२ ई० में जहाँ समानान्तर सरकार बनी वह भी ऐसी जगह पर बनी जहाँ किसानों की शक्ति बहुत मजबूत थी। ट्रस्टीशिप के बारे में उनका दिमाग साफ था। उन्होंने कहा कि नैतिक आह्वानों के जरिये हो सकता है कि चंद लोगों के दिल में परिवर्तन आ जाय, हो

सकता है कि अपनी सम्पत्ति वह आम जनता के लिए दे दे, लेकिन न तो दुनिया में, न ही हिन्दुस्तान में ऐसा कोई सबूत मुझे मिलता है कि समूचे आर्थिक वर्ग का परिवर्तन सिर्फ नैतिक आह्वान से होगा इसलिए मैं नहीं मानता कि वर्ग संघर्ष के बिना हम लोगों को परिवर्तन की शक्ति मिलेगी। फिर भी उन्होंने कहा कि मैं जनतंत्रवादी हूँ इसलिए मैं वर्ग संघर्ष चाहता हूँ लेकिन जनतांत्रिक तरीके से चाहता हूँ, यही सीमा मैं जनसंघर्ष और वर्गसंघर्ष की रखूँगा और उन्होंने आगे चलकर कहा कि नैतिकता का जीवन में, आन्दोलन में स्थान है, अपने अंग्रेजी के एक लेख में उन्होंने कहा था— "मॉरेलिटी एण्ड मॉरल अपील्स टू रेज बीट्वीन एण्ड देयर ऑफ दी स्ट्रगल।"

उन्होंने कहा कि नैतिक आह्वान के जरिए हो सकता है कि हमारे सारे संघर्ष का स्तर बढ़ जाए लेकिन सिर्फ नैतिक आह्वान के जरिए हिन्दुस्तान की अर्थ-रचना बदलेगी, यह मैं नहीं मानता हूँ। इसलिए वर्ग संघर्ष की आवश्यकता है लेकिन जनतांत्रिक तरीके से। साथ ही साथ एक चीज और उन्होंने कही कि रूस और चीन में जो क्रान्ति हुई, उस क्रान्ति के बारे में मार्क्स ने जो कहा था कि जहाँ औद्योगिक तरक्की हुई है, ऐसे ही मुल्कों में परिवर्तन होगा तो यह तो नाकामयाब सिद्धान्त रहा। रूस, चीन में जहाँ क्रान्ति हुई, वहाँ तो औद्योगिक स्तर बढ़ा नहीं था तो उन्होंने कहा कि किसानों का जो स्थान है, शुरू में मार्क्स ठीक ढंग से समझ नहीं पाये।

सन् १९४६ ई० में महाराष्ट्र में पूना के नजदीक हडक्सर नाम का एक गाँव है वहाँ राष्ट्रसेवा दल की एक रैली हुई, समाजवादी कार्यकर्त्ता इकट्ठे हुए जिसमें जयप्रकाश जी और आचार्य नरेन्द्र देव आये थे। वर्कर्स और पत्रकारों के साथ बातचीत करते समय उन्होंने पेरिस्त्रोइका और ग्लासनोस्त, सिर्फ ये शब्द भर इस्तेमाल नहीं किये थे लेकिन उनका सारा सार सामने रख दिया था। उन्होंने कहा कि मैं निराशावादी नहीं हूँ, सोवियत रूस के समाज में जैसी सांस्कृतिक प्रगति होगी, तकनीकी तरक्की होगी और विज्ञान के क्षेत्र में खोज की जायेगी तो मेरे दिल में कोई सन्देह नहीं कि सोवियत रूस के अन्दर भी ऐसा वर्ग पैदा होगा जो ज्यादा आजादी और ज्यादा जनतन्त्र की माँग करेगा और परिस्थिति के तकाजे से सारे सोवियत रूस का जो सिद्धान्त है उसमें तब्दीली होगी, यह मानने वालों में मैं हूँ। १९४६ ई० में आचार्य नरेन्द्र देव ने जो कुछ कहा आज सोवियत रूस के अन्दर गोर्वाच्योव वही भाषा, वही जुबान इस्तेमाल कर रहे हैं जो आचार्य नरेन्द्र देव ने १९४६ ई० में दूरदृष्टि रखकर आप लोगों के सामने रखी थी। यह देखकर हमें बड़ी खुशी होती है।

आज विलयन का जमाना है, मैं आपको बताऊँ कि जो लोग आचार्यजी के साथ काम करते थे उन्होंने एक खूबी आचार्यजी के जीवन में देखी। आचार्यजी कभी तोड़नेवालों में नहीं थे जोड़नेवाले थे। लेकिन विलयन की प्रक्रिया में उस समय भी उन्होंने हमको एक चेतावनी दी जिसका जिक्र हम लोगों को आज करना चाहिए। मुझे याद है कि पुराना समाजवादी दल, फारवर्ड ब्लाक और आचार्य

कृपलानी की किसान मजदूर प्रजा पार्टी, उनका विलय हुआ । प्रथम सम्मेलन इलाहाबाद में हुआ और उस वक्त इस विलयन के सिलसिले में बोलते समय आचार्यजी ने कहा, इलाहाबाद प्रयाग के संगम पर हम मिल रहे हैं, यहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम हुआ है लेकिन मैं अपने साथियों को कुछ चुनौती और चेतावनी देता हूँ कि जैसे संगम पर गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम हुआ, लेकिन सरस्वती लुप्त हो गयी । इसी तरह से हमारे संगम में, विलयन में समाजवाद की धारा कभी भी लुप्त न रहे यह चेतावनी मैं आपको देना चाहता हूँ । यह विलयन के समय भी उन्होंने बताया । मैं उम्मीद करता हूँ कि हम लोग जब विलयन की प्रक्रिया आगे बढ़ा रहे हैं तो आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, डॉ० लोहिया जैसे महान् नेताओं ने विकेन्द्रीकरण के बारे में, समाजवादी सिद्धान्तों के बारे में जो कहा, उनको हम भूलेंगे नहीं । इस विलयन की प्रक्रिया में गंगा यमुना रहेगी लेकिन समाजवादी जनतन्त्र की धारा और जनाधार की धारा यह सरस्वती की तरह गुप्त नहीं रहेगी । यही मैं समझता हूँ कि आचार्य नरेन्द्र देव का सबसे बड़ा सन्देश इस वक्त हमारे लिए है ।

आचार्यजी के जीवन में विनोद की महान् शक्ति थी । जब हम नौजवान लोग स्टूडेन्टस कांग्रेस में काम करते थे तो हम अच्छे प्रगतिशील प्रस्ताव लेकर बताते थे कि देखिए आचार्यजी हमारा प्रस्ताव है, आपकी राय क्या है ? आचार्यजी मजाक में कहते थे कि मैंने तो अपनी खूबी बराबर जान ली है और वे बताते थे कि हम लोग कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेता आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी की बैठक में जो संशोधन पेश करते हैं, वे गिर जाते हैं और अस्वीकृत होते हैं, उनका ही प्रस्ताव बनाकर आप लोग अपना प्रस्ताव पारित कर लेते हैं तो हमारे सारे गिरे हुए संशोधन आपके पारित हुए रहते हैं । इस तरह हमें कभी-कभी पता चलता है कि उनकी विनोद वृत्ति कैसी थी । एक मर्तबा आचार्यजी जब बीमार थे, मुख्यमंत्री गोविन्दवल्लभ पंत, उनसे मिलने के लिये उनके निवास स्थान पर गये । कम्पाण्ड में दो गधे उन्होंने देखे, जब वे उनसे मिलने के लिये गये तो आचार्यजी से उन्होंने मजाक में कहा, आचार्यजी आपके निवास स्थान पर गधे भी रहते हैं । आचार्यजी ने कहा रहते नहीं लेकिन कभी-कभी मिलने के लिए आते हैं, गोविन्दवल्लभ पन्त बड़े खुश हुए । इसलिए नहीं कि अपनी आइडिएंटिटी के लिए बल्कि उन्होंने समझा कि बड़ी अच्छी विनोद-बुद्धि से आचार्यजी ने जवाब दे दिया था । मुझे याद है मद्रास का जब हमारा समाजवादियों का सम्मेलन चल रहा था तो अच्युतजी का खत आया कि मैं राजनीति से संन्यास लेना चाहता हूँ । कई नौजवान कार्यकर्त्ता आचार्यजी के पास पहुँचे, हम लोगों ने कहा आचार्यजी आप अगर अच्युतजी के साथ बात करें तो हो सकता है अच्युतजी अपने संन्यास के फैसले में तब्दीली करें । आचार्यजी को मालूम था कि अच्युतजी ने अन्तिम फैसला किया है, उसको वे बदलने वाले नहीं है, लेकिन अपने ढंग से और अपने अन्दाज से उन्होंने हमको बताया, अरे भई आप क्यों मुझे परेशान करते हैं । अच्युत बुद्ध बनना चाहते हैं, आप उनको मामूली इंसान क्यों बनाना चाहते हैं ।

यह कहकर हमको टाल दिया, इस तरह से उनका काम करने का तरीका था ।

उनके जीवन में और एक चीज मैंने देखी । आज सब जगह हम संख्या के पीछे हैं कितनी भीड़ इकट्ठी करें । जनतन्त्र में संख्या का भी महत्त्व है, उनकी भी अहमियत है, लेकिन आचार्यजी ने एक बहुत महत्त्वपूर्ण लेख अंग्रेजी में लिखा था, जो हमारे सारे कार्यकर्त्ताओं के लिए एक बहुत अच्छा पैगाम है, उन्होंने कहा संख्या महत्त्वपूर्ण है लेकिन राजनीतिक संगठन में हमें जरूरत है सामान्य चरित्र वाले कार्यशील कार्यकर्त्ताओं की, न कि अति श्रेष्ठ मानव की । अगर ये हमारे पास इकट्ठे किये जायें, उनका ठीक प्रशिक्षण किया जाये, उनकी संख्या हो सकता है सामान्य से कम हो, लेकिन जब क्रान्तिकारी परिस्थिति पैदा होगी तो यह ताकत सौ गुना बढ़ेगी, यह आप ध्यान में रखिये । यह सन्देश मैं समझता हूँ आचार्यजी ने हम लोगों को दिया । आचार्यजी ने एक चीज और बतायी जिसे बताकर मैं अपना निवेदन समाप्त करता हूँ, वह है भाषा के बारे में, भाषा के बारे में कई मर्तबा हम बहुत कटुता देखते हैं, लेकिन आचार्यजी उत्तर भारत में पैदा हुये और उत्तर भारत में वाइसचांसलर रहे फिर भी भाषा के बारे में जो नीति उन्होंने हमारे सामने रखी वह काफी महत्त्वपूर्ण है । उन्होंने कहा कि मैं भी चाहता हूँ कि राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार सारे हिन्दुस्तान में हो, लेकिन रास्ता क्या है ? उन्होंने फिजिक्स का एक बहुत अच्छा उदाहरण दिया, उन्होंने कहा कि इंस्ट्रूमेण्ट होता है, उसका एक तार आप छेड़ दो तो उसमें झंकार पैदा होती है, लेकिन रोजोनंस की थ्योरी के मुताबिक अगर एक तार आप छेड़ दो और उसमें झंकार पैदा करो तो दूसरा जो तार है उसमें भी झंकार पैदा होती है । इस तरह से उत्तर में युनिवर्सिटी में काम करनेवाले सारे प्रोफेसर और विद्यार्थी अगर तय करें कि हम स्वेच्छा से दक्षिण की एक भाषा सीख लेंगे तो जैसे एक तार छेड़ने के बाद दूसरा तार हिलने लगता है, उसी तरह से उत्तर के लोग एक दक्षिण की भाषा सीखें, तो मैं दावे के साथ कहता हूँ कि दक्षिण में भी हिन्दी के प्रति ज्यादा सहानुभूति और हमदर्दी पैदा होगी, यह मेरी शिक्षण क्षेत्र के कार्यकर्त्ता के नाते आपको सलाह है । तो इस तरह से हर चीज की तरफ हर सवाल और प्रश्न की तरफ एक खास ढंग से देखते थे । ऐसे हमारे महान् नेता आज हम लोगों के बीच नहीं हैं, लेकिन एक कवि ने कहा है—"ग्रेट मैन ड्रॉप बट दे नेवर फेड अवे ।" हो सकता है कि बड़े-बड़े नेता, दार्शनिक हम लोगों में से चले जायें लेकिन उन्होंने जो विचारधारा रखी है उनकी विरासत तो चलती ही रहेगी और जब तक आचार्य नरेन्द्र देवजी की विरासत इस देश में चलती रहेगी, तब तक मैं मानता हूँ कि इस सितारे की तरफ देखकर हम अपना रास्ता खोजते रहेंगे और आखिरी समाजवाद की मंजिल तक एक दिन पहुँचेंगे ।

मधु दण्डवते : प्रमुख समाजवादी नेता, पूर्व रेल मंत्री एवं वित्त मंत्री, भारत सरकार ।

मधु लिमये : वे समाजवादी आन्दोलन के कुलपति थे

टिप्पणी : समाजवादी आन्दोलन के कुलपति

कुछ लोगों ने इस बात पर अफसोस व्यक्त किया कि आचार्य नरेन्द्र देव जैसे महान् राष्ट्रीय नेता की शताब्दी मनाने का काम वर्तमान सरकार ने हाथ में नहीं लिया, लेकिन आचार्यजी सरकारी समाजवादी नहीं थे कि सरकार द्वारा उनकी शताब्दी मनायी जाये। इससे अच्छा है कि जनता के स्तर पर चन्द्रशेखरजी की पहल से यह शताब्दी मनायी जाये यही बेहतर है।

हमारे समाजवादी आन्दोलन में इतने प्रतिभाशाली नेता पैदा हुए हैं कि विश्व के किसी भी समाजवादी आन्दोलन के साथ यदि उनकी तुलना की जायेगी तो किसी भी अर्थ में वे उनसे कम नहीं होंगे। हमारे समाजवादी आन्दोलन के नेता रहे जयप्रकाशजी, उनमें एक गुण था जो अन्य लोगों में नहीं था, इसका मतलब यह नहीं है कि उनका महत्त्व कुछ कम है। जयप्रकाशजी में एक करिश्मा था और वह जवाहरलाल, सुभाष बोस की तरह जननेता थे। राममनोहर लोहिया में विचार और कर्म का संगम था लेकिन वह करिश्मा नहीं था जो जयप्रकाशजी में था। मीनू मसानी थे, उनसे हम लोग कार्यक्षमता सीखते थे, अपने विचारों को सफाई से रखने की खूबी। अशोक मेहता से हम लोगों ने सीखा कि अन्त तक छात्र बनकर रहना चाहिए, अध्ययन करना चाहिए। यूसुफ मेहरअली ने हमको प्यार दिया, शिल्प पर, चित्रकला पर, साहित्य पर मोहब्बत करना सिखाया। हमारे नौजवानों के वे लाडले नेता थे। स्नेह से नौजवान लोगों को जोड़ने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। कमलाजी ने हमको सिखाया कि स्त्री-मुक्ति के बिना समाजवाद साकार नहीं होगा। उन्होंने हमें सिखाया कि हथकरघे पर जो वस्त्र बनता है, उसमें कितनी सुन्दरता है। लोककला, लोकनाट्य, लोकगीत की तरफ देखने की हमको एक नई दृष्टि दी। अच्युत पटवर्धन का बौद्धिक विकास हम लोगों ने देखा। अच्युतजी और अरुणाजी ने बताया कि समय पर उचित कर्म करना चाहिए और कैसे करना चाहिए, इसकी सीख १९४२ ई० में हमको दी। यह सब महान विभूतियाँ थीं समाजवादी आन्दोलन की, तो इनमें आचार्यजी का क्या स्थान था।

चन्द्रशेखरजी ने ठीक कहा कि आचार्यजी को एक ऐसी व्याधि ने ग्रस्त किया था जो शरीर को बिल्कुल दुर्बल बना देती है। आदमी सक्रिय रह नहीं सकता है, मन में कितनी ही प्रखरता क्यों न हो, शरीर साथ नहीं देता। मैं यह नहीं कहूँगा कि जयप्रकाशजी की तरह, लोहिया जी की तरह, यूसुफ मेहरअली की तरह उन्होंने कर्मवीर की भूमिका निभाई, यह सम्भव नहीं थी उनके लिए, लेकिन हम लोगों में वे सबसे बुजुर्ग व्यक्ति थे, केवल उम्र में ही नहीं, हर तरह से थे। अभी कहा गया कि वे काशी विद्यापीठ के कुलपति थे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के, लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति थे, लेकिन मैं मानता हूँ कि वे समाजवादी आन्दोलन के कुलपति थे और जिस तरह शिक्षकों का अपने शिष्यों

के साथ सम्बन्ध होता है, उसी तरह का सम्बन्ध आचार्यजी का हम नौजवानों के साथ था। मुझे अधिक कुछ नहीं बोलना है। लगभग पचास साल पहले की एक याद इस समय मेरे मन में घुमड़ रही है। पूना में १९४० ई० में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का एक जलसा हुआ और उसमें राजाजी की प्रेरणा से ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग करने का तथा युद्ध प्रयासों में सहभागी होने का एक प्रस्ताव राजाजी द्वारा रखा गया। हमारे समाजवादी नेता और सब लोग उसके विरोधी थे और आचार्य जी ने भी भाषण किया था। आप जानते हैं, आचार्यजी, हिन्दुस्तानी की जो दो शैलियाँ हैं हिन्दी और उर्दू, दोनो में बेजोड़ वक्ता थे और बहुत प्रभावशाली भाषण उन्होंने किया। लेकिन वे अक्सर बीमार रहते थे और उन दिनों हम लोगों की बहुत कम उम्र थी। समाजवादी दल की राष्ट्रीय समिति की बैठक भी होती थी, यूसुफ मेहरअली उन दिनों जनरल सेक्रेट्री थे, जयप्रकाशजी और लोहियाजी जेल में थे। उन्होंने हमको भी बुलाया था राष्ट्रीय समिति की बैठक में लेकिन कहा था कि जब बैठक चलेगी, तुम चुपचाप सुन लेना, क्योंकि सुनना भी बहुत बड़ी खूबी है। जो आजकल के नेता सुनना नहीं चाहते, लेकिन पहले से हमारे नेताओं ने सिखाया था कि सुनो, हम बैठे रहते थे, बाद में जब अ० भा० का० की बैठक के लिए लोग चले जाते थे तो अच्युतजी ने हमको कहा था कि आचार्यजी तो इधर-उधर जा नहीं पायेंगे तो हम लोगों की ड्यूटी लगाई गई थी। मुझे याद है, आचार्यजी से हम लोग गपशप करते थे। हमको पता चला कि वे बड़े-छोटे का कोई भेद नहीं करते इसलिए हम उनसे उटपटांग सवाल भी पूछते थे, लेकिन उन्होंने हमको डाँटा नहीं, समझाकर बताते थे। हमारे आन्दोलन में आचार्य नरेन्द्र देव और यूसुफ मेहरअली ये दो नेता ऐसे थे जिसमें हमेशा प्रेम और स्नेह की गंगा बहती थी और जो आदमी उनसे मिलता था वह गंगा में स्नान करके पावन हो जाता था। ऐसे एक महान् नेता जब हमारे बीच से चले गये उस समय मैं गोवा जेल में बन्द था। लेकिन मुझे याद है कि बहुत अफसोस हुआ था इस दुःखद खबर से, खासकर मेरा व्यक्तिगत रिश्ता उनसे बहुत नजदीक का था। अब जब भी आचार्यजी का नाम आता है, उनकी स्मृति मन में आती है तो मैं नतमस्तक हो जाता हूँ। आज इस अवसर पर फिर एक बार मैं उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

मधु लिमये : समाजवादी नेता, पूर्व संसद सदस्य, लेखक, पत्रकार एवं सफल आलोचक।

श्री सत्यप्रकाश मित्तल : राष्ट्रीय नवनिर्माण के ऋषि

टिप्पणी : राष्ट्रीय नवनिर्माण के ऋषि

आचार्य नरेन्द्र देव मार्क्सवादी थे। उन्होंने समाजवादी क्रान्ति को संहार नहीं निर्माण के रूप में और समाजवाद को विश्वव्यापी सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में देखा और समझा। मार्क्सवादियों में वे सबसे पहले विचारक थे, जिन्होंने एशिया और भारत में राष्ट्रीयता की शक्ति और उसके रचनात्मक चरित्र को पहचाना। इस प्रकार उन्होंने एशिया में उभरती हुई राष्ट्रीयता को समाजवादियों के लिए ग्राह्य कर दिया। इससे समाजवादियों का धर्म संकट खत्म हुआ और राष्ट्रीयता की धारा में समाजवाद की नाव चल पड़ी थी। इस नाव ने ही १६३४ ई० में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का रूप लिया। इसके विपरीत भारत के कम्युनिस्ट तथा कुछ अन्य समाजवादी "शुद्ध" मार्क्सवाद की धुन बजाते रहे और स्वतन्त्रता के संघर्ष में कांग्रेस तथा उसके नेता, महात्मा गाँधी का विरोध करते रहे। उनके विचार में राष्ट्रीयता एक संकीर्ण क्षेत्रवाद था जो न केवल सार्वभौम समाजवाद का विरोधी तत्त्व था, बल्कि पूँजीवाद का एक हथियार भी।

वास्तव में आचार्य नरेन्द्र देव एक सांस्कृतिक पुरुष थे। वे जीवन पर्यन्त मानव विकास की नयी मंजिल पर नवसंस्कृति एवं नवसमाज की रचना का स्वप्न साकार करने में लगे रहे। इतने बड़े काम के लिए उनमें अपेक्षित बौद्धिक प्रतिभा और चरित्र बल, दोनों थे। वे निर्वैर पुरुष और निर्भीक विचारक थे। मार्क्सवादी होने का उन्हें गर्व था, किन्तु उनकी पैनी दृष्टि और सूझबूझ मार्क्सवाद के मूल और उसके ब्राह्य परिधान और कलेवर को पहचानती थी।

मार्क्सवादी होते हुए भी आचार्य नरेन्द्र देव ने बलपूर्वक प्रतिपादित किया कि "अतीत के उन अंगों की, जो उत्कृष्ट और जीवन प्रद हैं, रक्षा करनी ही होगी। हमारे देश की बहुत ऊँची संस्कृति रही है जिससे हम नवयुग और नवमानव का निर्माण कर सकते हैं।" बहुत से अन्य समाजवादियों और मार्क्सवादियों की भाँति उन्होंने समाजवादी आन्दोलन को लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली से विच्छिन्न नहीं किया। उन्होंने अपने विचारों और कार्यों द्वारा राष्ट्रीय सरकार के लोकतान्त्रिक रूप को पुष्ट किया और अपने दल को एक स्वस्थ लोकतांत्रिक विरोध पक्ष के रूप में विकसित करने का प्रयास किया। उन्होंने भारतीय परम्परा द्वारा समर्थित तथा महात्मा गाँधी द्वारा प्रवर्तित नैतिक मूल्यों और सत्याग्रह का स्वागत किया। वास्तव में वे एक ऐसे नेता एवं विचारक थे जिन्हें आधुनिक युग में भारतीय नवरचना का ऋषि कहा जा सकता है। महात्मा गाँधी और रवीन्द्रनाथ की भाँति उन्होंने समाज परिवर्तन की पृष्ठभूमि में नवनिर्माण के सभी महत्त्वपूर्ण पक्षों पर विचार किया था। फिर भी वे उनसे भिन्न थे। उनकी नवसंस्कृति का आधार आर्थिक समता (समाजवाद) तथा स्वातंत्र्य (लोकतंत्र) थे और वे सभी प्रकार के रहस्यवाद तथा सम्प्रदायवाद से परे थे। उनकी नवरचना के साधनों में शिक्षा का और युवकों का

विशेष स्थान था। नवयुवकों की शक्ति और विधायकता पर उन्हें बहुत विश्वास था। उनका विचार था कि राष्ट्रीय तथा मानवीय संस्कृति के नये मूल्यों और पद्धतियों को शिक्षा के माध्यम से युवकों में प्रस्थापित करना सुगम होगा।

वे एक राजनैतिक पार्टी के शीर्षस्थ नेता थे, पर उन्होंने शिक्षा क्षेत्र का त्याग नहीं किया। स्वतंत्रता मिलते ही वह पुनः अध्यापक हो गये। काशी विद्यापीठ के बाद वे लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति हुए। लखनऊ के बाद वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय गये। इतने बड़े राजनीतिक नेता होते हुए भी उन्होंने ऐसा क्यों किया, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

उन्हें कुलपति के रूप में विद्यार्थी समुदाय से अतुल सम्मान और स्नेह मिला। विद्यार्थियों का यह स्नेह उस समय आन्दोलन और सत्याग्रह के रूप में प्रगट हुआ जब उन्हें ज्ञात हुआ कि उनका प्रिय कुलपति लखनऊ विश्वविद्यालय छोड़कर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जा रहा है। आज शिक्षा के क्षेत्र में सचमुच नेतृत्व का अभाव है। चरित्रवान् शिक्षक वर्ग जो विद्यार्थियों के पठन-पाठन और उत्कर्ष में रुचि रखता हो, विद्यार्थियों की शक्ति को रचनात्मक धारा में मोड़ सकता हो, उन्हें सहज ही अनुशासित और विकासोन्मुख कर सकता है, पर दुःख है कि शिक्षक वर्ग अपने दायित्व से विमुख हो परमुखापेक्षी हो गया है।

उनका शिक्षा दर्शन जीवन से प्रभूत था। उनके अनुसार "नये विचारों से और विज्ञान की इस जययात्रा से मानव कल्याण तभी सम्भव है जब व्यक्ति मानव कल्याण की भावना से प्रेरित होकर कार्य करें यदि उसके कार्यों के पीछे करुणा की, मैत्री की भावना नहीं होगी तो वह ध्वंस में ही लगेगा। आज मानव विकास की उस अवस्था में पहुँच गया है जहाँ वह उच्च से उच्चतर और उत्कृष्ट होता जायेगा। मानव की आत्मा के विकास के लिए इस बात की परख होनी चाहिए कि उसके प्रयत्नों से समाज कहाँ तक सुसंस्कृत और सभ्य बना है।" एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं "शिक्षा का उद्देश्य देश के नवयुवकों को भावी जीवन के लिए तैयार करना है, किन्तु जीवन की परिस्थिति में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। अतः युवकों की शिक्षा भी स्थिर जीवनदर्शन पर आधारित नहीं हो सकती। विद्यार्थियों में जीवन के उन मूल्यों को प्रतिष्ठित और प्रचारित करना होगा जो आधुनिक विश्व की प्रगति के लिए आवश्यक है।"

नीचे आचार्यजी के दो अन्य महत्त्वपूर्ण वक्तव्य उद्धृत किये गये हैं। इनसे स्पष्ट हो जायेगा कि समाज की परिवर्तनमान प्रक्रिया का वे कैसा विश्लेषण करते थे। एक स्थान पर वे लिखते हैं—"व्यक्तियों के चित्त के साथ-साथ एक लोकचित्त भी बनता रहता है। मनुष्य सामाजिक है क्योंकि समाज में रहने से ही उसके गुणों का विकास होता है। अतः समाज में कई बातों में समता उत्पन्न होती है। समूहों का विस्तार होता रहता है और एक समय आता है जब राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर एक दशक की भौगोलिक सीमा के भीतर रहनेवाले सभी लोग कुछ बातों में अपनी समानता और एकता का अनुभव करते हैं। आज व्यक्तिगत

चित्त और लोकचित्त दोनों को सुभावित करने की आवश्यकता है। आज के युग की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जीवन के जो मूल्य और पुरुषार्थ के उद्देश्य तथा लक्ष्य निर्धारित होते हैं, उन्हीं के अनुकूल चित्त को सुभावित करना चाहिए। एशिया के सब देश आज राष्ट्रीयता और जनतन्त्र की भावना से प्रभावित हो रहें हैं। ये ही शक्तियाँ इन देशों के आचार-विचार को निश्चित करती हैं।"

समाजवादी संस्कृति पर विचार करते हुए एक स्थल पर उन्होंने लिखा है—"नैतिक तथा आध्यात्मिक विशिष्टता प्राप्त करने का प्रयास करना वर्ग संघर्ष का अविच्छिन्न अंग है। यदि मजदूर वर्ग को इतिहास ने समाजवाद का उपकरण बनाया है तो इसमें सन्देह नहीं कि मजदूर वर्ग को बौद्धिक तथा नैतिक दृष्टि से इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए अपने को तैयार करना होगा। एक समाजवादी केवल अपने और अपने कुटुम्ब के लिए नहीं जीता है, उसका हृदय उदार और मानवीय पीड़ज्ञ का है। वह वैसे ही हिसाब रखता है जैसे भूमापक यन्त्र मृदु से मृदु कम्पन का।"

इस प्रकार समाजवादी संस्कृति का मूल सूत्र है आचार, विचार और शिक्षा द्वारा नये लोकचित्त का निर्माण।

सत्यप्रकाश मित्तल : सन् १९४२ के आन्दोलन में भागीदारी, समाजवादी किसान और मजदूर आन्दोलनों से सम्बद्ध, सहायक सम्पादक—'जनवाणी', 'समाज', मंत्री—आचार्य नरेन्द्र देव समाजवादी संस्थान, वाराणसी।

एन० जी० गोरे : भारत में प्रजातांत्रिक समाजवाद के जनक

टिप्पणी : भारत में प्रजातांत्रिक समाजवाद के जनक आचाय

यद्यपि चौदह घटना पूर्ण वर्षों की विस्मृतिकारी धूल आचार्य नरेन्द्र देव की स्मृति को बहुत कुछ धूमिल कर चुकी है फिर भी हम जैसे लोगों के लिये, जिन्हें उनके साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उन्हें अपने से अलग मान कर उनके विषय में कुछ सोचना बहुत कठिन है। कांग्रेस समाजवादी पार्टी के हम लोग केवल राजनैतिक बन्धुत्व के अंग नहीं बल्कि और भी बहुत कुछ थे। हम लोग कई मायने में एक सम्मिलित परिवार थे न कि केवल एक राजनैतिक दल। एक ऐसा सम्मिलित परिवार जिसमें एक की सफलता सभी के गौरव और प्रसन्नता का सोपान बनती थी तथा एक की व्यथा सभी के हृदयों को व्यथा पहुँचाती थी और शोक भी। बन्धुत्व का यह बन्धन स्वतन्त्रता संग्राम की सरगर्मी की देन थी। यह बन्धन इतना मजबूत सिद्ध हुआ कि इसमें से बहुतों को इसने आज भी परस्पर बाँध रखा है यद्यपि इसमें वैचारिक मतभेद आया, संघर्ष भी हुये और रास्ते भी बदल गये। यही कारण है कि जब भी यूसुफ मेहरअली आचार्य नरेन्द्र देव या डाक्टर लोहिया का नाम लिया जाता है तो मेरे दिमाग में तीसरे तथा चौथे दशक की स्मृतियाँ ताजी हो उठती हैं और क्षण भर के लिये ही सही, उस अटूट बन्धुत्व की शोभा और कीर्ति मानो फिर जीवित हो उठती है।

यद्यपि आचार्यजी बड़े ही विद्वान् व्यक्ति थे परन्तु जब मैं पिछले दिनों की याद करता हूँ तो मुझे ऐसा नहीं लगता कि हम लोग उनकी ओर उनकी विद्वत्ता के कारण आकृष्ट हुए थे। यदि सच कहा जाय तो बहुत दिनों तक तो हम लोगों को उनके गम्भीर ज्ञान का पता ही न था। जिस आकर्षण ने हम लोगों को उनकी ओर आकृष्ट किया, वह उनके ओठों पर खेलती रहनेवाली सहज मुस्कान थी और सम्भवतः उससे भी अधिक थी बन्धुत्व की भावना तथा क्रान्ति की चिनगारी जो उनकी आँखों से झाँकती दिखाई देती थी। उन्होंने जब भी मेरे हाथों को अपने हाथों में लिया तो मैं भूल गया कि उनकी उम्र में और मेरी उम्र में पीढ़ी का अन्तर है। उनकी कभी कम न होनेवाली युवाओं जैसी स्फूर्ति सभी को प्रभावित कर लेती थी और उनमें भी युवकों जैसा उत्साह भर देती थी। यदि देखा जाय तो वह लखनऊ की तहजीब और सभ्यतापूर्ण व्यवहार के मानों मूर्तिमान स्वरूप थे—दिखावा और बनावट से कोसों दूर। उनका यही गुण था जो लोगों के हृदयों को जीत लेता था, उनकी विद्वता का असर तो मन पर बहुत बाद में पड़ता था।

धीरे-धीरे जैसे-जैसे दिन बीतते गये और एक के बाद एक घटनायें आती गयीं वैसे-वैसे हम लोगों पर स्पष्ट होता गया कि उनके स्नेहिल व्यवहार के मूल जीवन के प्रति वह मानवीय दृष्टिकोण है जिसकी प्राप्ति उन्हें भगवान् बुद्ध तथा महात्मा गाँधी के विचारों के गम्भीर अध्ययन से प्राप्त हुई। हमें इस बात का भी एहसास हुआ कि समस्याओं से निपटने का जो उनका क्रान्तिकारी ढंग है, वह

मार्क्सवाद के गहन अध्ययन के कारण है। हम उन दिनों उस युग में रह रहे थे जिसमें या तो कोई व्यक्ति गाँधीवादी होता था या मार्क्सवादी, दोनों वादों के दर्शनों का समन्वय करने की उन दिनों कोई गुंजाइश ही न थी। सारे संसार की कम्युनिस्ट पार्टियों पर सोवियत संघ का पूरा प्रभुत्व था। इस कारण भारत के कम्युनिस्ट गाँधी जी को पूँजीवाद का एजेन्ट मानते थे, गाँधीवाद को एक नशा समझते थे और गाँधीजी के नेतृत्व में होनेवाली अहिंसात्मक लड़ाईयों को भुलावा कहते थे जिससे ब्रिटिश शासन की फौजों का भारतीय जनता के साथ सीधा टकराव न होने पाये। गाँधीजी के नेतृत्व में होनेवाले राष्ट्रीय आन्दोलनों की असफलतायें हम देखते थे, उनकी विचारशैली तथा कार्यशैली की कमियों का अनुभव करते थे और उनके साथ अपनी असहमति भी प्रकट करते थे क्योंकि गाँधीजी अपनी नीति पहले से ही स्पष्ट कर देते थे। इसके विपरीत सोवियत संघ के बारे में हम केवल उतना ही जान पाते थे जितना कि विक्टर गोलानेज अपनी पुस्तिकाओं द्वारा हमें जताने का निश्चय करते थे। इन पुस्तकों द्वारा हमें यही बतलाया जाता था कि सोवियत संघ के महान् राष्ट्र ने एक विजय के बाद दूसरी विजय प्राप्त की और प्रत्येक विजय अपने से पहले की विजय से अधिक महत्त्वपूर्ण थी। वहाँ की किसी भी चीज में कोई कमी नहीं, कहीं भी कोई भ्रांति नहीं, असफलता की कोई गुंजाइश नहीं। मेरे मस्तिष्क पर उन तमाम पुस्तिकाओं का, लेखों का, निबन्धों का जो तगड़ा प्रभाव उस समय पड़ा, वह मेरी स्मृति में आज भी ताजा है। यह सारे लेख, पुस्तिकायें या निबन्ध हम लोगों तक अधिकांशतः छिपे तौर पर पहुँचते थे। नवयुवकों और नवयुवतियों को क्रान्ति के मार्ग पर चलने में और अज्ञात रूप से चलने में एक विशेष रोमांचकारी आनन्द मिलता है। इसीलिए हमें क्रान्ति का रास्ता अधिक भाता था जबकि गाँधीजी के खुले और सर्वज्ञात तौर-तरीके हमारे लिये कोई आकर्षण नहीं रखते थे। फिर जैसा कि सभी युगों में नवयुवकों ने किया है, हम दकियानूसी शासन की क्रूरता को घृणा की दृष्टि से देखते थे। हमारे अन्तरमन में यह अभिलाषा थी कि एक नये समाज व्यवस्था की रचना की जाये जिससे जैसा भी हम कहें, वही कानून मान लिया जाय। यही कारण है कि जब भी मैं नवयुवकों तथा नवयुवतियों को किसी भी प्रकार की पूर्ण क्रान्ति की इच्छा से उद्वेलित पाता हूँ मुझे कोई आश्चर्य नहीं होता। प्रभुसत्ता के प्रति घृणा और साथ ही प्रभुसत्ता के प्रति आकर्षण इन विरोधी भावनाओं में ही साम्यवादी तथा प्रभुसत्तावादी नीतियों का राज छिपा हुआ है।

आचार्य नरेन्द्र देव में न तो डॉक्टर लोहिया की-सी वर्णन शैली थी और न जयप्रकाश नारायण की-सी प्रोत्साहक स्पष्टता। घुमा-फिरा कर बात कहने की उनकी भाषण विद्या के विपरीत उनकी लेखन शैली को अलंकारहीन, क्लिष्ट तथा पांडित्यपूर्ण कहा जा सकता है। उन्हें हम वैभवपूर्ण वातावरण में बैठकर काम करनेवाले एक कुशल शिल्पी के बजाय एक कारीगर कहना अधिक पसन्द करेंगे जो बड़े धैर्य के साथ एक-एक ईंट जोड़कर ईमारत बनाता है। आचार्यजी के

लेखों का सबसे बड़ा गुण यह था कि जबकि अन्य लोग चिन्तापूर्वक इन्द्रधनुषी रंगों से भविष्य का चित्र बनाते थे, उस समय उन्होंने भारत में एक ठोस जनतांत्रिक समाजवाद की आदर्शपूर्ण आधारशिला का निर्माण किया।

जिसे आगे चलकर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का नया आधार प्रबन्ध कहा गया, उसे हम आचार्य नरेन्द्र देव का राजनैतिक वसीयतनामा कह सकते हैं। सन् १९२० ई० से भारत में अनेक लोगों ने समाजवाद पर बहुत कुछ कहा भी है और लिखा भी। जनसाधारण की ऐसी धारणा है कि समाजवाद की ओर भारत को ले जाने वाले पं० जवाहरलाल नेहरू हैं, परन्तु जो जानते हैं कि पंडित नेहरू के समाजवाद की बात कहना आरम्भ करने से बहुत पहले से भारत में कम्युनिस्ट पार्टी काम कर रही थी, वे इस बात पर विश्वास नहीं करेंगे। खैर, कुछ भी हो नेहरूजी का समाजवाद अन्त तक अस्पष्ट ही बना रहा। उन्होंने उसकी कभी व्याख्या नहीं की और न यही बतलाया कि भारतीय परिप्रेक्ष में वह कैसे समाजवाद की अवतारणा करना चाहते हैं। सन् १९४० ई० तक कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के आचार्यजी के अनेक साथियों ने अपने को मार्क्सवादी कहना बन्द कर दिया था, परन्तु आचार्यजी अपने जीवन के अन्त तक मार्क्सवादी बने रहे। फिर भी वह कट्टर मार्क्सवादी रहे हों ऐसा नहीं कहा जा सकता। भारत के राष्ट्रीय संग्राम के सन्दर्भ में उस संग्राम में गाँधीजी जो भूमिका अदा कर रहे थे और समाजवादियों को उस राष्ट्रीय संग्राम में किस प्रकार भाग लेने की आवश्यकता है, इस विषय में मार्क्सवादियों अर्थात् भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के साथ आचार्य नरेन्द्र देव के मौलिक मतभेद थे। इन मतभेदों को व्यक्त करने तथा अपने विश्वासों के अनुसार कार्य करने में वह कभी नहीं हिचके। यह केवल संयोग नहीं था कि जबकि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का सन् १९४२ ई० की लड़ाई में पूरा सहयोग था, उस समय भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ब्रिटिश शासन के साथ खुले तौर पर मिलकर कार्य कर रही थी।

सन् १९४७ ई० में भारत स्वतन्त्र हुआ। पूरा एक युग समाप्त हुआ और एक नये युग का आरम्भ हुआ। बदलती हुई अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों, सम्बन्धों तथा विरोधों के प्रभावों का आकलन करने में आचार्य नरेन्द्र देव को कुछ भी समय न लगा और नये आधार प्रबन्ध के प्रारम्भिक गद्यांशों में उन्होंने विश्व की गतिविधियों को बड़े ही अद्वितीय ढंग से निम्नलिखित स्मरणीय शब्दों में सार रूप में लिख दिया है।

"तब से दुनियाँ भी बहुत बदल गई है और भारत भी। जिस दुनिया में हम रह रहे हैं वह अब द्वि-ध्रुवीय नहीं रह गई है। एटलांटिक और सोवियत दोनों ही गुटों में बहुत कुछ बदलाव आ गया है। फ्रान्स का अमेरिकन प्रभाव से मुक्त हो जाना, स्वेज (नहर) से पूर्व की असम्भाविता, ब्रिटेन से यूरोप की न उबाई जा सकनेवाली पुकार, पश्चिमी जर्मनी में पूर्व के साथ बातचीत करने की उत्तेजना तथा दक्षिण पूर्व से चीन का बढ़ता आतंक इन सबने यूरोपीय गुट की कल्पना

को बल दिया है। एक ओर से अमेरिका तथा दूसरी ओर से चीन यह दोनों इस विस्तृत भूभाग को, जिसमें प्राचीन रूस के पूर्व और दक्षिण में स्थित प्राचीन एशिया के अनेक बड़े हिस्से शामिल हैं, दोनों ओर से दबाना चाहते हैं।

नाभिकीय तथा अंतरिक्ष की खोज में लगी जातियाँ, न ये बमों की कल्पना से परे विनाशकीय शक्ति, अन्तर महाद्वीपों, प्रक्षेपास्त्रों से सुरक्षा की असम्भाविता तथा दूसरी ओर चीन का नाभिकीय शक्तिवाले देश के रूप में उभरना, यह दोनों दो महाशक्तियों को इस बात के लिये मजबूर कर रहे हैं कि वे विश्व को समझदारी से काम लेने के लिये प्रेरित करें और इस प्रकार विश्व के रक्षकों की भूमिका अदा करें।

जापान की आश्चर्यजनक प्रगति के सामने जर्मनी की प्रगतिशीलता फीकी लगने लगी है। सोवियत की आर्थिक प्रगति जड़ हो गयी है। योजना तथा सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों ने मुक्त व्यवसायियों के परम्परागत क्षेत्र में कुछ और नयी प्रगति की है जबकि साम्यवादी देशों की सहतीत योजना, केन्द्रीयकृत श्रमजीवी नियंत्रण तथा अनिवार्य समूहन के विरुद्ध परिव्यय लेखन तथा पुस्तपालन ने अपना अधिकार स्थापित करना आरम्भ कर दिया है।

एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका नव उपनिवेशवाद के सीधे शिकार हैं। यह नव उपनिवेशवाद किसी एक शक्तिसमूह तक ही सीमित नहीं है। औद्योगिक रूप से प्रगतिशील देशों तथा पुराने ढंग की साम्राज्यवादी लड़ाइयों को जन्म देनेवाले परस्पर विनाशकारी साम्राज्यवादी झगड़ों का युग समाप्त हो रहा है और एक नया युग उसका स्थान ले रहा है जिसमें यह नारा सुनाई देने लगा है कि "दुनियाँ के विकसित देशों एक हो जाओ।" पूर्व और पश्चिम का विरोध समाप्त हो रहा है और उसका स्थान लेने जा रहा है उत्तर और दक्षिण का झगड़ा।

परिणाम अनिश्चित है क्योंकि जबकि विकसित राष्ट्र बदलते हुए परिवेश का धीरे-धीरे एहसास करते हुए आपस में पुनर्व्यवस्थापन के प्रयत्न में लगे दिखते हैं, वहीं विकासशील देशों में इस प्रकार की जागृति बहुत कम दिखलाई दे रही है। विकासशील देशों में जो कुछ आगे बढ़ गये हैं, अल्प विकसित देशों का साथ छोड़कर प्रायः विकसित तथा समुद्र देशों के संघ में शामिल होने को उत्सुक दिखलाई दे रहे, बजाय इसके कि उनको अपने साथ लेकर उन सभी को उन्नति के एक नये स्तर पर ले जायँ, विकसित राष्ट्रों का सदा यह प्रयत्न रहा है कि वह कम विकसित देशों के बीच मनमुटाव पैदा करें और फिर उन्हीं के मूल्य पर उनकी समस्याओं को सुलझाने का दिखावा करें। उनकी शक्ति और साधन सम्पन्नता तथा साथ ही साथ "क्या दाँव पर है" इस बात के प्रति जागरूकता ऐसा करने में उनकी सहायक बनती है। अल्पविकसित राष्ट्र इन निर्णायक कारकों की अनुपस्थिति में अपने को असहाय पाते हैं।

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का लाभ अवश्य हुआ परन्तु प्रजातन्त्र जैसे दूर होता जा रहा है। एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका, सभी देशों में प्रजातन्त्र को

आत्मरक्षा करनी पड़ रही है । पिछड़ी तथा गत्यावरुद्ध अर्थ व्यवस्थाओं पर डाले जाने वाले जातिगत, जनजातिगत, प्रादेशिक तथा भाषाई प्रभाव राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद ही इतनी धूमधाम के साथ स्थापित की गयी प्रजातांत्रिक संस्थाओं को खोखला बनाये दे रहे हैं ।

किसानों की भूमिका, सत्ता के विकेन्द्रीकरण, भाषा तथा भाषाई प्रदेशों तथा उतने ही महत्वपूर्ण विषय, सम्पत्ति पर अधिकार, के बारे में आचार्य नरेन्द्र देव ने जो कुछ कहा वह आज भी उतना ही सही है । उदाहरण के लिये सम्पत्ति पर अधिकार के लिये उन्होंने लिखा था—

"सम्पत्ति से सम्बन्धित मौलिक अधिकार को इस तरह संशोधित करना है जिससे केन्द्रीय तथा प्रादेशिक दोनों ही विधायी प्राधिकारियों के लिये यह सम्भव हो सके कि वे सार्वजनिक हित के लिये सम्पत्ति का अधिग्रहण कर सकें और फिर समान रूप से उसका वितरण भी कर सकें । उनको वह अधिकार दिये जाने हैं जिससे वह उद्योगों तथा अन्य आर्थिक उद्योगों का समाजीकरण कर सकें तथा सम्बन्धित कर्मकारों के वर्ग के सामाजिक हित में वैयक्तिक सम्पत्ति तथा वैयक्तिक व्यवसायों के सार्वजनिक प्रबन्ध की व्यवस्था दे सकें । ऐसी दशाओं में यदि मुआवजा दिया जाय तो कितना दिया जाय, इसके निर्णय का भी अधिकार केवल विधायी प्राधिकारी को ही हो ।"

आचार्य नरेन्द्र देव इस परिणाम पर पहुँच चुके थे कि समाजवादी क्रान्ति में किसानवर्ग की भूमिका का ठीक-ठीक मूल्यांकन करने में योरोपीय मार्क्सवादी बराबर असफल रहे हैं । एंगेल्स के लेखों से जिस उद्धरण को उन्होंने इतने सार्थक ढंग से प्रस्तुत किया है उसने अपने मार्क्सवादियों को चौंका दिया होगा । आचार्यजी निश्चित रूप से भूमि के बलपूर्वक किये गये समूहन के विरुद्ध थे । वे समाजवादी कार्यकर्त्ताओं को सहकारिता की कला तथा उसकी उपयोगिता के विषय में किसानवर्ग को प्रबुद्ध करने तथा उनमें सहकारिता की प्रवृत्ति, सार्वजनिक उत्तरदायित्व की भावना तथा सार्वजनिक सम्पत्ति के प्रति पवित्रता का भाव जागृत करने के लिए प्रेरित किया करते थे । आचार्यजी इस बात पर जोर दिया करते थे कि यह कार्य सांगठनिक, शैक्षिक, रचनात्मक तथा साथ ही साथ संघोतिक भी है ।

समाजवाद के विरोध में जो सबसे बड़ा आरोप आमतौर पर प्रस्तुत किया जाता है वह यह है कि उसका यह सामुदायिक दृष्टिकोण व्यक्तिगत स्वतंत्रता, उद्यम तथा उत्साह को नष्ट कर देता है । प्रश्न उठता है कि क्या समाजवादी समाज का सर्वोत्तम स्वरूप एक ऐसी वाणी को समझ लिया जाय जिसके सदस्य दीमक नहीं बल्कि मनुष्य हैं, ऐसी दीमकी बाँबी जहाँ अनेक युग बीत जाने पर भी व्यवस्था में न कोई परिवर्तन हुआ है और न कोई नवीनीकरण । सब कुछ वैसा ही जैसा कि युगों पहले की प्रथम वादी में था । यदि ऐसा है तो ऐसी मानव व्यवस्था के लिये, ऐसे संगठन के निर्माण के लिये प्रयत्न करना व्यर्थ है । आचार्य नरेन्द्र देव

इस प्रश्न पर दूसरे ढंग से विचार करते हैं। नया आधार प्रबन्ध के उपसंहार में आचार्यजी ने इस समस्या पर कुछ विस्तार के साथ लिखा है। उन्होंने अपने दृष्टिकोण को काफी गम्भीरता के साथ सामने रखा है। आचार्यजी का तर्क है कि समाज प्रत्येक व्यक्ति का एक भाग है। वह कहते हैं "वह ठीक उसी तरह अकल्पित है जिस प्रकार की उसका कोई या सभी सदस्य। यद्यपि समाज का अस्तित्व उन व्यक्तियों से अलग नहीं है जोकि समाज बनाते हैं परन्तु उसे पूरे तौर से उन व्यक्तियों का व्यक्तित्व ही नहीं मान लिया जा सकता। समाज एक व्यवस्था है जो व्यक्तियों और उनके व्यक्तित्व को जन्म देते हैं।

इससे स्पष्ट है कि आचार्यजी के लिये शुद्ध आत्मवाद का कोई महत्त्व नहीं, कोई उपयोगिता नहीं और न उस व्यवस्था का ही कोई मूल्य है जिससे प्रत्येक व्यक्ति आत्मवाद द्वारा घट कर या पूरी तरह से नष्ट होकर एक ही कार्य, विधा या व्यक्तिगत लाभ का रूप ले ले और असामाजिक आत्मश्लाधा की भावनाओं को आवश्यकता से अधिक बढ़ावा दे। इस प्रकार वर्तमान व्यक्तिवादी सामाजिक व्यवस्था पर यह आरोप लगाते हुए कि उसने मानव के व्यक्तित्व को विरूप करके एक अपना ही हित देखनेवाला पेज बना दिया है, आचार्य नरेन्द्र देव एक सामाजिक उपगमन के पक्ष की वकालत करते हैं। वह कहते हैं—"इसके यह अर्थ नहीं कि व्यक्ति या उसके व्यक्तित्व की अवहेलना की जाय वरन् केवल यह कि संकुचित आत्मश्लाघा पूर्ण व्यक्तिवाद व्यक्तित्व के विकास में अवरोध करता है, व्यक्तित्व अपने अन्यतम विकास को तभी प्राप्त कर सकता है जब उसकी प्राप्ति के लिये उच्चतम सार्वजनिक सामाजिक प्रयत्न किये जायँ।" आचार्य नरेन्द्र देव से इस विषय में कोई सहमत हो या न हो परन्तु इस बात का मुझे निश्चय है कि हमें आचार्य नरेन्द्र देव जैसा रचनात्मक संघर्ष करनेवाला योद्धा तथा परम्परानिष्ठ मार्क्सवादी दृष्टिकोण में विश्वास न करनेवाला दूसरा आचार्य प्राप्त करने के लिये बहुत दिनों तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

एन० जी० गोरे : पूर्व हाई कमिश्नर, इंग्लैण्ड (भारत सरकार) और प्रख्यात समाजवादी नेता।

प्रो० राजाराम शास्त्री : भारतीय समाजवाद के जनक आचार्य नरेन्द्र देव

टिप्पणी : समाज शिक्षण तथा प्रबुद्ध जनमत में विश्वास

समाज के अनेक रूपों में आचार्य नरेन्द्र देव कार्ल मार्क्स और उनके विचारों से सर्वाधिक प्रभावित थे। वे मार्क्स को एक महान् समाज वैज्ञानिक मानते थे। किन्तु वे मार्क्स द्वारा अपने समय में कही हुई सभी बातों का समर्थन नहीं करते थे, क्योंकि विश्व में समाजवादी आन्दोलन में बाद के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक विकास ने मार्क्स की कुछ बातों को अप्रासंगिक बना दिया था। विशेषकर मार्क्स को प्राच्य जगत की सामाजिक संस्थाओं और परम्पराओं का पर्याप्त ज्ञान नहीं था, जिससे वे भारत और चीन जैसे एशियाई देशों के लिये उपयुक्त व्यवस्थायें निर्धारित कर सकते। अतः एशिया के नेताओं को अपने देश के समाजवादी आन्दोलन के लिए कुछ भिन्न दिशाओं का अनुसरण करना पड़ा। चीन में माओ-त्से-तुंग ने कम्युनिज्म का अपना एक नया रूप विकसित किया और भारत में आचार्य नरेन्द्र देव ने भारतीय समाजवादी आन्दोलन को ऐसी दिशा में विकसित किया जो भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल थी। फिर भी वे समाजवाद को एक सार्वभौम सिद्धान्त और सारे संसार में ऐतिहासिक विकास का अगला कदम मानते थे। उनकी राय में विभिन्न देशों में इस सार्वभौम सिद्धान्त का प्रयोग उनकी विशेष परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिये। भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में औद्योगिक सर्वहारा और किसानों के सम्बन्धों की कट्टर मार्क्सवादी धारणा को बदलना होगा और छोटे किसानों को औद्योगिक श्रमिकों के समान ही एक क्रान्तिकारी शक्ति मानना होगा। इसी प्रकार भारत का जाति भेद मार्क्स द्वारा प्रतिपादित वर्ग भेद में पूरी तरह अन्तर्निहित नहीं हो सकता, इसलिये भारतीय समाजवाद को वर्ग और जाति के दो प्रतिद्वन्द्वियों का एक साथ मुकाबला करना होगा और इन दोनों मोर्चों पर विजय प्राप्त करने के लिये उपयुक्त रणनीति का निर्धारण करना होगा। जो देश हाल में साम्राज्यवादी पंजों से मुक्त हुए हैं उनके राष्ट्रीय आन्दोलनों को समाजवादी आन्दोलन के अन्दर पूर्ण रूप से समाहित करना होगा और जनता को जनतंत्र के मूल्यों में प्रशिक्षित करना समाजवादी कार्यक्रम का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग होगा, विशेषकर इसलिये की सामन्तवादी और रूढ़िवादी परम्पराओं के अवशेष भारतीय समाज एवं संस्कृति में अब भी विद्यमान हैं।

मार्क्स ने कहा है कि धर्म की आलोचना समस्त आलोचना का आधार है। यह एक महान् सत्य है, क्योंकि सभी समाजों में धर्म एक ऐसी व्यापक संस्था रहा है जो व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के हर पक्ष में आलोचना का आधार है। यह एक महान् सत्य है, क्योंकि सभी समाजों में धर्म एक ऐसी व्यापक संस्था रहा है जो व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के हर पक्ष में अनुस्यूत लौकिक चिन्तन, पारलौकिक चिन्तन से इतना पराभूत और मिश्रित हो गया था कि विचार या व्यवहार का कोई भी ऐसा अंग दिखलाना असम्भव था जिसे शुद्ध रूप से लौकिक

कहा जा सके। यह तो धीरे-धीरे विचार और संस्कृति के विकास के क्रम में देखा गया कि लौकिक जीवन के अनेक पक्ष एक के बाद एक पारलौकिक क्षेत्र से बाहर निकलते गये और पारलौकिक क्षेत्र क्रमशः सीमित होता गया। आज की दुनिया के विकसित विचारों में जीवन के हर अंग में पारलौकिकता को चुनौती दी जा रही है। जीवन और सारा जगत एक ही प्रकृति का विस्तार है और दूसरी कोई चीज नहीं है। परलोक या दूसरी दुनिया की कल्पना मनुष्य के ज्ञान के छिद्रों को भरने का एक मानसिक प्रयास और सामाजिक संगठन के अन्तर्विरोधी और अन्यायों की क्षतिपूर्ति का एक प्रयत्न मात्र है। इसी विचार सारणी का अनुसरण करते हुये आचार्य नरेन्द्र देव किसी पारलौकिक जगत में विश्वास नहीं रखते थे, और इस कारण न तो वे धर्मवादी थे और न ही किसी संगठित धर्म के अनुयायी क्योंकि धर्म की परिभाषा परलोकवाद से की गई है। इस प्रसंग में आचार्यजी के वृहत् ग्रन्थ बौद्ध धर्म दर्शन के प्रकाशन से कुछ भ्रांतियाँ उत्पन्न हो गईं थीं। आचार्यजी के कुछ निकट सहयोगी उन्हें बौद्ध धर्मानुयायी समझने लगे थे, किन्तु आचार्यजी बौद्ध धर्म अथवा किसी अन्य धर्म के अनुयायी नहीं थे, किन्तु समस्याओं के इतिहास के गहन अध्ययन से वे इस निश्चय पर पहुँचे थे कि धर्म के जटिल ढाँचे में बड़े प्रेरणादायक नैतिक एवं सांस्कृतिक तत्त्व गुँथे हुए थे जिन्होंने मनुष्य को प्रगति के पथ पर आगे बढ़ाया था और इन तत्त्वों को अपने शुद्ध रूप में लौकिक संस्कृति के अंग के रूप में देखना चाहिए, चाहे वे जितने भी धार्मिक आवरणों से ढँके हुए हों। आचार्यजी महायान बौद्धमत के बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के आदर्श से बहुत प्रभावित थे और उन्होंने मुक्त कंठ से इसकी प्रशंसा की है क्योंकि उन्हें इसमें उस महान् समाजवादी और मानववादी मूल्य के दर्शन होते थे जिसके अनुसार किसी विशेष व्यक्ति या वर्ग के हित की तुलना में वृहद समाज का हित ही सर्वोपरि मूल्य है। बौद्ध धर्म में आचार्यजी भारत के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के लिये भी एक प्रबल सांस्कृतिक आधार देखते थे। वास्तव में हमारी विदेश नीति में इस पक्ष की खेदजनक उपेक्षा की गई है। परिणाम स्वरूप एशिया के अनेक देशों से हमारी सांस्कृतिक मैत्री का विस्तार नहीं हो सका। बौद्ध धर्म का एक और पक्ष जिसने आचार्यजी जैसे बुद्धिजीवी व्यक्ति को आकृष्ट किया, उसमें बौद्धिकता की प्रधानता थी जो उसे सर्वाधिक बुद्धिवादी धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करती है। धर्म में अन्तर्निहित इन प्रेरणादायक सांस्कृतिक तत्त्वों के इतने प्रशंसक होते हुए भी आचार्यजी धर्मानुयायी नहीं थे, धर्मों के अन्वेषक और विद्वान् अवश्य थे, क्योंकि धर्म विश्व संस्कृति के विकास की एक मंजिल के रूप में दिखाई देता है। धर्म के रचनात्मक तत्त्वों का आदर करते हुए आचार्यजी ने धर्म की रचनात्मक मीमांसा की है, जिसे मार्क्स समस्त विचार मीमांसा का आधार मानता है।

इस प्रकार धर्म के आलोचक होते हुए भी आचार्यजी एक अत्यन्त आध्यात्मिक पुरुष थे, मार्क्स ने भी आध्यात्मिकता को सामाजिक और बौद्धिक संस्कृति तक

सीमित कर दिया था जबकि आचार्य नरेन्द्र देव एक ऐसे आन्तरिक अनुभव को स्वीकार करते थे जो तर्क या युक्ति से प्राप्य नहीं है केवल अन्तः-स्फूर्ति से प्राप्त है, और वे इसी आन्तरिक अनुभव को उदात्त नैतिक दायित्व और सर्वजनहित के लिये आत्यन्तिक आत्मत्याग की प्रेरणा का आदि स्रोत मानते थे। इस आंतरिक संवेदना के अतिरिक्त वे प्रकृति की विशालता एवं उदारता में एक विशेष सौन्दर्य का अनुभव करते थे। यही नैतिक, मानसिक, सौन्दर्यानुभूति सम्मिलित रूप से एक समग्र अनुभव के रूप में आचार्यजी की आध्यात्मिकता की परिभाषा बनाती है, जो आर्थिक एवं उपयोगितावादी शब्दों में नहीं ढाली जा सकती। आध्यात्मिकता के स्वरूप के सम्बन्ध में कार्ल मार्क्स से इस मतभेद के अतिरिक्त आचार्य नरेन्द्र देव द्वन्द्वात्मक विकास के विशेषज्ञ होते हुए भी अपने को द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी न कहकर द्वन्द्वात्मक सहवादी कहते थे। वे मार्क्स से इस बात में सहमत थे कि जगत की सत्ता वास्तविक है और वह एक भ्रम मात्र नहीं है, किन्तु जहाँ मार्क्स जगत के मूल तत्त्व के रूप में भौतिक तत्त्व को महत्त्व देता है और चेतना को उस भौतिक तत्त्व का एक गुण मात्र मानता है जो उसके विकास क्रम में आगे चलकर एक विशेष अवस्था में उत्पन्न होता है, यहाँ आचार्य नरेन्द्र देव यह मानते हैं कि चेतना समस्त भौतिक तत्त्व में विकास की न्यूनतम अवस्था में भी आरम्भ से ही विद्यमान है। यह दूसरी बात है कि विकास की विभिन्न अवस्थाओं में चेतना के भिन्न-भिन्न विकासोन्मुख रूप दिखाई देते हैं, जिन्हें हम कहीं संवेदन, कहीं प्राणशर, कहीं बुद्धि के रूप में पाते हैं। आचार्य जी भौतिक तत्त्व की अपेक्षा चेतना को प्रकृति का अधिक महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं क्योंकि यह प्रकृति पर प्रभुत्व प्राप्त करती है और उसकी सक्रिय और सृजनात्मक शक्ति है। भौतिक तत्त्व पर चेतना को प्रधानता देने के कारण आचार्यजी अपने को भौतिकवादी नहीं कहते, दूसरी ओर जगत की वास्तविक सत्ता को स्वीकार करने के कारण वे अपने को दार्शनिकों के दूसरे खेमें अर्थात् प्रत्ययवादियों में भी नहीं रखते, जिनके अनुसार संसार वास्तविक न होकर एक विशाल कल्पना मात्र है। इस प्रकार आचार्य नरेन्द्र देव के दर्शन का समाहार द्वन्द्वात्मक सदवाद शब्द में होता है। आध्यात्मिकता और मानवता के उच्च आदर्शों का अनुसरण करते हुए और प्राचीनकाल से महात्मा गांधी तक की भारतीय परम्परा को गहराई से आत्मसात कर देने के कारण आचार्य नरेन्द्र देव जी अपने को भौतिकवादी नहीं कहते, दूसरी ओर जगत की वास्तविक सत्ता को स्वीकार करने के कारण वे अपने को दार्शनिकों के दूसरे खेमे अर्थात् प्रत्ययवादियों में भी नहीं रखते जिनके अनुसार संसार वास्तविक न होकर एक विशाल कल्पना मात्र है। इस प्रकार आचार्य नरेन्द्र देव के दर्शन का समाहार द्वन्द्वात्मक सदवाद शब्द में होता है। आध्यात्मिकता और मानवता के उच्च आदर्शों का अनुसरण करते हुए और प्राचीनकाल से महात्मा गांधी तक की भारतीय परम्परा को गहराई से आत्मसात कर लेने के कारण, आचार्य नरेन्द्र देव की समाजवादी रणनीति में हिंसा का यथासम्भव पूर्णतः त्याग किया गया था। मार्क्स ने भी न्यूनतम

हिंसा की बात कही थी, किन्तु उसके अनुयायियों ने इस सिद्धान्त की उपेक्षा ही की। आचार्य नरेन्द्र देव का विश्वास था कि ऐसा क्रान्तिकारी आन्दोलन जिसे विशाल जनसमुदाय का समर्थन प्राप्त हो, स्वभावतः अहिंसक होता है। वास्तविक क्रान्ति तो तभी हो सकती है जब बहुसंख्यक जनता मानसिक रूप से उसके लिये तैयार हो चुकी हो, ऐसे आन्दोलन में शक्ति का अधिग्रहण सैनिक शक्ति से न होकर राजनीतिक शक्ति से होता है, जो समस्त जनता की संगठित संकल्प शक्ति से बनती है। इस प्रक्रिया में जो कुछ हिंसा आवश्यक हो सकती हैं, वह अल्पसंख्यक निहित स्वार्थों के प्रतिक्रियावाद के कारण होती है जिसकी तुलना, नैतिक दृष्टि से विधानतः प्रतिष्ठित किसी सरकार द्वारा दिये जानेवाले उस दंड से की जा सकती है जो वह देशद्रोह के अपराधियों को देती है। क़िन्तु यह सिद्धान्त तब तक सार्थक नहीं होता जब तक कोई आन्दोलन बहुसंख्यक जनसमाज को अपने साथ नहीं ले लेता। ऐसी स्थिति में प्रति क्रान्ति की सम्भावना अधिक होती है जो मूक क्रान्ति को पीछे ढकेल देती हैं और थोड़े या अधिक समय के लिए उसे विलम्बित कर देती है।

इस प्रकार गांधीजी के राजनीति में अहिंसात्मक साधन की कल्पना को आचार्य नरेन्द्र देव के विचारों में युक्ति संगत आधार प्राप्त हुआ। यह धारणा कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित न्यूनतम हिंसा की मूल अवधारणा से भी सुसंगत है।

जनमानस को क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिये तैयार करने हेतु अहिंसा की मूल रणनीति के अनुसार साध्य की उपलब्धि के लिये साधन भी तदनुकूल ही होना चाहिये। इस प्रसंग में राजनीति और पार्टी संगठन के षड़यंत्रमूलक तरीके उपयुक्त नहीं है और वर्ग नैतिकता से भी उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो सकती। आचार्यजी पूछते थे कि यदि हम अपने दल वालों और दूसरों के साथ व्यवहार करने के भिन्न-भिन्न मापदण्ड रखेंगे तो दूसरों को अपने दल में कैसे आकृष्ट कर सकेंगे। इस सरल रीति से वे वर्ग नैतिकता का सारा आधार ही गिरा देते थे और उसे केवल षड़यन्त्रकारी संगठनों के लिये उपयुक्त दिखलाते थे जो वर्ग अधिनायकवाद के लिये कार्यरत होते हैं न कि एक खुले हुए पार्टी संगठन के लिये जो कि व्यापक जनतंत्र के लिये कटिबद्ध होता है। आचार्यजी के लिये नैतिकता मानव मात्र के लिये सार्वभौम होती है न कि भिन्न-भिन्न वर्गों के लिये अलग-अलग।

जनान्दोलन की अहिंसात्मक रणनीति का व्यावहारिक रूप शिक्षणात्मक होगा न कि आक्रमणात्मक। आक्रमणात्मक तकनीक उस समय स्वभावतः उपस्थित हो जायेगी जब शक्ति को हस्तगत करने के लिये निर्णयात्मक प्रहार करना होगा। जनता को तैयार करने के लिये मुख्य कार्यक्रम जनतांत्रिक एवं समाजवादी जन-प्रशिक्षण ही होगा। इसलिये आचार्यजी की योजना में जन शिक्षण ही समाजवादी कार्यक्रम की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रणनीति है। जनतांत्रिक समाजवाद में दृढ़ विश्वास रखने के कारण वे राष्ट्र के जनतांत्रिक आधार को मजबूत बनाना आवश्यक समझते थे। क्योंकि उसके बिना समाज में अवशिष्ट सामंतवादी तत्त्वों से निर्मित कृषक

समाजवाद एक प्रकार का सामंतवादी समाजवाद होगा जो कि वास्तविक समाजवाद की एक विडम्बना मात्र होगा । हमारे समाज में जहाँ जाति एवं सम्प्रदायमूलक आस्थाओं का प्रभुत्व है एक ऐसे धर्म निरपेक्ष और समतामूलक समाज की रचना कठिन है जिसमें राष्ट्रीय निष्ठा क्षेत्र एवं सम्प्रदाय की संकुचित निष्ठाओं को उन्मूलित या कम से कम पराभूत कर दे । जनतांत्रिक समाजवादी समाज के निर्माण के लिए जनतांत्रिक राष्ट्रीयता एक आवश्यक आधारशिला है । इसलिये आचार्यजी बहुविध समाज और विविधता में एकता के प्रचलित नारों के कायल नहीं थे । वे देश में प्रचलित खाने, पीने, कपड़े पहनने और व्यवहार के सैकड़ों तरीकों की आलोचना करते थे और इस अव्यवस्थित विविधता में राष्ट्रव्यापी एकता की स्थापना आवश्यक समझते थे । वे देखते थे कि अनेकता तो हर जगह दिखाई देती है, किन्तु इस अनेकता में निहित बहुचर्चित एकता बहुत कम दिखाई देती है । व्यापक राष्ट्रीय निष्ठाओं और परम्पराओं के निर्माण के लिये आचार्यजी जनतांत्रिक जनशिक्षण को सर्वोपरि महत्त्व देते थे, क्योंकि यही एक मार्ग है जिससे हमारे समाज में व्याप्त साम्प्रदायिक एवं क्षेत्रीय भेदों तथा विद्वेषों का उन्मूलन किया जा सकता है ।

समाज का शिक्षण और प्रबुद्ध जनमत का निर्माण आचार्यजी की राय में उन सभी राजनीतिक दलों की जिम्मेदारी है जो किसी जनतांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत काम कर रहे हैं, चाहे वे शासन पक्ष के या विरोध पक्ष के हों । आचार्यजी की राय में यह बड़ा दुर्भाग्य है कि राजनीतिक पार्टियों का एकमात्र उद्देश्य सत्ता का अधिग्रहण हो जाय और वे राष्ट्र को बनाने और उसकी निरन्तर प्रगति के व्यापक दायित्व की उपेक्षा करते रहे ।

आचार्यजी ने विरोध पक्षीय दलों के लिये जो ऊँचा आदर्श उपस्थित किया था वह यह था कि यद्यपि वे शासक दल की असफलताओं का पूरा लाभ उठाते हुए अपने कार्यक्रम को आगे बढ़ा सकते हैं, किन्तु वे जनता की बढ़ती हुई विपत्ति से प्रसन्न नहीं हो सकते, किसी सरकार को गिराने के लिये स्थिति को और बदतर बनाने का दोषी होने की तो बात ही छोड़ दीजिए । हर अवस्था में उन्हें किसी भी पक्ष से होनेवाले ऐसे प्रयासों के साथ सहयोग करना चाहिए जो स्थिति में सुधार लाने के लिए किये जाते हैं । इसके अतिरिक्त इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्हें अपने स्वतन्त्र कार्यक्रमों को संचालित करना चाहिए । १९४८ ई० में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी जब कांग्रेस से अलग हो गई थी, उस समय अपने सभी समाजवादी सहयोगियों के साथ उ० प्र० की विधान सभा से त्याग पत्र देकर आचार्यजी ने विरोध पक्ष के लिए जो उदात्त आदर्श उपस्थित किया था, वह विपक्ष की नैतिकता का एक उज्ज्वल उदाहरण है, जिसकी तब से उत्तरोत्तर उपेक्षा ही होती गई और परिणाम स्वरूप हमारी संसदीय राजनीति नितान्त अस्थिर होती गई जिससे अविश्वसनीयता का संकट उपस्थित हो गया है । जिम्मेदार और दूरदर्शी नेताओं द्वारा निर्मित ऐसी नैतिक कसौटियाँ ही जनतांत्रिक परीक्षण का आधार बनती है जिसका स्थान कोई कानूनी या संवैधानिक व्यवस्था नहीं हो सकती ।

जनतांत्रिक शिक्षा को इतना महत्त्व देने के परिणामस्वरूप आचार्यजी प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओं का एक समुदाय बनाना आवश्यक समझते थे, जो समाजवाद के मार्च में अगले दस्ते का काम करें। उनकी राय में एक ऐसा जागरूक कार्यकर्त्ता जिसने समाजवाद के तत्त्व को आत्मसात कर लिया है और उसे अपने जीवन में उतार लिया है ऐसे सौ कार्यकर्त्ताओं के बराबर है जो इस शिक्षण सामग्री से वंचित हैं। आचार्यजी की अन्तिम इच्छा जो अब तक पूरी न हो सकी, एक या अनेक ऐसी प्रशिक्षण संस्थाएँ स्थापित करने की थी जिसमें उदीयमान समाजवादी कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षण प्राप्त हो।

प्रो० राजाराम शास्त्री : समाजवादी नेता, पूर्व कुलपति—काशी विद्यापीठ, वाराणसी, पूर्व संसद सदस्य, प्रमुख लेखक एवं विचारक।

प्रेम भसीन : लक्ष्य की ओर बढ़ें

टिप्पणी : एक अदम्य योद्धा

आचार्यजी के सम्बन्ध में कुछ भी लिखना सरल नहीं है । उनकी दुःखद मृत्यु की याद हृदय में अपार वेदना पैदा करती है । क्या यह किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिए जिसने उनका स्नेह और विश्वास थोड़ी भी मात्रा में पाया है उनकी बात सोचते समय भावुक न हो उठना सम्भव है ? ज्यों-ज्यों समय बीत रहा है उनकी मृत्यु से जो स्थान रिक्त हुआ है उसकी पूर्ति सम्भव नहीं दीखती है ।

विश्व समाजवाद के इतिहास में उनका नाम सर्वोच्च व्यक्तियों में है । यह भारत के लिये गर्व की बात है कि उसने ऐसा रत्न पैदा किया । वे प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के लिये जिये और मरे, यह स्मृति पार्टी की सबसे बड़ी धरोहर रहेगी और इस बात से देश की भावी पीढ़ियाँ प्रेरणा लेंगी । उनका अनुकरण करना या उनके समान होने की चेष्टा करना हमारे लिये सदैव प्रेरणा का विषय रहेगा ।

उनके जीवन से कौन सी शिक्षा ली जा सकती है ? उनका गहन ज्ञान ? निश्चय ही । उनका अदम्य शौर्य ? हाँ । उनका निस्वार्थ व्यवहार और सैद्धान्तिक विश्वास, उनकी नम्रता, सहृदयता, सौम्य जिसने बीमारी की परवाह किये बिना अपना कार्य किया, सभी कुछ ग्रहण किया जा सकता है । परन्तु इन सबसे बढ़कर उनका जनतांत्रिक व्यवहार है, जिसके कारण दोस्तों और सहयोगियों के बीच कोई मनमुटाव नहीं आने पाया । जो मूल्य चले आ रहे थे वे उन्हें नष्ट करने वाले नहीं थे बल्कि नये मूल्यों के वे निर्माणकर्ता थे । जहाँ सिद्धान्त का प्रश्न था वे कठोर थे । परन्तु व्यक्तिगत व्यवहार में वे स्वयं कष्ट झेलकर भी दूसरों के लिये त्याग करने वाले थे ।

उनकी यादगार बनाये रखने के लिये हम कौन सा स्मारक बना सकते हैं ? वास्तव में उन्हें सिद्धान्त और उसकी पूर्ति के हथियार के रूप में पार्टी सर्वाधिक प्रिय थी और उसी के लिये उन्होंने प्राण त्याग दिया । उन्होंने पार्टी की रक्षा के लिये अपने शरीर की चिन्ता नहीं की और संकट की घड़ी में उसकी नाव खेकर पार लगायी । आज उनके जन्म दिवस पर हमें अपने हृदय को टटोलना चाहिये और पूछना चाहिये कि क्या हम उनके उत्तराधिकारी होने लायक हैं ? क्या हम उन परम्पराओं की रक्षा कर रहे हैं जो उन्होंने छोड़ी हैं ?

उनका सबसे बड़ा स्मारक यही हो सकता है कि हम उनकी आत्मत्याग की भावना को ग्रहण करें और जनतांत्रिक समाजवाद की पार्टी को सबल बनाकर समाजवादी लक्ष्य की ओर बढ़ें ।

प्रेम भसीन : समाजवादी नेता एवं लेखक ।

प्रो० मुकुटबिहारी लाल : आचार्य नरेन्द्र देव

टिप्पणी : मानवीय मुक्ति के विश्वासी

शील, देश प्रेम और निष्काम सेवा आचार्य नरेन्द्र देव के जीवन के मूल मंत्र थे। बाल्यकाल में ही आचार्यजी ने अपने पिता से शील की शिक्षा प्राप्त की थी और वे आजीवन वैयक्तिक और सामाजिक शील का पालन करते रहे। उनका जीवन सादा, उनका व्यवहार मधुर और लोक हितकारी था। वे उच्चकोटि के देश-भक्त थे। आजीवन उन्होंने देश की सेवा की। अपने स्वास्थ्य का तनिक ध्यान न देते हुये वे देश के स्वतंत्रता संग्राम में आगे बढ़कर सदा ही हिस्सा लेते रहे। उनकी देश सेवा स्वार्थ रहित थी। देशहित ही सेवा का मूल उद्देश्य था। देश-बन्धुत्व ही उनकी राष्ट्रीयता का आधार था। मैजनी और गांधीजी की तरह आचार्य नरेन्द्र देव की राष्ट्रीयता भी व्यापक राष्ट्रीयता थी जिसका उद्देश्य राष्ट्र-एकता, स्वतंत्रता और जनहित की वृद्धि करना था। वे मानव समाज की एकता पर विश्वास करते थे और राष्ट्रहित को मानव कल्याण का अंग समझ कर ही उसकी वृद्धि के लिये सचेष्ट रहते थे। आचार्यजी एक मानवीय पुरुष थे। मानवता के पुजारी थे। मानव कल्याण की वृद्धि, मानव जीवन का प्रमुख उद्देश्य समझते थे। उनका निश्चित मत था कि मानव कल्याण के लिये सतत् प्रयत्न, जीवन के पूरे विकास के लिये परम आवश्यक है। समाज से अलग रह कर मनुष्य अपने जीवन का पूरा विकास कभी नहीं कर सकता। उनके विचार में सामाजिक सहानुभूति मानव जीवन का अंग है और समाज में रहकर सामाजिक सम्पर्क और सामाजिक सहयोग के द्वारा ही, सामाजिक सहानुभूति का पूर्ण रूप से विकास करके ही मानव जीवन का ठीक-ठाक विकास सम्भव है। सब मनुष्य समाज के ऋणी हैं, जो जितना बड़ा है उतना ही वह समाज का अधिक ऋणी है। उतना ही वह समाज के प्रति अधिक उत्तरदायी है। मनुष्य की शक्ति उसके अधिकार का मापदण्ड होने के बजाय उसके उत्तरदायित्व का मापदण्ड है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए ही आचार्य नरेन्द्र देव ने आजीवन निष्काम भाव से समाज की सेवा की और सेवा के द्वारा ही अपनी सभी जीवन शक्तियों का विकास किया, अपने पुरुषत्व की सिद्धि प्राप्त की।

आचार्य नरेन्द्र देव मानव समाज के कल्याण और नैतिक जीवन के विकास के लिये अन्याय का विरोध आवश्यक समझते थे। उनका विचार था कि शोषण विहीन समाज में सामाजिकता के आधार पर ही मनुष्य का नैतिक विकास हो सकता है। लेकिन स्वार्थ-प्रेरणा पर आश्रित वर्ग समाज में सामाजिक भावनाओं का विकास बहुत कुछ अवरुद्ध हो जाता है। ऐसे अन्यायपूर्ण समाज में अन्याय का निरन्तर विरोध नैतिक जीवन और मानव कल्याण के लिये आवश्यक है। उनकी दृष्टि में वही पुरुष नैतिक है, जो कि अन्याय के साथ समझौता करने को तैयार न हो। जो स्वयं अन्याय करने से बचता रहे और दूसरों के अन्याय को सहन करने को तैयार न हो। उन्हें इस बात का सन्तोष था कि वे जीवन भर

अन्याय का विरोध करते रहे । उन्हें विदेशियों का राजनीतिक अन्याय ही नहीं अखरता था बल्कि स्वजनों का आर्थिक और सामाजिक अन्याय भी, इसीलिये वे राजनीतिक स्वराज्य के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक स्वराज्य के लिये भी प्रयत्नशील रहे, राजनीतिक स्वतंत्रता मिल जाने के बाद देश में जनतांत्रिक समाजवादी समाज प्रतिष्ठित करने में सचेष्ट रहे । उनके विचार में मानवता और समाजवाद का घनिष्ठ सम्बन्ध है । समाजवादी समाज में ही मानवता की पूरी सिद्धि सम्भव है ।

ऐसे समाज को कायम करने के लिये वे आवश्यक संघर्ष को भी मानवीय समझते थे । उनकी दृष्टि में स्वतन्त्रता संघर्ष की भाँति शोषितों का वर्ग संघर्ष भी मानवीय संघर्ष है । उनका दृढ़ विश्वास था कि समाजवादी आन्दोलन ने शोषितों को वर्ग संघर्ष के लिये संगठित करके मानव समाज का बड़ा उपकार किया है । क्रान्तिकारी संघर्ष के बिना मानवीय समाज की स्थापना सम्भव नहीं है ।

आचार्य नरेन्द्र देव जनतांत्रिक समाजवाद में विश्वास रखते थे । उनके विचार में समाजवाद के बिना राजनीतिक जनतंत्र अपूर्ण है और आज के युग में तो जनतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था ही वास्तविक जनतांत्रिक व्यवस्था है । वे व्यवहार में भी जनतांत्रिक थे । अपने विचारों को अपने साथियों पर लादने के बजाय सबके साथ उनका व्यवहार जनतांत्रिक था । साधारण से साधारण साथी की बात भी ढंग से सुनना, उनकी राय का भी आदर करना और सबकी राय को ध्यान में रखते हुए अपनी राय बनाना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे । वे एक सच्चे जनतांत्रिक नेता थे । एक दल के नेता होते हुए भी उन्हें सारे राष्ट्र का आदर प्राप्त था । सभी को उनकी योग्यता, उनकी ईमानदारी और देशभक्ति पर विश्वास था । सभी उनकी शिष्टता एवं कर्त्तव्य परायणता पर मुग्ध थे । भारतीय जनतंत्र को सबल बनाने के लिए वे जनतांत्रिक परम्पराओं को जागृत करना, जनतांत्रिक व्यवहार का पालन करना और जनतांत्रिक परम्पराओं को प्रतिष्ठित करना परम आवश्यक समझते थे । उनका निश्चित मत था कि देश की सभी प्रगतिशील शक्तियों का कर्त्तव्य है कि वे जनतांत्रिक प्रेरणाओं और परम्पराओं को पुष्ट करें और भारतीय जनतंत्र को सबल बनाते हुए राजनीतिक जनतंत्र का सामाजिक जनतंत्र की ओर विकास करें ।

आचार्यजी समाज उपयोगी शारीरिक श्रम और समाज उपयोगी बौद्धिक श्रम दोनों का ही आदर करते थे । उनका निश्चित मत था कि शारीरिक श्रम मानव व्यक्तित्व का अंग है । बहुजन समाज के व्यक्तित्व का विकास एवं प्रकाश समाज उपयोगी शारीरिक श्रम के द्वारा ही होता है और इसलिये समाज उपयोगी शारीरिक श्रम का आदर बुद्धिजीवियों के लिए आवश्यक है । उनके विचार में पूँजीपतियों की दलाली करने के बजाय श्रमिकों के साथ मिलकर नये समाज का निर्माण करने में ही बुद्धिजीवियों का गौरव है । इसलिये किसानों और मजदूरों के साथ सहानुभूति रखते हुये उनका सही नेतृत्व करना और उनकी संघटित शक्ति बल पर नये समाज का निर्माण करना अपना कर्त्तव्य समझते थे । वे किसानों,

मजदूरों और बुद्धिजीवियों के सहयोग पर जोर देते थे। उनका निश्चित मत था कि शारीरिक और बौद्धिक श्रम के समुचित सहयोग के आधार पर ही सम्पन्न समाज का निर्माण हो सकता है।

नरेन्द्र देवजी नवयुवकों के शिक्षक आचार्य थे। काशी विद्यापीठ में शिक्षक के कार्य को वे अपने जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य समझते थे। विद्यापीठ में ही उन्होंने अपने दार्शनिक और भारतीय संस्कृति के ज्ञान को पुष्ट किया तथा एशिया के स्वतंत्रता संग्रामों के इतिहास और राजनीति का अध्ययन किया और विद्यार्थियों को इन विषयों के साथ-साथ भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास की शिक्षा दी और उनकी राष्ट्रीय सेवा की भावनाओं को प्रोत्साहित और पुष्ट किया। उन्हें इस बात का सन्तोष था कि विद्यापीठ के बहुत से विद्यार्थियों ने अपने विचारों के अनुसार देश के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया और अपने राष्ट्र निर्माण के कामों में लगे हैं।

आचार्यजी देश के निर्माण के लिए नवयुवकों की सही शिक्षा और नेतृत्व को परमावश्यक समझते थे और इस सम्बन्ध में जो कुछ भी वे कर सकते थे सदा करते रहे। स्वास्थ्य लाभ के लिये यूरोप जाते समय उनकी यह इच्छा थी कि वहाँ से लौटने पर वे अपना सब समय नवयुवकों की शिक्षा में ही लगायें। अस्वस्थ रहने के कारण वे ऐसा नहीं कर सके। फिर भी उनका आदर्श जीवन और सदुपदेश नवयुवकों के पथ-प्रदर्शक का काम कर रहे थे। वे चाहते थे कि सांस्कृतिक आधार पर नवयुवकों के संघटन का निर्माण किया जाय। नवयुवक सारे संसार के संचित ज्ञान और अनुभव तथा देश की समस्याओं का अध्ययन करें। जनता से अपना सम्पर्क स्थापित करें और जनसेवा अपना पुनीत कर्त्तव्य समझें। वे समाजवाद को सांस्कृतिक आन्दोलन समझते थे, उनका अपना जीवन सांस्कृतिक जीवन था और वे चाहते थे कि सभी नवयुवक अपने जीवन को सांस्कृतिक बनावें और जनता में संस्कृति का प्रसार करें। वे रूढ़िवाद और परम्परावाद के विरोधी थे, उनका निश्चित मत था कि गतिशील संसार में सब पुरानी परम्पराओं का पालन असम्भव और हानिकर है। पर वे भारतीय संस्कृति के सजीव मानवीय तत्त्वों की पुष्टि के पक्ष में थे। भारतीय संस्कृति के सजीव मानवीय तत्त्व और पाश्चात्य संस्कृति के जनतांत्रिक और समाजवादी तत्त्वों के समन्वय द्वारा नई संस्कृति का विकास उनका सांस्कृतिक लक्ष्य था। उनका अपना जीवन इस सांस्कृतिक समन्वय का प्रतीक था।

आचार्यजी का सारा जीवन शिक्षाप्रद है। हम सबका कर्त्तव्य है कि उनके आचार और विचारों का अध्ययन करें। उनके आदेशों पर चलकर अपने जीवन को ऊँचा उठायें और ऐसे शोषण विहीन समाज का निर्माण करें कि जिसमें सब श्रमिक और बुद्धिजीवी भाई-भाई की तरह मिलकर समृद्धि की वृद्धि और उपयोग करें और सबको अपने व्यक्तित्व के विकास की पूरी-पूरी सुविधा प्राप्त हो।

प्रो० मुकुटबिहारी लाल : प्रख्यात् समाजवादी नेता, लेखक, प्रो० काशी विद्यापीठ, पूर्व सांसद एवं आचार्य नरेन्द्र देव जी के घनिष्ठ अनुयायी।

हरिविष्णु कामथ : आचार्यजी की स्मृति

टिप्पणी : राष्ट्रनायक आचार्य

आचार्य नरेन्द्र देव का दर्शन सन् १९५२ ई० में सांची में सर्वप्रथम हुआ। परन्तु उनके बारे में बहुत वर्ष पहले से ही मैं पढ़ और सुन चुका था। मेरी वह मुलाकात सारिपुत्र और महामोगल्यायन की राख स्थापन के अवसर पर हुई थी।

समाजवादी दल और किसान मजदूर प्रजा पार्टी का विलयन अभी-अभी हुआ था और बहुत मुख्तसर बातचीत करने के बाद प्रसन्न मुद्रा में आचार्य नरेन्द्र देव जी ने मुझसे कहा "अब आप भी आ जाइये।" मैं उस वक्त फारवर्ड ब्लाक में था। इसका विलयन प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में ६ माह बाद जुलाई सन् १९५३ ई० में कलकत्ते की उस महत्त्वपूर्ण बैठक में हुआ जिसमें जयप्रकाशजी ने नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के समाजवादी आन्दोलन में देव का स्वागत किया था।

आचार्य नरेन्द्र देव की क्रान्तिकारी चिनगारी ने किसी ऐसे को स्पर्श नहीं किया जिसे उसने गलाकर प्रकाशित न किया हो। अपने अवसान के केवल एक सप्ताह पूर्व इरोड में जिस पुरजोर भाषा में उन्होंने राज्य पुनर्निर्माण के कार्य में सरकार के प्रतिहिंसात्मक कार्यों की निन्दा की, वह अब भी मेरे कानों में गूँज रही है। फिर भी वे उन महान् राष्ट्रनायकों में से रहे जिनके अन्तःकरण में कोई दुर्भावना नहीं रही, जिनका हृदय निकृष्ट बात ग्रहण करने में असमर्थ था।

क्रूर मृत्यु ने उन्हें हमसे उस समय छीन लिया जब हमें उनकी सर्वाधिक आवश्यकता थी। उनका स्वास्थ्य टूट रहा था, किन्तु उन्होंने अपने सहयोगियों और अनुयायियों की पुकार को सहर्ष स्वीकार किया। नवम्बर १९५४ ई० में नागपुर के तूफानी विशेषाधिवेशन में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष आचार्य जे० वी० कृपलानी ने त्यागपत्र दिया था और जिच पैदा हो गई थी जिसका अन्त आचार्यजी की साहसपूर्ण स्वीकृति ने किया।

श्री श्रीप्रकाश : नवरत्न नरेन्द्र देव

टिप्पणी : नवरत्न आचार्य नरेन्द्र देव

आचार्य नरेन्द्र देव आज नहीं रहे । शोक और विषाद की इस घड़ी में उनके साथ अपने दीर्घ साहचर्य की इतनी विविध और असंख्य स्मृतियाँ मेरे मानस पट पर उभरती आ रही हैं कि मैं सोच नहीं पाता कहाँ से शुरू करूँ ।

नरेन्द्र देव जी को हम लोग स्नेहवश आचार्य कहते थे और वह सचमुच थे भी 'आचार्य' ही । जलियाँवाला बाग काण्ड के थोड़े दिन बाद इलाहाबाद में पंडित मोतीलाल नेहरू के निवास स्थान पर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में पहले-पहल हम लोगों की भेंट हुई थी । अगले वर्ष अपने मित्र श्री शिवप्रसाद गुप्त की उदारता और महात्मा गान्धी की प्रेरणा से हमने बनारस में काशी विद्यापीठ की स्थापना का निश्चय किया । नरेन्द्र देव जी से अनुरोध किया गया कि वह फैजाबाद में अपना घर और अपनी खूब चलती हुई वकालत छोड़कर उसके अध्यक्ष के रूप में बनारस पधारें । इसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया । १९२१ ई० के आरम्भ में ही हमने पूरी तेजी से अपना कार्य आरम्भ कर दिया था । संस्था का कार्य करते हुए मुझे नरेन्द्र देव जी के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । यह सम्पर्क धीरे-धीरे अत्यन्त प्रगाढ़ मैत्री में परिणत हो गया और उस पर जीवन भर किसी प्रकार की मलिनता की छाया नहीं पड़ी । इसे मैं अपने जीवन की अत्यन्त मूल्यवान निधियों में मानता हूँ ।

आचार्य नरेन्द्र देव बड़े स्निग्ध और अभिभावी व्यक्ति थे । जीवन भर भीषण अस्थमा का शिकार रहने पर भी उनके स्वभाव में अद्वितीय सन्तुलन और स्थिरता थी । मैंने जो कुछ इने-गिने आकर्षक व्यक्तित्व देखे हैं, वे भी उनमें से एक थे । जो कोई उनके सम्पर्क में आता, उनका प्रशंसक बन जाता और उनसे स्नेह कर उठता । वे सरल और सहृदय थे, सभ्य और विनम्र थे । कोई भी व्यक्ति किसी भी समय उनके पास तक पहुँच सकता था । जो जाता प्रसन्न होकर लौटता था, हर व्यक्ति को उनकी सहायता और सहानुभूति अनायास ही प्राप्त हो जाती थी । वह बड़े विनोदी थे और वाग्विदग्ध भी । एकान्त में बैठकर उन्मुक्त भाव से मित्रतापूर्ण बातचीत करने में वह बड़ा आनन्द लेते थे ।

शिक्षक के रूप में वह अप्रतिम थे । अनेक देशों के इतिहास, अनेक युगों के दर्शन, अनेक भाषाओं के साहित्य सभी में उनकी समान गति थी । आश्चर्य की बात यह है कि उनकी सबसे अधिक दिलचस्पी का विषय था राजनीति । इस विषय पर भी उनका वैसा ही अधिकार था, जैसा अन्य विषयों पर । अपने अगाध ज्ञान को वह अत्यन्त विनम्रतापूर्वक धारण किये थे । जिस किसी विषय को वह देखते थे उसे वह इतना स्पष्ट रोचक और सहज-सुगम बनाकर प्रस्तुत करते कि श्रोता उनका अर्थ सरलता से ग्रहण कर लेते और दुर्बोध विषय को सुबोध रूप

देने पर उनकी प्रशंसा किये बिना न रहते। बहुत समय तक अपने कुछ निकट के लोगों को छोड़कर कोई उन्हें जानता भी न था, परन्तु प्रसिद्धि की उन्होंने कभी परवाह नहीं की। उनके हाथ में जो काम होता था, इसी से वे पूर्णतः सन्तुष्ट रहते थे, उसी में उनकी लगन थी। शुरू से ही देश को स्वतन्त्र कराने की उनमें अदम्य लालसा थी। अनेक राजनीतिक आन्दोलनों में वह हँसते-खेलते कूद पड़े थे और बड़े से बड़े खतरे के अवसरों पर भी वे कभी पीछे नहीं हटे।

१९२९ ई० में जब महात्माजी काशी विद्यापीठ के दीक्षान्त समारोह की अध्यक्षता करने आये तो नरेन्द्र देव जी से पहली बार उनका निकट सम्पर्क हुआ। उस समय गांधीजी मेरे अतिथि थे। बाद में उन्होंने मुझसे कहा कि "नरेन्द्र देव जी के सम्बन्ध में उन्हें पहले कुछ न बताकर मैंने बड़ी भारी गलती की है, वह तो 'नवरत्न' हैं जिन्हें बहुत पहले ही मुझे जान लेना चाहिए था।" तब मैंने महात्माजी से कहा था कि "जिन्हें रत्नों की जरूरत होती है वे स्वयं ही तो उनकी खोज करते हैं, रत्न तो कभी उनके पीछे नहीं जाते।" तब से महात्माजी नरेन्द्र देवजी की ओर बहुत ही आकर्षित हुए थे और उनकी बहुत प्रशंसा किया करते थे। वे प्रायः नरेन्द्र देव जी को अपने आश्रम में बुला लेते थे और उनका उपचार करते थे कि किस तरह वह उस भीषण और क्लेशकारी व्याधि से मुक्ति पा जायें।

शीघ्र ही नरेन्द्र देव जी राजनीतिक क्षेत्र में प्रख्यात हो गए जो भी उनके सम्पर्क में आता, उनके चरित्र, उनके विवेक और ज्ञान के कारण उनका आदर करने लगता। महात्मा गांधीजी ने एक बार कांग्रेस की अध्यक्षता के लिए भी उनका नाम प्रस्तावित किया था। वह बहुत समय तक कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य रहे और अन्य सदस्यों के साथ कई वर्ष तक अहमदाबाद किले में नजरबन्द रहे। वे प्रायः मुझसे कहते कि जीवन में मेरी दो ही चीजों में दिलचस्पी है—एक तो दर्शन और दूसरी राजनीति। राजनीति में अपनी दार्शनिक पृष्ठभूमि के बावजूद, उनकी प्रवृत्ति अतिवाद की ओर थी, स्वराज्य प्राप्ति के बाद भी, जिसके लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया था और मुसीबतें झेली थीं, उन्होंने शासन व्यवस्था से अलग रहकर ही अपने भावित समाजवाद के लिए प्रयत्न करना पसन्द किया। बुद्ध के भव्य व्यक्तित्व, उनकी चिन्तनधारा और दर्शन में नरेन्द्र देव जी के लिए प्रबल आकर्षण था। प्राचीन भारत के इस महान् सपूत के उपदेशों और विचारों का उन्होंने अत्यन्त गहन अवगाहन किया था। जैसे उनकी रुचि का प्रसार राजनीति से बौद्ध दर्शन तक था, वैसे ही उनकी बातचीत के भी ये दो छोर थे। आज अगर बुद्ध के प्रति अगाध श्रद्धा और उनके उपदेशों का पालन करने का प्रयास हमारी राजनीतिक स्पृहाओं में एक जीवन सत्य बन गया है, यहाँ तक कि जिसने राजनीतिक सम्बन्धों को भी प्रभावित किया है, तो वह नरेन्द्र देव जी के अचेतन प्रयत्नों द्वारा ही सम्भव हुआ है। एक इतिहास प्रेमी के रूप में विभिन्न देशों के इतिहासों के विभिन्न युगों के सम्बन्ध में उनके व्याख्यानों को सुनकर स्वयं मैं मुग्ध हो जाया करता था। अतीत की धुँधली परिस्थितियों और व्यक्तियों को

वह अपने श्रोताओं के सामने जीवन्त वास्तविकताओं के रूप में प्रस्तुत कर देते। इन विषयों पर मैंने जब कभी भी उन्हें सुना तो आश्चर्य चकित और श्रद्धा-विनत हुए बिना नहीं रह सका।

एक व्यक्ति के रूप में तो नरेन्द्र देव जी में कोई कमी या दोष कभी दिखाई ही नहीं पड़ता था। मित्र के रूप में वह पर्वत के समान अडिग थे। शिक्षक के रूप में वह अद्वितीय थे—ज्ञान के विस्तार की दृष्टि से भी और अपने छात्रों को उन्होंने जितना स्नेह दिया और पाया उसके लेखे भी। एक विद्वान् के रूप में देखा जाए तो उनका पांडित्य अगाध था और जिन विभिन्न विषयों पर उनका अधिकार था, उनके अत्यन्त व्यवस्थित और अपरिमित ज्ञान के विषय थे। प्रत्येक विषय में उनकी समान गति थी। राजनीतिज्ञ के रूप में उनमें सच्चाई और ईमानदारी की पराकाष्ठा देखने को मिलती थी। दूसरों के मत के प्रति वह सहिष्णु थे। वह उसे भी माफ कर देते थे, जिसके बारे में जानते कि उसने उन्हें और उनके ध्येय को आघात पहुँचाया है। परन्तु वह अपना कर्मपथ सदा निर्धारित कर लेते थे और भय, पक्षपात, स्नेह एवं मनोमालिन्य से ऊपर उठकर जिस राह को ठीक समझते थे उसी पर निर्द्वन्द्व होकर चलते थे।

उनके देहावसान से देश ने एक महान् देशभक्त, संसार ने एक प्रकाण्ड विद्वान् और उनके साथियों और मित्रों ने उदारता, सरलता और स्नेह की एक जीवन्त प्रतिभा को खो दिया है। दूसरों की सेवा में अपना जीवन होम देनेवाले महात्मा के रूप में उनकी स्मृति और दृष्टान्त सदा जीवित रहेंगे, जिसके हम सैकड़ों-हजारों लोग ऋणी हैं, पर जो किसी का ऋणी न था। जिसने सदा देना ही जाना, लेना कभी नहीं। मुझे तो आशा नहीं कि मैं कभी फिर वैसे किसी व्यक्ति के दर्शन कर पाऊँगा।

श्री श्रीप्रकाश : आचार्य नरेन्द्र देवजी के घनिष्ट मित्र, पूर्व राज्यपाल महाराष्ट्र एवं कांग्रेस पार्टी के वरिष्ठ नेता।

रामकृष्ण हेगड़े : वे सौम्यवादी थे

टिप्पणी : सौम्यवादी आचार्य नरेन्द्र देव

आचार्यजी की स्मृति में श्रद्धांजलि के रूप में दो चार शब्द कहने के पहले मैं चन्द्रशेखरजी को बधाई देना चाहूँगा, क्योंकि अगर आज आचार्यजी की शताब्दी उत्सव मनाने के बारे में रुचि नहीं लेते तो शायद उसके बारे में और कोई रुचि नहीं दिखाता। आजकल हम सब लोग अधिकार के पुजारी हैं और अधिकार में जो होता है उनके भी पुजारी होते हैं। पिछले ४०-४२ वर्षों से अधिकार के मद में हम यह भूल गए हैं कि हमारे देश की आजादी के लिए और उन तत्त्वों के लिए जिन्होंने कुर्बानी और सेवा की है, उनकी सेवाओं को याद करें। जैसे भाई जार्ज फर्नाडीज ने कहा, किसी को आपत्ति नहीं है कि पंडितजी की शताब्दी मनाई जाए। पंडितजी हमारे देश के अत्यन्त श्रेष्ठ पुत्रों में से एक हैं और १६ साल हमारे देश के प्रधानमंत्री भी बने रहे, लेकिन दु:ख इस बात का है कि जो अधिकार में नहीं है, जो अधिकार से हमेशा दूर रहे हैं, उनकी हम याद भी न करे। आचार्य कृपलानीजी की जन्म शताब्दी पिछले साल हुई, उनकी याद किसी ने नहीं की। इसीलिए मैं कहना चाहता हूँ कि अगर चन्द्रशेखरजी ने इनीशिएटिव नहीं लिया होता तो पता नहीं आचार्यजी की शताब्दी भी वैसे ही बगैर नोटिस के चली जाती।

मैं भाग्यशाली था कि जब आचार्यजी लखनऊ युनिवर्सिटी में वाइसचांसलर बन कर गए, उस समय मैं लखनऊ विश्वविद्यालय के लिए भर्ती हो गया था पोस्ट ग्रेजुएशन में और फिर दुर्भाग्य की बात यह थी कि डेढ़ ही साल में उनको वहाँ से हटाकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का कुलपति बनाया गया। इसके विरोध में लखनऊ युनिवर्सिटी के सारे विद्यार्थीगण करीब एक महीने तक हड़ताल करते रहे और जब हम उनसे मिलने गए तो उन्होंने कहा कि काम यहाँ करें या वहाँ करें कोई फर्क नहीं होना चाहिए। मैं लखनऊ छोड़ रहा हूँ, लेकिन अपने पीछे हृदय का एक छोटा सा टुकड़ा छोड़कर जा रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि आचार्यजी की जैसे जिनकी कथकी-करनी में कोई फर्क नहीं है, लोग बहुत ही कम हैं। वे समाजवादी तो थे ही और कभी-कभी साम्यवादी भी थे, लेकिन उससे ज्यादा वे 'सौम्यवादी' थे। कोई बड़ा हो छोटा हो, किसी व्यक्ति की निन्दा उन्होंने कभी नहीं की, किसी व्यक्ति के मन को दुखाया नहीं और वे खुद जैसे एक छोटे से बालक के चरित्र की तरह निष्कलंक चरित्रवान् थे।

आजकल राजनीति में हम एक दूसरे से झगड़ा करते हैं, निन्दा और आलोचना करते हैं—वह परम्परा चली गई जब यह निन्दा, आपसी मतभेद या झगड़ा राजनीति तक ही सीमित था। वह दिन चले गए जब बुनियादी तौर पर विचार में चाहे जितना मतभेद हो लेकिन वैयक्तिक सम्बन्ध हमेशा मधुर रहते थे। डॉ० लोहिया और पंडितजी का राजनीतिक सम्बन्ध कैसा था ? आप सब लोगों

को मालूम है, लेकिन फिर भी पंडितजी ने उनको आम भेजा जब वे जेल में थे। इतना ही नहीं आज देश के जो प्रधानमंत्री हैं जब से पैदा हुए तो पंडितजी ने आचार्य नरेन्द्र देवजी से पूछा कि क्या नाम रखा जाए और उन्हीं ने सुझाया था कि राजीव रखा जाए। कम से कम इस नाते आज के प्रधानमंत्री उनकी याद करते।

आचार्य नरेन्द्र देव हमारे देश के अत्यन्त श्रेष्ठ पुत्रों में से एक हैं, उनके बारे में जो श्रद्धा और गौरव पार्टी बैरियर से बाहर है यह उसका प्रतीक है कि आज वसंत साठे से लेकर ई०एन०एस० नम्बूदरीपाद तक यहाँ मौजूद हैं इस मंच पर, इससे बड़ा कोई ट्रिब्यूट किसी को नहीं मिल सकता। मैं आचार्यजी को नम्रतापूर्वक प्रणाम करता हूँ और चाहता हूँ कि जो सादगी उन्होंने अपनी जिन्दगी में दिखाई, उसी सादगी के साथ हम मनाएँ उनकी शताब्दी।

रामकृष्ण हेगड़े : प्रमुख समाजवादी नेता, पूर्व मुख्यमंत्री, कर्नाटक सरकार, पूर्व महामंत्री, जनता पार्टी एवं पूर्व उपाध्यक्ष, योजना आयोग भारत सरकार।

जार्ज फर्नांडीज़ : उनके विचार हमारे रास्ते की मशाल है

टिप्पणी : विचारों के धनी आचार्य

आचार्यजी की जन्मशती के बारे में सरकारी दृष्टि का जिक्र किए बगैर मुझसे रहा नहीं जाता है। मैं जानता हूँ कि गंगा बाबू आज हम लोगों के बीच में नहीं हैं। उन्हें सरकार की ओर से बताया गया था कि आचार्य नरेन्द्र देव की जन्म शताब्दी के मामले में सरकार किसी प्रकार का न सहयोग दे सकती है और न ही कोई सरकार का बड़ा आदमी राष्ट्रीय समिति आदि बनाकर उसके साथ अपने को जोड़ सकता है। गुस्सा बहुत है मन में और इसलिए भी गुस्सा है कि इस सरकारी सोच के पीछे जो एक व्यक्तिवादिता की दृष्टि है जिसने पिछले एक अरसे से देश को तबाह करने का काम किया है, उसकी झलक हमको दिखाई दे रही है। यह नेहरू शताब्दी वर्ष है पंडितजी की याद में देश को जो भी बाते बतानी जरूरी हैं वे जरूर बताई जाएँ, मगर हम जानते हैं कि न केवल सरकारी तौर पर बल्कि जो भी सरकारी प्रतिष्ठान हैं, सार्वजनिक उद्यम हैं, सरकार के अनेक अंग हैं, उन सबकी ओर से आज पंडित जवाहरलाल नेहरू के बारे में नई पीढ़ी को मन चाहे ढंग से प्रशिक्षित किया जा रहा है। तमाम साधनों का इस्तेमाल करके वह प्रशिक्षण दिया जा रहा है। मेरी वह मान्यता है और शायद यहाँ जुटे हुए सभी लोगों की यह मान्यता हो कि देश के निर्माण के बारे में देश के सामने आज जो समस्याएँ हैं, उनके बारे में आचार्य नरेन्द्र देव की सोच रही है, उस सोच को समय नहीं मिटा सकता। रूस में गोर्बाच्योव के माध्यम से कुछ बदलाव की हवा बहने लगी, तो सामान्यतः सभी लोगों के मन में ऐसी बात चलने लगी कि समाजवाद का अब कोई विशेष महत्त्व नहीं है और इसलिए आर्थिक क्षेत्र में जिन बदलावों की कल्पना न केवल आचार्य नरेन्द्र देव ने बल्कि इस देश के समाजवादी आन्दोलन के तमाम नेताओं—बाबू जयप्रकाश नारायण, डॉ० राममनोहर लोहिया आदि ने रखी वह सोच हमारे देश में आर्थिक बदलाव के मामले में आज भी उतना ही महत्त्व रखती है जितना पिछले ४०-५० वर्षों में इन महापुरुषों ने अपने अध्ययन के माध्यम से देश की आर्थिक, सामाजिक समस्याओं को समझकर हम लोगों के सामने रखा था।

मैं यह मानता हूँ कि हिन्दुस्तान की व्यवस्था को जिन लोगों ने पिछले ४०-४२ वर्षों से बनाने और चलाने का काम किया है उनकी सोच इस देश में समाजवादी बदलाव, आर्थिक समस्याओं के निदान आदि के साथ जुड़ी हुई नहीं है, यह इतिहास ने सिद्ध करके दिखा दिया है। इसलिए आर्थिक मामलों में तरक्की पाए हुए देशों में फिर वह साम्यवाद पर विचार करनेवाले देश हों या पूँजीशाही विचारों पर चलनेवाले देश हों, उन राष्ट्रों में जो समस्याएँ हैं, उन समस्याओं के निदान के जो तौर-तरीके हैं, उनमें और हमारे देश की जो गरीबी, लाचारी और शोषण की जो व्यवस्था है, उसको मिटाने के मामले में जमीन आसमान का अन्तर

रहेगा और इस काम के लिए आचार्य नरेन्द्र देव, महात्मा गांधी, लोहिया और जयप्रकाश का मार्गदर्शन हम लोगों के लिए आने वाले दिनों में उपयुक्त रहेगा। हिन्दुस्तान के समाजवादियों ने मात्र आर्थिक बदलाव की ही बात लोगों के सामने नहीं रखी थी। उसके साथ इस देश में जो सामाजिक व्यवस्था में बदलाव की आवश्यकता रही है, बल्कि हजारों वर्षों से जिन लोगों ने उसको महसूस किया है, उस लड़ाई में भी हिन्दुस्तान के समाजवादियों का विशेष योगदान और मार्गदर्शन रहा है। मैं मानता हूँ कि हम लोग उस संघर्ष को आज भी बहुत कामयाबी की ओर ले जाने में सफल नहीं रहे हैं। समस्याएँ हैं, मगर उन समस्याओं पर इन महापुरुषों का मार्गदर्शन है और उस मार्गदर्शन को स्वीकार करके आगे बढ़ने का काम लोगों को करना है। इस बात को रखते हुए जो अपने मन की एक व्यथा है, उसको भी यहाँ दो शब्दों में व्यक्त करना जरूरी समझता हूँ।

जब हम याद करते हैं सभी महापुरुषों की और आज आचार्यजी की तो प्रकारान्तर से हम याद करते हैं उनके विचारों को, कार्यों को, दर्शन को और जो कार्यक्रम उन लोगों ने मार्गदर्शन के तौर पर हम लोगों के सामने रखा है, उसकी। लेकिन व्यथा इस बात की है कि आज केवल याद कर लेने तक ही सारा मामला हम लोगों का रुका हुआ है। उस कार्य को जो उनकी मृत्यु पर हम लोगों ने कहा था अधूरा रहा कार्य है जिसको पूरा करने के लिए हम वचनबद्ध हैं, वही शब्द आज से ३३ वर्ष पहले हम सब लोगों ने सार्वजनिक तौर पर या अपने-अपने ढंग से कहे थे। आचार्यजी के जाने के ठीक ग्यारह साल बाद डॉ० लोहिया गये १९६७ ई० में और उनके बारह साल के बाद जयप्रकाशजी गए १९७९ ई० में और हम सब लोग कहीं न कहीं वचनबद्ध हो चुके हैं कि उनके सपनों को साकार करना, उनके अधूरे काम को पूरा करना हम लोगों का अपना कर्त्तव्य रहेगा। मगर आज व्यथा इसी बात की है कि वे केवल शब्द ही रह गए। न आज वह संगठन है, न वह कार्यकर्त्ता हैं जो उस काम को सक्रिय ढंग से सघन रूप से कामयाबी की ओर ले जाने के लिए कटिबद्ध हों। इस व्यथा को केवल मैं व्यक्त मात्र करना चाहता हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि आज के समारोह में उस पर कोई निर्णय लेने का मौका नहीं है। मैं आप सभी लोगों के साथ आचार्य नरेन्द्र देव की पुण्यतिथि के अवसर पर उनको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अपने शब्द यहीं समाप्त करता हूँ।

जार्ज फर्नांडीज़ : प्रमुख मजदूर नेता, समाजवादी, पूर्व अध्यक्ष-ऑल इण्डिया रेलवे मेन्स फेडरेशन, पूर्व रेलमंत्री, पूर्व उद्योग मंत्री (भारत सरकार) एवं संसद सदस्य।

आचार्य बीरबल सिंह : आत्मत्याग और निस्पृहता के मूर्तिमान प्रतीक

टिप्पणी : आत्मत्याग और निस्पृहता के मूर्तिमान प्रतीक आचार्य

आचार्यजी के शरीर का एक-एक कण देशप्रेम और देशभक्ति से ओत-प्रोत था। एक बार जो उनके निकट सम्पर्क में आया, उसके हृदय में वे देशभक्ति की ऐसी अग्नि उत्पन्न कर देते थे जो कभी बुझनेवाली नहीं थी, स्वतंत्रता की ऐसी लगन पैदा कर देते थे जो उस व्यक्ति को देश पर मर मिटने के लिए तैयार कर देती थी। वे आत्मत्याग और निस्पृहता के मूर्तिमान प्रतीक थे।

आचार्य नरेन्द्र देवजी के अचानक निधन का समाचार सुनकर हम सब लोग स्तब्ध रह गये। यों तो आचार्यजी लगभग ३० वर्षों से श्वांस रोग से निरन्तर पीड़ित थे और इधर तीन चार वर्ष से उनकी तबीयत अधिक खराब हो गयी थी, पर १९५४ ई० में एक बार पाँच महीने के लिए यूरोप के प्रवास से उनके स्वास्थ्य में पर्याप्त सुधार हो गया था, पर भारत आते ही अपने मित्रों के दबाव से तुरन्त राजनीतिक कार्य में लग जाने के कारण उनका स्वास्थ्य जो बिगड़ा तो फिर संभल नहीं सका। पर इधर दो महीने से उनके अनन्य मित्र श्री श्रीप्रकाश जी ने उन्हें कोयम्बटूर के पास एक अच्छे स्वास्थ्य-स्थान में रख दिया था और वहाँ पर उनके स्वास्थ्य में सुधार होने लगा था। एक सप्ताह पूर्व यह समाचार मिला था कि उनका स्वास्थ्य सुधर रहा है और हम लोगों के हृदय में यह आशा बंधी थी कि वे शीघ्र ही आरोग्य होकर आ जायेंगे।

पर यकायक उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर हम सभी के हृदय को बड़ी गहरी चोट पहुँची। सहसा मन यह विश्वास करने को तैयार नहीं होता था कि अब आचार्यजी इस संसार में नहीं रहे और उनकी वे आँखें, जिनसे एक प्रकार का तेज टपकता था और जिनसे शत्रु और मित्र सभी के लिए सदा स्नेह की वर्षा होती रहती थी, सदा के लिए बन्द हो गयीं।

जब सन् १९३७ ई० में प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल स्थापित हुए, उन पर मंत्री पद स्वीकार करने के लिए बहुत दबाव डाला गया, परन्तु कांग्रेस समाजवादी दल के निश्चय की अवहेलना करके, जिसके वे संस्थापक थे, मंत्री पद स्वीकार करने के लिए वे तैयार नहीं हुए। उसके पश्चात् कितनी बार ऐसे अवसर आये जब कि केवल संकेत मात्र से उन्हें ऊँचे से ऊँचा पद मिल सकता था, पर वे अपने सिद्धान्त पर अटल रहे और कभी किसी पद के लिए इच्छा प्रकट नहीं की।

विद्यार्थी जीवन से ही वे देश की स्वतन्त्रता के लिए पागल रहते थे। जब वे कालेज में पढ़ते थे उस समय भी एक ओर क्रान्तिकारी दल के नवयुवकों से और दूसरी ओर कांग्रेस के उग्र विचार के नेताओं से बराबर सम्पर्क रखते थे। लोकमान्य तिलक के तो वे अनन्य भक्त थे, पर ज़ब महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता

प्राप्ति के निमित्त असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया, उन्होंने अपनी चलती वकालत छोड़ दी और स्वतंत्रता के आन्दोलन में कूद पड़े ।

अपने अनन्य मित्र, स्वर्गीय श्री शिवप्रसाद गुप्त के आग्रह पर उन्होंने काशी विद्यापीठ में आचार्य तथा अध्यापक पद स्वीकार किया, जिसकी स्थापना स्वयं गांधीजी ने देश के स्वातंत्र्य युद्ध के लिए सैनिक तैयार करने के निमित्त की थी । उसके लिए आचार्य नरेन्द्र देवजी जैसा संचालक मिल गया ।

काशी विद्यापीठ के अध्यापकों और विद्यार्थियों ने सन् १९२१ ई० से लेकर सन् १९४२ ई० तक के स्वतंत्रता संग्रामों में जो गौरवपूर्ण कार्य किया और ख्याति प्राप्त की उसका अधिकतर श्रेय आचार्य नरेन्द्र देव को है । वे विद्यापीठ के प्राण थे । उन्हीं से सबको नेतृत्व मिलता था, प्रेरणा मिलती थी, साहस और प्रोत्साहन मिलता था जिसके बल पर विद्यापीठ का एक साधारण विद्यार्थी नेताओं के जेल चले जाने पर जिलों में और प्रान्त में स्वतंत्रता संग्राम का सफल नेतृत्व एवं संचालन करता था ।

आचार्यजी कहा करते थे कि विद्यापीठ मेरी पूँजी है । मैंने अपनी जिन्दगी में यही पूँजी कमायी है और इसी पूँजी के बल पर अपना कारोबार चलाता हूँ । वास्तव में आचार्यजी के पढ़ाये हुए विद्यार्थियों ने न केवल स्वतन्त्रता संग्राम में विजयश्री प्राप्त की, बल्कि उनमें से कितने ही आज भी केन्द्र तथा प्रदेश में मंत्री पद, संसद तथा विधान सभाओं के सदस्य, सृजनात्मक कार्यकर्त्ता तथा अध्यापक और पत्रकार की हैसियत से देश के निर्माण में लगे हुए हैं ।

आचार्यजी का विद्यापीठ परिवार के लोगों से ऐसा स्नेह और वात्सल्य था कि आज कोई भी विद्यापीठ का उनका पुराना विद्यार्थी जहाँ कहीं भी होगा, उनके निधन के समाचार से शोकातुर हो गया होगा और एक अजीब सी शून्यता का अनुभव करता होगा ।

३५ वर्ष से आचार्यजी का शिक्षा संस्थाओं से सम्बन्ध रहा है । जहाँ कहीं वे रहे चाहे लखनऊ विश्वविद्यालय में कुलपति के रूप में अथवा काशी विश्वविद्यालय या काशी विद्यापीठ के कुलपति के रूप में उन्होंने अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार से विद्यार्थियों के हृदय कैसे जीत लिया और उनके हृदय में एक ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया । उन्होंने विद्यार्थी जगत में अनुशासन की एक नयी मर्यादा स्थापित की ।

वे एक कुशल अध्यापक तथा प्रशासक तो थे ही परन्तु इसके साथ-साथ वे प्राचीन तथा नवीन शास्त्रों के प्रगाढ़ पंडित और राजनीति तथा शिक्षा के क्षेत्र में एक सूक्ष्मदर्शी विचारक थे । भारतवर्ष के नवीन जागृतिकाल में वे गांधीजी की विशेष विभूतियों में से थे । वे विभूतियाँ एक-एक करके उठती जा रही हैं और उनके स्थान की पूर्ति होती दिखाई नहीं देती । क्या आचार्य नरेन्द्र देव जी के स्थान की पूर्ति हो सकेगी ?

आचार्य बीरबल सिंह : प्रमुख समाजवादी नेता, पूर्व सांसद एवं पूर्व कुलपति, काशी विद्यापीठ ।

सुरेन्द्र मोहन : मार्क्सवाद और समाजवाद

टिप्पणी : लोकतन्त्र समाजवाद का प्राण तत्त्व

आचार्य नरेन्द्र देव अन्त तक स्वयं को मार्क्सवादी कहते रहे। वे वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को मानते थे और उसे वर्ग, समाज का अनिवार्य घटनाक्रम समझते थे। उनका मत था कि वर्ग संगठन और वर्ग संघर्ष के द्वारा ही शोषित वर्ग, शोषण और आधिपत्य से छुटकारा पा सकता है। वर्ग संघर्ष को वे समाज क्रान्ति का आधार मानते थे। अतः चाहते थे कि समाजवादी शोषित वर्गों को संगठित करके उनमें ऐसी चेतना पैदा करें कि उनकी लड़ाई आर्थिक न रहकर राजनीतिक बन जाय। समाज क्रान्ति के लिये वे मध्यम श्रेणी के शिक्षितों के क्रान्तिकारी नेतृत्व की भूमिका को भी महत्त्वपूर्ण मानते थे।

किसानों के सम्बन्ध में उनकी धारणा थी कि एशिया में क्रान्ति की विजय के लिये किसानों के आर्थिक हितों को बृहतर समाजवादी समाज की स्थापना के सन्दर्भ में समझाना और उनके आर्थिक संघर्षों को क्रान्तिकारी संघर्षों के साथ जोड़ना जरूरी है।

परन्तु वर्ग संघर्ष के साथ-साथ वे कुछ मामलों में जैसे राष्ट्रीय स्वतंत्रता, मानवीय हित और विश्व शान्ति—वर्ग सहयोग को भी मंजूर करते थे और कहते थे कि उनके बिना समाज छिन्न-भिन्न हो जाएगा।

आचार्यजी समाज क्रान्ति के लिये लोकतन्त्र और वयस्क मताधिकारी को भारी महत्त्व देते थे और उनकी अनुपस्थिति में ही सशस्त्र संघर्ष को उचित मानते थे। उनकी राय थी कि बहुत से आधुनिक हथियारों के आविष्कार के बाद सशस्त्र क्रान्ति और भी ज्यादा कठिन हो गई है। जनतंत्र में जनतांत्रिक उपायों के स्थान पर विप्लव का नारा लगाने या उसकी छिपी हुई तैयारी को मूर्खता और आत्म प्रवंचना मानते थे, क्योंकि उसका नाम या बहाना लेकर पूँजीपति वर्ग लोकतन्त्र पर ही प्रहार कर सकेगा।

लोकतांत्रिक उपायों में शान्तिपूर्ण हड़तालें भी शामिल हैं और सत्याग्रह भी। किन्तु जहाँ गांधीजी सत्याग्रह के द्वारा विरोधी के हृदय परिवर्तन का प्रयास करते थे, वहाँ आचार्यजी उसे जनसंघर्ष का शांतिमय ढंग समझते थे। वे यह भी कहते थे कि सत्याग्रह को वर्ग संघर्ष का एक उपकरण स्वीकार कर लेने से मार्क्सवाद के किसी सिद्धान्त को कोई क्षति नहीं पहुँचती।

वे समाजवाद को एक बड़ा नैतिक और सांस्कृतिक आन्दोलन समझते थे और मनुष्य को उसका केन्द्र मानते थे। वे कहते थे कि मानव सर्वोपरि है और जो सिद्धान्तवाद या विचार—चाहे वह धर्म हो या दर्शन या अर्थशास्त्र—मानव के उत्कर्ष को घटाता है, वह मार्क्स को मान्य नहीं है।

वर्ग समाज में शोषकों और शोषितों के नैतिक आदर्शों में संघर्ष होता है।

जहाँ शोषक वर्ग अपने शोषण की व्यवस्था की समर्थक नैतिकता को मानता व मनवाना चाहता है, वहाँ शोषित वर्ग और ,उसका आन्दोलन क्रान्तिकारी नैतिकता का प्रतिपादन करते हैं। इसमें समाजवादी विचारक एवं संगठनकर्त्ता शोषक समाज की नीति संहिता की आलोचना करता है तो उसकी यह जिम्मेदारी बन जाती है कि उसकी क़थनी और करनी में अन्तर न आए अन्यथा शोषित वर्ग में विभ्रम पैदा होगा और आन्दोलन में दिशा हीनता आएगी।

वे यह भी मानते थे कि जिस लक्ष्य को प्राप्त करना है उसके लिये जो मार्ग चुना जाय वह उसकी मान्यताओं के प्रतिकूल न हो क्योंकि हर एक वर्तमान पग आगामी पगों को, उनकी दिशा व गति को प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त, जिस नैतिकता को हम मंजूर करते हैं, वह हमारे चरित्र और हमारे आन्दोलन के सोच की अंग बन जाती है और हमारे भविष्य के क्रान्तिकारी कार्यकलापों को गलत दिशा में ले जा सकती है। इसलिये वे कहते थे कि नैतिक तथा आध्यात्मिक विशिष्टता प्राप्त करने का प्रयत्न वर्ग संघर्ष का अविच्छिन्न अंग है। समाजवाद की लड़ाई मजदूर वर्ग के नैतिक उत्कर्ष की अपेक्षा करती है। यदि हम नैतिक आधार पर पूँजीवाद को घृणित बताते हैं तो हमें एक नैतिक स्तर पर समाज को नई दृष्टि देनी चाहिये। वे मार्क्स के इस कथन से सहमत थे कि सर्वहारा वर्ग को प्रतिदिन के भोजन की अपेक्षा आत्मविश्वास, स्वाभिमान और स्वतंत्रता की कहीं अधिक जरूरत है।

लोकतंत्र को आचार्यजी समाजवाद का प्रमुख अंग मानते थे और उसके बिना समाजवाद को वास्तविक नहीं समझते थे। इस सम्बन्ध में वे यह भी कहते थे कि समाजवाद ही पूर्ण लोकतंत्र है और वह मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास पर भी उतना ही बलदेता है जितना कि आर्थिक स्वतंत्रता पर। वे कहते थे कि मार्क्स स्वयं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को मानवता की सबसे पवित्र धरोहर मानते थे। आचार्यजी ने लिखा है कि मार्क्स और एंगेल्स ऐसे समाजवाद की कल्पना नहीं कर सकते थे जो जनता को रोजगार दे लेकिन उनके आवश्यक अधिकारों को छीनकर उन्हें ग़ुलाम बना दे। इस सम्बन्ध में उन्होंने मार्क्स द्वारा स्थापित कम्युनिस्ट लीग की एक पत्रिका में यह टिप्पणी उद्धृत की है—"हम उन-उन कम्युनिस्टों में नहीं है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता को नष्ट करने पर तुले हैं और जो विश्व को एक विशाल सेना शिविर या मेहनती लोगों का बाड़ा बना देना चाहते हैं। कुछ कम्युनिस्ट बिना हिचक व्यक्तिगत स्वतंत्रता को महत्त्वहीन समझते हैं और उसे संसार से समाप्त करना चाहते हैं। क्योंकि वे उसे पूर्ण होने में रुकावट मानते हैं।" किन्तु हमारा विश्वास है कि जो समाज सामूहिक स्वामित्त्व पर आधारित होगा उसी में सम्पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो सकेगी और किसी अन्य समाज में प्राप्त न होगी।

सुरेन्द्र मोहन : समाजवादी नेता, पूर्व सांसद एवं लेखक।

प्रभु नारायण सिंह : आदर्श नरेन्द्र देवजी - बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी राजनयिक महापुरुष

टिप्पणी : बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी आचार्य

भारत में समाजवाद के प्रणेता, समाजवादी आन्दोलन को प्रतिष्ठित करने वाले आदरणीय आचार्य नरेन्द्र देव जी से मेरी पहली मुलाकात उस समय हुई, जब वे १९४२ ई० के स्वतन्त्रता आन्दोलन में अपने बन्दी जीवन से मुक्त होकर १९४५ ई० में अहमदनगर फोर्ट से फैजाबाद आए थे। आचार्य नरेन्द्र देव तथा हिन्दुस्तान के समाजवादी १९४२ ई० में यह चाहते थे कि आजादी की आखिरी लड़ाई को गांधीजी के नेतृत्व में देश के किसान, मजदूर और युवा छात्रवर्ग लड़े। उस समय कांग्रेस में दो विचारधाराएँ थीं—एक के अगुआ आदरणीय जवाहरलालजी थे, जिनका ऐसा विचार था कि द्वितीय विश्वयुद्ध हिटलर के नाजीवाद और लोकतांत्रिक देश ब्रिटेन और उनके मित्रराष्ट्रों के बीच था। ऐसी दशा में कहीं लोकतंत्रीय देश हिटलर के मुकाबले कमजोर न पड़ जायें और ऐसी स्थिति में उस समय अपना देश आजादी का संघर्ष साम्राज्यवाद के खिलाफ छेड़े या न छेड़े यह दुविधा थी उनके मन में। दूसरी तरफ कांग्रेस में वे संघर्षशील एवं जुझारू ताकतें थी, जो यह चाहती थीं कि बर्तानवी सरकार भारत की आजादी कबूल करे, तो इस युद्ध में भारत की जनता भी ब्रिटेन के साथ खड़ी होगी। यदि ऐसा नहीं होता तो हमें उस समय अपनी आजादी का संघर्ष छेड़ना होगा।

आचार्य नरेन्द्र देवजी और उनके नेतृत्व में भारत के समाजवादी नेता इसी दूसरी नीति के अगुआ एवं हामीकार थे। यही कारण था कि आचार्यजी वर्धा में गाँधीजी के पास गए और उन्हें देश की जनता के ख्यालात से वाकिफ कराते हुए संघर्ष करने की सलाह दी। यही कारण था कि जब ९ अगस्त १९४२ ई० को मुम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ, तब उसने सर्वसम्मति से गांधीजी के नेतृत्व में "भारत छोड़ो" का प्रस्ताव पारित किया। स्वभावतः कांग्रेस वर्किंग कमेटी के मेम्बरों के साथ आचार्य नरेन्द्र देवजी को भी मुम्बई में गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें भी गांधीजी और जवाहरलालजी के साथ अहमदनगर फोर्ट में बर्तानवी सरकार द्वारा नजरबन्द कर दिया गया।

सन् १९४२ ई० के स्वतन्त्रता संग्राम के समय मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का छात्र था। मैंने और 'नेताजी' श्री राजनारायण ने विश्वविद्यालय के अन्य छात्र नेताओं के साथ उस लड़ाई में अगली पंक्ति में खड़े होकर संघर्ष में भाग लिया। नेताजी श्री राजनारायण और मुझे कांग्रेस वर्किंग कमेटी के छूटने के बाद ही नजरबन्दी से रिहा किया गया। छूटने पर मुझे यह पता चला कि आचार्यजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। मैं उन्हें देखने और मिलने फैजाबाद गया। आचार्यजी से पहली मुलाकात से मुझे ऐसा लगा कि आचार्यजी आजाद भारत कैसा हो, आजादी

की ताकत किसानों और मजदूरों के हाथ में कैसे आये या वह अन्य तत्त्वों के पास जाए, इस पर चिंतित थे। उनकी यह मान्यता थी कि भारत का भविष्य समाजवादी गणराज्य में ही उज्ज्वल हो सकता है। ऐसी दशा में वह इस तीव्रता में थे कि देश के अधिक से अधिक नौजवानों को समाजवादी विचार और उसके आदर्शों में दीक्षित किया जाए। मुझसे उन्होंने कहा कि आपने जेल में 'दास कैपिटल' पढ़ा या नहीं ? यह भी पूछा कि मार्क्सवाद पर और कौन-कौन सी किताबें पढ़ी हैं ? इस पर थोड़ी चर्चा के उपरान्त, उन्होंने हमें एक पतली-सी पुस्तक पढ़ने के लिए दी। यह पुस्तक और कोई दूसरी पुस्तक नहीं थी, बल्कि वह 'दास कैपिटल' के सारांश वाली किताब थी। इससे यह स्पष्ट है कि आचार्य जी देश में समाजवादी विचारधारा को बड़े पैमाने पर तेजी से फैलाना चाहते थे।

काशी विद्यापीठ के कुलपति होते ही, उन्होंने समाजवाद के विचारकों की फौज खडी की। वह चाहते थे कि यही समाजवादी विचारक सारे देश में फैलकर समाजवादी आन्दोलन के साथ कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को मजबूत करने का कार्य करें। आचार्यजी मार्क्स के 'वर्ग संघर्ष' को पूरी तरह मानते थे। उनकी यह धारणा थी कि बिना किसानों और मजदूरों के संगठन के समाजवाद की स्थापना नहीं हो सकती। इसी कारण, वे समाजवाद से दीक्षित और संघर्षशील कार्यकर्ताओं को मनाने का कार्य बहुत मन से करते थे।

राष्ट्रीयता और समाजवाद की लम्बी बहस भी आचार्यजी ने छेड़ी। सन् १९१७ ई० की रूसी क्रान्ति के बाद साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव दुनियाँ के सभी मुल्कों पर पड़ा। समाजवादी दुनिया यह मानती थी कि क्रान्ति की निरन्तरता बनी रहनी चाहिए। ऐसी दशा में कम्युनिस्ट अपनी यह जिम्मेदारी महसूस करते थे कि दूसरे मुल्कों में सशस्त्र क्रान्ति के माध्यम से सर्वहारा की तानाशाहीवाले समाज को बनाने की जिम्मेदारी उन मुल्कों की है, जहाँ पर साम्यवाद पहले आ चुका है। वे राष्ट्रीयता को नकारते थे और अन्तर्राष्ट्रीयता के कम्युनिस्ट प्रभाव को निरन्तर तेज करना चाहते थे। इस बहस में जो समाजवादी राष्ट्रीयता की बात करते थे उनको वे 'पेटी बुर्जवा' की संज्ञा देते थे। आचार्यजी पराधीन मुल्कों में आजादी की लड़ाई को प्रमुखता देते थे और साम्यवादी दुनियाँ के इस विचार में उनका हमेशा यही टकराव रहा। आचार्यजी का कहना था कि पराधीन भारत का पहला कर्त्तव्य अपने को आजाद कराना है और समाजवादी समाज की स्थापना उसका दूसरा प्रमुख लक्ष्य है। उसके इस मुद्दे पर बहुत बहस मुवाहसा हुआ। सन् १९४२ ई० के आजादी के संग्राम में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने भाग नहीं लिया, बल्कि उन्होंने एक तरह से उस ऐतिहासिक मौके पर आजादी के संघर्ष का विरोध भी किया। वैसे शुरू से ही इस मुद्दे पर समाजवादियों और कम्युनिस्टों के मध्य बड़ा विवाद और संघर्ष रहा। आचार्यजी ने जनयुद्ध के कम्युनिस्ट नारे का अपने कई लेखों में बड़ा मखौल उड़ाया है। आज तमाम दुनियाँ के अन्दर यह बात साबित हो गयी है कि साम्यवादी दुनिया के बड़े राष्ट्र

प्रायः अपने हित को पहले देखते रहे हैं और अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद के हित को बाद में। इस कसौटी पर आचार्यजी का विचार पूरा स्पष्ट और बेलाग था और इतिहास के कालचक्र में पूरा खरा उतरा है। वैसे कम्युनिस्ट दुनियाँ में भी आज ऐतिहासिक परिस्थितियों के दबाव से खुले समाज बनाने की बहस चल पड़ी है।

पूरे तौर से मार्क्सवादी होते हुए और वर्ग संघर्ष में पूर्ण आस्था रखते हुए आचार्यजी सर्वहारा की अधिनायकशाही के सिद्धान्त के बहुत पक्षधर नहीं रहे। आचार्यजी का यह मानना था कि नागरिकों के मौलिक अधिकार में बोली और लेखनी की आजादी सम्मिलित हो और सबको अपने विचारों की अभिव्यक्ति का पूरा अधिकार हो। उनका कहना था कि मानव समुदाय ने यह मौलिक अधिकार बड़े संघर्षों के बाद पाया है। ऐसी दशा में इसे छोड़ा नहीं जा सकता है। रोटी मिलने का हक और मानव जाति के मौलिक अधिकारों का प्रश्न साथ-साथ रहना आवश्यक है। यही कारण था कि भारत में समाजवादी आन्दोलन में एक अर्से तक बहस मुवाहसे के बाद "सर्वहारा की अधिनायकशाही" के सिद्धान्त को छोड़कर लोकतांत्रिक समाजवाद को सुदृढ़ करने पर जोर दिया गया। पर आचार्यजी इसी के साथ-साथ इस बात को भी मानते थे कि लोकतांत्रिक समाजवाद का कोई मतलब नहीं होता, जब तक कि वह वर्ग संघर्ष के आधार पर किसानों व मजदूरों के बलशाली संगठन की नींव पर आधारित नहीं। इस सन्दर्भ में अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए, उन्होंने कहा था कि हिन्दुस्तान में समाजवादी क्रान्ति की अगुवाई केवल, मजदूर ही नहीं, अपितु भारत का किसान उसकी अगुवाई एवं नेतृत्व देने की पहल करेगा। आज देश का किसान परिवर्तन के सिलसिले में जो करवट और अँगड़ाई ले रहा है उसे देखते हुए आचार्यजी के उस समय के विचार कितने सही और स्पष्ट थे, उसकी सार्थकता आज भी बनी हुई है।

आचार्यजी के विचार कभी-कभी अपने बड़े समाजवादी साथियों से समाजवादी आन्दोलन के ऐतिहासिक मोड़ पर भिन्न थे। लेकिन विचारों की भिन्नता के बावजूद उनका कभी अपने साथियों से मनमुटाव नहीं हुआ था। शायद यह उनके बड़प्पन और बड़ी इन्सानियत की निशानी है। इस संदर्भ में मैं सोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर प्रजा पार्टी के विलय के सम्बन्ध में मतभेद को यहाँ पर रखना चाहता हूँ। सोशलिस्ट पार्टी के बड़े नेताओं को कृपलानीजी की किसान मजदूर प्रजा पार्टी के साथ विलय की बात तय करनी थी, उसके पुष्टिकरण के लिए बनारस में सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय समिति की बैठक हुई। आचार्यजी ने उस बैठक में साफ शब्दों में कहा कि यह विलय समाजवादी आन्दोलन के हित में नहीं है, क्योंकि हमें अपने सिद्धान्तों से समझौता करना पड़ेगा, समाजवादी आन्दोलन को समग्र रूप में क्षति होगी। अपने इस मतभेद के बावजूद, उन्होंने विलय की सैद्धान्तिक मुखालफत करते हुए विलय के प्रश्न पर अपने साथियों से झगड़ा या मतभेद नहीं किया। दोनों पार्टियों के विलय के बाद प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का इलाहाबाद में सम्मेलन हुआ। उस सम्मेलन में भी आचार्यजी ने अपनी पूरी

तेजस्विता और आवाज की बुलन्दगी के साथ विलय का जिक्र करते हुए आगाह किया कि गंगा-यमुना-सरस्वती के मिलन का अन्त सारे सागर में कहीं न हो जाए। आज बहुत से साथी हैं, जो उस बात को मानते हैं कि यदि विलय नहीं हुआ होता और समाजवादी आन्दोलन अपने रास्ते चलता रहता, तो वह देश में आज समाजवादी राष्ट्रीय विकल्प के रूप में सत्ता का मुख्य और सही दावेदार होता।

आचार्यजी का दूसरा विरोध अपने बड़े समाजवादी साथियों श्री जयप्रकाश नारायण और श्री अच्युत पटवर्धन से इस बात पर भी था कि देश की संविधान सभा में देश के समाजवादी न जाएँ। आचार्यजी की यह मान्यता थी कि यदि भारत जैसे विशाल देश का संविधान एक बार बन जायेगा तो उसमें मौलिक परिवर्तन करना बड़ा मुश्किल होगा। उनका कहना था कि जिन लोगों को नेतृत्व करना चाहिए, वे कभी-कभी दूसरों के प्रभाव में आ जाते हैं। आज उनकी यह बात सत्य साबित हुई कि देश के संविधान में सच्चे समाजवादी समाज की रचना को मौलिक अधिकार के रूप में रखवाना मुश्किल हो गया है। काम के अधिकार तक को संविधान के मौलिक अधिकार में शामिल करा पाना आज मुश्किल हो गया है। यदि यह काम भी हो जाए तो देश के आर्थिक ढाँचे में मौलिक परिवर्तन करने की बाध्यता बन जायेगी।

आचार्य नरेन्द्र देव एक बड़े इन्सान थे, उन्होंने अपने विचार और आदर्शों के सामने पद को कभी कोई महत्त्व नहीं दिया। इसी क्रम में उनके जीवन की दो ऐतिहासिक घटनाएँ इतिहास में अमर कहानी के रूप में जिन्दा रहेगी। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जब दूसरी बार कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए उम्मीदवार थे, तब कांग्रेस के बड़े नेता उनका विरोध कर रहे थे। सुभाष बाबू ने उस समय प्रस्ताव किया था कि "यदि आचार्य नरेन्द्र देव अध्यक्ष पद स्वीकार करें तो मैं उनके पक्ष में अपना नाम वापस लेकर उनका समर्थन करूँगा।" किन्तु आचार्यजी ने उस मौके पर कहा था "क्योंकि कांग्रेस में हमारे विचारों का बहुमत नहीं है, ऐसी दशा में मेरा यह पद स्वीकार करना उचित नहीं होगा।" बड़ा इंसान ही अपने सिद्धान्तों के आधार पर इस तरह का फैसला कर सकता है। जब समाजवादियों ने कांग्रेस से इस्तीफा देकर अलग सोशलिस्ट पार्टी बनाने का फैसला किया, तब उस समय आचार्यजी ने भी, यह फैसला किया कि "क्योंकि हम लोग कांग्रेस के टिकट पर निर्वाचित हुए हैं, ऐसी दशा में हमें विधान सभा की सदस्यता से भी इस्तीफा दे देना चाहिए।" उस समय उ० प्र० की विधान सभा में सैकड़ों विधायक इस बात के लिए तैयार थे कि यदि आचार्यजी विरोध पक्ष में बैठें तो हम उनके साथ रहेंगे। आचार्यजी किसी मोह में नहीं पड़े। उन्होंने विधान सभा की सदस्यता से इस्तीफा देने के अपने निर्णय को कायम रखा। राजनीति में मर्यादा की आचार-संहिता इससे बढ़कर और क्या हो सकती है?

आचार्यजी महान शिक्षाविद् थे। हिन्दी, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी पर उनका एक तरह से बराबरी का अधिकार था। उनके काल में इन सभी भाषाओं का

उनसे बड़ा वक्ता कोई दूसरा नहीं था । काशी विद्यापीठ, लखनऊ विश्वविद्यालय और काशी विश्वविद्यालय के उप-कुलपति रहते हुए भी, उन्होंने हमेशा नीति और मर्यादा के तहत ही कार्य किया, कभी किसी के साथ भेदभाव नहीं किया । शिक्षा को आराध्य देवी मानकर ही उन्होंने शिक्षा जगत में कार्य किया । उनका वह काल स्वर्णिम काल था । एक बार महाकवि पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के अभिनन्दन समारोह के अवसर पर बोलते हुए उन्होंने कहा था कि "साहित्य के प्रति मेरी शुरू से ही बड़ी ममता रही है, साहित्य और राजनीति में किसे चुनूँ और किसे नहीं, यह सोचकर मेरे मन में हमेशा द्वन्द्व चला करता है । अभी तक क्योंकि देश पराधीन है, ऐसी दशा में राजनीति को मैंने पहला स्थान दिया है, पर साहित्य मेरी साधना का क्षेत्र है ।" इसी से यह बात समझी जा सकती है कि शिक्षा के प्रति उनका कितना बड़ा लगाव रहा है ।

आचार्यजी की मित्रता भी अभूतपूर्व थी । सम्पूर्णानन्दजी उनके समाजवादी साथी थे, पर वे मंत्रिपरिषद् में चले गये । फिर भी आचार्यजी के मन में उनके प्रति वैसा ही लगाव बना रहा । प्रारम्भ से ही जवाहरलालजी और जयप्रकाशजी से उनकी मित्रता रही । यद्यपि इनके विचारों में अलगाव और मतभेद था, फिर भी उन्होंने अपनी मित्रता एक सी कायम रखी । श्री चन्द्रभानु गुप्त कांग्रेस की मंत्रिपरिषद् में थे, आचार्यजी समाजवादी दल के सबसे बड़े नेता थे, फिर भी उनका निवास, सदा की भाँति श्री चन्द्रभानु गुप्त का ही निवास था । विचारों की भिन्नता ने कभी उनके मन में कटुता नहीं पैदा की । जो दोस्त थे, वे दोस्त रहे । आज की छोटी राजनीति के वह कायल नहीं थे ।

बौद्ध दर्शन पर उनकी ममता इस कारण थी कि वे समता के सिद्धान्त के आग्रही थे, वे देश से ऊँच-नीच की गैरबराबरी को खत्म करना चाहते थे । बुद्ध का यह सिद्धान्त "कर्म ही संस्कार बनाना है ।" उन्हें बड़ा प्रिय था । बौद्ध दर्शन अनीश्वरवाद दर्शन है, लेकिन आत्म के सिद्धान्त को मानता है, इस बात ने भी आचार्यजी को प्रभावित किया । बौद्ध दर्शन पर उनकी पुस्तक इतिहास की इतनी बड़ी उपलब्धि है, जो आगे आनेवाले समय में दिशाबोध के लिए प्रकाश का काम करेगी ।

आचार्यजी मर्यादा, शील और विनय के मूर्त स्वरूप थे, उनकी नवसंस्कृति में जहाँ प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ने की बात थी, समाज परिवर्तन के लिए वर्ग संघर्ष की आवश्यकता थी, वहीं पर मानव बनने के लिए विनय, शील और मर्यादा की आवश्यकता थी । उन्होंने इसी विचारधारा के आधार पर 'नवसंस्कृति संघ' की स्थापना का कार्य किया था । समाजवादी आन्दोलन में श्री जयप्रकाश और डॉ० राममनोहर लोहिया को उन्होंने सबसे बड़ी मान्यता दी थी । डॉ० लोहिया का बिलगाव उनके लिए असह्य था । जीवन के अन्त समय में भी यह बात उन्हें अखरती रही । डॉ० लोहिया जहाँ विचारों के धनी और संघर्षशील होने के कारण आचार्यजी के प्रिय थे वहीं पर डॉ० लोहिया के लिए उनके मन में इस कारण भी

ममता थी कि उनका कोई घर द्वार नहीं था। यही कारण रहा कि वे जीवन पर्यन्त डॉ० लोहिया को परिवार के एक सदस्य के रूप में मानते थे और उनकी देखभाल किया करते थे। इसी कारण डॉ० लोहिया का अलगाव भी उन्हें दुःखद और कष्टदायक रहा।

आचार्य नरेन्द्र देव महामानव थे। वे पूज्य बापू की तरह ऐसे नेक दिल इन्सान थे कि किसी के विचार मिले या न मिले, पर मन अवश्य मिलता था। पहली और दूसरी अक्टूबर १९८९ ई० को सारनाथ में आचार्य नरेन्द्र देव की जन्मशती समारोह का जो आयोजन है, वह अपने आप में एक ऐतिहासिक घटना है। केन्द्र की सरकार ने उनके समारोह को राष्ट्रीय महत्त्व का न मानकर एक निन्दनीय कार्य किया है। पर श्री चन्द्रशेखरजी ने उसे गैरदलीय आधार पर जनता के सहयोग और माध्यम से जो इस समारोह को आयोजित करने का कार्य किया है, वह बहुत ही प्रशंसनीय है और उसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

प्रभु नारायण सिंह : भारत छोड़ो आन्दोलन में भागीदार, सोशलिस्ट पार्टी से सम्बन्ध, सदस्य, उ० प्र० विधान सभा, १९५२-५८, सदस्य, लोकसभा, १९५९-६२, उद्योग एवं श्रम मंत्री, उ० प्र० सरकार १९६७, अध्यक्ष, हिन्द मजदूर पंचायत।

नारायण दत्त तिवारी : आचार्य नरेन्द्र देव के प्रति विचार

टिप्पणी : शिक्षाविद्, अनुसंधाता, विचारक और सुधी लेखक, आचार्य

भारतीय राजनीति के जिस शिखर पुरुष ने सत्ता के आकर्षण में बँधने से साफ इनकार कर दिया था, उसका नाम था आचार्य नरेन्द्र देव। उपेक्षितों की पीड़ा और शोषित वर्ग की व्यथा को समझने वाले, महात्मा गौतम बुद्ध और कार्ल मार्क्स के विचारों से पूरी तरह प्रभावित आचार्यजी को बाबू श्रीप्रकाश के माध्यम से गाँधीजी से मिलने का सुयोग प्राप्त हुआ था। पहली ही भेंट में उन्होंने गांधीजी को इतना प्रभावित किया कि वह बोल पड़े श्रीप्रकाश, इस हीरे को तुमने अब तक मुझसे छिपाये क्यों रखा ?

वस्तुतः आचार्यजी जैसे विरले ही नेता होंगे जो भविष्य के गर्भ में इतनी दूर तक झाँकने की क्षमता रखते हों। भारतीय राजनीति, समाज, व्यवस्था, बदलते हुए परिवेश तथा नये युग की चुनौतियों के बारे में उन्होंने जो कुछ कहा था, वह आज भी उतना ही प्रासंगिक है। आचार्यजी मूलतः एक शिक्षाविद्, एक अनुसंधाता, एक विचारक और एक सुधी लेखक थे। वह राजनीति को सत्ता का नहीं, सामाजिक परिवर्तन का साधन समझते थे। वह पक्के सिद्धान्तवादी थे और सिद्धान्तों से हटना उन्हें किसी भी कीमत पर स्वीकार न था।

आचार्यजी अपने राजनीतिक जीवन में सदैव मूल्यों के लिए संघर्ष करते रहे। अपने घर परिवार तथा अपने स्वास्थ्य की कुछ भी परवाह न करके, वह संगठन को मजबूत बनाने में लगे रहे, लेकिन 'सत्ता' ने उन्हें कभी अपनी ओर आकृष्ट नहीं किया। कांग्रेस पार्टी हाईकमान के निर्णय के अनुसार १९३७ ई० में उन्हें ही संयुक्त प्रान्त का पहला प्रीमियर बनना था, लेकिन उन्होंने यह ताज पं० गोविन्दवल्लभ पंत को दे दिया और स्वयं समाजवादी चिन्तन में लगे रहकर कांग्रेस संगठन को अपना नेतृत्व प्रदान करते रहे। पं० जवाहरलाल नेहरू चाहते थे कि आजादी के बाद आचार्यजी को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया जाये। किन्हीं कारणों से ऐसा न हो सका। लेकिन मेरा विश्वास है कि यदि स्वाधीनता के बाद कांग्रेस का नेतृत्व आचार्यजी को सौंप दिया गया होता तो आज देश का इतिहास कुछ दूसरा ही होता।

जिस गम्भीरता से वह राजनीति से जुड़े थे, उसी गम्भीरता से वह 'शिक्षा' के प्रति भी समर्पित रहे। उनकी दृष्टि से 'शिक्षक' का पद 'राजनेता' के पद से कहीं बड़ा था। काशी विद्यापीठ के आचार्य तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में उन्होंने शिक्षा जगत को नयी दिशा प्रदान की। भारतीय शिक्षा के स्वरूप निर्धारण में आचार्यजी ने जो भूमिका निभायी, वह आज विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है।

नारायण दत्त तिवारी : प्रमुख समाजवादी नेता, पूर्व मुख्यमंत्री—उ० प्र० सरकार एवं पूर्व मंत्री—(केन्द्रीय) भारत सरकार।

ठाकुर प्रसाद सिंह : आचार्य नरेन्द्र देव : एक अनुत्तरित प्रश्न

टिप्पणी : आचार्य नरेन्द्र देव : एक अनुत्तरित प्रश्न

१९४६ ई० की बसन्त पंचमी को निरालाजी की स्वर्ण जयन्ती वाराणसी में बड़ी ही धूमधाम से मनायी गयी। नागरी प्रचारिणी सभा के परिसर में एक भव्य पण्डाल के नीचे जो लोग एकत्र हुए थे, उन्होंने पिछले दिनों द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका से सीधा साक्षात्कार किया था, उनमें से कितने ही ऐसे थे जो १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन में सम्मिलित होने के कारण जेल गये थे और पिछले ही वर्ष जेल से छूटकर बाहर आये थे। इसके बावजूद वातावरण में बसन्त का उल्लास था। स्वतन्त्रता आयी नहीं थी लेकिन ऐसा लग रहा था कि वह आ गयी है। लोग दुःखी थे, अभावग्रस्त थे, लेकिन नये युग के स्वागत के लिये तब भी उनकी झोली गुलाल से भरी हुई थी। निराला का सम्मान इसलिये मात्र एक औपचारिकता न होकर सहज स्वीकृति का सन्देशवाहक बन गया था।

आचार्य नरेन्द्र देव ने उस रोमांच का अनुभव किया। समारोह के उद्घाटन के अवसर पर उन्होंने बिना किसी हिचक के अपनी निष्कम्प वाणी में कहा कि आनेवाला युग चिन्तकों, साहित्यकारों, कलाकारों का होगा। राजनीतिक अपना काम कर चुके हैं, उन्हें अब बैरकों में चला जाना चाहिये। उन्हें अवसर देना चाहिये, कल्पनाशील रचनाकारों को कि वे एक नयी संस्कृति की नींव डाल सकें। आचार्यजी के उस सहज उद्गार की छूत वहाँ उपस्थित लोगों को लगी और तो और मुंगिया सिल्क का ढीला ढाला पंजाबी कुर्ता पहने और विवेकानन्द की तरह मुंगिया सिल्क की पगड़ी सिर पर बाँधे मंच पर बैठे निरालाजी तक उस प्रवाह में बह गये। उन दिनों वे मानसिक रूप से अस्वस्थ रहने लगे थे। नरेन्द्र देवजी ने उन्हें ऐसी जगह छुआ था कि वह कुछ का कुछ कहने लगे। बड़ी मुश्किल से श्री नन्ददुलारे बाजपेयी, आचार्य श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र और श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान के बहुत घेरने पर वे 'जूही की कली' सुनाने हेतु प्रस्तुत हुए।

आज आचार्य नरेन्द्र देव के जन्मशती के अवसर पर उस समारोह की याद आती है, लेकिन उससे सुख नहीं मिलता। चौवालिस वर्ष पहले जिन राजनीतिज्ञों को बैरकों में जाने की बात आचार्यजी ने कही थी, वे न तो कहीं गये और न तो उन्होंने इस देश के कलाकारों, रचनाकारों और विचारकों को काम करने के लायक अवसर ही दिया। धीरे-धीरे अधिकांश साहित्यकार या तो मौन हो गये या उन्होंने समझौते कर लिये। बहुत से चारण धर्मी हो गये और कितनों ने ही दिनो-दिन बढ़ती जाती सरकारी मशीनरी के पुर्जे बन करके साहित्यकार, कलाकार को नये विचार-मंथन के लिये जगाना चाहा, लेकिन उनकी यह कोशिश प्रजा समाजवादी अथवा समाजवादी दल का सांस्कृतिक पक्ष बन कर रह गयी। मुझे याद है कि नव संस्कृति संघ का स्थापना समारोह वाराणसी में सम्पन्न होने वाला था। मैं भी उसके आयोजकों में से एक था और बराबर इस कोशिश में

लगा हुआ था कि वह समारोह बेनिया पार्क में होनेवाले समाजवादी दल के अधिवेशन के पंडाल में न हों। यह तय हुआ था कि समारोह टाउनहाल के मैदान में होगा और उसकी अध्यक्षता श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी करेंगे। उस दिन शाम को उद्‌घाटन की सारी तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी थीं और आचार्य द्विवेदी सहित सभी आमंत्रित साहित्यकार पण्डाल में एकत्र हो चुके थे, तभी एक हरकारे ने आकर कहा कि समारोह बेनिया पार्क में बने समाजवादी अधिवेशन के पण्डाल में ही होगा। सभी लोग धक् से रह गये, लेकिन आचार्यजी का ध्यान रखकर समारोह किसी तरह सम्पन्न हुआ। यह घटना मात्र इसलिये कि—आजादी के ठीक बाद इस देश के सांस्कृतिक पक्ष को क्यों लकवा मार गया, इसके कारणों की खोज की जा सके। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के गया अधिवेशन में आचार्यजी ने समाजवाद को एक सांस्कृतिक आन्दोलन कहा था। उनके विचार से समाजवाद एक पूरे बदलाव का सिद्धान्त है जो जितना जोर नई आर्थिक व्यवस्था पर देता है, उतना ही जोर वह वास्तविक मानव संस्कृति पर भी देता है। उनके विचार से मनुष्य में जो कुछ भी सामाजिकता है, संस्कृति उसकी अभिव्यक्ति मात्र है और सांस्कृतिक धरोहर अतीत के मानव प्रयासों की सामूहिक उपलब्धि है। सांस्कृतिक सिद्धान्त इतिहास की उपज, मानव अनुभवों के परिणाम और मानव की आकाँक्षाओं तथा आवश्यकताओं के मूर्त रूप हैं। सांस्कृतिक ताना-बाना एक जीवन शैली है जो एक निश्चित भौतिक पर्यावरण और ऐतिहासिक रूप से सुनिश्चित सामाजिक अवस्थाओं में रहकर स्वरूप ग्रहण करती है। देश में कई तरह की जातियाँ रहती हैं और ऐसे भी कई क्षेत्र हैं जो सांस्कृतिक पिछड़ेपन के शिकार हैं। आचार्यजी के सामने ये खतरे भी थे, इसी के साथ यह भी कि बहुतेरे सांस्कृतिक मूल्य वर्ग हितों और पूर्वाग्रहों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वैसे ही विभिन्न वर्गों के सांस्कृतिक आदर्श भी अलग-अलग होते हैं जिससे संस्कृति के क्षेत्र में भी टकराव होते हैं। अक्सर समाज पर शक्तिशाली सामाजिक वर्ग अपना सांस्कृतिक ताना-बाना थोप देने में समर्थ होता है, ऐसी स्थिति में दबे हुए वर्ग उठते हैं और पुराने तौर तरीके को चुनौती देते हैं तो एक सांस्कृतिक टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। बहुसंख्यक जनता की वृत्ति के नाम पर पुरानी व्यवस्था को सही कहने वाले और नई वर्गचेतना से प्रभावित लोगों का लीक तोड़ने की इच्छा के बीच होने वाले संघर्ष में आचार्यजी सांस्कृतिक वापसी के विचार के विरोधी थे, क्योंकि ऐसी प्रवृत्ति निश्चित रूप से प्रतिक्रियावादी हुआ करती है। नव संस्कृति संघ के शुभारंभ के दिनों में आचार्यजी ब्राह्मण संस्कृति और श्रमण संस्कृति की बात बहुत जोर देकर कहने लगे थे। ऐसे ही प्रवाह के साथ और प्रवाह-पतित प्रवृत्तियों का भेद भी तब वे अक्सर कहते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के ठीक बाद अर्थात् निराला स्वर्ण जयन्ती के पाँच वर्षों के भीतर नरेन्द्र देवजी के मन में भविष्य के भारत का जो सांस्कृतिक नक्शा था, वह इन पंक्तियों में कुछ हद तक स्पष्ट होता है।

आगे चलकर दुर्भाग्यवश श्री जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में जिस संयुक्त

संस्कृति की अवधारणा का विकास हुआ और जिसे भारतीय जनता के सांस्कृतिक एकीकरण का समाधान बताया गया, वह आचार्य नरेन्द्र देव के विचारों से तब न केवल गतिहीन बल्कि प्रतिक्रियावादी थी। उनके विचार से इस अवधारणा में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह आधुनिक भारत की समस्त आवश्यकताओं को समझ पाने में समर्थ हो सके। उन्होंने तभी कहा था कि इस तरह की कोशिश के अर्थ ये हैं कि एक ऐसे समाज के ऊपर जो लोकतांत्रिक होना चाहता है, पक्के तौर पर सामन्तवादी संस्कृति थोप दी जाय। उन्हें आश्चर्य न होता कि संयुक्त संस्कृति की कांग्रेसी अवधारणा आधुनिक भारत को प्रेरित करने में आगे चलकर असफल हो जाती। आज उस कथन के लगभग चालीस वर्ष बाद आचार्यजी की वह शंका पूरी की पूरी सही उतरी है। सारे प्रयत्नों और संचार साधनों की धुआँधार सहायता लेकर भी पिछले वर्षों में इस देश के शासक इस पक्ष पर भारतीय जन समुदाय को विश्वास में लेने में समर्थ नहीं हो सके। समाजवाद निश्चित रूप से संयुक्त संस्कृति के नाम पर उन तौर-तरीकों को बनाये रखने के खिलाफ हैं जो समाज को ऊपर से नीचे तक खानों में बाँटते हों। वह आम आदमी की आकाँक्षाओं और सांस्कृतिक आवश्यकताओं को सामाजिक मान्यता दिलाने तथा प्रभुत्व और शोषण से मुक्त ऐसे वर्ग हीन समाज के लिये एक वास्तविक मानव-शक्ति संस्कृति विकसित करने के लिये कृत संकल्प है। यह संस्कृति भारतीय संस्कृति के मानवीय तत्त्वों, पश्चिमी संस्कृति के लोकतांत्रिक और नंए समाजवादी तत्त्वों का रचनात्मक संश्लेषण होगी। इस तरह का विकसित सामाजिक मानवतावाद ही भारत में समाजवादी संस्कृति का आधार बन सकता है, ऐसा आचार्यजी का विश्वास था।

श्रम और संस्कृति की एकता ही सामाजिक संस्कृति का मौलिक सिद्धान्त है। आचार्यजी एक वैज्ञानिक मार्क्सवादी विचारक के रूप में मानव श्रम को मानव व्यक्तित्व की रचनात्मक शक्ति के रूप आँकने के विश्वासी थे। उनकी मान्यतानुसार संस्कृति को पूरे समुदाय द्वारा अपनाया जाना चाहिए और व्यक्तित्व के विकास के लिये उस उपलब्धि का लाभ उठाने का सबको समान अधिकार होना चाहिए। लोगों को सांस्कृतिक उन्नति के लिये सुविधाएँ देने का कार्य तथा उसके लिये किये गये प्रयत्न सबके लिये अनिवार्य कर दिए जाने चाहिए। ये सुविधायें ग्रामीण क्षेत्रों में रहनेवाली जनता को इस तरह उपलब्ध करायी जानी चाहिए कि शहरी और ग्रामीण संस्कृतियों के असुविधाजनक टकराव से बचा जा सके। ऐसे ही जनजातियों तथा पिछड़ी उन्नत जातियों के बीच व्याप्त शैक्षिक और सांस्कृतिक अन्तर को दूर करना भी समाजवादी आन्दोलन का लक्ष्य होना चाहिए। यहाँ तक आते-जाते आचार्यजी की दृष्टि रूसी क्रान्ति के बाद वहाँ विकसित सांस्कृतिक दुराग्रह पर पड़ी। उनके विचार से सोवियत यूनियन का प्रयोग भारत पर लागू नहीं किया जा सकता था। जार के शासनकाल में रूसी साम्राज्य विभिन्न भाषा-भाषायी समुदाय था जिनमें से अधिकांश बृहत्तर रूप से पूरी तरह भिन्न और उसके प्रभुत्व से पीड़ित थे। भारत के विभिन्न भाषाई समूहों की सांस्कृतिक स्वायत्तता की समस्या

रूस की तरह अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति की तरह न होकर क्षेत्रीय प्रकृति की थी और इसे सीमाओं का निर्धारण करके सुलझाया जा सकता था। समाजवादी होते हुए भी सोवियत यूनियन के जीन्स में जारशाह के तत्त्व वर्तमान थे, इसलिए वहाँ अलगाव की माँग क्रान्ति विरोधी मानी गयी। वहाँ भाषायी समुदायों की राष्ट्रीयता की परिकल्पना सोवियत जनता की अखण्ड प्रस्तर सरीखी एकता की परिकल्पना में लगभग डूब ही गयी।

आज इतने वर्षों बाद भारत और रूस में इस सवाल पर जो वैचारिक मंथन चल रहा है और उसके चलते दोनों देशों की विश्वासों की जड़ें जैसी हिल रही हैं उसे देखते हुए नरेन्द्र देव जी के विश्वास की गहरायी और वास्तविकता का अन्दाज होता है। लेकिन इसके साथ ही दुःख भी होता है कि उनके संस्कृति के सम्बन्ध में प्रगट किये गये विश्वास इस देश के लिये पूरी तरह ध्वस्त हुए। मेरे ऐसे उन लाखों युवकों के लिये असफलता का यह इतिहास बड़ा दारुण है जिन्होंने स्वतन्त्रता के पूर्व के दिन देखे थे और तभी एक नये भारत की परिकल्पना की थी। नवसंस्कृति संघ के आन्दोलन के नजदीक जाना हो या प्रगतिशील लेखक संघ की सदस्यता ग्रहण करनी हो, दोनों ही के मूल में एक नये समाजदर्शन की ललक थी। दुर्भाग्यवश आजादी के ठीक बाद वामपंथियों के लिये आजादी झूठी सिद्ध हो गयी और नरेन्द्र देव के नेतृत्व में जो समाजवादी कांग्रेस से अलग होकर वनवास पर्व में चले गये थे, वे विपक्ष और उपेक्षा के जंगल में तितर-बितर हो गये। स्वयं आचार्यजी धीरे-धीरे अकेले पड़ते गये और इसके पहले कि यथास्थिति बनाये रखने वाले लोगों से, लोगों का मोह भंग हो। आँखें मूद ली। उनका यह कार्य काफी हद तक डॉ० राममनोहर लोहिया ने आगे बढ़ाया। भारतीय संस्कृति के अन्तरावलम्बन के प्रश्न पर उनके बड़े ही स्पष्ट विचार थे और इस दृष्टि से उन्होंने भारतीय संस्कृति के गतिशील फलक को उभारने की चेष्टा भी की लेकिन वे तभी चले गये जब उनकी सर्वाधिक आवश्यकता थी। बदलाव के इस दौर में अन्तिम बड़ी कोशिश समाजवादियों की तरफ से तब हुई, जब जयप्रकाशनारायण के नेतृत्व में दूसरी क्रान्ति का दौर आया दुर्भाग्यवश राजनैतिक दृष्टि से क्षण स्थायी सिद्ध होने वाली यह क्रान्ति संस्कृति के सम्बन्ध में अपना मन बनाने से पहले ही बिखर गयी। डॉ० लोहिया के प्रभाव से अनुप्राणित होने वाले विचारकों और लेखकों का एक बड़ा वर्ग आज भी रचनाशील है और सांस्कृतिक, साहित्यिक सोच के विकल्प के रूप में उसका अस्तित्व नजरन्दाज नहीं किया जा सकता। नव संस्कृति के आन्दोलन के परिकल्पक आचार्यजी अथवा जयप्रकाशनारायण का ऐसा कोई प्रभाव युवा रचनाकारों के सोच पर पड़ा हो, इसकी पड़ताल होनी चाहिये।

कुल मिलाकर प्रतिपक्ष में रहकर लड़ी जानेवाली नई संस्कृति और भारतीय अस्मिता की सही पहचान की यह लड़ाई इन्हीं रास्तों पर चलकर शताब्दी के इस अन्तिम दौर पर पहुँची है। स्वतन्त्रता संग्राम के प्रारम्भिक दौर में जिस तरह का

सांस्कृतिक पुनर्जागरण देखने में आया उसके आंशिक रूप के भी दर्शन स्वतन्त्रता बाद के संघर्ष में नहीं हुए और यह तब हुआ जबकि स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रारम्भिक वर्षों में एक से एक महत्त्वपूर्ण विचारक जीवित थे। उनके रहते हुए भी देश का चित्त विचलित होने से नहीं रोका जा सका और न तो सांस्कृतिक क्षरण की रोकथाम की जा सकी। आज स्थिति यह है कि हमारी जातीय स्मृति समाप्त होने के स्तर पर आ गयी है और हम हैं कि अपनी संस्कृति के दुर्भिति प्रवाह में गले तक डँस एक अनिर्वचनीय सुख का अनुभव कर रहे हैं। एक सुविधा सम्पन्न वर्ग के देश की विचारधारा पर हावी होने के खतरे की ओर आचार्यजी ने प्रारम्भ में ही सतर्क किया था और चाहा था कि मानवतावादी समाज विकसित अविकसित, पिछड़े आदिवासी और सुविधाओं से वंचित क्षेत्रों के बीच एक सांस्कृतिक सन्तुलन कायम करे इसी के लिये उन्होंने श्रम और संस्कृति के रिश्ते तय करने की आवश्यकता पर बल दिया था लेकिन आज निरक्षरता के इस विशाल समुद्र में संस्कार संस्कृति विहीन जो देश डूबता जा रहा है वह क्या आचार्य नरेन्द्र देव के सपनों का देश है ?

राज्य सभा में १९५२ में दिये गये अपने एक वक्तव्य में आचार्य जी ने स्वयं अपने से एक प्रश्न पूछा है और फिर उसका उत्तर भी दिया है। अप्रासंगिक हो जाने के सन्देह का निराकरण करते हुए उन्होंने विश्वास के साथ कहा है कि समय के साथ चलना जानते हैं और यह भी जानते हैं कि जनता की आवश्यकताएँ क्या हैं। उनके पास वह खूबी और कला थी कि वे अपने को नयी दशाओं के अनुसार ढाल सकते थे जिससे नये दर्शन की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। वे प्रसिद्ध समाजवादी विचारक लास्की के इस विचार से सहमत थे कि क्रान्तिकारी परिवर्तनों के इस वर्तमान युग में कोई भी स्वतन्त्रता तबतक बनायी नहीं रखी जा सकती जबतक कि राष्ट्र अपनी जीवन शैली में आधारभूत परिवर्तन लाने को तैयार न हो। चूँकि ऐसा नहीं दीख रहा था इसलिए, उन्हें उसी समय स्वतन्त्रता खतरे में लगी थी। आचार्यजी के इस कथन के लगभग चालीस वर्षों बाद क्या यह आवश्यक नहीं लगता कि हम जहाँ पहुँच गये हैं उसकी निर्ममता पूर्वक समीक्षा की जाय। मैंने शुरू में ही निरालाजी की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर नरेन्द्र देवजी की सदिच्छा का उल्लेख किया था। आज इतने वर्षों बाद भी इस देश के साहित्यकारों को जैसी अपमानजनक स्थिति में रहना पड़ रहा है, वह हममें से किसी से छिपा नहीं है। अपनी उपलब्धि के फलस्वरूप साहित्यकार जो सुख-सविधा जुटा पाते हैं, वह एक सामान्य स्तर के राजकर्मचारियों की तुलना में भी बहुत कम ठहरती हैं। लेकिन जो साहित्यकार व्यावहारिक नहीं है, उनके कष्टों का तो अन्त ही नहीं है, फलतः उन्हें जीवित रहने के लिए आये दिन समझौते करने पड़ते हैं जिसका परिणाम होता है कि जिन क्षणों में उन्हें रचना करनी है वे पेट की आग बुझाने के लिए कहीं और उलझे रहते हैं।

संयुक्त प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन के उन्नीसवें अधिवेशन में सभापति पद

से बोलते हुए आचार्यजी ने साहित्यकारों से निवेदन किया था कि वे वर्तमान राजनीति का ज्ञान प्राप्त करें । यदि वे जीवन से सम्पर्क रखना चाहते हैं और एक सफल कलाकार बनना चाहते हैं तो इस युग में जब वर्ग संघर्ष प्रबल वेग से चल रहा है वह कैसे अपने को इससे अलग कर सकते हैं किन्तु हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि हम साहित्य को किसी खास साँचे में ढालें या उसका किसी प्रकार नियन्त्रण करें । हम एक अच्छे कलाकार को उसके क्षेत्र से हटाकर एक रद्दी किस्म की हड़ताल करानेवाला मजदूर नेता नहीं बनाना चाहते ।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर आचार्यजी ने साहित्य के मानदण्ड पर और विस्तार से विचार किया था । वहाँ उन्होंने पुनः कहा था कि आखिर कैसे एक साहित्यकार एक सर्वव्यापी संघर्ष से अपनी पीठ मोड़ सकता है, उसे चुनौती का सामना करना पड़ेगा और इस संघर्ष से जूझना भी होगा । समाज में सन्तुलन और समानता की पुनर्स्थापना प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व है माना कि साहित्य का दूसरा पहलू व्यक्तिगत प्रयास का परिणाम है लेकिन अकेलेपन की जिन्दगी जीने की चीज नहीं हुआ करती । इसीलिये साहित्य अन्ततः एक सामाजिक उत्तरदायित्व भी है—"हमें नये समाज के लिये नये मूल्य बनाने होंगे, हमारे देश की संस्कृति समृद्धतम है । इसमें नये युग और नयी सामाजिक व्यवस्था का सूत्रपात करने के सारे तत्त्व उपस्थित हैं । यहाँ अनेकता में एकता है, यहाँ हमने अपने जीवन में इतने प्रयोग किये हैं कि, हम पश्चिमी प्रयोग से लाभ उठा सकते हैं । इससे हमारी किसी भी प्रकार की क्षति नहीं होगी । हमें विचारों के आदान-प्रदान करने के विरुद्ध अपने दरवाजे बन्द नहीं करना चाहिए । हमें अपने अतीत से लगाव होना चाहिए, लेकिन हमें अन्धविश्वासी नहीं होना चाहिए । भारतीय संस्कृति की इस पृष्ठभूमि में हम साहित्य की भूमिका सुनिश्चित कर सकते हैं । दृढ़ निश्चय और विशाल हृदय से ही एक नये समाज का गठन होता है, नये समाज के अभ्युदय के बाद ही एक नये भारत का पुनर्जन्म होगा ।"

देश को एक अवसर और मिला है माना कि देश का चित्त विचलित हो गया है पर पिछले आम चुनाव में काफी हद तक मूल्यों की बात चली है और कई तरह की उपसंस्कृति के दबावों के होते हुए भी देश के निजस्व की बात सुनी गयी है । आचार्यजी के विचारों को माध्यम बनाकर परिवर्तन की चुनौती के सवाल पर बात करने का समय आ गया है ।

ठाकुर प्रसाद सिंह : प्रख्यात साहित्यकार, कवि, लेखक, पत्रकार, आलोचक एवं पूर्व सूचना निदेशक—उ० प्र० सरकार तथा संरक्षक—राष्ट्रीय युवा पत्रकार संघटन ।

डॉ० परमानन्द : आचार्य नरेन्द्र देव का इतिहास दर्शन

टिप्पणी : इतिहासकार के साथ नेतृत्वकर्ता आचार्य

किसी युग का महापुरुष वह व्यक्ति होता है जो उस युग की आकाँक्षाओं को शब्द दे सके, युग को बता सके कि उसकी आकाँक्षा क्या है ? और कार्यान्वित कर सके। वह जो करता है वह उसके युग का सारतत्त्व होता है, वह अपने युग को रूप देता है। महापुरुष सदा ही या तो वर्तमान शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है या उन शक्तियों का, जिनके निर्माण में वर्तमान व्यवस्था को चुनौती देने के लिए वह मदद करता है। हमें उन महापुरुषों को नहीं भूलना चाहिए जो अपने समय से इतना आगे थे कि उनकी महानता को भावी पीढ़ियाँ ही पहचान सकीं। आचार्य नरेन्द्र देव इसी तरह के एक महान् युगपुरुष थे। जिनकी उच्चकोटि की रचनात्मकता उन्हें महानता की ओर ले गयी।

आचार्यजी ने इतिहास, संस्कृति एवं समाज के सभी मुख्य प्रश्नों पर गम्भीर चिन्तन किया और उनके चिन्तन की प्रमुख विशेषता यह थी कि वे मानव-जाति की विशिष्टता, सामाजिक अपेक्षाओं तथा युग की आवश्यकताओं के प्रति पूर्ण सचेत थे। प्राचीन भारतीय परम्परा की धरोहर के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को भलीभाँति समझते थे। पराधीन भारत के इतिहास के अन्तिम दौर में उनकी यही मुख्य चिन्ता थी कि वे उस भारत के, जो सैकड़ों वर्षों की परतंत्रता के बाद निकट भविष्य में स्वतंत्र होनेवाला था, अस्मिता का स्वरूप क्या होगा ? भारतीय संस्कृति के बारे में उनकी खोज और समझ गहरी थी। वे भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ, विशिष्ट और मूल्यवान तथ्यों के लिए सर्वदा चिन्तित रहते थे। उन्होंने राष्ट्रीयता, जनतन्त्र तथा समाजवाद की विचारधारा की युगानुकूलता को पहचाना और अपने तरीके से स्वीकार किया। किन्तु उन विचारधाराओं की उपयोगिता के नाम पर वे भारतीय संस्कृति और समाज के मूलभूत तथ्यों एवं तत्त्वों को तिलांजलि देने को कत्तई तैयार नहीं थे। उनके चिन्तन में बौद्ध वाङ्मय का महत्त्वपूर्ण प्रभाव था इसलिए साध्य के रूप में लोकतांत्रिक समाजवाद के साथ लोकतंत्र पर बल देना एवं साधन के रूप में हिंसा के स्थान पर अहिंसा को महत्त्वपूर्ण स्थान देना— उनके चिन्तन की एक प्रमुख विशेषता थी। वे समझते थे कि इतिहास का कार्य बड़े दायित्व का होता है। उनकी कृतियों के उपयोग तथा दुरुपयोग की सम्भावनायें अधिक हैं। वस्तुनिष्ठता के अभाव में लेखकों के विचारों और व्याख्याओं ने समाज का बहुत अनिष्ट किया है इसलिए इतिहास की उत्कृष्ट रचना के लिए लोकतांत्रिक समाज और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की बड़ी आवश्यकता है। अतीत का वर्तमान से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होता है कि उसकी उपेक्षा वे ही कर सकते हैं जिनका कोई अतीत नहीं होता। केवल वर्तमान के प्रकाश में ही अतीत हमारे समझने योग्य बन पाता है और हम अतीत के प्रकाश में वर्तमान को पूरी तरह समझ सकते हैं। अतीत के समाज को मनुष्य के लिए सुबोध बनाना और वर्तमान समाज पर

उसकी पकड़ को और मजबूत करना इतिहास का दुहरा कर्त्तव्य है। आचार्यजी का इतिहास-चिन्तन, इतिहास को एक नवीन दृष्टि प्रदान करता है। वे तथ्यपरक एवं वस्तुनिष्ठ चिन्तन के पक्षधर थे। सम्यकता उनके चिन्तन का मूल आधार है।

आचार्यजी प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति के छात्र भी थे। वे उन्होंने भारतीय इतिहास के साथ पाश्चात्य देशों के इतिहास का गंभीरता से अध्ययन किया था, जिसका आभास उनके लेखों और भाषणों से होता है। आचार्यजी एक सफल इतिहासकार के रूप में तथ्यों की व्याख्या करते हैं क्योंकि इतिहासकार वर्तमान का अंग होता है जबकि तथ्य अतीत का। तथ्यविहीन इतिहास मृत और अर्थहीन होता है तथा तथ्यों से विहीन इतिहासकार बिना जड़ का और व्यर्थ होता है।

'विज्ञान' पत्रिका में उनके कई महत्त्वपूर्ण निबन्ध प्रकाशित हुये। इन लेखों में शक सम्वत् गुप्त सम्वत्, तथा गुप्त वंश के इतिहास आदि विषयों की विवेचना की गयी है। इन लेखों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि पुरातात्त्विक तथ्यों को सजीव रूप देने का कार्य किया गया है। उसकी व्याख्या भी की गयी है क्योंकि इतिहास का एक अर्थ व्याख्या भी है। व्याख्याविहीन तथ्य अर्थहीन हैं। इतिहास का एकमात्र कार्य तथ्य संकलन नहीं उसकी व्याख्या है। विक्रम सम्वत् के सम्बन्ध में लिखा है कि उसका सूत्रपात ५८ वर्ष ईसा के पूर्व कार्तिक शुक्ल १ को हुआ। शक सम्वत् के सम्बन्ध में कहा है कि इसका प्रभाव चैत्र शुक्ल १ सन् ७८ ई० को हुआ। भारत के दक्षिण भाग में इस सम्वत् का प्रयोग होता था। उनका मानना है कि शक सम्वत् का प्रयोग भारत के बाहर ६२४ ई० में कम्बोज और ७३२ ई० में जावा में तदनन्तर लंका एवं नेपाल में भी इसका प्रचार हुआ।

आचार्यजी भी भारतीय संस्कृति के उन्नयन के विशेष पक्षधर थे, जहाँ एक ओर बौद्ध साहित्य को अध्ययन का विशेष आधार बनाया वहीं दूसरी तरफ रामायण को उत्तम काव्य का प्रतिमान माना है तथा महाभारत को प्राचीन संस्कृति का आगार कहा। क्योंकि इसमें प्राचीन आचार-विचार, रीति-नीति, आदर्श संस्थाओं का इतिहास उपस्थित है। वह दर्पण की तरह है जिसमें प्राचीन भारत का जीवन प्रतिबिम्बित है।

आचार्यजी की दृष्टि में इतिहास के एक लम्बे काल ने भारतीय समाज में अनेकता में एकता का दर्शन किया है और यह एकता रक्त, रंग, भाषा, वेशभूषा, आचार-विचार और सम्प्रदाय आदि परिगणित विभिन्नताओं से ऊपर है। पर उनकी दृष्टि में वर्त्तमान में धर्मो की शुद्धि की प्रक्रिया ने साम्प्रदायिकता पार्थक्य को अधिक गम्भीर बना दिया है जिसका राजनीतिज्ञों द्वारा दुरुपयोग किया जा रहा है। अब इस समस्या का निराकरण धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण द्वारा ही हो सकता है। उनका मानना है कि लेखन इस प्रकार हो जिसमें सामाजिक आदर्शों एवं चारित्रिक दृष्टान्तों की शिक्षा प्राप्त हो। उन्होंने स्वीकारा है कि मनुष्य केवल तर्क से नहीं जी सकता उसे विश्वास की भी आवश्यकता होती है। विश्वास से उनका तात्पर्य लोकतांत्रिक समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता एवं नैतिकता से है। इतिहास चिन्तन के लिए यह

आवश्यक है कि इतिहास लेखन धर्मनिरपेक्ष हो। हमें उन कृत्रिम दीवारों को ढहाना है जो हम लोगों को एक दूसरे से अलग करने के लिए धर्म और जाति-पाँति ने खड़ी की है।

इतिहास की विशेष उपयोगिता या सार्थकता इसी अवधारणा पर निर्भर करती है कि हम समाज को नये युग के अनुसार ढाल दें। इसके लिये मातृभाषा में गवेषणा की जाय और इसका पठन-पाठन अपनी भाषा में हो। चीन में ४ मई १९५२ ई० को पीकिंग विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को हिन्दी में सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था—नये समाज का निर्माण स्वतंत्रता, समता, भ्रातृत्व, सामाजिक न्याय के आधार पर ही हो सकता है। तभी जनता की गरीबी दूर हो सकती है और उसे शिक्षा एवं संस्कृति से लाभान्वित किया जा सकता है। आचार्यजी के इतिहास चिन्तन का एक महत्त्वपूर्ण आधार इस उद्‌बोधन से स्पष्ट होता है।

नरेन्द्र देवजी की दृष्टि में मानव इतिहास का कोई ऐसा समय नहीं सोचा जा सकता जब जनता के पथ प्रदर्शन के लिये नेतृत्व की जरूरत न हो। समाज में अनियंत्रित तत्त्व बहुत काल तक बने रहने की कोशिश करते हैं और स्वतः विलीन नहीं होते। आचार्यजी के चिन्तन में समाज और व्यक्ति दोनों का प्रतिबिम्ब मिलता है। समाज और व्यक्ति एक दूसरे के लिए आवश्यक एवं पूरक हैं, विरोधी नहीं। इतिहास दार्शनिकों में इस प्रश्न पर मतभेद है कि इतिहास व्यक्ति प्रधान है या समाज। परन्तु आचार्यजी दोनों को सम्यक् रूप से महत्त्व देते हैं। इतिहासकार का मानना है कि व्यक्ति सामाजिक प्राणियों के रूप में कार्यरत होते हैं। इतिहास मौजूदा समाज से बीते हुये समाज का संवाद है।

आचार्यजी इतिहासकार के साथ नेतृत्वकर्त्ता भी थे। बौद्धिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए कार्यकर्ताओं का एक माह का शिविर सारनाथ वाराणसी में करवाने की योजना बनाई जिनमें (१) भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, (२) भारतीय समाजवादी आन्दोलन की ऐतिहासिक रूपरेखा, (३) कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टियों के लक्ष्यों, नीतियों एवं कार्यक्रमों की समीक्षा, (४) कम्युनिस्ट चीन तथा (५) संसार में नैतिक मूल्यों के विकास पर स्वयं भाषण देना चाहते थे। इस योजना का अभिप्राय स्पष्ट है कि इतिहास का सम्यक् ज्ञान एक कार्यकर्त्ता के लिए आवश्यक है। इतिहास के अध्ययन के बिना राजनीति नहीं हो सकती। आचार्यजी इतिहास के ज्ञान को एक मूर्त रूप देना चाहते थे। क्योंकि किसी देश को बनाना है तो उसके इतिहास लेखन को भ्रष्ट कर दिया जाय। यहाँ पर इतिहास का पक्षपात उभड़कर सामने आता है। इतिहास लेखन पक्षपात पूर्ण नहीं होना चाहिए। आचार्यजी कार्यकर्त्ताओं को इससे भिज्ञ कराना चाहते थे क्योंकि वे ही आने वाले समाज के ध्वजवाहक हैं।

आचार्यजी ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास की गतिविधि का चिन्तन एशिया के स्वतंत्रता आन्दोलनों की पृष्ठभूमि में किया था। वे एशिया के विभिन्न राष्ट्रीय आन्दोलनों में एक धारा के प्रवाह का अनुभव करते थे, भारतीय

आन्दोलनों के समुचित ज्ञान के लिए एशिया के अन्य आन्दोलनों का ज्ञान भी जरूरी समझते थे १८५७ ई० में राष्ट्रीय स्वतंत्रता का प्रथम युद्ध हुआ तो उसी समय चीन में ताइपिंग विद्रोह हुआ। जिस प्रकार १८५७ ई० के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का भारतीय चिन्तन एवं भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर विशेष प्रभाव पड़ा उसी प्रकार ताइपिंग विद्रोह में चीन के राष्ट्रपिता डॉ० सनयात सेन ने सबक लिया जिन्होंने मार्क्स के सम्बन्ध में कहा "मार्क्स एक ऐसा हकीम है जिसे सामाजिक शरीर विज्ञान का कोई ज्ञान नहीं है।" तो उसी आन्दोलन में माओ ने प्रेरणा ली और किसानों को आन्दोलन का माध्यम बनाया क्योंकि ताइपिंग आन्दोलन हक्का के किसानों ने ही किया था।

इस देश में शायद ही किसी दूसरे विद्वान् या नेता ने एशिया की गतिविधियों की पार्श्वभूमि में भारत के अर्वाचीन इतिहास का अध्ययन एवं अध्यापन किया हो। देश के अधिकांश विद्वान् राष्ट्रीय आन्दोलन को कतिपय नेताओं के नेतृत्व का परिणाम समझते हैं, परन्तु आचार्यजी जन आन्दोलन के रूप में राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास ही नहीं पढ़ाते थे वे उसमें भाग लेना भी सिखाते थे। वे इतिहास का व्यावहारिक ज्ञान देना चाहते थे। अभी तक इतिहास चिन्तन, इतिहास-लेखन का ही अंग था परन्तु आचार्यजी उसे सगुण रूप देना चाहते थे। उनके चिन्तन की यह एक प्रमुख विशेषता रही।

आचार्यजी का लेखन इतिहास की जीवनदायिनी शक्तियों का समर्थन करता था और जनता की मूक अभिलाषाओं को वाणी प्रदान करता था। इनका मानना था कि जीवन संघर्ष से पृथक रहकर सच्चे और प्रगतिशील साहित्य का सृजन सम्भव नहीं है। साहित्य एवं इतिहास के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए साहित्यकार से आचार्यजी आशा करते हैं कि वह इतिहास का अध्ययन करके उसकी जीवनदायिनी शक्तियों का समर्थन करते हुये जनता का मार्गदर्शन करें।

नरेन्द्र देवजी के विचार में संस्कृति चित्तभूमि की खेती है। चित्त को सुभाषित करना, उसको सुसंस्कृत करना है। उनकी दृष्टि में व्यक्तियों के चित्त के साथ-साथ एक लोकचित्त भी बनता रहता है। समाज में कई बातों में समानता उत्पन्न होती है, उन्हीं के आधार पर लोकचित्त भी बनता रहता है। आचार्यजी की दृष्टि में संस्कृति मानवीय, सामाजिक तथा ऐतिहासिक है। वह इतिहास की पृष्ठभूमि में सामाजिक सम्पर्क के सन्दर्भ में समुदाय के द्वारा विकसित एवं प्रफुल्लित होती है। जीवन और संस्कृति दोनों परिवर्तनशील है। स्थिति के बदलने पर दोनों में परिवर्तन होता है। इतिहास के किसी युग में संस्कृति ह्रासोन्मुख होती है तो किसी युग में विकासोन्मुख। देशकाल के भेद से विचार बदलते रहते हैं, विश्वासों में परिवर्तन होता रहता है। आचार्यजी की दृष्टि में यह परिवर्तन सामाजिक विकास से है। आर्थिक संगठन के बदलने से सामाजिक सम्बन्ध बदलते हैं। नवीन उद्देश्यों का एवं आकाँक्षाओं का जन्म होता है, उनकी पूर्ति के लिए नये ल्यों को स्वीकार करना पड़ता है। जहाँ बहुत से सामाजिक मूल्य दीर्घकालीन

हैं, इतिहास ने बार-बार उनकी उपयोगिता सिद्ध कर दी है। वहाँ कुछ दूसरे मूल्य हैं जो जनता की आवश्यकताओं और आकाँक्षाओं से समय-समय पर सृजित होते हैं। राष्ट्र की प्रगति के लिए उन्हें, भी अपनाना होता है। समाज और परिस्थितियों के बदलने पर ताजे पानी की तरह नयी संस्कृति की आवश्यकता होती है अन्यथा जीवन प्रवाह असम्भव हो जाता है।

आचार्यजी सामाजिक विकास के चक्रीय सिद्धान्त को ही प्रकारान्तर से मानते हैं, उत्थान एवं पतन के स्वरूप को उन्होंने परिस्थिति जन्य माना है। इस प्रकार नव संस्कृति के निर्माण का एक नया दर्शन, इतिहास चिन्तन में प्रदान किया। उन्होंने माना है कि भारतीय संस्कृति को तीन दृष्टियों से देखा जाता है। एक तो परम्परावादियों की संकीर्ण साम्प्रदायिक दृष्टि है और दूसरी इसके प्रतिवाद स्वरूप आधुनिकतावादियों की दृष्टि है। तीसरी दृष्टि ऐतिहासिक समन्वय की दृष्टि है जो प्राचीन तथा नवीन, प्राच्य तथा पाश्चात्य को ऐतिहासिक दृष्टि से समन्वित करके विभिन्न समुदायों तथा धर्मों के योग से भारतीय संस्कृति का स्वरूप निर्मित करती है। उनकी दृष्टि से यही तीसरी ऐतिहासिक दृष्टि राष्ट्र मे एकात्मकता की भावना उत्पन्न कर सकती है तथा देश की अनेक नवीन तथा विषम समस्याओं का समाधान कर सकती है।

भारतीय इतिहास की चिन्तनधारा को एक नया आयाम देने का कार्य नरेन्द्र देवजी द्वारा किया गया तथा एक लक्ष्य प्रस्तुत किया गया। प्राचीन भारतीय संस्कृति के सर्वथा परित्याग की भावना तथा उसके पुनर्जीवन के आन्दोलन का विरोध करते हुये आपने एक ऐसी नयी सभ्यता का निर्माण करना चाहा। जिसका रूप रंग देशी हो जिसमें पुरातन सभ्यता के उत्कृष्ट अंश सुरक्षित रहें और साथ-साथ उनमें एसे नवीन अंशों का समावेश हो जो आज जगत में प्रगतिशील हैं तथा संसार में नवीन आदर्श उपस्थित करना चाहते हैं। यह उनका मनराज है। महान् लेखक, विचारक, नेता इसी मनराज में अपना कार्य सम्पन्न करता है। आचार्यजी का यह चिन्तन इतिहासकारों के लिए प्रेरणा का स्रोत एवं आदर्श रूप हो सकता है।

आचार्य नरेन्द्र देव जी की विराट् कल्पनाओं की प्रतिमूर्ति काशी विद्यापीठ है। वे कहा करते थे कि "यही हमारी पूँजी है।" इसी के आधार पर मेरा कार्य चलता है यह सर्वथा सत्य है। इनके इस कथन से स्पष्ट है कि वे अपने राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक विचारों, बौद्ध धर्म दर्शन एवं इतिहास चिन्तन के अध्ययन-अध्यापन का केन्द्र निर्मित करना और उसका एक विस्तृत स्वरूप बनाना चाहते थे।

आचार्य नरेन्द्र देवजी इतिहास के अधिकारिक विद्वान् भी थे। काशी विद्यापीठ में इतिहास के अध्ययन-अध्यापन के साथ ही उन्होंने इतिहास-चिन्तन को एक नई दिशा देने का कार्य किया जिसके परिणाम स्वरूप यहाँ इतिहास के साहित्यिक स्रोतों तथा तथ्यों का कार्य हुआ। विशेष रूप से उनके द्वारा तथा

राहुल सांकृत्यायन आदि महान् विद्वानों द्वारा बौद्ध वाङ्मय तथा अन्य ग्रन्थों का हिन्दी में रूपान्तर हुआ। इसी समय अखिल भारतीय इतिहासविदों का एक राष्ट्रीय सम्मेलन १९३७ ई० में भारतीय इतिहास चिन्तन को नयी दिशा देने के लिए भारत माता मंदिर के प्रांगण में हुआ। डॉ० सम्पूर्णानन्द के 'आर्यों का आदि देश भारत', पं० कमलापति त्रिपाठी की चन्द्रगुप्त मौर्य आदि रचनायें, सर्वदानन्द द्वारा चीन की १९११ ई० की क्रान्ति, आचार्य बीरबल सिंह जी द्वारा यूरोपीय इतिहास, आचार्य भगवती प्रसाद पांथरी द्वारा प्राचीन भारतीय इतिहास की पुस्तकों के लेखन के माध्यम से राष्ट्रीय एवं समाजवादी दृष्टि को प्रोत्साहित किया गया। विद्यापीठ के इतिहास में प्रथम बार आचार्य नरेन्द्र देव जी द्वारा इतिहास विभाग में इतिहास चिन्तन के एक नये अध्याय का सूत्रपात हुआ जो आज तक चल रहा है। भारतीय इतिहास चिन्तन को एक नवीन दिशा प्रदान करना आचार्यजी की महती देन है।

आवश्यकता है भारतीय इतिहास के पुर्नलेखन की। आचार्य नरेन्द्र देव का इतिहास-चिन्तन, इतिहास-लेखन को एक नया आयाम देगा, क्योंकि उनका चिन्तन-भारतीय-इतिहास-चिन्तन एक सम सामयिक सामाजिक आवश्यकता है। समाजवादी इतिहास-चिन्तन इतिहासचक्र से प्रेरणा लेगा। आचार्यजी ने स्पष्ट कहा है "मार्क्सवाद कोई अटल सिद्धान्त नहीं है। जीवन की गति के साथ वह भी बदलता है।" आचार्यजी के इस भारतीय-इतिहास-चिन्तन के लिए इतिहासकार ऋणी होगा। जैसा कि प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो० वासुदेवशरण अग्रवाल ने उनके विषय में कहा है कि "अन्तःकरण स्वीकार करता है कि वह एक व्यक्ति है जो इतना निरभिमानी है, जिसके व्यक्तित्व को पद का गौरव छू नहीं पाता, जो अपने शील से स्वयं इतना महान् है कि उसे किसी प्रकार के कृत्रिम गौरव की आवश्यकता नहीं है।"

डॉ० परमानन्द : युवा समाजवादी नेता, प्राध्यापक इतिहास विभाग, काशी विद्यापीठ, अध्यक्ष शिक्षक संघ, काशी विद्यापीठ सदस्य सचिव बौद्ध आकर ग्रन्थमाला, महामंत्री, प्रदेश युवा जनता उ० प्र०, पूर्व अध्यक्ष छात्रसंघ, काशी विद्यापीठ एवं मंत्री, आवासीय विश्वविद्यालय शिक्षक संघ उत्तर प्रदेश।

अमर बहादुर सिंह : भारतीय समाजवाद और आचार्य नरेन्द्र देव

टिप्पणी : प्रजातांत्रिक समाजवाद के प्रणेता आचार्य

आचार्य नरेन्द्र देवजी ने जो भारतीय समाजवाद की ज्योति प्रज्ज्वलित की उससे भारत ही नहीं विश्व के अनेक समाजवादी देश आलोकित होते रहे हैं। उन्होंने भारतीय समाज व्यवस्था को एक नई दिशा प्रदान की, उसके लिए भारत सदा उनका ऋणी रहेगा। जिस प्रकार युगपुरुष सत्ता मोह से विमुख रहता है—आचार्यजी उसी के प्रतिबिम्ब थे। उन्होंने अपने जीवन के आरंभिक काल में जो सीधासादा, त्यागपूर्ण व सरल जीवन अपनाया, वह उसके जीवन पर्यन्त दास बने रहे।

आचार्यजी इसी तरह के युग पुरुष थे। आचार्य नरेन्द्र देवजी का जन्म सन् १६८६ ई० में उत्तर प्रदेश के सीतापुर जिले में हुआ था। उनके पिता एक प्रभावशाली वकील तथा धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुष थे। आचार्यजी ने बाल्यावस्था में ही महाभारत, भगवद्गीता, रामायण आदि का अध्ययन किया। दस वर्ष की आयु में नरेन्द्र देवजी अपने पिता के साथ कांग्रेस के १८६६ ई० में लखनऊ के अधिवेशन में सम्मिलित हुये। १६०६ ई० में वे कलकत्ता अधिवेशन में सम्मिलित हुये। आचार्यजी ने कांग्रेस के उग्रवादी सम्प्रदाय के तिलक, अरविन्द घोष जैसे अति राष्ट्रवादियों के अनुयायी के रूप में अपना जीवन प्रारम्भ किया। वे लाला लाजपत राय, कुमार स्वामी, हरदयाल आदि भारतीय विचारकों से प्रभावित थे और वहीं वे प्रारम्भ से मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हुये।

उनको १६३६ ई० में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति में मनोनीत किया गया। १६३७ ई० में वे प्रान्तीय विधान सभा के सदस्य हुये। १६४२ ई० की क्रान्ति में नरेन्द्र देवजी को गिरफ्तार किया गया। १६४५ ई० में जेल से छूटने के बाद उन्होंने कांग्रेस में समाजवादी दल को पुनः संगठित करने का काम किया। १६४८ ई० में कांग्रेस समाजवादी दल का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से पूर्ण रूप से विच्छेद हो गया। अब इसका नाम समाजवादी दल रह गया। १६५२ ई० में समाजवादी दल तथा कृषक मजदूर प्रजा पार्टी का विलय हो गया तथा प्रजा समाजवादी दल का निर्माण हुआ। १६५४ ई० में आचार्यजी को प्रजा समाजवादी दल का सभापति बनाया गया।

नरेन्द्र देवजी के अनुसार स्वतंत्रता मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। किसी भी सामाजिक व्यवस्था या दर्शन में अन्य सभी बातों से महत्त्वापूर्ण व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा उसका व्यक्तित्व है। आचार्यजी व्यक्ति के रूप में विश्वास रखते थे तथा उसके विकास का समाज में पर्याप्त अवसर मिलना चाहिये, कोई सामाजिक व्यवस्था व्यक्तित्व के विकास पर कुठाराघात नहीं कर सकती है। आचार्यजी ने यह कहा कि स्वतंत्रता तथा प्रजातांत्रिक भावना व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अतः वह न तो निरंकुश शासन को और न ऐसी नीतियों को सहन कर सकते हैं जिनमें उनके व्यक्तित्व के विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

आचार्यजी विचारधारा की दृष्टि से मार्क्सवादी थे । उन्होंने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के दर्शन की विशुद्ध व्याख्या नहीं की, फिर भी उन्होंने उसके सामान्य सिद्धान्तों की विवेचना की । उनका विचार था कि हमारे सामने जो कार्य हैं उसे हम तभी पूरा कर सकते हैं जब हम समाजवाद के सिद्धान्तों और उद्देश्यों को अपना लें तथा मार्क्स द्वारा प्रतिपादित द्वन्द्वात्मक पद्धति को समझकर उसे अपने कार्य कलाप का आधार बनाने का प्रयास करें । हमें वैज्ञानिक समाजवादी के समाजवाद का आश्रय लेना चाहिये तथा स्वप्नलोकी समाजवाद और समाजवादी सुधारवाद से बचने का प्रयत्न करना चाहिये । वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन परिस्थितियों की आवश्यकता को पूरा कर सकता है ।

आचार्यजी ने १६३४ ई० में कांग्रेस समाजवादी दल के अध्यक्षीय भाषण में मार्क्सवाद की व्याख्या की तथा उसके निहित सिद्धान्तों को स्पष्ट किया । कुछ हद तक वे लेनिन से भी प्रभावित थे । वे लेनिन के इस विचार से सहमत थे कि साम्राज्यवाद पूँजीवाद की विकसित अवस्था है । नरेन्द्र देव जी का भी विचार था कि पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था में पूँजी तथा श्रम के बीच संघर्ष अनिवार्य है । आचार्यजी ने यह स्वीकार किया कि समाजवाद या पूँजीवाद से उनका लगाव इसलिये है क्योंकि वे फासीवाद की अपेक्षा वर्गसंघर्ष का अच्छा हल प्रस्तुत करते हैं । आचार्यजी मार्क्सवाद और कुछ हद तक लेनिनवाद से प्रभावित थे, किन्तु वे मार्क्स तथा साम्यवाद को सामान्य नहीं समझते थे ।

नरेन्द्र देवजी यह अनुभव करते थे कि समाजवाद लाने के लिये किस प्रकार की सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता होगी । उन्होंने कहा था कि यद्यपि पूँजीवाद दिन-प्रतिदिन पतन की ओर जा रहा है किन्तु समाजवाद अपने आप विकसित नहीं हो पायेगा । सामाजिक क्रान्ति लाने तथा फासीवाद, जोकि पूँजीवाद का ही एक निकृष्ट रूप है, जिससे एक संगठित रूप में लड़ने के लिए गम्भीरता से प्रयास किया जाना चाहिये । आचार्यजी ने आर्थिक संघर्ष के चलाये जाने पर भी बल दिया । वे कहते थे कि आर्थिक संघर्ष राजनीतिक आन्दोलन की प्रक्रिया को तेज कर देगा । उन्होंने कहा कि जब तक कि श्रमिक और किसान अपने वर्ग हितों के आधार पर संगठित नहीं होते तथा जब तक उनका आर्थिक संघर्ष पूर्ण स्वाधीनता के आन्दोलन से नहीं सम्बद्ध हो जाता, किसी क्रान्तिकारी परिवर्तन की अपेक्षा नहीं की जा सकती ।

आचार्यजी प्रारम्भ से ही समाजवाद को मूलतः प्रजातांत्रिक समझते थे । वे पूँजीवादी प्रजातंत्र के विरुद्ध थे जिससे कि सम्पत्ति का आधिपत्य राज्य पर होता है, किन्तु यह तभी सम्भव था जबकि राज्य सम्पूर्ण समुदाय के हित में उत्पादन के साधनों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर ले । उन्होंने नियोजित अर्थ व्यवस्था की आवश्यकता बतायी, किन्तु उसका उद्देश्य एक समाजवादी समाज का निर्माण होना चाहिये अन्यथा प्रजातांत्रिक व्यवस्था का अन्त हो जायेगा । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आचार्य नरेन्द्र देव जी समाजवाद के सच्चे प्रणेता थे । ●

अमर बहादुर सिंह : युवा समाजवादी, पत्रकार, लेखक (अध्यक्ष—राष्ट्रीय युवा पत्रकार संघटन) ।

आचार्य नरेन्द्र देव जी की प्रमुख कृतियाँ

राष्ट्रीयता और समाजवाद (ज्ञानमण्डल, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९४९, पुनर्मुद्रित, १९७३)

बौद्ध धर्म दर्शन (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्रथम संस्करण, १९५६, पुनर्मुद्रित, १९७१)

वसुवन्धुकृत अभिधर्मकोश का अनुवाद (हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, दो जिल्द प्रकाशित, शेष प्रकाशनाधीन)

साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति (प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८८ ई०)

Socialism and the National Revolution (Bombay, 1946).

Towards Socialist Society (Centre of Applied Politics, New Delhi, 1979).

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

देव, नरेन्द्र, *राष्ट्रीयता और समाजवाद* (ज्ञानमण्डल, वाराणसी प्रथम संस्करण १९४९ ई०, पुनर्मुद्रित, १९७३ ई०)

देव, नरेन्द्र, *बौद्ध धर्म दर्शन* (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना संस्करण, १९५६ ई०, पुनर्मुद्रित, १९७१ ई०)

देव, नरेन्द्र, *साहित्य शिक्षा एव संस्कृति* (प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८८ ई०)

देव, नरेन्द्र, वसुवन्धुकृत *अभिधर्मकोश* का अनुवाद (हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, दो जिल्द प्रकाशित)

दीक्षित, जगदीश चन्द्र, *युग और विचार* (सूचना एव जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश का प्रकाशन)

दीक्षित, जगदीश चन्द्र, *आचार्य नरेन्द्र देव* (सूचना एव जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश का प्रकाशन)

देव, नरेन्द्र, *सोशलिस्टरी क्यों ?* (लखनऊ, माडर्न प्रिन्टर्स, एन०एम०एम०एल०)

देव, नरेन्द्र, *समाजवाद का मूलाधार मानवता* (लखनऊ)

देव, नरेन्द्र, *साहित्य के नाम पत्र* (लखनऊ, माडर्न प्रिन्टर्स, एन०एम०एम०एल०)

देव, नरेन्द्र, *समाजवाद और राष्ट्रीय क्रान्ति* (आगरा, सम्पादक, यूसुफ मेहरअली १९४६ ई०)

देव, नरेन्द्र, *मार्क्सवाद और सोशलिस्ट पार्टी* (लखनऊ, १९५१ ई०)

देव, नरेन्द्र, *समाजवाद - लक्ष्य तथा साधन*, समाजवादी साहित्य माला, (मैनेजर सघर्ष, कार्यालय, हिवेट रोड, लखनऊ)

लाल, मुकुट बिहारी, *जीवन और चिन्तन आचार्य नरेन्द्र देव* (आचार्य नरेन्द्र देव समाजवादी संस्थान, वाराणसी)

वर्मा, डॉक्टर विश्वनाथ प्रसाद, *आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन।*

घनानन्द, उत्कर्ष, *साहित्य, संस्कृति और समाज।*

भसीन, प्रेम, *भारत मे सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन* (आचार्य नरेन्द्र देव समाजवादी संस्थान, वाराणसी

मोहन, सुरेन्द्र, *आचार्य नरेन्द्र देव और उनका युग* (आचार्य नरेन्द्र देव समाजवादी संस्थान, वाराणसी)

विनोद : सुनीलम्, *समाजवादी आन्दोलन : तनाव के दौर* (१९५२-१९५४) (प्रतिपक्ष प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली)

विनोद : सुनीलम्, *समाजवादी आन्दोलन के दस्तावेज* (१९३४-५२) (प्रतिपक्ष प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली)

सिंह, सागर, *भारत में संसदीय गणतंत्र* (सागर सिंह, जलधितरंग, जगतगंज, वाराणसी)

लेनिन, *साम्राज्यवाद* ।

एंजेजल्स, *समाजवाद – वैज्ञानिक या काल्पनिक* ।

वि० अकास्येव, *मार्क्सवादी दर्शन* ।

मकरोला और मिनास्येद, *वैज्ञानिक समाजवाद के मूल तत्त्व* ।

सांस्कृत्यायन राहुल, *लेनिन* ।

सिंह दर्शन, *सोवियत संघ – आज और कल* ।

अफनास्पेव, *वैज्ञानिक कम्युनिज्म के सिद्धान्त* ।

लेनिन, *जमीन का सवाल और आजादी की लड़ाई* ।

लेनिन, *पूर्व में राष्ट्रीय स्वतंत्रता का इतिहास* ।

शुब डेविड, *लेनिन* ।

डफेलर, *यूरोपीय वामपंथ के सौ साल* ।

व्ला० ई० लेनिन, *कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा* ।

सोवियत समाजवादी जनतन्त्र संघ का संविधान ।

लेनिन, *एशिया का जागरण* ।

कार्ल मार्क्स, *उजरती श्रम और पूँजी* ।

मार्क्स, एंगेल्स, *कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र*, वैज्ञानिक समाजवादी माला ।

लेनिन, मार्क्स एंगेल्स – *मार्क्सवाद* ।

गौतम, बृजेन्द्र प्रताप, *समाजवादी चिन्तन का इतिहास* ।

शर्मा, रामविलास, *मार्क्स और पिछड़े हुए समाज* ।

सम्पूर्णानन्द, *समाजवाद* ।

क्रोपारकिन, प्रिन्स, *अराजकता और सिद्धान्त* ।

गुप्त, मन्मथनाथ, *राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास* ।

नारायण, जयप्रकाश, *मेरी विचार यात्रा* ।

गुरुदत्त, *भारत : गांधी नेहरू की छाया में* ।

दीक्षित, *ताराचंद, डॉक्टर लोहिया का समाजवादी दर्शन* ।
मार्क्स, एंगेल्स, *भारत का प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम,* नई दिल्ली ।
लोहिया, राममनोहर, *समाजवादी एकता* ।
शर्मा, महादेव प्रसाद, *भारतीय राजनीति में विभिन्नवाद* ।
मंत्री, ओमप्रकाश, *समाजवादी कोरिया में महान परिवर्तन* ।
यशपाल, *समाजवाद* ।
वर्मा, कन्हैयालाल, *भारत का समाजवादी दल* ।
मित्र, जगन्नाथ प्रसाद, *समाजवाद क्या है ?*
पर्वतीय लीलाधर, *स्वतंत्रता की पूर्व सन्ध्या* ।
सिन्हा, वी०पी०, *समाजवाद – नीति या रीति* ।

पत्रिका एवम् जर्नल

संघर्ष (साप्ताहिक, आचार्य नरेन्द्र देव व अन्य)
जनवाणी (बनारस, आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा सम्पादित)
रविवार (साप्ताहिक, कलकत्ता)
धर्मयुग (साप्ताहिक, बम्बई)
जनता (साप्ताहिक, आर्गन आफ प्रजा सोशलिस्ट पार्टी)
दिनमान (साप्ताहिक, टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन, दिल्ली)

समाचार पत्र

समाज (१९४७ ई०)
विश्वमित्र (१९४५ ई०)
रानी (१९४५ ई०)

भारतीय समाजवाद

और

आचार्य नरेन्द्र देव



अमर ज्योति सिंह

एम० ए०, एम० फिल० (समाजशास्त्र)